ओ३म्

सामवेद-भाष्यम्

[उत्तरार्चिकः]

भाष्यकारः

पं॰ रामनाथः वेदालङ्कारः
एम.ए., पी.एच.डी.,

समर्पण शोध संस्थानम्, साहिबाबाद
[ग़ाज़ियाबाद]

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

विषय संख्या ______ आगत नं० ______

लेखक रामनाथ

शीर्षक सामवेद-भाष्यम् (उत्तरार्चिक)

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

ओ३म्

सामवेद-भाष्य

[उत्तरार्चिक]

भाष्यकार

आचार्य रामनाथ वेदालङ्कार विद्यामार्त्तण्ड

एम० ए०, पी०-एच्० डी०

प्रकाशक

समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद

(ग़ाज़ियाबाद) उ० प्र०

प्रकाशक :

समर्पण शोध संस्थान
४/४२, सै० ५, राजेन्द्र नगर
साहिबाबाद (गाज़ियाबाद) उ० प्र०-२०१००५

प्रथम संस्करण (हिन्दी) २०००

मूल्य : २५०.००

प्राप्ति स्थान :

१-समर्पण शोध संस्थान
४/४२, सै० ५, राजेन्द्र नगर
साहिबाबाद (ग़ाज़ियाबाद) उ० प्र०-२०१००५

२-गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क, दिल्ली-६

लेज़र प्रिंटर्स :
कॉमप्रिंट
२०, न्यू म्युनिसिपल मार्केट,
लोदी रोड, न्यू दिल्ली-११०००३
मुद्रक : राधा प्रेस, गांधी नगर, दिल्ली

रमनकान्त मुञ्जाल
की
पुण्य स्मृति में



रमन कांत मुंजाल

जन्म
२ जुलाई १९४९

अवसान
१८ जून १९९१

परिचय

प्रस्तुत वेदभाष्य के प्रकाशन में एक दिवंगत आत्मा की भी पावन स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, जो भारत के औद्योगिक आकाश में अपनी धवल कीर्ति के नये कीर्तिमान स्थापित करके चिर-स्मरणीय हो गया। देश और विदेश में जहाँ-जहाँ 'हीरो होंडा' पर सवार होकर लोग हवाओं से बातें करेंगे, उसके निर्माता को प्यार और प्रशंसा से स्मरण करेंगे।

१९४९ की दो जुलाई को 'मुंजाल' -परिवार में एक शिशु ने आगरा में जन्म लिया, जिसका नाम रक्खा गया रमनकान्त। किशोरावस्था से ही यह बालक बहुमुखी प्रतिभाओं से सम्पन्न था मेधावी होने के साथ-साथ कठोर परिश्रमी भी था। मणिपाल टैक्नॉलॉजी संस्थान' से मैकेनिकल इंजिनीयरिंग में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। चार सुपुत्रों के पिता श्री बृजमोहनलाल मुंजाल का 'हीरो साइकल उद्योग' समूचे देश में पहले से प्रतिष्ठित था। अग्रज सन्तान रमनकान्त ने लुधियाना में 'हाइवे साइकल उद्योग लि०' को १९७१ में सम्भालते ही, ऐसी निष्ठा के साथ अपनी सहयोग से 'हीरो होंडा' की रचना द्वारा देश को पवन-गति प्रदान करके, पिता द्वारा स्थापित व्यवसाय को रमनजी ने देश की सीमाओं के पार फैलाकर सिद्ध कर दिया कि वह योग्य पिता की सुयोग्य सन्तान थे। उद्योग की लोकप्रियता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि ३१ मई १९९१ के दिन कम्पनी ने 'होरो होंडा सी० डी० १००' की पाँच लाख मोटर-साइकल्स के उत्पादन का लक्ष्य पूरा करके नया कीर्तिमान स्थापित किया। हमारे शास्त्रों में सत्य ही कहा गया है - **'उद्योगिनं' पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी'**। सचमुच रमनजी उद्योग कानन के सिंहपुरुष निकले।

किन्तु, 'लक्ष्मी' केवल धन-वैभव का नाम ही तो नहीं है। सच्ची दौलत तो 'मनुष्यता' है! रमनजी वस्तुतः मुनष्यता के उपासक थे। जिनके सहयोग से उन्होंने सफलताएँ और उपलब्धियाँ प्राप्त कीं, उन श्रमिकों के पसीने की बूँदों से भी उन्हें प्यार था। उनके हितों का संरक्षण करने में रमनजी सदैव तत्पर रहे। ज़रूरतमन्दों को भरसक सहयोग देने में वह निरन्तर अग्रणी रहे। दरिद्र ग्राम-बन्धुओं को उन्होंने तन-मन-धन से सहयोग दिया। अनेकों विकलांगों को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार उनके पाँवों पर खड़ा किया। देश की युवा पीढ़ी को आधुनिक शिक्षा सुलभ कराने हेतु, कम्प्यूटरीकृत तकनीकी विधियों का संयोजन कराया और देश को आधुनिक शिक्षितों की एक सर्वगुण-सम्पन्न पीढ़ी उपलब्ध कराने में पहल की।

यह सब वही कर सकता है जो सेवाभावी पवित्रात्मा हो, जिसे एक वैभवशाली उद्योगपति होने का दम्भ और दर्प न हो, जो दैवी उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत हो, जो दया-ममता का अजस्र निर्झर हो, जिसके मन में दलितों और मज़दूरों के प्रति सच्ची सहानुभूति हो, जिसमें उद्योग की स्पर्धा तो हे किन्तु ईर्ष्या-द्वेष न हो, जो ईश्वर-परायण हो और आस्तिकता में रचा-बसा हो। रमनजी सचमुच सबके सखा थे। उनके मित्रों का दायरा विशाल और विस्तृत था। उनके अधीनस्थ, उनके क्षुद्र कर्मचारी और तुच्छ सेवक भी उन्हें अपना सखा और बन्धु ही मानते थे, तभी तो हर कोई उन्हें प्यार से 'रमनजी' पुकारता था।

समय के एक-एक पल को पूरे उत्साह और कर्मठता से जीना, हर महफिल में अपने ठहाकों और चुटकुलों से रंगीनियाँ भर देना, दूसरों की पीड़ाओं को मुस्कानों में बदल देना, सोच-समझकर वचन देना और दिये हुए वचन को हर हाल में निभाना, बेरोज़गारों को रोज़गार के साधन उपलब्ध कराना, हर काम का प्रारम्भ ईश्वर के स्मरण और अग्न्याधान-यज्ञादि से करना, दुःखों और सुखों में सम-भाव से रमण करना- यही तो वे गुण हैं जो रमनजी को कान्त (प्रिय) थे! तभी तो वे रमनकान्त थे! स्वनाम-धन्य लोग सचमुच विरले ही होते हैं, और रमनकान्त विरले ही थे। परन्तु,

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते !

देहधारी चाहे कितना ही पुण्यात्मा हो, भगवान् श्रीराम हो या भगवान् श्रीकृष्ण, देहत्याग तो होगा ही !

धन्य हैं वे लोग, जो देहधारी होते हुए भी अन्तरात्मा के आदेश पर चलते हैं और जीवन के अन्तिम क्षणों में भी कर्मठता के प्रतीक बने रहते हैं। १८ जून १९९१ को रमनजी ने हमेशा की तरह अपने कार्य-कक्ष में बैठकर स्वाभाविक शैली में काम निपटाया। शाम को सहसा स्वयं को असहज पाया। तुरन्त हॉस्पिटल पहुँचाया गया। किन्तु दूसरों के लिए ममता के मारे धड़कनेवाला दिल सारी मोह-ममता के बन्धन तोड़ गया। शरीर तो पञ्चतत्व को प्राप्त हो गया, किन्तु अपनी सुखद स्मृतियों से हज़ारों-लाखों को रुला गया।

मुंजाल-परिवार से मेरे निकट के सम्बन्ध रहे हैं। मुंजाल-परिवार को इस शोकाकुल अवस्था में मेरी सहसा याद आ गई। मैं देहली से बाहर था। लौटने पर जैसे ही सूचना मिली मैं उपस्थित हो गया। लगभग १० दिन तक प्रातः सायं मेरे प्रवचन होते रहे, जिससे परिवार के सदस्यों को सान्त्वना मिली। उन्हीं दिनों श्री जितेन्द्रजी मेहता ने मुझसे पूछा कि 'स्वामीजी ! आजकल आप किस कार्य में विशेष रूप से लगे हुए हैं ?' मैंने उन्हें सामवदेविषयक चर्चा सुनायी। तब श्री जितेन्द्रजी व रमनकान्तजी की अन्य मित्रमण्डली ने कहा कि 'क्यों न ऐसा किया जाए कि सामवेद के प्रकाशन में श्री स्व० रमनकान्तजी का भी सहयोग हो जिससे कि उनकी कीर्ति सदा बनी रहे !' आज उसी का यह उपहार जनता-जनार्दन के करकमलों में सौंप रहा हूँ।

ईश्वर से यही प्रार्थना है कि प्रभो ! मुंजाल-परिवार के सभी सदस्यों को पर्याप्त शक्ति, धैर्य और संयम प्रदान करें।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।

संसार में जन्म लेना उसी का सार्थक माना जाता है जिसके द्वारा वंश की समुन्नति होती हो। इस परिप्रेक्ष्य में रमनकान्तजी की सुखद-स्मृतियों को हम श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं।

स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

सामवेदभाष्यम्

उत्तरार्चिकः

पूर्वार्चिकमहानाम्न्योः कृत्वा भाष्यं यथाक्रमम् ।
व्याख्यामुत्तरसाम्नां तु कुर्वे नत्वा परात्परम् ॥१॥
भूतवेदखनेत्रे ऽब्दे चैत्रे मासे सिते दले ।
पञ्चम्यां मङ्गले वारे भाष्यारम्भं करोम्यहम् ॥२॥
परेशस्य स्तुतिर्यत्र प्रार्थनोपासनापि च ।
जीवात्मोद्बोधनं वीर्यं विजयः समराङ्गणे ॥३॥
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च श्रद्धा योगो मतिर्धृतिः ।
ध्यानं धीश्च समाधिश्च शमो मुक्तिसुखे रतिः ॥४॥
आरोग्यमायुषो वृद्धिः सम्पत्प्राप्तिः समुन्नतिः ।
सुखं सौहार्दमापत्सु धैर्यं शौर्यं जयो यशः ॥५॥
आचार्यशिष्यसम्बन्धः शिक्षा-दीक्षा परं तपः ।
विद्याप्राप्तिर्व्रते निष्ठा स्नातकत्वं द्विजन्मता ॥६॥
नृपनीतिसमाख्यानं ब्रह्मक्षत्रसमन्वयः ।
राष्ट्रोत्थानं प्रजासौख्यं विश्वशान्तिर्महीयसी ॥७॥
विना लौकिकमुत्कर्षं नाध्यात्मं संप्रवर्तते ।
तस्मादत्रोभयेषां तु क्रियते संनिबन्धनम् ॥८॥
पुनरुक्तास्तु ये मन्त्राः प्राप्यन्तेऽत्र क्वचित् क्वचित् ।
व्याख्यानं नूतनं तेषां विधास्येऽहं यथामति ॥९॥
प्रीयन्तां पाठकाः सर्वे वर्धतां च रुचिः श्रुतौ ।
श्रद्धा मातेव कल्याणी मङ्गलं तनुतात् सदा ॥१०॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रन्तन्न आसुव ॥

यजु० ३०।३

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
३ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ २३ १ २
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२॥

साम० उ० प्रपा० ९, अर्ध ३, सूक्त ९, मन्त्र ३

पूर्वार्चिक और महानाम्नी आर्चिक का क्रमशः भाष्य कर चुकने पर अब मैं परात्पर परमेश्वर को नमस्कार करके उत्तरार्चिक के साममन्त्रों की व्याख्या करता हूं ।।१।।

संवत् २०४५ के चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में पञ्चमी तिथि मंगलवार को मैं भाष्य आरंभ कर रहा हूं ।।२।।

इस भाष्य में कहीं परमात्मा की स्तुति, कहीं प्रार्थना, कहीं उपासना, कहीं स्तुति-प्रार्थना दोनों, कहीं स्तुति-उपासना दोनों, कहीं प्रार्थना-उपासना दोनों, कहीं स्तुति-प्रार्थना-उपासना तीनों, कहीं जीवात्मा को उद्‌बोधन, कहीं वीरता और कहीं समरांगण में विजय का वर्णन किया जा रहा है ।।३।।

इस भाष्य में ज्ञान, कर्म, भक्ति, श्रद्धा, योग, मति, धृति, ध्यान, धी, समाधि, शम और मुक्ति के आनन्द के प्रति प्रेम का भी वर्णन करूंगा ।।४।।

इस भाष्य में आरोग्य, दीर्घायुष्य, सम्पदा की प्राप्ति, समुन्नति, सुख, सौहार्द, आपत्तियों में धैर्य, शूरता, जय और यश की प्राप्ति का भी वर्णन होगा ।।५।।

इस भाष्य में आचार्य और शिष्य के सम्बन्ध, शिक्षा, दीक्षा, परम तप, विद्याप्राप्ति, व्रत के प्रति निष्ठा स्नातक होने तथा आचार्य से द्वितीय जन्म प्राप्त करके द्विज बनने का भी वर्णन होगा ।।६।।

इस भाष्य में राजनीति की चर्चा, ब्रह्म और क्षत्र के समन्वय, राष्ट्र के उत्थान, प्रजा के सुख और महिमामयी विश्वशान्ति का भी वर्णन करूंगा ।।७।।

लौकिक उत्कर्ष के बिना अध्यात्म उत्कर्ष की भली-भाँति प्रवृत्ति नहीं होती । इस कारण इस भाष्य में दोनों का समावेश किया जाएगा ।।८।।

उत्तरार्चिक में जो कहीं-कहीं पूर्वार्चिक के ही मन्त्र पुनरुक्त हुए हैं अथवा उत्तरार्चिक में ही एक से अधिक बार आये हैं, उनका मैं अपनी मति के अनुसार प्रत्येक स्थल पर नवीन अर्थ करूंगा ।।९।।

सब पाठक तृप्ति प्राप्त करें, वेद में उनकी रुचि बढ़े । माता के समान कल्याणकारिणी श्रद्धा सदा उनका मंगल करती रहे ।।१०।।

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, समग्रैश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता, सूर्यादि लोकों के तथा सब विद्याओं के प्रकाशक परमेश्वर । आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःखों और विघ्नों को दूर कर दीजिए । जो कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव, पदार्थ और सत्यार्थ हैं, वह सब हमको प्रदान कीजिए ।।१।।

महान् कीर्ति वाला 'इन्द्र' नाम से प्रसिद्ध जगदीश्वर हम सबको मंगल प्रदान करे । सब धन और ज्ञान का अधिपति, पुष्टिप्रदाता, 'पूषा' नाम से प्रसिद्ध जगदीश्वर हम सबको मंगल प्रदान करे । अक्षय व्याप्ति-परिधि वाला सर्वान्तर्यामी 'तार्क्ष्य' नामक जगदीश्वर हम सबको मंगल प्रदान करे । वेदवाणी का पति सर्वज्ञानमय, गुरुओं का गुरु 'बृहस्पति' नामक जगदीश्वर हम सबको मंगल प्रदान करे ।।२।।

सामवेदभाष्यम्

उत्तरार्चिकः

अथ प्रथमः प्रपाठकः प्रथमोऽध्यायश्च

तत्र प्रथमे प्रपाठके प्रथमोऽर्धः प्रथमेऽध्याये प्रथमः खण्डश्च प्रारभ्यते ।

।।१।। अथ 'उपास्मै' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः**—असितः काश्यपः देवलो वा । **देवता**— पवमानः सोमः। **छन्दः**— गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में परमात्मा के प्रति मनुष्यों का कर्तव्य वर्णित किया गया है ।

६५१. उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ।।१।।[1]

पदार्थ—हे **नरः** मनुष्यों ! तुम **देवान्** अहिंसा, सत्य, न्याय आदि दिव्यगुणों को **इयक्षते** प्रदान करने की इच्छा वाले **अस्मै** इस **पवमानाय** पवित्रता देने वाले, **इन्दवे** आनन्दरस से भिगोने वाले परमात्मा के लिए **उपगायत** समीप होकर स्तुतिगीत गाया करो ।।१।।

भावार्थ—सब स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि जगदीश के स्तुतिगीतों का कीर्तन कर और उससे प्रेरणा पाकर अपनी उन्नति करें ।।१।।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्दरस की उपादेयता वर्णित है ।

६५२. अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ।।२।।[2]

पदार्थ— हे पवित्रतादायक सोम परमात्मन् ! **अथर्वाणः** अचंचल चित्तवृत्ति वाले उपासक जन **ते** तेरे **मधुना** मधुर आनन्द-रस के साथ **पयः** अपने विशुद्ध ज्ञान और कर्म के दूध को **अभि अशिश्रयुः** मिलाते हैं। **देवयु** दिव्यगुणयुक्त परमेश्वर से प्रीति चाहने वाला सारा ही भगवद्भक्त-समाज **देवाय** दिव्य प्रकाश पाने के लिए **देवम्** तुझ प्रकाशदाता की उपासना करता है ।।२।।

---

१. ऋ० ९।११।१, य० ३३।६२ ऋषिः देवलः, देवता सोमः। साम० ७६३।

२. ऋ० ९।११।२।

इस मन्त्र में 'देवाय, देवयु' में छेकानुप्रास तथा 'देवं, देवा, देव' में वृत्त्यनुप्रास होने से दोनों अलंकारों का एकाश्रयानुप्रवेशरूप संकर है।।२।।

भावार्थ– ज्ञान और कर्म से समन्वित भक्ति ही सब मनुष्यों का कल्याण करती है ।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

६५३. स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ।।३।।[1]

पदार्थ– हे **राजन्** विश्व के सम्राट परमात्मन् ! **सः** वह प्रसिद्ध आप **नः** हमारे **गवे** गाय, वाणी और इन्द्रियों आदि के लिए **शम्** कल्याण को, **जनाय** माता, पिता, पुत्र, पौत्र, पत्नी, सेवक आदि जनों के लिए **शम्** कल्याण को, **अर्वते** घोड़े, प्राण और शत्रुहिंसक वीर के लिए **शम्** कल्याण को, **ओषधीभ्यः** धान, जौ, गेहूं, लता, गुल्म, वृक्ष, वनस्पति आदियों के लिए और दोषनिवारक शुद्ध चित्तवृत्तियों के लिए **शम्** कल्याण को **पवस्व** बरसाइये ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर की उपासना से सबको शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय कल्याण प्राप्त करना योग्य है ।।३।।

।।२।। अथ 'दविद्युतत्या' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः**–कश्यपो मारीचः । **देवता**–पवमानः सोमः। **छन्दः**–गायत्री । **स्वरः**–षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्दरूप सोमरसों का वर्णन करते हैं।

६५४. दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा। सोमाः शुक्रा गवाशिरः ।।२।।[2]

पदार्थ– **दविद्युतत्या** अतिशय देदीप्यमान **रुचा** कान्ति तथा **परिष्टोभन्त्या** चारों ओर से सहारा देने वाली **कृपा** शक्ति के साथ **गवाशिरः** उपासक के आत्मा में आश्रित **सोमाः** ब्रह्मानन्द-रस **शुक्राः** अत्यन्त पवित्रकारी हो जाते हैं ।।१।।

भावार्थ– जब ब्रह्मानन्द-रस उपासक को प्राप्त होते हैं तब वे उसके आत्मा को स्थायी रूप से अतिशय निर्मल कर देते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि हृदय में धारण किया हुआ परमात्मारूप सोम क्या करता है ।

६५५. हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा।।२।।[3]

पदार्थ– **हेतृभिः** प्रेरक गुरुजनों के द्वारा **हितः** शिष्य के आत्मा में स्थापित किया हुआ, **हिन्वानः** तृप्ति प्रदान करता हुआ, **वाजी** बलवान् परमात्मा-रूप सोम **वाजम्** अन्तःकरण में चल रहे देवासुरसंग्राम पर **आ अक्रमीत्** चारों ओर से आक्रमण कर देता है, **यथा** जैसे **सीदन्तः** प्रयाण करते हुए **वनुषः** हिंसक योद्धा लोग [शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं।] ।।२।।

---

१. ऋ० ९।११।३।
२. ऋ० ९।६४।२८।
३. ऋ० ९।६४।२९, 'हेतृभिर्यत' इति भेदः।

इस मंत्र में उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– हृदय में धारण किया हुआ परमेश्वर आन्तरिक देवासुरसंग्राम में अपने उपासक को सदा विजय दिलाता है। ।।२।।

अगले मन्त्र में जीवात्मा और चन्द्रमा का विषय वर्णित है ।

६५६. ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे । पवस्व सूर्यो दृशे ।।३।।[1]

पदार्थ– **प्रथम** जीवात्मा के पक्ष में । हे **कवे** बुद्धिमान्, दूरदर्शी **सोम** चन्द्रमा के समान उन्नतिशील जीवात्मन् ! तू **दिवा** परमात्मा की ज्योति से **संजग्मानः** संयुक्त होता हुआ **स्वस्तये** उत्कृष्ट जीवन के लिए **ऋधक्** उन्नति प्राप्त कर। **सूर्यः** सूर्य के समान प्रकाशमान होकर **दृशे** मुक्ति का मार्ग देखने के लिए **पवस्व** प्रयत्न कर ।

द्वितीय चन्द्रमा के पक्ष में । हे **कवे** पृथिवी की परिक्रमा करने वाले **सोम** चन्द्रमा ! तू **दिवा** सूर्य के प्रकाश से **संजग्मानः** संयुक्त होता हुआ **स्वस्तये** हमारे सुख के लिए **ऋधक्** एक-एक कला से प्रतिदिन बढ़ता चल। पूर्णिमा को **सूर्यः** सूर्य के समान सम्पूर्ण प्रभामण्डल वाला होकर **दृशे** हमारे देखने के लिए **पवस्व** भूमण्डल पर अपनी चांदनी को फैला ।।३।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । 'सूर्यः' अर्थात् 'सूर्य के सदृश' में लुप्तोपमा है । चन्द्रमा के पक्ष में जड़ वस्तु में चेतनवत् व्यवहार आलंकारिक है ।।३।।

भावार्थ– जैसे सूर्य से चन्द्रमा प्रकाशित होता है वैसे ही परमात्मारूप सूर्य से हम प्रकाशित होते हैं ।।३।।

।।३।। अथ 'पवमानस्यस्य ते' इत्यादिकस्य तृतीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः**– शतं वैखानसाः । **देवता**– पवमानः सोमः । **छन्दः**– गायत्री । **स्वरः**– षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में परमात्मा-रूप सोम की रसधाराओं का वर्णन है ।

६५७. पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ।।१।।[2]

पदार्थ–हे **कवे** वेदकाव्य के कवि ! हे **वाजिन्** बली परमेश्वर ! **पवमानस्य ते** तुझ पवित्र करने वाले की **सर्गाः** आनन्द-धाराएं **श्रवस्यवः** हमें यशस्वी बनाना चाहती हुई **असृक्षत** छूट रही हैं, **न** जैसे **अर्वन्तः** घोड़े [घुड़साल से छूटते हैं।] घोड़े भी कैसे होते हैं ? **श्रवस्यवः** घासादि भोज्य को चाहने वाले । अभिप्राय यह है कि जैसे बाहर जाकर चरागाहों में घास चरना चाहने वाले घोड़े घुड़साल में से उत्सुकतापूर्वक निकलते हैं, ऐसे ही आपकी आनन्दधाराएं आप में से निकलकर हमें आनन्दित कर रही हैं ।।१।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है । 'श्रवस्यवः' में श्लेष है ।।१।।

१. ऋ० ९।६४।३० 'द्विः कुविः' इति भेदः ।

२. ऋ० ९।६६।१० ।

भावार्थ– परमात्मा के उपासक लोग परमात्मा से अपने आत्मा में प्रवेश करते हुए महान् आनन्द के झरनों को साक्षात् अनुभव करते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः सोमरस का विषय वर्णित है ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
६५८. अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये। अवावशन्त धीतयः ।।२।।[1]

पदार्थ–प्रथम सोमौषधिरस के पक्ष में । मैं **मधुश्चुतम्** मधुस्रावी सोमरस को **कोशम् अच्छ** द्रोणकलश में पहुंचाने के लिए **अव्यये वारे** भेड़ के बालों से बनी हुई छन्नी में **असृग्रम्** छोड़ता हूँ । मेरी **धीतयः** अंगुलियां **अवावशन्त** सोमरस को छानने में प्रवृत्त हो रही हैं ।

द्वितीय ब्रह्मानन्द के पक्ष में । मैं **मधुश्चुतम्** माधुर्यस्रावी ब्रह्मानन्दरूप सोमरस को **कोशम् अच्छ** मन, बुद्धि एवं ज्ञानेन्द्रियरूप विज्ञानमय कोश में पहुंचाने के लिए **अव्यये वारे** अविनश्वर तथा कामक्रोधादि शत्रुओं का निवारण करने वाले आत्मा में **असृग्रम्** छोड़ता हूं। मेरी **धीतयः** स्तुतियां **अवावशन्त** प्रभु के गीतों का गान कर रही हैं ।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है ।।२।।

भावार्थ–जैसे सोमौषधि का रस छन्नी के माध्यम से द्रोणकलश में प्रविष्ट कराया जाता है, वैसे ही ब्रह्मानन्दरस को आत्मा के माध्यम से सभी मन-बुद्धि आदियों में प्रविष्ट कराना चाहिए, जिससे हमारे दर्शन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि सब व्यवहार ब्रह्मानन्दमय हो जाएं ।।२।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि ब्रह्मानन्द-रस किस प्रकार मनुष्यों का उपकार करते हैं ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
६५९. अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः। अग्मन्नृतस्य योनिमा ।।३।।[2]

पदार्थ–इन्दवः ब्रह्मानन्द-रस **समुद्रम् अच्छ** हृदय-समुद्र की ओर बहते हुए **ऋतस्य** सत्य के **योनिम्** गृहरूप मेरे अन्तरात्मा को **आ अग्मन्** प्राप्त हुए हैं । किस प्रकार ? **न** जैसे **धेनवः** दूध से तृप्ति प्रदान करने वाली **गावः** गौएं **अस्तम्** गोशाला को प्राप्त होती हैं ।।३।।

इस मन्त्र में उमालंकार है ।।३।।

भावार्थ–जैसे गौएं गोशाला को प्राप्त करके अपने दूध आदि से लोगों को तृप्त करती हैं, वैसे ही ब्रह्मानन्द हृदय और आत्मा में प्रविष्ट होकर उपासकों को तृप्ति प्रदान करते हैं ।।३।।

प्रथम अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त

।।४।। अथ 'अग्न आ' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

---

१. ऋ० ९।६६।११

२. ऋ० ९।६६।१२।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक क्रमांक: १ पर परमात्मा, विद्वान् और राजा के पक्ष में व्याख्या हो चुकी है। यहां यज्ञाग्नि और जीवात्मा के पक्ष में व्याख्या की जा रही है।

२ ३ १ २ ३१२ ३ २ ३ १ २ १र २र ३ १ २
६६०. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि॥१॥[1]

पदार्थ—प्रथम यज्ञाग्नि के पक्ष में। अग्निहोत्र के माध्यम से परमात्मा के तेज को अपने हृदय में प्रदीप्त करना चाहता हुआ उपासक यज्ञाग्नि का आह्वान कर रहा है। हे **अग्ने** यज्ञाग्नि ! तू **आयाहि** हमारे यज्ञ में आ। किसलिए ? **वीतये** हवियों को खाने के लिए। **गृणानः** मन्त्रपाठ द्वारा हमसे स्तुति किया जाता हुआ अथवा हमारे रोग, पाप आदि को निगलता हुआ तू **हव्यदातये** दातव्य तेज आदि को देने के लिए, अथवा होमी हुई सुगन्धित, मधुर, पुष्टिप्रद तथा रोगनाशक गुणों से युक्त हवियों को सूक्ष्म करके वायुमण्डल में फैलाने के लिए आ। **होता** होमे हुए द्रव्यों का स्वीकार करने वाला तथा आरोग्य, दीर्घायुष्य आदि को देने वाला तू **बर्हिषि** यज्ञवेदि के आकाश में **नि सत्सि** बैठ। यहां अचेतन यज्ञाग्नि में चेतन के समान व्यवहार आलंकारिक है।

द्वितीय आत्मोद्बोधन के पक्ष में। हे **अग्ने** मेरे अन्तरात्मन् ! तू **आयाहि** कर्मभूमि में पदार्पण कर। किसलिए ? **वीतये** कर्म करने के लिए। **गृणानः** कर्मयोग का उपदेश करता हुआ तू **हव्यदातये** परोपकारार्थ आत्मोसर्ग करने के लिए आ। **होता** राष्ट्र के संगठन के लिए लोगों का आह्वान करने वाला तू **बर्हिषि** उच्चपद पर **नि सत्सि** बैठ॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१॥

भावार्थ—सबको चाहिए कि ऋतु के अनुकूल हवियों से अग्निहोत्र द्वारा वायुमण्डल को सुगन्धित तथा रोग के कीटाणुओं से रहित करके और यज्ञाग्नि के समान तीव्र तेज को तथा परमात्मा की ज्योति को अपने अन्तःकरण में धारण करके भौतिक एवम् आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त करें। साथ ही 'मेरे दाहिने हाथ में कर्म है तो बाएं हाथ में विजय रखी हुई है। य० ७।५२।८ इस वैदिक सन्देश को मुखर करके अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर जनहित के महान् कर्म करने चाहिएं और राष्ट्र के हितार्थ अपना बलिदान देने से भी नहीं हिचकना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में यज्ञाग्नि, आत्माग्नि तथा परमात्माग्नि को सम्बोधन किया गया है।

१ २ ३ १ २ ३१२
६६१. तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य॥२॥[2]

पदार्थ—प्रथम यज्ञाग्नि के पक्ष में। हे **अङ्गिरः** चंचल ज्वाला वाले यज्ञाग्नि ! **तं त्वा** उस तुझको, हम **समिद्भिः** समिधाओं से, और **घृतेन** घृत से **वर्धयामसि** बढ़ाते हैं। हे **यविष्ठ्य** अतिशय युवा अग्ने! तू **बृहत्** बहुत अधिक **शोच** चमक।

द्वितीय जीवात्मा के पक्ष में। मनुष्य अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन दे रहा है— हे **अङ्गिरः** कर्मशील मेरे अन्तरात्मन् ! **तं त्वा** उस बहुत कर्म करने में समर्थ तुझे, हम **समिद्भिः** ज्ञानरूप

---

१. ऋ० ६।१६।१०, साम० १।
२. ऋ० ६।१६।११, य० ३।३।

समिधाओं से, और **घृतेन** सत्कर्मरूप घृत से **वर्धयामसि** बढ़ाते हैं । हे **यविष्ठ्य** अतिशय तरुण ! तू संसार में **बृहत्** बहुत अधिक **शोच** चमक ।

तृतीय परमात्मा के पक्ष में । हे **अङ्गिरः** प्राणप्रिय परमात्मन् ! **तं त्वा** सब कर्मों में समर्थ उन आपको हम **समिद्भिः** प्रदीप्त करने के साधन योगांगों से, और **घृतेन** स्नेहयुक्त भक्तिभावों से, अपने अन्तःकरण में **वर्धयामसि** बढ़ाते हैं । हे **यविष्ठ्य** सर्वातिशय समृद्ध भगवन् ! तुम, हमारे अन्तःकरण में **बृहत्** बहुत अधिक **शोच** चमको ।।२।।

यहां श्लेषालंकार है।।२।।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि यज्ञाग्नि को प्रदीप्त तथा संवृद्ध करके स्वयं भी तेज से प्रदीप्त तथा संवृद्ध हों । इसी प्रकार अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर निर्भ्रान्त ज्ञानराशि का संचय करके महान् कीर्ति प्राप्त करें और योगाभ्यास एवं भक्ति से परमात्मा-रूप अग्नि को अपने आत्मा में प्रदीप्त करें ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः यज्ञाग्नि, आत्माग्नि और परमात्माग्नि को सम्बोधन करते हैं।

१ २ ३२ ३ २ ३१ २ ३१२ ३ १ २

६६२. स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ।।३।।[1]

पदार्थ—हे **देव** उत्तम प्रकाशक **अग्ने** भौतिक अग्नि, अन्तरात्मन् और परमात्मन् ! **सः** वह प्रसिद्ध, तू **नः अच्छ** हमारी ओर **पृथु** विस्तीर्ण, **श्रवाय्यम्** कीर्तिजन, **बृहत्** प्रचुर, तथा **सुवीर्यम** श्रेष्ठ बल-युक्त भौतिक एवं आध्यात्मिक ऐश्वर्य **विवाससि** प्रेरित कर ।।३।।

भावार्थ—भौतिक अग्नि जैसे यज्ञ में और शिल्पकर्म में उपयोग करने पर स्वास्थ्य, धन, धान्य आदि प्राप्त कराता है, वैसे ही आत्माग्नि उद्बोधन देने पर तथा परमात्माग्नि उपासना करने पर महान् अध्यात्मसम्पत्ति प्रदान करता है। ।।३।।

।।५।। अथ 'आ नो मित्रावरुणा' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वामित्रो गाथिनः जमदग्निर्वा भार्गवः । **देवते** मित्रावरुणौ। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक २२० पर ब्राह्मण क्षत्रिय के पक्ष में व्याख्या की गयी थी । यहां परामात्मा जीवात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

१ २ ३१२ २र २ ३ १ २

६६३. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ।।१।।[2]

पदार्थ—हे **मित्रावरुणा** परमात्मा और जीवात्मा ! तुम **नः** हमारे **गव्यूतिम्** इन्द्रियों के स्थितिस्थान देह को **घृतैः** तेजों से **आ उक्षतम्** सींच दो। हे **सुक्रतू** उत्कृष्ट कर्म करने वालो ! तुम **रजांसि** देह में स्थित अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय लोकों को **मध्वा** मधु से **आ उक्षतम्** सींच दो ।।१।।

---

१. ऋ० ६।१६।१२।

१. ऋ० ३।६२।१६, साम० २२०। ऋग्भाष्ये दयानन्दर्षिमन्त्रमेतमध्यापकोपदेशकपक्षे यजुर्भाष्ये च जलयानविषये व्याचष्टे।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा की उपासना करके और जीवात्मा को उद्बोधन देकर शरीर, अंग-प्रत्यंग तथा मन, बुद्धि आदि को तेजस्वी बनायें ।।१।।

अगले मन्त्र में फिर मित्र-वरुण नाम से परमात्मा और जीवात्मा की स्तुति की गयी है ।

३ १ २ ३१ २ ३ १र २र १ २
६६४. उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ।।२।।[1]

पदार्थ–हे **शुचिव्रता** पवित्र कर्मों वाले परमात्मा और जीवात्मा ! **उरुशंसा** बहुत प्रशंसा को प्राप्त, **नमोवृधा** नमस्कार को ग्रहण कर बढ़ाने वाले व नमस्कार के प्रदान से वृद्धि को प्राप्त तुम **दक्षस्य** बल की **मह्ना** महिमा से और **द्राघिष्ठाभिः** अतिशय दीर्घ क्रियाओं, सम्पत्तियों वा स्तुतियों से **राजथः** राजा बने हुए हो ।।२।।

भावार्थ–सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सम्राट् महाबली परमेश्वर का ध्यान करके और देहपिण्ड के सम्राट् जीवात्मा को भलीभांति उद्बोधन देकर सब स्त्री-पुरुषों को अपनी उन्नति करनी चाहिए ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा का आह्वान किया गया है ।

३ २ ३१२ ३ १ २३१ २ ३१र २र
६६५. गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ।।३।।[2]

पदार्थ–हे परमात्मा-जीवात्मा रूप मित्र-वरुणो ! **जमदग्निना** अग्निहोत्रार्थ अग्नि को प्रज्वलित करने वाले यजमान से **गृणाना** स्तुति किये जाते हुए तुम दोनों **ऋतस्य योनौ** सत्य के मन्दिर हृदय में **सीदतम्** स्थित रहो । हे **ऋतावृधा** सत्य के बढ़ाने वालो ! तुम दोनों **सोमम्** शान्ति की **पातम्** रक्षा करो ।।३।।

भावार्थ–परमात्मा से प्रेरणा पाकर जीवात्माएं जब जगत् में शान्ति-रक्षा का प्रयत्न करती हैं तभी आपस में सौहार्द और सांमनस्य उत्पन्न होता है ।।३।।

।।६।। अथ 'आयाहि सुषुमा' इत्याद्यस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** इरिम्बिठिः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री।**स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में १९१ क्रमांक पर परमात्मा, राजा और आचार्य के विषय में व्याख्या की जा चुकी है । अब जीवात्मा के विषय में व्याख्या दी जा रही है । इन्द्र नाम से अपने अन्तरात्मा को सम्बोधन किया गया है ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २उ ३ १ २ ३ १ २
६६६. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ।।१।।[3]

पदार्थ–हे **इन्द्र** अन्तरात्मन् ! तू **आयाहि** आ, **ते** तेरे लिए, हमने **सोमम्** ज्ञानरस को **सुषुम** आंख, कान आदि ज्ञान के साधनों से अभिषुत किया है। तू **इमम्** इस ज्ञानरस को **पिब** पी, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त इस ज्ञान का मनन कर । तू **इदम्** इस **मम** मेरे **बर्हिः** हृदयासन पर **आ सदः** बैठा हुआ है ।।१।।

---

१. ऋ० ३।६२।१७, ऋग्भाष्ये दयानन्दर्षिणा मन्त्रोऽयमध्यापकोपदेशकविषये व्याख्यातः।

२. ऋ० ३।६२।१८, ऋग्भाष्ये दयानन्दर्षिर्मन्त्रमिममध्यापकोपदेशकविषये व्याख्यातवान् ।

३. ऋ० ८।१७।१, अथ० २०।३।१,३८।१,४७।७।

भावार्थ—मन के माध्यम से ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान का मनन और निदिध्यासन द्वारा पूर्ण साक्षात्कार करना चाहिए ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

६६७. आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ।।२।।[1]

पदार्थ—हे **इन्द्र** जीवात्मन्! **ब्रह्मयुजा** परमात्मा द्वारा शरीर में नियुक्त, **केशिना** प्रकाश को प्राप्त **हरी** ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियरूप अश्व **त्वा** तुझे **वहताम्** ज्ञान और कर्म में प्रवृत्त करें। तू **नः** हम गुरुओं के **ब्रह्माणि** ज्ञानमय वचनों को **शृणु** सुन ।।२।।

भावार्थ—शरीर में नियुक्त इन्द्रियों के सदुपयोग से और गुरुओं का उपदेश सुनकर सबको अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का उपदेश किया गया है ।

६६८. ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ।।३।।[2]

पदार्थ—हे **इन्द्र** आत्मन् ! हे शिष्य ! **सोमपाम्** ज्ञान का पान करने वाले **त्वा** तुझे **सोमिनः** ज्ञानवान्, **सुतावन्तः** शिष्यरूप पुत्रों वाले, **ब्रह्माणः** ब्रह्मज्ञानी **वयम्** हम गुरुजन **युजा** पारस्परिक सहयोग के साथ अथवा तेरे साथ घनिष्ठ सम्बन्धपूर्वक **हवामहे** विद्या पढ़ाने और सदाचार सिखाने के लिए बुलाते हैं ।।३।।

भावार्थ—जो स्वयं विद्यावान्, सदाचारी और ब्रह्म का अनुभव प्राप्त किये हुए गुरु होते हैं वे ही शिष्यों को विद्वान्, सदाचारी और ब्रह्मज्ञानी बना सकते हैं ।।३।।

।।७।। अथ 'इन्द्राग्नी आगत' मित्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वामित्रो गाथिनः। **देवते** इन्द्राग्नी । **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में 'इन्द्राग्नी' नाम से जीवात्मा और मन का आह्वान किया गया है । इन्द्र आत्मा अर्थ में प्रसिद्ध है । अग्नि के विषय में शतपथ ब्राह्मण १०।१।२।३ में कहा है कि 'मन ही अग्नि है'।

६६९. इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ।।१।।[3]

पदार्थ—हे **इन्द्राग्नी** आत्मा और मन ! तुम दोनों **गीर्भिः** गुरुओं की वाणियों से **सुतम्** निष्पादित, **नभः** सूर्य के समान प्रकाशयुक्त **वरेण्यम्** वरणीय् श्रेष्ठ ज्ञानरस को ग्रहण करने के लिए **आगतम्** आओ । **इषिता** तत्पर एवं प्रयत्नशील होकर तुम दोनों **धिया** बुद्धि द्वारा **अस्य** इस ज्ञान की **पातम्** रक्षा करो ।।१।।

---

१. ऋ० ८।१७।२, अथ० २०।३।२,३८।२,४७।८।

२. ऋ० ८।१७।३, अथ० २०।३।३, ३८।३, ४७।९, अथर्ववेदे सर्वत्र 'युजा वयं' इत्यत्र 'वयं युजा' इति पाठः ।

३. ऋ० ३।१२।१

इस मन्त्र में 'नभः' अर्थात् 'सूर्य के समान प्रकाशमान' में वाचकधर्मलुप्तोपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ—वाणी का अधिपति गुरु शिष्य को जिस ज्ञान का उपदेश करता है उसे उसको सावधानी के साथ अपने आत्मा, मन और बुद्धि के योगपूर्वक सुनकर और उस पर मनन करके हृदय में धारण कर लेना चाहिए, उसका प्रचार करना चाहिए तथा उसके अनुसार आचरण करना-करवाना चाहिए।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

६७०. इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ।।२।।[1]

पदार्थ— हे **इन्द्राग्नी** आत्मा और मन ! **जरितुः** विद्याओं का वर्णन करने वाले उपदेष्टा आचार्य का **सचा** गुरु-शिष्यों द्वारा साथ मिलकर किया हुआ **चेतनः** चेताने वाला **यज्ञः** विद्यायज्ञ **जिगाति** प्रवृत्त हो रहा है । तुम दोनों **अया** इस पद्धति से **सुतम्** निष्पादित **इमम्** इस विद्या-यज्ञ की **पातम्** रक्षा करते हो ।।२।।

भावार्थ— गुरु-शिष्य आपस में मिलकर ही ज्ञान-यज्ञ का अनुष्ठान करके राष्ट्र में सब प्रकार की विद्याओं का प्रचार करते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

६७१. इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ।।३।।[2]

पदार्थ—मैं **यज्ञस्य** विद्यायज्ञ की **जूत्या** शीघ्र सिद्धि के लिए **कविच्छदा** मेधावियों को दुःख, विपत्ति आदि से बचाने वाले **इन्द्रम् अग्निम्** आत्मा और मन को **वृणे** स्वीकार करता हूं। **ता** वे दोनों **इह** इस विद्यायज्ञ में **सोमस्य** ज्ञानरस से **तृम्पताम्** तृप्ति प्रदान करें ।।३।।

भावार्थ—आत्मा-रूप यजमान, मन-रूप होता और आचार्य-रूप ब्रह्मा के द्वारा सम्पादित विद्या-यज्ञ सफल एवं प्रभावकारी होता है ।।३।।

प्रथम खण्ड में परब्रह्म और ब्रह्मानन्द का वर्णन है और द्वितीय खण्ड में यह वर्णन है कि वह ब्रह्मानन्द तभी प्राप्त किया जा सकता है जब आत्मा और मन उसके लिए प्रयत्नशील होते हैं । अतः द्वितीय खण्ड की प्रथम खण्ड के साथ संगति है ।

प्रथम अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

।।८।। अथ 'उच्चा ते जातम्'[1] इत्यादिकस्य अष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अमहीयुराङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ४६७ पर रसागार परमेश्वर के आनन्दरस के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां विद्या के भण्डार गुरु के ज्ञानरस के पक्ष में व्याख्या की जा रही है ।

६७२. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद् भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ३।१२।२, ऋग्भाष्ये दयानन्दर्षिरितमपि मन्त्रमध्यापकोपदेशकविषये व्याचख्यौ ।

२. ऋ० ३।१२।३ ।

३. ऋ० ९।६१।१०, 'दिविषद्' इति पाठः। य० २६।१६, साम ४६७।

पदार्थ—हे जीवन को पवित्र करने वाले गुरु ! **ते** आपके **अन्धसः** ज्ञानरस का **जातम्** उत्पन्न स्वरूप **उच्चा** अत्यन्त उच्च है। **दिवि सत्** प्रकाश में विद्यमान अर्थात् प्रकाशित उस ज्ञान को **भूमि** भूमि के समान स्वतः प्रकाश से रहित मैं **आददे** ग्रहण करता हूं। उसके ग्रहण करने से मुझे **उग्रम्** प्रबल **शर्म** सुख और **महि** महान् **श्रवः** यश तथा धन, प्राप्त होगा ॥१॥

भावार्थ— गुरु से शास्त्रों का अध्ययन करके और ब्रह्मविद्या का अनुभव प्राप्त करके शिष्य अपने जीवन में शान्त, सुखी और यशस्वी होते हैं ॥१॥

द्वितीय ऋचा की पूर्वार्चिक में ५९२ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्या हुई थी। यहां गुरु शिष्य का विषय वर्णित करते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

६७३. स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित् परि स्रव ॥२॥[१]

पदार्थ—हे ज्ञानरस के भंडार गुरु ! **सः** वह अतिशय गुणी आप **नः** हमारे **यज्यवे** विद्याध्ययन-यज्ञ के यजमानभूत **इन्द्राय** आत्मा के लिए, **वरुणाय** श्रेष्ठ मन के लिए और **मरुद्भ्यः** प्राणों के लिए **वरिवोवित्** उन-उनके अपने-अपने ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले होकर **परिस्रव** शिष्यों के मध्य विचरण कीजिए ॥२॥

भावार्थ— गुरुओं को उचित है कि वे विद्या पढ़ाने के अतिरिक्त शिष्य के आत्मा, मन और प्राणों का भी विकास करें ॥२॥

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ५९३ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधित करके व्याख्यात की गयी है। यहां गुरु को सम्बोधन है।

३ १र २र ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २

६७४. एनाविश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो वनामहे ॥३॥[२]

पदार्थ—हे हमारे अन्तःकरणों को पवित्र करने वाले गुरुवर ! **अर्यः** विद्याओं के स्वामी आप **एना** इन **विश्वानि** सब **द्युम्नानि** विद्याधनों को **मानुषाणाम्** हम मननशील शिष्यों को **आ** प्राप्त कराओ। उन विद्याधनों को **सिषासन्तः** अन्यों को प्रदान करने की इच्छावाले हम **वनामहे** आपसे सीखते हैं ॥३॥

भावार्थ—जो मनुष्य गुरुओं के पास से अनेक प्रकार की भौतिक विद्याओं तथा आध्यात्मिक विद्याओं को पढ़कर अन्यों को पढ़ाते हैं वे ही गुरु-ऋण से मुक्त होते हैं ॥३॥

॥९॥ अथ पुनानः सोम इत्यादिकस्य नवमस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** सप्तर्षयः– १. भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २. कश्यपो मारीचः, ३. गोतमो राहूगणः, ४. अत्रिर्भौमः, ५. विश्वामित्रो गाथिनः, ६. जमदग्नि-भार्गवः, ७. वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः, १ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती। **स्वरः** १. मध्यमः, २. पञ्चमः।

---

१. ऋ० ९।६१।१२ य० २६।१७ साम० ५९२।

२. ऋ० ९।६१।११, य० २६।१८, साम० ५९३।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५११ क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात की गयी थी। यहां गुरु का वर्णन है।

३ १ २ ३ १२ ३ १२ २२
६७५. पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
१ २ ३ १२ २२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २३ १ २
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ।।१।।[1]

पदार्थ—हे **सोम** ज्ञानरस के खजाने गुरुवर ! आप **धारया** ज्ञान की धारा से **पुनानः** शिष्यों को पवित्र करते हुए **अर्षसि** शिष्यों के मध्य जाते हो। **रत्नधाः** रमणीय गुणों को धारण करने वाले आप **ऋतस्य योनिम्** सत्य के भण्डार परमात्मा को **आसीदसि** उपासते हो। आप **उत्सः** विद्या के स्रोत, **देवः** प्रकाशक और **हिरण्ययः** तेजस्वी हो ।।१।।

भावार्थ—वही गुरु होने योग्य है जो सब विद्याओं में पारंगत, अध्यापनकला में प्रवीण, चारित्र्यवान्, सच्चरित्र बनाने वाला, शिष्यों का पितृतुल्य, तेजस्वी, गुणवान्, गुणप्रशंसक, परब्रह्म का द्रष्टा और परब्रह्म का साक्षात्कार कराने में समर्थ हो ।।१।।

अगले मन्त्र में गुरु के अन्तेवासी शिष्य का वर्णन है।

३ १२ २२३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
६७६. दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्।
३१ २ ३१ २ ३क २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ।।२।।[2]

पदार्थ—यह शिष्य **ऊधः** विशाल ऊधवाली गुरुरूप गाय से **दिव्यम्** अलौकिक, **प्रियम्** प्रिय **मधु** ब्रह्मविद्यारूप मधु को **दुहानः** दुहता हुआ **प्रत्नम्** प्राचीन, **सधस्थम्** गुरु और छात्र जहां एकसाथ रहते हैं उस गुरुकुल में **आसदत्** निवास करता है। आगे प्रत्यक्ष पद्धति से कहते हैं— हे शिष्य ! **नृभिः** नेता गुरुओं से **धौतः** पवित्र किया हुआ, **विचक्षणः** पण्डित, और **वाजी** आत्मबल से बली बना हुआ तू **आपृच्छ्यम्** सबसे प्रश्न करने योग्य, **धरुणम्** सब जगत् के आधारस्तम्भ परमेश्वर को **अर्षसि** पा लेता है अर्थात् आवागमन के चक्र से छूटकर दुःखों से सदा के लिए मुक्ति प्राप्त कर लेता है। ।।२।।

भावार्थ—योग्य गुरु को पाकर ही मनुष्य ब्रह्म का साक्षात्कार और मोक्ष प्राप्त कर सकता है।।२।।

।।१०।। अथ 'प्र तु द्रव' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** उशना काव्यः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** त्रिष्टुप्। **स्वरः** धैवतः।।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५२३ क्रमांक पर जीवात्मा को उद्बोधन देने के पक्ष में की जा चुकी है। यहां शिष्य के प्रति कहते हैं।

१२ २२३ २ ३ २ ३ १ २३ १ २ ३ २ ३ १२ २२
६७७. प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
२ ३ १ २ ३ १२ ३२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ९।१०७।४ 'देवो' इत्यत्र 'देव' इति पाठः। साम० ५११।

२. ऋ० ९।१०७।५ 'आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः' इत्युत्तरार्धपाठः।

३. ऋ० ९।८७।१, साम० ५२३।

पदार्थ—हे शिष्य ! तू **तु** शीघ्र ही **प्र द्रव** उत्कृष्ट बनने के लिए प्रयत्न कर, उसके लिए **कोशम्** विद्या के खजाने गुरु का **परि निषीद** सेवन कर । **नृभिः** नेता गुरुजनों की सहायता से **पुनानः** स्वयं को पवित्र करता हुआ **वाजम्** शारीरिक और आत्मिक बल **अभ्यर्ष** प्राप्त कर । ये गुरुजन **वाजिनम्** बलवान् **त्वा** तुझे **मर्जयन्तः** शुद्ध करते हुए **रशनाभिः** नियन्त्रणों और मर्यादाओं से **बर्हिः अच्छ** ज्ञानकाण्ड व कर्मकाण्ड के प्रति **नयन्ति** प्रेरित करते हैं । कैसे ? **वाजिनम् अश्वं न** जैसे बलवान् घोड़े को योद्धा लोग **रशनाभिः** लगामों से नियन्त्रित करके **बर्हिः अच्छ** संग्राम की ओर **नयन्ति** ले जाते हैं ।।१।।

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालङ्कार है ।।१।।

भावार्थ—गुरुओं का हम पर महान् उपकार है, जो हम अबोध जनों को विद्यावान्, तपस्वी तथा पवित्र आचरण वाला बनाकर समुन्नत करते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि गुरु किन गुणों से युक्त हो ।

६७८. स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ।।२।।[1]

पदार्थ—**स्वायुधः** भद्र दण्ड वाला, **देवः** सुख आदि का दाता, **अशस्तिहा** अप्रशस्ति को दूर करने वाला, **वृजना** बलों की **रक्षमाणः** रक्षा करने वाला, **पिता** पितृतुल्य, **देवानां जनिता** विद्वानों को उत्पन्न करने वाला, **सुदक्षः** उत्तम बल वाला, **दिवः** विद्या के सूर्य का **विष्टम्भः** आधारभूत, **पृथिव्याः** राष्ट्रभूमि का **धरुणः** धारण करने वाला **इन्दुः** तेजस्वी गुरु **पवते** पवित्रता प्रदान करता है ।।२।।

भावार्थ—मन्त्रोक्त गुणों से युक्त गुरु का जो सेवन करते हैं वे विद्वान्, सदाचारी और प्रशस्त कीर्ति वाले होते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः गुरु का वर्णन है ।

६७९. ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां३ गुह्यं नाम गोनाम् ।।३।।[2]

पदार्थ—हमारा गुरु **ऋषिः** वेदमन्त्रो के रहस्य का द्रष्टा, **विप्रः** ब्राह्मण वृत्ति वाला, **जनानाम्** मनुष्यों में **पुरः एता** आगे चलने वाला, **ऋभुः** मेधावान्, **धीरः** धैर्यवान् और **काव्येन** काव्य-रचना से **उशना** जगत् का हित चाहने वाला है । **सः चित्** वही **आसां गोनाम्** इन वेदवाणियों का **यत्** जो **अपीच्यम्** छिपा हुआ, **गुह्यम्** रहस्यमय **नाम** अर्थ है उसे **विवेद** विशेष रूप से जानता है ।।३।।

भावार्थ—जो अति गम्भीर भी वेदादि वाङ्मय के रहस्यार्थ को हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष रूप से जानता हो उसी ऋषि, मेधावी ब्राह्मण को गुरुरूप में स्वीकार करना चाहिए ।।३।।

---

१. ऋ० ९।८७।२ 'वृजना' 'इत्यत्र' 'वृजनं' इति पाठः ।
२. ऋ० ९।८७।३

इस खण्ड में गुरु-शिष्य के सम्बन्ध का वर्णन है और गुरु से लौकिक विद्या तथा ब्रह्मविद्या का अध्ययन करके ही मनुष्य परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकते हैं इसका वर्णन है,अतः इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है यह जानना चाहिए ।

प्रथम अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

।।११।। अथ 'अभि त्वा शूर' इत्यादिकस्य एकादशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः– १. विषमा बृहती, २. समा सतोबृहती । **स्वरः** १. मध्यमः, २. पञ्चमः।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३३ कम्रांक पर जगदीश्वर के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है । यहां अपने अन्तरात्मा को सम्बोधन है ।

६८०. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ।।१।।[1]

पदार्थः–हे **शूर इन्द्र** शूरवीर हमारे अन्तरात्मन् ! हम **त्वा अभि** तेरे प्रति **नोनुमः** बारम्बार स्तुति-शब्द बोलते हैं । किस तरह ? **अदुग्धाः** न दुही हुई **धेनवः इव** गौएं जैसे दुहे जाने की उत्कण्ठा को प्रकट करने के लिए बारम्बार शब्द करती हैं । तू कैसा है ? **अस्य** इस **जगतः** दूर-दूर तक जाने वाले मन का **ईशानम्** स्वामी, **सवर्दृशम्** आनन्द का द्रष्टा और **तस्थुषः** शरीर में अजंगम रूप में स्थित अंग–प्रत्यंगों का भी **ईशानम्** स्वामी है । अतः हम **नोनुमः** तेरे गुणों का बार-बार वर्णन करते हैं, तुझे उद्‌बोधन देते हैं ।।१।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य के आत्मा में महान् शक्तियां प्रसुप्त पड़ी हैं । सारे शरीरचक्र के अधिष्ठाता उस आत्मा को उद्‌बोधन देकर सभी लौकिक और आध्यात्मिक सिद्धियां प्राप्त की जा सकती हैं।।१।।

इस प्रकार अपने अन्तरात्मा को उद्‌बोधन देकर अब परमात्मा का आह्वान करते हैं ।

६८१. न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ।।२।।[2]

पदार्थ– हे परमेश्वर ! **अन्यः** दूसरा **त्वावान्** तेरे समान **न दिव्यः** न आकाशवर्ती और **न पार्थिवः** न भूमिवर्ती कोई पदार्थ है । तेरे समान **न जातः** न कोई पदार्थ उत्पन्न हुआ है, **न जनिष्यते** न भविष्य में उत्पन्न होगा । हे **मघवन्** ऐश्वर्यशालिन् **इन्द्र** परमात्मन् ! **वाजिनः** बलवान् तथा पुरुषार्थी हम **अश्वायन्तः** श्रेष्ठ प्राणों की कामना वाले और **गव्यन्तः** इन्द्रियरूप गौओं के श्रेष्ठ ज्ञान व कर्म रूप दूध की कामना वाले होकर **त्वा** तुझे **हवामहे** पुकार रहे हैं ।।२।।

---

१. ऋ० ७।३२।२२, य० २७।३५, अथ० २०।१२१।१, साम० २३३।
२. ऋ० ७।३२।२३, य० २७।३६, अथ० २०।१२१।२।

इस मन्त्र में 'उसके मुख के तुल्य कोई अन्य वस्तु नहीं है, न ही नेत्रों के तुल्य है' इस अर्थ वाली साहित्यदर्पण १०।२० में उदाहृत उक्ति के समान उपमानलुप्तोपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ—अलौकिक तथा अद्वितीय परमात्मा की उपासना करके बलवान् और पुरुषार्थी होकर सब लोग ऐहलौकिक तथा पारलौकिक अभीष्ट को प्राप्त कर सकते हैं ।।२।।

।।१२।। अथ 'कया नश्चित्र' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वामदेवः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

इस ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक १ ६ ९ पर परमेश्वर तथा राजा के पक्ष में व्याख्या हो चुकी है। यहां जीवात्मा की महिमा वर्णित करते हैं ।

६८२. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ।।१।।[1]

पदार्थ—यह **चित्रः** अद्भुत शक्तिवाला शरीर का अध्यक्ष इन्द्र आत्मा **कदा** किस अपूर्व **ऊती** रक्षा के द्वारा, और **कया** किस अद्वितीय **शचिष्ठया** अत्यन्त बुद्धिपूर्ण तथा क्रियाकौशलपूर्ण **वृता** वृत्ति के द्वारा **नः** हमारा **सदावृधः** सदा बढ़ाने वाला **सखा** मित्र **भुवत्** होता है ।।१।।

भावार्थ—जिस आत्मा के बल से सब लोग सम्पूर्ण ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नति करने में समर्थ होते हैं उस आत्मा का अवश्य सबको श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए ।।१।।

पूर्व मन्त्र में जीवात्मा के बल को स्मरण करके अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हैं ।

६८३. कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु ।।२।।[2]

पदार्थ—हे मेरे अन्तरात्मन् ! **कः** सुन्दर, सबसे बड़ा तथा सुखस्वरूप, **सत्यः** सत्यमय, **मदानाम्** आनन्दों का **मंहिष्ठः** सबसे अधिक दाता इन्द्र परमेश्वर **त्वा** तुझे **अन्धसः** आनन्द रस से **मत्सत्** आनन्दित करे और वह **दृढा चित्** दृढ़ से दृढ़ विघ्न-बाधा आदियों को **आरुजे** छिन्न-भिन्न करने के लिए **वसु** शक्तिरूप ऐश्वर्य प्रदान करे ।।२।।

भावार्थ—जीवात्मा परमात्मा द्वारा दिये हुए बल और आनन्द से ही बली और आनन्दवान् बनता है ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

६८४. अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम्। शतं भवास्यूतये ।।३।।[3]

पदार्थ—हे इन्द्र जगदीश्वर ! आप **सखीनाम्** आपके सखा **जरितॄणां नः** हम स्तोताओं की **शतम् ऊतये** सौ वर्ष तक प्रीति के लिए **अविता** रक्षक **सु** भलीभांति **अभि** चारों ओर **भवासि** होओ ।।३।।

---

१. ऋ० ४।३१।१, य० २७।३९, ३६।४ साम० १६९, अथ० २०।१२४।१।
२. ऋ० ४।३१।२, य० २७।४०, ३६।५, अथ० २०।१२४।२।
३. ऋ० ४।३१।३, य० २७।४१, ३६।६, अथ० २०।१२४।३।

भावार्थ—जो जीवात्मा परमात्मा के सखा हो जाते हैं उनका वह महान् कल्याण करता है ।।३।।

।।१३।। अथ 'तं वो दस्म' मित्यादिकस्य त्रयोदशस्य द्वयृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नोधा गौतमः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः– १. विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती । **स्वरः** १. मध्यमः, २. पञ्चमः ।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में २३६ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या कर चुके हैं । यहां जीवात्मा का विषय प्रस्तुत किया जाता है ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ र २ र
६८५. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
३ २ ३ १ र २ र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ।।१।।[1]

पदार्थ—हे मन, इन्द्रिय आदि प्राणो ! हम **वः** तुम्हारे **दस्मम्** दोषों को नष्ट करने वाले, **ऋतीषहम्** आक्रमणकारी काम, क्रोध आदि शत्रुओं को परास्त करने वाले, **वसोः** निवासप्रद **अन्धसः** आनन्दरस से **मन्दानम्** आनन्दित होने वाले **इन्द्रम्** अपने अन्तरात्मा के **अभि** अभिमुख होकर **स्वसरेषु** दिनों के उदय के समय अर्थात् प्रभात कालों **गीर्भिः** उद्बोधक वाणियों से **नवामहे** गुण वर्णनरूप स्तुति करते हैं । किस प्रकार ? **स्वसरेषु** गोशालाओं में **धेनवः** गौएं **वत्सम् अभि** नवजात बछड़े के अभिमुख होकर **न** जैसे रंभाती हैं ।।१।।

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ—अपने अन्तरात्मा को भलीभांति उद्बोधन देकर, दोषों को दूर करके तथा सद्गुणों को प्राप्त करके हम परम यशस्वी बन सकते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर से याचना करते हैं।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ र २ र ३ १ २
६८६. द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ र २ र
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ।।२।।[2]

पदार्थ—**द्युक्षम्** अन्तरात्मा में तेज के निवासक, **सुदानुम्** श्रेष्ठ दानी, **तविषीभिः** बलों से **आवृतम्** परिपूर्ण, **गिरिं न** पर्वत और बादल के समान **पुरुभोजसम्** बहुत पालन करने वाले, अर्थात् जैसे पर्वत और बादल अनेक ओषधियों तथा वर्षाओं द्वारा पालन करते हैं वैसे ही जड़-चेतन जगत् का पालन करने वाले, **क्षुमन्तम्** अन्न-भण्डार के भण्डारी, **शतिनम्** सैंकड़ों ऐश्वर्यों से युक्त, **सहस्रिणम्** सहस्रों गुणों से युक्त, **गोमन्तम्** गति करने वाले सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदियों के स्वामी इन्द्र परमेश्वर से हम **मक्षु** शीघ्र ही **वाजम्** अन्न, धन, ज्ञान, बल, वेग, सुख आदि की **ईमहे** याचना करते हैं ।।२।।

यहां उपमालंकार है। विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर है ।।२।।

---

१. ऋ० ८।८८।१, य० २६।११, साम० २३६, अथ० २०।९।१, २०।४९।४।

२. ऋ० ८।८८।२; अथ० २०।९।२,२०।४९।५।

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो परमेश्वर सब विद्याओं और सब ऐश्वर्यों का परम खजाना है उसकी उपासना करके सब विद्याओं तथा समस्त भौतिक और आध्यात्मिक सम्पदाओं को प्राप्त करें ।।२।।

।।१४।। अथ 'तरोभिर्वो' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कलिः प्रागाथः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः—१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती। **स्वरः**— १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक २३७ पर परमेश्वरपक्ष में व्याख्या की गयी थी । यहां ब्रह्मविद्या के उपदेष्टा आचार्य को बुला रहे हैं ।।१।।

६८७. तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ।।१।।[1]

पदार्थ—हे मनुष्यो ! **सबाधः** अविद्यारूप बाधा से पीडित होने पर **वः** आप लोग **ऊतये** रक्षा के लिए **तरोभिः** वेगों के साथ **विदद्वसुम्** ब्रह्मविद्यारूप धन को प्राप्त कराने वाले **इन्द्रम्** आचार्य का **बृहत्** बहुत अधिक **गायन्तः** महिमा-गान करो। मैं भी **सुतसोमे** जिसमें विद्यारस का निष्पादन होता है उस **अध्वरे** विद्या-यज्ञ में **भरं न** कुटुम्बभार को वहन करने वाले गृहस्वामी के समान **कारिणम्** कर्मयोगी आचार्य को **हुवे** ब्रह्मविद्या ग्रहण करने के लिए पुकारता हूं ।।१।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि ब्रह्म का साक्षात्कार पाने के लिए ऐसे सुयोग्य गुरु का आश्रय लें जिसने स्वयं भी ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो ।।१।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि वह परमेश्वर कैसा है, जिसका साक्षात्कार आचार्य कराता है ।

६८८. न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ।।२।।[2]

पदार्थ—शिप्रम् सर्वान्तर्यामी **यम्** जिस परमेश्वर को **अन्धसः** आनन्दरस के **मदेषु** तृप्ति-प्रदानों में **दुध्राः** दुर्धर शत्रु भी **न वरन्ते** नहीं रोक सकते, **न** न ही **स्थिराः** स्थिर, अविचल **मुरः** मनुष्य रोक सकते हैं, **यः** जो परमेश्वर **शशमानाय** उद्योगी, पुरुषार्थी, **सुन्वते** भक्तिरस बहाने वाले **जरित्रे** स्तोता के लिए **उक्थ्यम्** प्रशंसनीय दिव्य ऐश्वर्य **आदृत्य** अपने खजाने में से निकालकर **दाता** देने वाला होता है ।।२।।

भावार्थ— जब परमेश्वर अपने उपासक को ब्रह्मानन्द की वर्षा से तृप्त करना चाहता है तब उसे उस कार्य से रोकने का किसी में सामर्थ्य नहीं होता है ।।२।।

पूर्व खण्ड में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध वर्णित होने से तथा इस खण्ड में जीवात्मा और परमात्मा का एवं परमात्मा का साक्षात्कार कराने वाले आचार्य का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।

प्रथम अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त

---

१. ऋ० ८।६६।१, साम० २३७ ।

२. ऋ० ८।६६।२, 'मदें सुशिप्रमन्धसः' इति पाठः ।

।।१५।। अथ 'स्वादिष्ठया' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः**— मधुच्छन्दा। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४६८ क्रमांक पर परमेश्वर से प्राप्त होने वाले आनन्दरस के विषय में व्याख्या की जा चुकी है । यहां आचार्य से प्राप्त होने वाले ब्रह्मज्ञानरस के विषय में व्याख्या करते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ १ २३ १२ ३ २

६८९. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः ।।१।।[1]

पदार्थ— हे **सोम** ब्रह्मज्ञानरस ! तू **स्वादिष्ठया** अत्यन्त स्वादु, **मदिष्ठया** अतिशय हर्षप्रदायक **धारया** धारा से **पवस्व** हमें पवित्र कर। तू **इन्द्राय** मेरे आत्मा के **पातवे** पान करने के लिए **सुतः** आचार्य द्वारा प्रेरित किया गया है ।।१।।

भावार्थ—शिष्य को चाहिए कि आचार्य से वह जो भौतिक विज्ञान या ब्रह्मविज्ञान प्राप्त करता है उसे अपने आत्मा में स्थिर रूप से धारण कर ले ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

६९०. रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते। द्रोणे सधस्थमासदत् ।।२।।[2]

पदार्थ—**रक्षोहा** काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि राक्षसों का विनाशक, **विश्वचर्षणिः** विश्वरूप परमात्मा का दर्शन कराने वाला ब्रह्मज्ञानरूप सोम **योनिम्** शरीर-स्थिति इत्यादि के कारणभूत, **सधस्थम् अभि** जिसमें सब ज्ञानेन्द्रियों से उपलब्ध ज्ञान एकत्र स्थित होते हैं उस आत्मा को लक्ष्य करके अर्थात् आत्मा में जाने के लिए **अयोहते** यम-नियम आदि रूप लोहे के हथौड़ों से ताड़ित अर्थात् संस्कृत **द्रोणे** मनरूप द्रोणकलश में **आ असदत्** आकर स्थित होता है ।।२।।

भावार्थ—गुरुओं से समित्पाणि शिष्य के प्रति प्रवाहित किया हुआ ब्रह्मज्ञान का रस मन के माध्यम से आत्मा को ही प्राप्त होता है ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

६९१. वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः। पर्षि राधो मघोनाम् ।।३।।[3]

पदार्थ—हे इन्द्र परमात्मन् ! आप **वरिवोधातमः** अतिशय ऐश्वर्य को धारण करने वाले, **मंहिष्ठः** सबसे बढ़कर दानी, **वृत्रहन्तमः** सबसे बड़े पापहन्ता **भुवः** सिद्ध हुए हो । आप ही **मघोनम्** हम भौतिक धनों के धनियों को **राधः** सत्य, न्याय, दया, मोक्ष, आदि दिव्य धन **पर्षि** प्रदान करो ।।३।।

भावार्थ—वही मनुष्य वस्तुतः धनी है जो भौतिक धन के साथ अध्यात्म धन भी कमाता है ।।३।।

।।१६।। अथ 'पवस्व मधुमत्तम' इत्यादिकस्य षोडशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गौरवीतिः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** काकुभः प्रगाथः १. विषमा ककुप्, २. समा सतोबृहती। **स्वरः** १. ऋषभः, २. पञ्चमः।

---

१. ऋ० ९।१।१, य० २६।२५, साम० ४६८ ।

२. ऋ० ९।१।२, य० २६।२६, यजुषि 'योनिमयोहते' इति पाठः ।

३. ऋ० ९।१।३, 'भुवो' इत्यत्र 'भव' इति पाठः ।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५७८ क्रमांक पर परमात्मा से प्राप्त होने वाले आनन्दरस के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहां आचार्य से प्राप्त होने वाले ज्ञानरस का वर्णन है।

६९२. पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः।
महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥[1]

पदार्थ—हे **सोम** ब्रह्मज्ञान-रस ! **मधुमत्तमः** सबसे अधिक मधुर तू **पवस्व** हमें पवित्र कर। तेरा **मदः** आनन्द **इन्द्राय** मेरे अन्तरात्मा के लिए **क्रतुवित्तमः** प्रज्ञा तथा कर्म को अत्यधिक प्राप्त कराने वाला होता है। तेरा **मदः** आनन्द **महि** अत्यधिक **द्युक्षतमः** तेज को बसाने वाला होता है ॥१॥

भावार्थ—आचार्य से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके ब्रह्म के गुण-कर्म-स्वभाव का ध्यान कर-करके अपने जीवन को पवित्र करना चाहिए ॥१॥

अगले मंत्र में परमात्मा के शान्तिरस का विषय वर्णित है।

६९३. यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥[2]

पदार्थ—हे पवमान सोम ! हे पवित्रतादायक रसागार परमात्मन् ! **यस्य ते** जिन आपके शान्तिरस का **पीत्वा** पान करके **वृषभः** भगवान् को भक्तिरस से सींचने वाला उपासक **वृषायते** वर्षाकारी बादल के समान आचरण करने लगता है, अर्थात् जैसे बादल गर्मी से झुलसते हुओं पर शान्तिदायक जल बरसाता है, वैसे ही वह अशान्ति से झुलसते हुओं पर शान्तिरस बरसाता हैं **अस्य** उन आपके शान्तिरस को **पीत्वा** पीकर, लोग **स्वर्विदः** मोक्षसुख के प्राप्तकर्ता हो जाते हैं। **सुप्रकेतः** उत्कृष्ट ज्ञानी **सः** वह आपका उपासक **इषः अभि** इच्छासिद्धियों की ओर **अक्रमीत्** कदम बढ़ाता चलता है, **न** जैसे **एतशः** घोड़ा **वाजम् अच्छ** संग्राम की ओर पग बढ़ाता हैं ॥२॥

इस मन्त्र में 'वृषभो वृषायते' में मम्मट के मत से वाचकलुप्तोपमा तथा दर्पणकार के मत से धर्मलुप्तोपमा है। 'वृष, वृषा' में छेकानुप्रास है। उत्तरार्ध में पूर्णोपमा है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर की उपासना से भगवान् का भक्त जैसे स्वयं शान्ति प्राप्त करता है वैसे ही अन्यों के लिए भी शान्ति बरसाता है और उसके सब धर्मानुकूल मनोरथ शीघ्र ही फल जाते हैं ॥२॥

॥१७॥ अथ 'इन्द्रमच्छ' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अग्निश्चाक्षुषः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** उष्णिक्। **स्वरः** ऋषभः।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५६६ क्रमांक पर ब्रह्मानन्दरस के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहां ज्ञानकर्मोपासनारस का विषय वर्णित है।

६९४. इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः। श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१॥[3]

---

१. ऋ० ९।१०८।१, साम० ५७८।
२. ऋ० ९।१०८।२
३. ऋ० ९।१०६।१, 'श्रुष्टे' इत्यत्र 'श्रुष्टी' इति पाठः। साम० ५६६।

पदार्थ—सुताः आचार्य द्वारा प्रेरित **इमे** ये **हरयः** ज्ञान-कर्म-उपासनारूप सोमरस **वृषणम्** बलवान् **इन्द्रम्** आत्मा की **अच्छ** ओर **यन्तु** जाएं । **जातासः** उत्पन्न हुए **इन्दवः** चन्द्रकिरणों के समान आह्लाददायक ये रस **श्रुष्टे** शीघ्र ही **स्वर्विदः** मोक्षसुख को प्राप्त कराने वाले हों ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान, कर्म और उपासना के रस ही वास्तविक सोम हैं, जो पीने पर मनुष्य को उन्नत कर देते हैं ॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

६९५. अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२॥[1]

पदार्थ—भराय देवासुरसंग्राम में जीतने के लिए **सानसिः** संभजनीय, **सुतः** आचार्य द्वारा शिष्यों में प्रेरित **अयम्** यह ज्ञान-कर्म-उपासना का रस **इन्द्राय** आत्मा के लिए **पवते** प्रवाहित हो रहा है । **जैत्रस्य** विजयशील उस आत्मा का **सोमः** वह ज्ञान-कर्म-उपासना का रस **चेतति** सदैव जागता रहे, **यथा** जिससे, वह **विदे** सदा कर्तव्य-अकर्तव्य को पहचानता रहे ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान, तदनुकूल कर्म और परमेश्वर की उपासना सदैव मनुष्य को संसार के समरांगण में विजय दिलाते हैं ॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन करते हैं ।

६९६. अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत् समप्सुजित् ॥३॥[2]

पदार्थ—अस्य इत् इस ज्ञान-कर्म-उपासना रूप सोमरस के ही **मदेषु** उत्साहों में **इन्द्रः** वीर मनुष्य **सानसिम्** ग्रहण करने योग्य **ग्राभम्** धनुष को **आ गृभ्णाति** थामता है, **च** और **अप्सुजित्** समुद्र के जल में तथा अन्तरिक्ष में भी शत्रु को जीतने वाला वह वीर **वृषणम्** गोली या गोले बरसाने वाले **वज्रम्** बन्दूक, तोप आदि सुदृढ़ हथियार का **संभरत्** संधान कर लेता है ॥३॥

भावार्थ—ज्ञान-कर्म-उपासना रूप दिव्य सोमरस के पान से अपूर्व उत्साहवान् होकर मनुष्य भूमि, जल, आकाश कहीं भी विद्यमान दुर्दान्त शत्रुओं को भी जीतने में समर्थ हो जाता है ॥३॥

॥१८॥ अथ 'पुरोजिती वो' इत्यादिकस्याष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अन्धीगुः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** आनुष्टुभः प्रगाथः। १ अनुष्टुप २-३ गायत्री। **स्वरः** गान्धारः, २-३ षड्जः ॥

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ५४५ पर ब्रह्मानन्द के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहां प्रकरणप्राप्त ज्ञान कर्म उपासना का विषय है।

६९७. पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥[3]

---

१. ऋ० ९।१०६।२।
२. ऋ० ९।१०६।३।
३. ऋ० ९।१०१।१, साम० ५४५।

पदार्थ—हे **सखायः** मित्रो ! **वः** तुम **अन्धसः** ज्ञान-कर्म-उपासनारूप सोम को **पुरोजिती** आगे बढ़कर जीतने के लिए, और उस सोम के **मादयित्नवे** आनन्दप्रदायक **सुताय** रस को प्राप्त करने के लिए **दीर्घजिह्व्यम्** लम्बी जीभ वाले अर्थात् दूरस्थ विषयों के भी ग्रहण में समर्थ **श्वानम्** वेगवान् मन को **अपश्नथिष्टन** प्रवृत्त करो ।।१।।

भावार्थ—ज्ञान, कर्म और उपासना में मन को प्रवृत्त करके उससे मिलने वाला आनन्द सबको प्राप्त करना चाहिए ।।१।।

अगले मंत्र में ज्ञान, कर्म और उपासना से मिलने वाले आनन्द का वर्णन है ।

६९८. यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः। इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ।।२।। [1]

पदार्थ—**सुतः** उत्पन्न किया गया **यः** जो **पावकया** पवित्र करने वाली **धारया** धारा के साथ **परिप्रस्यन्दते** चारों ओर बहता है, वह **इन्दुः** ज्ञान, कर्म और उपासना से मिलने वाला आनन्द **कृत्व्यः** संग्राम में कुशल **अश्वः न** घोड़े के समान **कृत्व्यः** कृतार्थ करने वाला होता है ।।२।।

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है।।२।।

भावार्थ—वे लोग धन्य हैं जो ज्ञान, कर्म और उपासना से प्राप्त होने वाले अगाध आनन्द का अनुभव करते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

६९९. तं दुरोषमभीनरः सोमं विश्वाच्याधिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ।।३।। [2]

पदार्थ—**दुरोषम्** जलाये या सुखाये न जा सकने योग्य **तम्** उस पूर्ववर्णित **सोमम्** ज्ञान-कर्म-उपासनारूप सोमरस को **नरः** सज्जन लोग **विश्वाच्या** सब उत्कृष्ट विषयों के विवेचन में व्याप्त होने वाली **धिया** बुद्धि से **अभि** अभिषुत करें, जिससे **अद्रयः** किसी भी आन्तरिक या बाह्य शत्रु से विदीर्ण न होने वाले वे लोग **यज्ञाय** परमेश्वर की पूजा, विद्वानों के सत्कार, संगठन और परोपकार-रूप यज्ञ के लिए **सन्तु** होवें ।।३।।

भावार्थ—श्रेष्ठज्ञान, सत्कर्म और परमेश्वर की उपासना को जो अपने जीवन में ग्रहण करते हैं वे सदा विजयी और यज्ञपरायण होते हैं।।३।।

।।१९।। अथ 'अभि प्रियाणि' इत्यादिकस्य एकोनविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कविर्भार्गवः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** जगती। **स्वरः** निषादः ।।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक ५५४ पर परमेश्वर के विषय में की गयी थी । यहां जीवात्मा का विषय है ।

७००. अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः।।१।। [3]

---

१. ऋ०९।१०१।२

२. ऋ० ९।१०१।३ 'यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः' इति तृतीयः पादः।

३. ऋ० ९।७५।१, साम० ५५४ ।

पदार्थ—**चनोहितः** भोगों को भोगने के लिए शरीर में प्रेषित, **यह्वः** महाशक्तिशाली जीवात्मा **प्रियाणि** प्रिय **नामानि** लचकीले अंगों में **पवते** जाता है, **येषु अधि** जिनमें, यह **वर्धते** महिमा को प्राप्त करता है। **बृहन्** महान्, **विचक्षणः** ज्ञानवान् यह जीवात्मा **बृहतः** महान् **सूर्यस्य** गतिमय प्राण के **वि-स्वञ्चम्** विशिष्ट शुभगति वाले **रथम् अधि** देहरूप रथ पर **आ अरुहत्** चढ़कर बैठा हुआ है॥१॥

भावार्थ—आत्मा कर्मफल-भोग के लिए प्राणयुक्त देह का आश्रय लेकर शुभाशुभ भोगों को भोगता है॥१॥

अगले मन्त्र में ईश्वररचित वेदों से उपासक क्या फल प्राप्त करता है यह वर्णित है।

७०१. ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३ नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः॥२॥[1]

पदार्थ—**ऋतस्य** सत्यस्वरूप जगदीश्वर की **जिह्वा** वेदवाणी **प्रियम्** प्रिय **मधु** अध्यात्मज्ञानरूप मधु को **पवते** बहा रही है। **अस्याः धियः** इस ज्ञानमयी वेदवाणी का **वक्ता** वक्ता **पतिः** जगत्पति परमेश्वर **अदाभ्यः** अजर-अमर है। इस वेदवाणी के माध्यम से **पुत्रः** अमृतमय परमात्मा का पुत्र उपासक **पित्रोः** माता-पिता से भी **अपीच्यम्** छिपे हुए, **दिवः रोचनम्** जीवात्मा को प्रकाशित करने वाले **तृतीयं नाम** तृतीय पद ओंकार को **अभिदधाति** हृदय में धारण कर लेता है। कहा भी है– ''तत्वदर्शी विद्वान् लोग विष्णु परमात्मा के उस परमपद का वैसे ही स्वाभाविक रूप से दर्शन करते हैं, जैसे सूर्यप्रकाश में आंख पदार्थों को देखती है (य० ६।५)॥२॥

भावार्थ—प्रकृति, जीवात्मा और ओंकार ये तीन पद हैं। ईश्वररचित वेदों का रहस्यार्थ जानकर मनुष्य अपने माता-पिता से भी अधिक ज्ञानी होकर ओंकार-रूप परमपद को प्राप्त करने योग्य हो जाता है॥२॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रस का वर्णन है।

७०२. अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये।
अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजसि॥३॥[2]

पदार्थ—**नृभिः** उपासक जनों द्वारा **हिरण्यये कोशे** ज्योतिर्मय विज्ञानमय कोश में **येमाणः** नियन्त्रित किया जाता हुआ, **द्युतानः** प्रकाशमान ब्रह्मानन्दरूप सोमरस **कलशान्** आत्मारूप द्रोणकलशों में **अव अचिक्रदत्** कल-कल ध्वनि-सी करता हुआ प्रवेश करता है। **ऋतस्य** सच्चे ब्रह्मानन्द-रस को **दोहनाः** दुहने वाले उपासक लोग उस रस की **अभि अनूषत** स्तुति करते हैं। **त्रिपृष्ठः** ज्ञानकर्मोपासनारूप तीन आधारों वाला तू, हे ब्रह्मानन्द-रस ! **उषसः अधि** उषाकाल में सन्ध्योपासना में **विराजसि** विशेष रूप से प्रकाशित होता है॥३॥

---

१. ऋ० ९।७५।२ 'रोचनं' इत्यत्र 'रोचने' इति पाठः।
२. ऋ० ९।७५।३, 'येमानः' 'अभीमृतस्य' 'विराजति' इति पाठ।

भावार्थ—योग द्वारा ब्रह्मानन्द-रस से अपने आत्मा को सींचकर योगी जन कृतार्थ होवें ।।३।।

इस खण्ड में आचार्य, परमात्मा, जीवात्मा, ज्ञानकर्मोपासना, वेद एवं ब्रह्मानन्द का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिये ।

प्रथम अध्याय में पंचम खण्ड समाप्त।

।।२०।। अथ 'यज्ञायज्ञा' इत्यादिकस्य विंशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शंयुर्बार्हस्पत्यः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः, १ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पंचमः।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ३५ पर परमेश्वरोपासना विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहां आत्मोद्बोधन का विषय है।

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
७०३. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
१ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ २   ३ १र   २र
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ।।१।।[1]

पदार्थ—हे भाइयो! मैं **यज्ञायज्ञा** प्रत्येक यज्ञ में **वः** तुम्हें **अग्नये** अपने अन्तरात्मा में अग्नि प्रज्वलित करने के लिये प्रेरित करता हूं। **गिरागिरा च** और प्रत्येक वाणी द्वारा **दक्षसे** आत्मोन्नति के लिऐ, प्रेरित करता हूं। **वयम्** हम सब मिल कर **अमृतम्** अमर, **जातवेदसम्** उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता जीवात्मा को **प्रप्र** अधिकाधिक प्रोद्बोधन देते हैं। मैं अलग भी **मित्रं न** मित्र के समान **प्रियम्** प्रिय उस जीवात्मा का **प्रप्र शंसिषम्** अधिकाधिक गुणकीर्तन करता हूं ।।१।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है।।१।।

भावार्थ—मनुष्य के अन्तरात्मा के अन्दर महान् शक्ति छिपी पड़ी है, उसे जगाकर बड़े-बड़े कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर की कामना की गयी है।

३ १र   २र३ २   ३ १र   २र ३ १र   २र   ३ १ २
७०४. ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
२ ३ १ २   ३ १र   २र   ३ २   ३ २   ३ २   ३ १ २
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ।।२।।[2]

पदार्थ—ऊर्जः बल के **नपातम्** न गिरने देने वाले परमेश्वर की, मै **प्रप्र शंसिषम्** पुनः-पुनः प्रशंसा करता हूं। **सः अयम्** वह यह **हिन** निश्चय ही **अस्मयुः** हमसे प्रीति करने वाला है। **हव्यदातये** देने योग्य सद्गुण आदि के दाता उस परमेश्वर के लिये, हम **दाशेम** आत्मसमर्पण करें । वह **वाजेषु** देवासुरसंग्रामों में, हमारा **अविता** रक्षक **भुवत्** होवे, **वृधः** वृद्धिकर्ता **भुवत्** होवे, **उत** और **तनूनाम्** हमारे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि शरीरों का **त्राता** त्राणकर्ता, होवे।।२।।

---

१. ऋ० ६।४८।१, य० २७।४२, साम० ३५।
२. ऋ० ६।४८।२, य० २७।४४।

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि परमात्मा को आत्मसमर्पण करके महान् कल्याण प्राप्त करें ।।२।।

।।२१।। अथ 'एह्यू षु' इत्यादिकस्यैकविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक ७ पर परमेश्वरोपासना के विषय में की गयी थी । यहां गुरु शिष्य को सम्बोधन कर रहा है ।

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
७०५. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः ।।१।।[1]

पदार्थ—हे **अग्ने** तपस्वी विद्यार्थी! **एहि उ** आ, मैं **ते** तेरे लिये **सु** भलीभांति **इत्था** सच्चे रूप में **इतराः** सामान्य वाणियों से विलक्षण प्रकार की **गिरः** शास्त्रवाणियों का **ब्रवाणि** उपदेश करूं। तू **एभिः** इन **इन्दुभिः** विद्या-रसों से **वर्धासे** वृद्धि को प्राप्त कर ।।१।।

भावार्थ—गुरुओं को चाहिऐ कि प्रेम से बुलाकर शिष्यों को मनोयोग से पढ़ाएं ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

२ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
७०६. यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्र योनिं कृणवसे ।।२।।[2]

पदार्थ—हे विद्यार्थिन्! **यत्र क्व च** जिस किसी भी विज्ञान में **ते मनः** तेरा मन है, अर्थात् तेरी रुचि है, उसमें **उत्तरम्** अधिकाधिक **दक्षम्** बल को, निपुणता को **दधसे** धारण कर। और **तत्र** उस विज्ञान में **योनिम्** घर **कृणवसे** कर ले, अर्थात् उस विद्या में पारंगत हो जा ।।२।।

भावार्थ—जिन भी विद्याओं में शिष्यों की रुचि तथा ग्रहणशक्ति हो उन विद्याओं में गुरुजन उन्हें निष्णात करें ।।२।।

अगले मन्त्र में शिष्य गुरु को कह रहे हैं ।

१र २र ३ १ २ ३ १र २र २ ३ १ २
७०७. न हि ते पूर्तमक्षिपद् भुवन्नेमानां पते । अथा दुवो वनवसे ।।३।।[3]

पदार्थ—हे **नेमानां पते** हम अपूर्णों के पालनकर्ता आचार्यवर ! **ते** आपका **पूर्तम्** पालनपूरण **अक्षिपत्** आंख आदि इन्द्रियों को पतन की ओर ले जाने वाला **नहि** न **भुवत्** होवे। **अथ** और, आप हमारे **दुवः** सत्कार को **वनवसे** स्वीकार कीजिए ।।३।।

भावार्थ—गुरुजन शिष्यों को भली-भांति पढ़ाकर सदाचार में प्रवृत्त करें और शिष्य उनका श्रद्धा के साथ सत्कार करें ।।३।।

।।२२।। अथ 'वयमु त्वामपूर्व्य' इत्यादिकस्य द्वाविंशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सोभरिः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** काकुभः प्रगाथः,१. विषमा ककुप्, २ समा सतोबृहती। **स्वरः** १ ऋषभः, २. पंचमः।।

---

१. ऋ० ६।१६।१६, य० २६।१३, साम० ७।

२. ऋ० ६।१६।१७, 'तत्रा सदः कृणवसे' इति तृतीयः पादः।

३. ऋ० ६।१६।१८।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ४०८ पर परमेश्वर, आचार्य और वैद्यराज के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है। यहां जीवात्मा को कहा जा रहा है।

७०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः। वज्रिञ्चित्रं हवामहे ॥१॥[1]

पदार्थ—हे **अपूर्व्य** अद्वितीय बल से युक्त, **वज्रिन्** काम, क्रोध आदि शत्रुओं पर वज्र-प्रहार करने वाले मेरे अन्तरात्मा! **अवस्यवः** प्रगति को चाहने वाले **वयम्** हम **चित्रम्** अद्भुत गुण कर्म-स्वभाव वाले **त्वाम्** आपको **आह्वयामः** पुकारते हैं। किस प्रकार? **न** जैसे **कच्चित्** किसी **स्थूरम्** स्थूल बड़ी वस्तु को **हरन्तः** दूसरे स्थान पर ले जाते हुए लोग, सहायता के लिये किसी को पुकारते हैं॥१॥

इस मंत्र में उपमालंकार है॥१॥

भावार्थ— प्रगति के मार्ग पर दौड़ने के लिये अपना अन्तरात्मा मनुष्य का परम सहायक होता है ॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का वरण करते हैं।

७०९. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥[2]

पदार्थ—हे **इन्द्र** परमसहायक परमात्मन्! **कर्मन्** कर्मों में **ऊतये** रक्षा के लिये हम **त्वा** आपको **उप** प्राप्त होते हैं। भाइयो! देखो **सः** वह **नः** हमारा **युवा** सदा युवा रहने वाला **उग्रः** वीर प्रभु, उस पर **चक्राम** आक्रमण कर देता है, **यः** जो आन्तरिक या बाह्य शत्रु **धृषत्** हमें दबाता है। हे परमेश! **सखायः** आपके सखा हम **अवितारम्** रक्षक, **सानसिम्** संभजनीय **त्वाम् इत हि** आपको ही **ववृमहे** वरण करते हैं ॥२॥

भावार्थ—महाशक्तिशाली भी जीव को संसार-समरांगण में विजय पाने के लिये परमात्मा की सहायता अपेक्षित होती है॥२॥

॥२३॥ 'अधा हीन्द्र' इत्यादिकस्य त्रयोविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नृमेध आङ्गिरसः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** १. ककुबुष्णिक् २. उष्णिक्, ३. पुर उष्णिक्। **स्वरः** ऋषभः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४०६ क्रमांक पर जगदीश्वर के विषय में की गयी थी। यहां शिष्य ब्रह्मवेत्ता आचार्य को कह रहे हैं।

७१०. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे। उदेव ग्मन्त उदभिः॥१॥[3]

पदार्थ—हे **गिर्वणः** उपदेशवाणियों के लिये सेवनीय **इन्द्र** ब्रह्मवेत्ता आचार्यप्रवर! **अध हि** अब हम शिष्यलोग **कामे** ब्रह्मसाक्षात्काररूपी मनोरथ की पूर्ति के लिये **त्वा** तेरे **उप ईमहे** समीप पहुंचते हैं, और

---

१. ऋ० ८।२१।१, अथ० २०।१४।१ (ऋषिः सौभरि), २०।६२।१, सर्वत्र 'वाजे चित्रं हवामहे' इति पाठः। साम० ४०८।
२. ऋ० ८।२१।२, अथ० २०।१४।२ (ऋषिः सौभरिः), २०।६२।२।
३. ऋ० ८।९८।७, अथ० २०।१००।१ उभयत्र 'कामान् महः ससृज्महे। उदेव यन्त उदभिः' इति पाठः। साम० ४०६।

ससृग्महे तेरे साथ निकट संसर्ग प्राप्त करते हैं। कैसे? **उदा इव** जैसे जलों के बीच से **ग्मन्तः** जाते हुए लोग **उदभिः** जलों से संसर्ग को पाते हैं ॥१॥

इस मंत्र में उपमालंकार है। 'महे, महे' और 'उदे, उद' में छेकानुप्रास है ॥१॥

भावार्थ—जब जिज्ञासुजन समित्पाणि होकर आचार्य के प्रति स्वयं को समर्पित करके उसके सान्निध्य में रहते हैं और उससे कुछ भी नहीं छिपाते हैं, तभी वे उसके पास से अपरा विद्या और परा विद्या सीख पाते हैं ॥१॥

अगले मंत्र में परमात्मा का विषय है।

७११. वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥२॥[1]

पदार्थ—हे **शूर** शूरवीर, **अद्रिवः** किसी से विदारण न किये जा सकने वाले अजर-अमर इन्द्र प्रभु ! **यव्याभिः** नहरों द्वारा जल लाकर **वाः न** जैसे सरोवर आदि में लोग जल के परिमाण को बढ़ाते रहते हैं, वैसे ही **वावृध्वांसं चित्** पहले से बढ़े हुए भी **त्वा** तुझे **ब्रह्माणि** उपासक के स्तोत्र **वर्धन्ति** अपने हृदय में बढ़ाते हैं या समाज में प्रचारित करते हैं ॥२॥

'जो पहले से ही बढ़ा हुआ है उसे भी बढ़ाते हैं' इसमें विरोधालंकार है। बढ़ाने से स्मरण तथा प्रचार अभिप्रेत होने पर विरोध का परिहार हो जाता है ॥२॥

भावार्थ—सर्वान्तर्यामी ह्रासवृद्धिरहित भी परमेश्वर लोगों द्वारा भुला दिये जाने से और नास्तिकता का प्रचार हो जाने के कारण मानो ह्रास को प्राप्त हो जाता है। भक्तजनों को चाहिए कि उसके स्तोत्रों का गान करके उसे बढ़ायें तथा उसका प्रचार करें ॥२॥

अगले मंत्र में उपासक क्या करते हैं, यह कहा गया है।

७१२. युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा।
इन्द्रवाहा स्वर्विदा॥३॥[2]

पदार्थ—उपासक लोग **इषिरस्य** सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के **गाथया** कीर्तिगान के साथ **उरुयुगे** जिसमें पृष्ठवंशरूप विस्तीर्ण धुरा लगा है ऐसे, **उरौ** विशाल **रथे** देहरूप रथ में **वचोयुजा** कहते ही कार्यसंलग्न हो जाने वाले, **इन्द्रवाहा** आत्मा से प्रेरित होने वाले, **स्वर्विदा** ज्ञान तथा कर्म को प्राप्त कराने वाले **हरी** ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-रूप घोड़ों को **युञ्जन्ति** कार्यतत्पर कर देते है॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर की उपासना के साथ जीवन में ज्ञान का संचय तथा पुरुषार्थ भी करना चाहिये॥३॥

---

१. ऋ० ८।९८।८, अथ० २०।१००।२।
२. ऋ० ८।९८।९, अथ० २०।१००।३, उभयत्र 'उरुयुगे। इन्द्रवाहा' वचोयुजा। इति पाठः।

इस खण्ड में आत्मोद्बोधन, जीवात्मा, परमात्मा, गुरु-शिष्य आदि का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिये ।

प्रथम अध्याय में षष्ठ खण्ड समाप्त । प्रथम अध्याय समाप्त ।

प्रथम प्रपाठक में प्रथम अर्ध समाप्त।

अथ द्वितीयोऽध्यायः प्रथमे प्रपाठके द्वितीयोऽर्धश्च

।।१।। अथ 'पान्तमा' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** श्रुतकक्ष अङ्गिरसः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** आनुष्टुभः प्रगाथः, १ अनुष्टुप्, २-३ गायत्री । **स्वरः** १ गान्धारः, २-३ षड्जः ।।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १५५ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के पक्ष में हो चुकी है। यहां गुरु शिष्य विषय का वर्णन करते हैं।

७१३. पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ।।१।।[1]

पदार्थ—हे शिष्यो ! **वः** तुम **अन्धसः** विद्या-रस की **पान्तम्** रक्षा करने वाले, **विश्वासाहम्** काम, क्रोध, अज्ञान, आलस्य आदि सब शत्रुओं को पराजित करने वाले, **शतक्रतुम्** बहुत बुद्धिमान् तथा बहुत कर्मण्य, **चर्षणीनाम्** पुरुषार्थी छात्रों को **मंहिष्ठम्** अतिशय विद्या और सदाचार का दान करने वाले **इन्द्रम् अभि** अगाध ज्ञान आदि ऐश्वर्य से शोभायमान आचार्य को लक्ष्य करके **प्र गायत** भलीभांति स्तुति करो ।।१।।

भावार्थ—जो शिष्य विद्या के समुद्र, शिक्षण-कला में कुशल, सदाचारी, ब्रह्मिष्ठ गुरु की श्रद्धा के साथ सेवा करते हैं वे विद्वान्, सदाचारी, ब्रह्मज्ञानी होकर अभ्युदय प्राप्त करते हैं ।।१।।

अगले मंत्र में आचार्य शिष्यों को कह रहा है।

७१४. पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां३ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ।।२।।[2]

पदार्थ—हे शिष्यो ! तुम **पुरुहूतम्** बहुतों से पुकारे जाने वाले, **पुरुस्तुतम्** बहुत स्तुति किये जाने वाले, **गाथान्यम्** वेदवाणियों को प्राप्त कराने वाले अर्थात् वेदवाणियों के उपदेष्टा, **सनश्रुतम्** सनातन रूप से प्रसिद्ध परमेश्वर को ही **इन्द्रः इति** इन्द्र नाम से **ब्रवीतन** कहा करो ।।२।।

भावार्थ—यद्यपि इन्द्र का अर्थ आचार्य भी होता है तथापि इन्द्रों का भी इन्द्र परमेश्वर ही है, जैसा कि योगदर्शन १।२६ में वर्णित है कि 'ईश्वर काल से बंधा न होने के कारण प्राचीनों का भी गुरु है ।।२।।

अगले मंत्र में जगदीश्वर का वर्णन है ।

७१५. इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञवा यमत् ।।३।।[3]

---

१. ऋ० ८।९२।१, साम० १५५।
२. ऋ० ८।९२।२।
३. ऋ० ८।९२।।३ ।

पदार्थ—**इन्द्रः इत्** जगदीश्वर ही **नः** हमारे लिये **महोनाम्** महान् **वाजानाम्** धन, अन्न, बल, वेग, विज्ञान आदि का **दाता** दाता, और **नृतुः** जगत् के प्रागंण में सब प्राणियों को उन-उनके कर्मों के अनुसार नचाने वाला है । **महान्** महान् वह माता के गर्भ में प्राणियों को **अभिज्ञु** घुटने मोड़े हुए **आयमत्** बांधे रखता है ।।३।।

भावार्थ—जगदीश्वर ही सबका उत्पादक, पालक, संहारक और कर्मफलों का प्रदाता है ।।३।।

।।२।। अथ 'प्र व इन्द्राय' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठः मैत्रावरुणिः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में मंत्रसंख्या १ ५ ६ पर परमात्मा और राजा के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है । यहां जीवात्मा के पक्ष में व्याख्या करते हैं ।

२ ३ १ २ ३ १२३ १ २ १ २ ३ १ २
७१६. प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने।।१।।[1]

पदार्थ—हे **सखायः** साथियो! **वः** तुम **हर्यश्वाय** ज्ञान ग्रहण कराने और कर्मों को कराने वाले ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय रूप घोड़े जिसके पास हैं ऐसे, **सोमपाव्ने** ब्रह्मानन्दरस का पान करने वाले **इन्द्राय** अपने अंतरात्मा के लिये **मादनम्** हर्षक एवं उद्बोधक गीत **प्र गायत** भली-भांति गाया करो।।१।।

भावार्थ—अपने आत्मा को उद्बोधन देकर ही सब लोग संसार-समर में विजय तथा ब्रह्मानन्दरस पा सकते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति के लिये प्रेरणा है ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
७१७. शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः। चकृमा सत्यराधसे ।।२।।[2]

पदार्थ—हे साथी! तू **सुदानवे** उत्कृष्ट दानी इन्द्र परमात्मा के लिए **उक्थम्** स्तोत्र का **उत** और **द्युक्षम्** तेज का निवास कराने वाले उसके गुण-कर्म-स्वभाव का **शंस इत्** अवश्य कीर्तन कर, **यथा** जिस प्रकार **नरः** नेता हम लोग **सत्यराधसे** सच्चे धन वाले उसके लिये **चकृम** स्तोत्र का तथा उसके गुण-कर्म-स्वभाव का कीर्तन करते हैं ।।२।।

इस मंत्र में उपमालंकार है।।२।।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि जगदीश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव का कीर्तन करके उसके अनुकूल अपना जीवन बनायें ।।२।।

अगले मंत्र में जगदीश्वर की स्तुति है।

१ २ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ १ २
७१८. त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ।।३।।[3]

---

१. ऋ० ७।३१।१, साम० १५६।
२. ऋ० ७।३१।२।
३. ऋ० ७।३१।३।

पदार्थ—हे **इन्द्र** सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ! **त्वम्** आप **नः** हमारे लिये **वाजयुः** अन्न, धन, बल, विज्ञान आदि प्रदान करने के इच्छुक होवो ! हे **शतक्रतो** अनन्त ज्ञान तथा अनन्त कर्मों वाले जगदीश्वर ! **त्वम्** आप **गव्युः** हमें गाय प्रदान करने के इच्छुक होवो। हे **वसो** निवास देने वाले जगदीश्वर ! **त्वम्** आप **हिरण्ययुः** हमें सुवर्ण और ज्योति प्रदान करने के इच्छुक होवो ।।३।।

भावार्थ—परमात्मा की उपासना करके उसकी कृपा से हम अन्न, धन, गाय, बल, वेग, विज्ञान, श्रेष्ठ संकल्प, श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ विवेक, श्रेष्ठ प्रकाश, श्रेष्ठ कर्म, श्रेष्ठ गुण तथा दुःखों से मोक्ष आदि सभी भौतिक और दिव्य सम्पदा पाने योग्य होवें ।।३।।

।।३।। अथ 'वयमु त्वा' इत्यादिकस्य तृतीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषी** मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १५७ पर परमात्मोपासना के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां शिष्यगण आचार्य को कह रहे हैं ।

७१९. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ।।१।।[1]

पदार्थ—हे आचार्यप्रवर ! **तदिदर्थाः** वह लौकिक विद्या तथा ब्रह्मविद्या का अध्ययन ही जिनका उद्देश्य है ऐसे **वयम्** हम विद्यार्थी **त्वा** आपके समीप आते हैं । हे **इन्द्र** विद्याओं के अधिपति ! **सखायः** सहाध्यायी हम **त्वायन्तः** आपको चाहते हैं। सभी **कण्वाः** मेधावी विद्यार्थी **उक्थेभिः** स्तोत्रों से आपकी **जरन्ते** स्तुति करते हैं।।१।।

भावार्थ—शिष्यों को चाहिये कि गुरुओं के प्रति सदा ही विनय का व्यवहार करें, नित्य उनकी सेवा करें । कहा भी है– ''पढ़ाए हुए जो विप्र छात्र मन-वाणी-कर्म से गुरु का आदर नहीं करते, वे गुरु के कृपापात्र नहीं बनते और न ही पढ़ी हुई विद्या उनकी रक्षा करती है (निरु० २।४) ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः आचार्य को कहा जा रहा है।

७२०. न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमैश्चिकेत ।।२।।[2]

पदार्थ—हे **वज्रिन्** कठोर नियन्त्रण रूप वज्र से शिष्यों को संस्कृत करने वाले गुरुवर ! **अपसः** विद्याध्ययनरूप कर्म के **नविष्टौ** नवीन सत्र के आरम्भ में, मैं **अन्यत्** किसी अन्य की **न घ ईम्** नहीं **आ पपन** स्तुति करता हूं **तव इत् उ** आपकी ही **स्तोमैः** सूक्तियों से **चिकेत** ज्ञानी बनता हूं ।।२।।

भावार्थ—शिष्यों को चाहिए कि विद्या के लिए यथासंभव उस विद्या में निष्णात एक ही गुरु को चुनें, क्योंकि अनेकों को चुनने में उनके पारस्परिक मतभेदों के कारण नाना सन्देह उत्पन्न हो सकते हैं ।।२।।

---

१. ऋ० ८।२।१६, अथ० २०।१८।१, साम० १५७।
२. ऋ० ८।२।१७, अथ० २०।१८।२।

अगले मन्त्र में पुनः गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र १ २ ३ २ ३ १ २
७२१ . इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। यन्ति प्रमादमतन्द्राः ।।३।।[1]

पदार्थ—देवाः विद्वान् गुरुजन **सुन्वन्तम्** पुरुषार्थरूप सोमयाग करने वाले विद्यार्थी को ही **इच्छन्ति** शिष्यरूप में स्वीकार करना चाहते हैं। वे **स्वप्नाय** निद्रालु आलसी शिष्य को **न स्पृहयन्ति** नहीं पसन्द करते। **प्रमादम्** जो विद्याध्ययन से प्रहृष्ट हो जाने वाला है उसके पास वे **अतन्द्राः** निरालस्य होकर **यन्ति** जाते हैं।।३।।

भावार्थ—लौकिक विद्या और ब्रह्मविद्या की भी प्राप्ति पुरुषार्थ से ही होती है। पुरुषार्थी की ही दूसरे लोग भी सहायता करते है, निष्कर्मण्य की नहीं ।।३।।

।।४।। अथ 'इन्द्राय मद्वने' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** श्रुतकक्षः आङ्गिरसः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक १५८ पर परमात्मोपासना के विषय में की गयी है। यहां गुरुजन कह रहे हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७२२. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः।।१।।[2]

पदार्थ—मद्वने ब्रह्मविद्या में आनन्द अनुभव करने वाले **इन्द्राय** शिष्यों के आत्मा के लिए **नः** हमारी **गिरः** वाणियां **सुतम्** अभिषुत ज्ञान को **परिष्टोभन्तु** परिधारित करें, देवें, जिससे **कारवः** स्तुतिकर्त्ता होते हुए वे **अर्कम्** पूजनीय परमात्मदेव की **अर्चन्तु** पूजा किया करें ।।१।।

भावार्थ—शिष्यों को चाहिए कि गुरुओं से लौकिक ज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके गुरुजनों द्वारा उपदेश किये गये मार्ग से परमात्मा का ध्यान करते हुए उसका साक्षात्कार करें ।।१।।

अगले मन्त्र में गुरु से उपदेश किये हुए शिष्य परमात्मा का आह्वान कर रहे हैं।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
७२३ . यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः। इन्द्रं सुते हवामहे ।।२।।[3]

पदार्थ—यस्मिन् अधि जिसके अधिष्ठातृत्व में **विश्वाः श्रियः** सब शोभाएं विद्यमान हैं, और जिसकी **सप्त संसदः** सात ऋत्विज्, सात दिशाएं, सात प्रकार की सूर्यकिरणें, सात छन्द, सात मन-बुद्धि-सहित ज्ञानेन्द्रियां और सात आकाशस्थ ऋषि **रणन्ति** स्तुति कर रहे हैं, उस **इन्द्रम्** जगदीश्वर को **सुते** उपासना-यज्ञ में या जीवन-यज्ञ में, हम **हवामहे** पुकारते हैं।

सात ऋत्विज् ऋग्वेद २।१।२ में इस प्रकार परिगणित किये गये हैं— होता, पोता, नेष्टा, अग्नीत्, प्रशास्ता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। सोमयाग के सात ऋत्विज् हैं—तीन उद्गाता, एक होता, एक मैत्रावरुण, एक ब्राह्मणाच्छंसी और एक अच्छावाक ।

---

१. ऋ० ८।२।१८।, अथ० २०।१८।३, उभयत्र 'स्तोमं चिकेत' इति पाठः।

२. ऋ० ८।९२।१९।, अथ० २०।११०।१, साम० १५८।

३. ऋ० ८।९२।२०, अथ० २०।११०।२।

सात दिशाएं हैं–पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ध्रुवा, ऊर्ध्वा और केन्द्र। आकाश में स्थित सप्तर्षियों के नाम ये हैं– मरीचि, वसिष्ठ, अङ्गिरस्, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु।

ऋग्वेद ९।११४।३ में सात-सात वस्तुएं गिनाते हुए कहा गया है कि सात दिशाएं हैं, सात होता ऋत्विज् हैं, सात आदित्य-किरणें हैं।

यजुर्वेद २६।१ में सप्त संसद् बतायी गयी हैं–अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, आपः और वरुण। आठवीं भूतसाधनी पृथिवी कही गयी है ।।२।।

भावार्थ–ब्रह्माण्ड में स्थित सभी दिशा, विदिशा आदि पदार्थ, शरीर में स्थित मन, बुद्धि आदि और यज्ञ में स्थित सब ऋत्विज् जगदीश्वर की ही महिमा का गान करते प्रतीत होते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में उपासना-यज्ञ का विषय है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १र २र ३ १ २

७२४. त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत। तमिद्वर्धन्तु नो गिरः।।३।। [१]

पदार्थ–देवासः विद्वान् लोग **त्रिकद्रुकेषु** जिनमें आत्मा, मन और बुद्धि ये तीन मूल केन्द्र होते हैं उन व्यवहारों में **चेतनम्** चेतना प्रदान करने वाले **यज्ञम्** उपासनायज्ञ को **अत्नत** फैलाते हैं। **तम् इत्** उसी उपासनायज्ञ को **नः** हमारी **गिरः** स्तुतिवाणियां **वर्धन्तु** बढायें ।।३।।

भावार्थ–परमेश्वर की उपासना से मनुष्य की आत्मा में चेतना का प्रवाह, जागरूकता, कर्त्तव्यनिष्ठा, शूरता, कर्मण्यता, विजयशीलता, परोपकारिता इत्यादि गुण स्वयं ही आ जाते हैं ।।३।।

इस खण्ड में जीवात्मा-परमात्मा व गुरु-शिष्य विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए।

द्वितीय अध्याये में प्रथम खण्ड समाप्त

।।५।। अथ 'अयं त' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** इरिम्बिठिः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १५९ क्रमांक पर भक्तिरस के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां ज्ञान-रस का विषय प्रस्तुत है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २

७२५. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि। एहीमस्य द्रवा पिब।।१।। [२]

पदार्थ–आचार्य कह रहा है–हे **इन्द्र** शिष्य के अन्तरात्मन्! **अयम्** यह **सोमः** अध्यात्म-विद्या का रस **ते** तेरे लिए **बर्हिषि अधि** विद्या-यज्ञ में **निपूतः** अत्यधिक पवित्र रूप में उपस्थित है। **एहि** आ, **ईम्** इसके प्रति **द्रव** झपट, **अस्य** इस अध्यात्म-विद्या के रस को **पिब** पान कर ।।१।।

भावार्थ–जिसका आत्मा अध्यात्मविद्या के ग्रहण के लिए अत्यधिक उत्कण्ठित है वही गुरु के पास से ब्रह्मज्ञान पा सकता है ।।१।।

---

१. ऋ० ८।१३।१८ अन्ते 'सदावृधम्' इत्यधिकम्, ऋषिः नारदः काण्वः, छन्दः उष्णिक्। ८।९२।२१, अथ० २०।११०।३।
२. ऋ० ८।१७।११, अथ० २०।५।५, साम०१५९।

गुरु से अध्यात्मविद्या ग्रहण कर चुकने के पश्चात् शिष्य परमेश्वर को पुकार रहे है ।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ १ २ ३ १ २
७२६. शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः। आखण्डल प्र हूयसे ॥२॥[1]

पदार्थ—हे **शाचिगो** जिसकी वाणियां ज्ञान और कर्म का उपदेश करने वाली है ऐसे जगदीश्वर ! हे **शाचिपूजन** ज्ञानी पुरुषार्थियों से पूजे जाने वाले परमात्मन् ! **अयम्** यह भक्ति-रस **ते** आपके **रणाय** रमने के लिए **सुतः** हमारे द्वारा उत्पन्न किया गया है । हे **आखण्डल** दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि को खण्ड-खण्ड करने वाले देव! आप उस भक्ति-रस का पान करने के लिए **प्रहूयसे** हमारे द्वारा चाव से बुलाए जा रहे हो ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान और पुरुषार्थपूर्वक भक्तिभाव से आराधना किया हुआ परमेश्वर उपासकों के दुःख, दारिद्र्य आदि को खण्डित करके उन्हें ऋद्धि-सिद्धि प्रदान करके सुखी करता है ॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २र ३ १र २र
७२७. यस्ते शृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः। न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥३॥[2]

पदार्थ—हे **शृङ्गवृषः नपात्** रश्मियों से वर्षा करने वाले सूर्य को बिना ही आधार के आकाश में स्थिर करने वाले जगदीश्वर ! **यः ते** जो आपका **प्र नपात्** प्रकृष्ट रूप से रक्षक **कुण्डपाय्यः** समुद्ररूप कुण्ड जिसमें सूर्य द्वारा पिये जाते हैं, ऐसा वृष्टिरूप यज्ञ है, **अस्मिन्** इसमें, उपासक लोग **मनः** अपने मन को **आ निदध्रे** निहित करते हैं ॥३॥

भावार्थ—जैसे सूर्य समुद्ररूप कुण्डों को पीकर बादल बना कर वर्षा करता है, वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि धन कमाकर और योगसिद्धियां प्राप्त करके सत्पात्रों में उनकी वर्षा करें ॥३॥

॥६॥ अथ 'आ तू न इन्द्र' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कुसीदी काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १६७ पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है । यहां आचार्य को सम्बोधन किया जा रहा है ।

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
७२८. आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन ॥१॥[3]

पदार्थ—हे **इन्द्र** विद्या के ऐश्वर्य से युक्त गुरुवर! आप **तु** शीघ्र ही **दक्षिणेन** उदारता से **नः** हमारे अन्दर **क्षुमन्तम्** शब्दशास्त्र के ज्ञान से युक्त, **चित्रम्** अद्भुत, दिव्य **ग्राभम्** ब्रह्मविद्यारूप धन को **सं गृभाय** संगृहीत कीजिए, जैसे **महाहस्ती** बड़े हाथों वाला कोई पुरुष **दक्षिणेन** दाहिने हाथ से **ग्राभम्** ग्राह्य धन को संगृहीत करता है ॥१॥

यहां वाचकलुप्तोपमालंकार है॥१॥

---

१. ऋ० ८।१७।१२, अथ० २०।५।६।
२. ऋ० ८।१७।१३, अथ० २०।५।७ ।
३. ऋ० ८।८१।१, साम० १६७।

भावार्थ–शिष्यों को चाहिए कि गुरुओं के पास से सब लौकिक विद्याओं तथा ब्रह्मविद्याओं को यत्न से संचित करें और गुरुओं को चाहिए कि वे प्रेमपूर्वक यत्न से उन्हें दें ।।१।।

अगले मन्त्र में आचार्य से ब्रह्मविद्या सीखे हुए शिष्य ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन कर रहे है ।

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

७२९. विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम्। तुविमात्रमवोभिः ।।२।।[1]

पदार्थ–हे सर्वान्तर्यामिन् परब्रह्म ! हम **हि** निश्चयपूर्वक **त्वा** आपको **तुविकूर्मिम्** उत्पत्ति, धारण, पालन आदि बहुत से कर्मों का कर्त्ता, **तुविदेष्णम्** बहुत से पदार्थों तथा सुख आदियों का दाता, **तुवीमघम्** बहुत धनी और **अवोभिः** रक्षाओं के साथ **तुविमात्रम्** सूर्य, चन्द्र, तारामण्डलादि बहुतों को मापनेवाला **विद्म** जानते हैं ।।२।।

भावार्थ–परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव को जानकर उसके उपकारों के प्रति कृतज्ञता सबको प्रकट करनी चाहिए ।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर के दान का वर्णन है ।

१र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

७३०. न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्। भीमं न गां वारयन्ते ।।३।।[2]

पदार्थ–हे **शूर** दानशूर परमात्मन् ! **दित्सन्तम्** जब आप किसी को भौतिक या दिव्य ऐश्वर्य देना चाहते हो तब **त्वा** आपको **नहि** न तो **देवाः** चमकीले अग्नि, सूर्य, चन्द्र, विद्युत् आदि कोई जड़ पदार्थ और **न** न ही **मर्तासः** मनुष्य **वारयन्ते** रोक सकते हैं, **भीमं गां न** जैसे भयंकर दुर्दान्त विद्युत् रूप अग्नि को कोई नहीं रोक सकता ।।३।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है।।३।।

भावार्थ–जो कृपालु परमेश्वर सूर्यकिरण, पत्र, पुष्प, फल, वायु, जल आदि वस्तुओं को और सत्य, न्याय, दया, उदारता आदि को बिना मूल्य के ही प्रदान करता है उसकी सबको कृतज्ञता के साथ वन्दना करनी चाहिए ।।३।।

।।७।। अथ 'अभि त्वा' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** त्रिशोकः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १६१ पर परमात्मा तथा गुरु-शिष्य के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां अपने अन्तरात्मा को सम्बोधन है ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

७३१. अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये। तृम्पा व्यश्नुही मदम् ।।१।।[3]

पदार्थ–हे **वृषभ** शक्तिशाली मेरे अन्तरात्मन् ! **सुते** इस उपासना-यज्ञ के प्रवृत्त होने पर **त्वा अभि** तेरे प्रति **पीतये** पान करने के लिए **सुतम्** श्रद्धा-रस **सृजामि** उत्पन्न कर रहा हूं । इससे तू **तृम्प** तृप्त हो, **मदम्** हर्ष को **व्यश्नुहि** प्राप्त कर ।।१।।

---

१. ऋ० ८।८१।२।

२. ऋ० ८।८१।३।

३. ऋ० ८।४५।२२, अथ० २०।२२।१, साम० १६१।

भावार्थ—सबको चाहिए कि अपने अन्तरात्मा को उद्‌बोधन देकर उसके अन्दर श्रद्धा-रस का संचार करें ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः अपने अन्तरात्मा को उद्‌बोधन है ।

७३२. मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ।।२।।[1]

पदार्थ—हे मेरे अन्तरात्मन्! **मा** न तो **मूराः** मूढ़, अविवेकी **अविष्यवः** हिंसा करने के इच्छुक लोग और **मा** न ही **उपहस्वानः** उपहास करने वाले लोग **त्वा** तेरी **आ दभन्** हिंसा कर सकें और **मा कीम्** न ही तू **ब्रह्मद्विषम्** ब्रह्मद्वेषी का **वनः** संग कर ।।२।।

भावार्थ—मनुष्य का अन्तरात्मा यदि जागरूक रहे तो उसे कोई भी बाहरी या आन्तरिक शत्रु पराजित नहीं कर सकता ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः अन्तरात्मा को उद्‌बोधन है।

७३३. इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ।।३।।[2]

पदार्थ—हे मेरे अन्तरात्मन् ! **इह** इस शरीर में **गोपरीणसम्** मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियां आदि बहुत सी गौएं जिसके पास हैं ऐसे **त्वा** तुझे, हमारी उद्‌बोधक वाणियां **महे राधसे** महान् ऐश्वर्य के लिए **मन्दन्तु** उत्साहित करें । **गौरः** गौर मृग, प्यास से व्याकुल होकर **यथा** जैसे, उत्कण्ठा के साथ **सरः** जल को, पीता है, वैसे ही तू **सरः** वेदवाणी के रस, ज्ञान-रस, कर्म-रस और ब्रह्मानन्द के रस को **पिब** पी ।।३।।

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है।।३।।

भावार्थ—मनुष्य अपने अन्तरात्मा को उद्‌बोधन देकर अपनी महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप सब लौकिक और दिव्य सम्पदाओं को प्राप्त कर सकते हैं ।।३।।

।।८।। अथ 'इदं वसो' इत्यादिकस्य अष्टमस्य. तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्च आङ्गिरसः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १२४ पर परमात्मा और अतिथि के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां गुरुजन शिष्य को ब्रह्मानन्द-रस का पान करा रहे हैं ।

७३४. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन् ररिमा ते ।।१।।[3]

पदार्थ—हे **वसो** गुरुकुलनिवासी, व्रतपालक ब्रह्मचारी! **इदम् अन्धः** यह ब्रह्मविज्ञान, तेरे लिए **सुतम्** अभिषुत है, तू इसे **सुपूर्णम् उदरम्** पेट भरकर **पिब** पान कर । हे **अनाभयिन्** निर्भय शिष्य! हम **ते** तेरे लिए, यह विज्ञान **ररिम** दे रहे हैं ।।१।।

१. ऋ० ८।४५।२३, अथ० २०।२२।२, उभयत्र 'ब्रह्मद्विषो' इति पाठः।
२. ऋ० ८।४५।२४, अथ० २०।२२।३, उभयत्र 'गोपरीणसा' इति पाठः।
३. ऋ० ८।२।१, साम०१२४।

भावार्थ—जिन्होंने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है ऐसे गुरुजनों को उचित है कि वे छात्रों को ब्रह्मज्ञान देकर अनुगृहीत करें ॥१॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि वह ब्रह्मविज्ञान-रस कैसा है ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३२ ३ २३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

७३५. नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥२॥[1]

पदार्थ—हे शिष्य! मेरे द्वारा जो तुझे ब्रह्मज्ञान-रस दिया जा रहा है, वह **नृभिः** उन्नायक श्रेष्ठ विचारों द्वारा **धौतः** धोया गया है, **अश्नैः** पाषाणों के समान कठोर व्रताचरणों द्वारा **सुतः** अभिषुत किया गया है, **अव्याः** रक्षा करने वाली बुद्धि के **वारैः** दोषनिवारक तर्कों द्वारा **परिपूतः** पवित्र किया गया है, और **नदीषु** नदियों में **निक्तः** नहलाकर साफ किये गये **अश्वः न** घोड़े के समान **नदीषु** वेदवाणी की धाराओं में **निक्तः** शुद्ध किया गया है ॥२॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है । यहां श्लेष से सोम ओषधि के पक्ष में भी अर्थ-योजना करनी चाहिए । इससे 'ब्रह्मविज्ञान सोमरस के समान है' यह उपमानोपमेयभाव द्योतित होगा ॥२॥

भावार्थ—जैसे ऋत्विज् लोग सोमलता को पवित्र जल से धोकर, सिल-बट्टों से कूटकर, रस निचोड़ कर, दशापवित्र नामक छन्नी से छानकर शुद्ध हुए सोमरस को अग्नि में होम करते हैं, वैसे ही गुरुजन ब्रह्मविद्यारूप लता को सद्विचारों से धोकर, कठोर व्रताचरणों से कूटकर, बुद्धि के तर्कों से छानकर, वेदवाणी की धाराओं में पवित्र करके शिष्य की आत्माग्नि में होम करते हैं ॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

२ ३ २३ २ ३ १ २ ३१२ ३१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

७३६. तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः। इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥३॥[2]

पदार्थ—हे शिष्य! **तम्** उस ब्रह्मविद्यारूप सोमरस को **गोभिः** मधुर वाणियों से **श्रीणन्तः** परिपक्व करते हुए हमने **स्वादुम्** स्वादु **अकर्म** कर लिया है, **यथा** जैसे **यवम्** जौ के रस को **गोभिः** गाय के दूध से मधुर कर लेते हैं। हे **इन्द्र** प्रिय शिष्य! **अस्मिन्** इस **सधमादे** जिसमें साथ मिलकर ब्रह्मज्ञान का पान करते हैं ऐसे विद्या-यज्ञ में **त्वा** तुझे, हम ब्रह्मज्ञान का रस पीने के लिए बुला रहे हैं ॥३॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है ॥३॥

भावार्थ—गुरुओं को चाहिए कि वे शिष्यों को लौकिक ज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान नीरस रूप में नहीं, किन्तु सरस रूप में दें, जिससे उनकी उसमें रुचि हो॥३॥

इस खण्ड में गुरुशिष्य का विषय, परमेश्वर-जीवात्मा का विषय तथा ब्रह्मज्ञान का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।

द्वितीय अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त

॥९॥ अथ 'इदं ह्यन्वोजसा' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वामित्रो गाथिनः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः॥

---

१. ऋ० ८।२।२, 'नृभिर्धूतः', 'रव्यो॒वारैः॒' इति पाठः।

२. ऋ० ८।२।३ ।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक १६५ पर परमात्मा के विषय में की गयी थी। यहां अपने अन्तरात्मा को सम्बोधन है।

३१२ २२ ३१ २ २ ३ २ १ २

७३७. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥१॥[1]

पदार्थ—हे **राधानां पते** सदिच्छा, महत्त्वाकाङ्क्षा, सत्प्रयत्न, सुख, ज्ञान आदि के स्वामी मेरे अन्तरात्मन्! **इदं हि** यह ब्रह्मानन्द-रस **ओजसा** बल और वेग के साथ **अनु सुतम्** अनुकूल रूप में अभिषुत हुआ है। हे **गिर्वणः** वाणियों से प्रभुभक्ति में संलग्न आत्मन्! तू **अस्य** इस ब्रह्मानन्दरूप सोमरस को **तु** शीघ्र **पिब** पान कर ले ॥१॥

भावार्थ—योग का अनुष्ठान करने से ब्रह्मानन्द के रस की धारा जब आत्मा को व्याप लेती है तब योगी कृतकृत्य हो जाता हैं ॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः आत्मा को सम्बोधन है।

२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३क २२ १ २

७३८. यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम्। स त्वा ममत्तु सोम्य ॥२॥[2]

पदार्थ—हे मेरे अन्तरात्मन्! **यः** जो ब्रह्मानन्दरस **ते** तेरी **स्वधाम् अनु** आनन्द-भोगेच्छा के अनुकूल **असत्** उत्पन्न हुआ है, उस ब्रह्मानन्द-रूप सोमरस के **सुते** अनुभव में आने पर, तू **तन्वम्** अपने शरीर को **नियच्छ** यम-नियम की रस्सियों से नियन्त्रित करते हुए चल। हे **सोम्य** सौम्य आत्मन्! **सः** वह ब्रह्मानन्द-रस **त्वा** तुझे **ममत्तु** हर्षित एवं तरंगित कर दे ॥२॥

भावार्थ—उपासना से जब ब्रह्मानन्द-रस आत्मा को प्राप्त होता है तब शरीर के तथा मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि के भी सब व्यवहार सात्त्विक हो जाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय का वर्णन है।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

७३९. प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः। प्र बाहू शूर राधसा ॥३॥[3]

पदार्थ—हे **इन्द्र** तेरे अन्तरात्मन्! वह ब्रह्मानन्द-रस **ते** मेरे **कुक्ष्योः** दोनों कोखों में **प्र अश्नोतु** भली-भांति व्याप जाए, **ब्रह्मणा** ब्रह्मज्ञान के साथ **शिरः** सिर में **प्र** भलीभांति व्याप जाए, हे **शूर** शूरवीर मेरे अन्तरात्मन्! **राधसा** सिद्धि एवं सफलता के साथ **बाहू** दोनों भुजाओं में **प्र** भली-भांति व्याप जाए॥३॥

भावार्थ—ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मानन्द जब जीवात्मा में व्यापता है तब उसका प्रभाव देह में स्थित सभी अंगों पर पड़ता है। मन में श्रेष्ठ संकल्प, सिर में ज्ञानेन्द्रियों तथा बुद्धि के व्यापार और भुजाओं में सत्कर्म भली-भांति तरंगित होने लगते हैं ॥३॥

॥१०॥ अथ 'आ त्वेता' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः॥

---

१. ऋ० ३।५१।१०, साम० १६५।

२. ऋ० ३।५१।११, 'सोम्य' इत्यत्र 'सोम्यम्' इति पाठः।

३. ऋ० ३।५१।१२ 'राधसा' इत्यत्र 'राधसे' इति पाठः।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १६४ पर परमात्मा तथा राष्ट्र के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां आत्मोद्बोधन का विषय है।

७४०. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखाय स्तोमवाहसः ।।१।।[1]

पदार्थ—हे **स्तोमवाहसः** गीतों को गानेवाले **सखायः** मित्रो ! तुम **तु** शीघ्र ही **आ एत** आओ, **निषीदत** बैठो, **इन्द्रम् अभि** अपने अन्तरात्मा को लक्ष्य करके **प्र गायत** भली भांति उद्बोधन-गीत गाओ ।।१।।

भावार्थ—परस्पर मिलकर आत्मा को उद्बोधन देने से वह शक्ति जागती है, जिससे मार्ग की सभी बाधाएं हटायी जा सकती हैं ।।१।।

आत्मा को उद्बोधन देने के अनन्तर अब परमात्मा के विषय में कहते हैं।

७४१. पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ।।२।।[2]

पदार्थ—हे साथियो ! **पुरूणाम्** पूर्णों एवं पालनकर्त्ताओं में **पुरूतमम्** पूर्णतम और सर्वाधिक पालक, **वार्याणाम्** वरणीय गुणों के **ईशानम्** अधीश्वर **इन्द्रम्** परमात्मा के प्रति **सुते** श्रद्धारस के तैयार हो जाने पर **सचा** साथ मिलकर **प्र गायत** स्तुति-गीत गाओ। [यहां 'प्रगायत' शब्द पूर्व मन्त्र से आया है]।।२।।

भावार्थ—जो स्वयं पूर्ण और अन्यों को पूर्ण करने वाला, समस्त गुणों से विभूषित परमेश्वर है उसकी सबको मिलकर श्रद्धा के साथ उपासना करनी चाहिए ।।२।।

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

७४२. स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्या। गमद् वाजेभिरा स नः ।।३।।[3]

पदार्थ—**सः** वह प्रसिद्ध इन्द्र परमात्मा **नः** हमारे **योगे** अष्टांगयोग की सिद्धि में **आ भुवत्** सहायक होवे। **सः** वह **राये** अणिमा, लघिमा, महिमा आदि ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए, हमारा सहायक होवे। **सः** वह **पुरन्ध्या** पालन करने वाली बुद्धि से हमें संयुक्त करे। **सः** वह **वाजेभिः** अध्यात्म-बलों के साथ **नः** हमारे पास **आगमत्** आये ।।३।।

भावार्थ—योगसिद्धि के मार्ग में जो विघ्न उपस्थित होते हैं वे परमात्मा की सहायता से दूर किये जा सकते हैं।।३।।

।।११।। अथ 'योगे योगे' इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शुनःशेप आजीगर्तिः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

---

१. ऋ० १।५।१, अथ० २०।६८।११, साम० १६४।

२. ऋ० १।५।२, अथ० २०।६८।१२।

३. ऋ० १।५।३, अथ० २०।६९।१, उभयत्र 'पुरन्ध्याम्' इति पाठः।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक १ ६ ३ पर योग तथा सेनाध्यक्ष के पक्ष में व्याख्या की गयी थी । यहां परमेश्वर, आचार्य तथा बिजली रूप अग्नि का आह्वान है ।

७४३. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ।।१।।[1]

पदार्थ–प्रथम परमेश्वर के पक्ष में। **सखायः** हम सहयोगी उपासक लोग **योगेयोगे** प्रत्येक नवीन उपलब्धि के लिए, और **वाजेवाजे** प्रत्येक बल की प्रप्ति के लिए और **ऊतये** प्रगति के लिए **तवस्तरम्** अतिशय बलवान् **इन्द्रम्** विघ्नविघातक तथा परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की **हवामहे** स्तुति करते हैं।

द्वितीय आचार्य के पक्ष में । **सखायः** परस्पर मित्रता में बंधे हुए हम सहाध्यायी लोग **योगेयोगे** प्रत्येक विद्या की प्राप्ति में, और **वाजेवाजे** अविद्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदियों के साथ होने वाले प्रत्येक संग्राम में **ऊतये** रक्षा के लिए **तवस्तरम्** विद्याबल, योगबल आदि में सर्वाधिक समृद्ध **इन्द्रम्** आचार्यप्रवर को **हवामहे** बुलाते हैं ।।

तृतीय शिल्पविद्या के पक्ष में । यन्त्रकलाओं में बिजली का प्रयोग करने वाला शिल्पी कह रहा है– **सखायः** हम सहयोगीगण **योगेयोगे** पदार्थों के मिश्रण से बनने वाली प्रत्येक नवीन वस्तु के निर्माण में और **वाजेवाजे** प्रत्येक बलसाध्य कार्य में **ऊतये** शिल्पविद्या के व्यवहार के लिए **तवस्तरम्** अतिशय बलवान् **इन्द्रम्** बिजलीरूप अग्नि को **हवामहे** बुलाते हैं, अर्थात् यन्त्रकलाओं में प्रयुक्त करते हैं।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।१।।

भावार्थ–जैसे बल आदि की प्राप्ति के लिए परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए, वैसे ही सब विद्याएं पढ़ने के लिए और अन्तःकरण में होने वाले देवासुरसंग्रामों में विजय के लिए विद्वान्, सदाचारी गुरु को स्वीकार करना चाहिए। कारखानों में व्यवहारोपयोगी पदार्थों के निर्माण के लिए तथा संग्रामों में शस्त्रास्त्र चलाने के लिए बिजली का प्रयोग करना चाहिए ।।१।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति तथा गुरु-शिष्य का विषय है ।

७४४. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ।।२।।[2]

पदार्थ–प्रथम परमेश्वर के पक्ष में । मैं उपासक **प्रत्नस्य** चिरकाल से बने हुए **ओकसः** ब्रह्माण्डरूप घर के **नरम्** नेता, **तुविप्रतिम्** बहुत से पदार्थों का निर्माण करने वाले तुझ इन्द्र जगदीश्वर को **अनुहुवे** अनुकूल करने के लिए पुकारता हूं, **यं ते** जिस तुझ जगदीश को **पूर्वम्** पहले **पिता** मेरा पिता **हुवे** पुकारा करता था ।।

द्वितीय आचार्य के पक्ष में। हे बालक! मैं तेरा चाचा आदि **तुविप्रतिम्** बहुत सी विद्याओं की प्रतिमूर्ति, **प्रत्नस्य** पुरातन **ओकसः** विद्यागृह के **नरम्** नेता आचार्य को **अनु** अनुकूल करके, तेरे पढ़ाने तथा सदाचार सिखाने के लिए **हुवे** पुकारता हूं, **यम्** जिस आचार्य को **पूर्वम्** पहले **ते** तेरा **पिता** पिता अन्य बालकों को पढ़ाने के लिए **हुवे** पुकारता रहा है।।२।।

---

१. ऋ० १।३०।७, य० ११।१४, अथ० १९।२४।७, २०।२६।१, साम० १६३।

२. ऋ० १।३०।९, अथ० २०।२६।३।

भावार्थ—सब मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए और बालकों के संरक्षक पिता, चाचा आदि को चाहिए कि विद्या पढ़ने के लिए बालकों को सुयोग्य गुरु के पास भेजें, जिससे वे विद्वान् होकर कुशल नागरिक बनें ।।२।।

आगे पुनः उसी विषय का वर्णन है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७४५. आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः। वाजेभिरुप नो हवम् ।।३।।[1]

पदार्थ— प्रथम परमेश्वर के पक्ष में। इन्द्र जगदीश्वर **यदि** यदि **श्रवत्** हमारी पुकार को सुन ले, तो वह **घ** अवश्य ही **सहस्रिणीभिः** हजारों **ऊतिभिः** रक्षाओं के साथ और **वाजेभिः** बलों तथा ऐश्वर्यों के साथ **नः** हमारी **हवम्** पुकार पर **उप आ गमत्** हमारे समीप आ जाए ।।

द्वितीय गुरु-शिष्य के पक्ष में। **यदि** यदि, यह विद्यार्थी **श्रवत्** गुरु-मुख से शास्त्रों को सुन चुकेगा, तो **सहस्रिणीभिः** सहस्रों **ऊतिभिः** विद्याजन्य तृप्तियों तथा **वाजेभिः** आत्मबलों के साथ **नः** हम नागरिकों के **हवम्** उत्सव आदि समारोह में **घ** निश्चय ही **उप आ गमत्** आयेगा, और अपने विद्वत्तापूर्ण विचारों से हमें कृतार्थ करेगा ।।३।।

भावार्थ—हृदय से निकली हुई पुकार को जगदीश्वर अवश्य सुनता है। सुयोग्य गुरुओं के सान्निध्य में गुरुकुल में निवास करने वाले विद्यार्थी विद्वान् होकर समावर्तन संस्कार के पश्चात् जब बाहर आयें तब सबको उपदेश देकर श्रेष्ठ मार्ग में प्रवृत करें।।३।।

।।१२।। अथ 'इन्द्र सुतेषु' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नारदः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः।।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३८१ क्रमाङ्क पर परमेश्वर के महत्त्व के विषय में हो चुकी है। यहां आचार्य का महत्त्व वर्णित है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
७४६. इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ।।१।।[2]

पदार्थ—हे **इन्द्र** विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्यवर! आप **सोमेषु** ज्ञानरसों के **सुतेषु** अभिषुत करने के साथ-साथ, हम विद्यार्थियों के **क्रतुम्** कर्म को भी **उक्थ्यम्** प्रशंसनीय रूप में **पुनीषे** पवित्र करते हो। **वृधस्य** बढ़े हुए **दक्षस्य** उत्साह के **विदे** प्राप्त कराने के लिए **सः** वह आप **महान् हि** बड़े महत्त्वपूर्ण हो ।।१।।

भावार्थ— जैसे विद्याप्रदान करना आचार्य का कर्त्तव्य है, वैसे पवित्र आचार का प्रदान करना भी कर्त्तव्य है। कहा भी है— ''आचार्य को आचार्य इस कारण कहते हैं क्योंकि वह आचार का ग्रहण कराता है, (निरु० १।४)'' ।।१।।

---

१. ऋ० १।३०।८, अथ० २०।२६।२।
२. ऋ० ८।१३।१, इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम्। विदे वृधस्य दक्षसो महान् हि षः।। इति पाठः। साम० ३८१।

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

७४७. स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः। सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ।।२।।[1]

पदार्थ—**सः** वह विद्याप्रदाता आचार्य **प्रथमे** श्रेष्ठ **व्योमनि** आकाश के समान व्यापक ओंकारपद-वाच्य ब्रह्म में स्थित हुआ **देवानां सदने** विद्वानों के सदन गुरुकुल में रहता हुआ **वृधः** छात्रों की उन्नति कराने वाला, **सुपारः** विद्या के समुद्र से पार करने वाला, **सुश्रवस्तमः** अत्यन्त यशस्वी, **अप्सुजित्** व्याप्त विद्याओं में तथा शुभकर्मों में अन्यों को जीत लेने वाला अर्थात् अन्यों की अपेक्षा अधिक पारंगत है । मैं **सम्** उसकी भलीभांति स्तुति करता हूं ।।२।।

भावार्थ— सुयोग्य, विद्या के सागर, कर्मयोगी आचार्य को पाकर विद्यार्थी भी वैसे ही बनते हैं ।।२।।

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

७४८. तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ।।३।।[2]

पदार्थ—मैं विद्यार्थी **वाजसातये** विद्या-बलों तथा आत्म-बलों की प्राप्ति कराने वाले **भराय** अध्ययनाध्यापन रूप यज्ञ के लिए **तम् उ** उस **शुष्मिणम्** आत्म-बल तथा विद्या-बल से युक्त **इन्द्रम्** आचार्य को **हुवे** पुकारता हूँ। हे आचार्यवर! आप **सुम्ने** सुख के लिए, और **वृधे** उन्नति के लिए **नः** हमारे **अन्तमः** निकटतम **सखा** मित्र **भव** होवो ।।३।।

भावार्थ—निकटता, सखिभाव और सौहार्द के साथ सब लोक-विद्याओं और ब्रह्म-विद्याओं की शिक्षा देता हुआ तथा सुख प्रदान करता हुआ आचार्य छात्रों की चहुंमुखी उन्नति करता रहे ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, आत्मोद्बोधन एवं गुरुशिष्य विषयों का तथा प्रसंगतः शिल्पविज्ञान का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।

द्वितीय अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त

।।१३।। अथ 'एना वो अग्निं' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठः मैत्रा-वरुणः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक ४५ पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां अग्निहोत्र का विषय वर्णित करते हैं ।

७४९. एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ८।१३।२।

२. ऋ० ८।१३।३, 'तमु हुवे' इत्यत्र 'तमंह्वे' इति पाठः।

३. ऋ० ७।१६।१, य० १५।३२, साम० ४५ ।

पदार्थ—हे साथियो! मैं **ऊर्जः नपातम्** बल और प्राणशक्ति को बढ़ाने वाले, **प्रियम्** प्रिय, **चेतिष्ठम्** अतिशय जागरूक करने वाले, **अरतिम्** गतिशील, **स्वध्वरम्** उत्कृष्ट यज्ञ जिससे चलता है ऐसे, **विश्वस्य दूतम्** सब यजमानों के लिए दूत का कार्य करने वाले, अर्थात् दूत जैसे सन्देश लाने और ले जाने में दोनों पक्षों के बीच में माध्यम बनता है वैसे ही होमे हुए पदार्थ को सूक्ष्म करके उसके सुगन्ध को सब जगह फैलाने में माध्यम बनने वाले, **अमृतम्** सब पदार्थों में अव्यक्त रूप से स्थित होने के कारण अमर **अग्निम्** यज्ञाग्नि में **वः** तुम्हारे व अपने हित के लिए **एना** इस प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले **नमसा** श्रद्धाभाव से वा अन्नादि की हवि से **आहुवे** आहुति देता हूं ॥१॥

भावार्थ—अग्निहोत्र से जैसे जल, वायु आदि की शुद्धि होती है, वैसे ही अन्तःकरण की भी शुद्धि होती है तथा शारीरिक बल, आत्मबल, प्राणशक्ति, जागरूकता और त्यागभावना की उपलब्धि होती है ॥१॥

अगले मन्त्र में अग्निहोत्र के लाभों का वर्णन है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
७५०. स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२॥[1]

पदार्थ—सः वह यज्ञाग्नि **विश्वभोजसा** सबका पालन करने वाले **अरुषा** चमकते तेज से **योजते** संयुक्त होता है तथा यजमानों को संयुक्त करता है। **सः** वह यज्ञाग्नि **स्वाहुतः** भले प्रकार आहुति दिये जाने पर **दुद्रवत्** अत्यधिक गतिमय हो जाता है, ज्वालाओं को लपलपाने लगता है। **सुब्रह्मा** श्रेष्ठ ब्रह्मा जिसमें बना है ऐसा **यज्ञः** यज्ञ **वसूनाम्** आहिताग्नि यजमानों को **सुशमी** उत्तम शान्ति देने वाला होता है। वह यज्ञ **जनानाम्** अग्निहोत्री जनों को **देवम्** प्रकाशक **राधः** ज्योतिरूप धन, देता है ॥२॥

भावार्थ—सुयोग्य ब्रह्मा को अध्यक्ष पद पर नियुक्त करके किया हुआ यज्ञ, सुख, शान्ति और स्वास्थ्य देने वाला, लोगों को ज्योति प्रदान करने वाला तथा अध्यात्ममार्ग में प्रेरित करने वाला होता है ॥२॥

॥१४॥ अथ 'प्रत्यु अदर्श्या' इत्यादिकस्य चर्तुदशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठः मैत्रावरुणिः। **देवता** उषाः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १. मध्यमः, २. पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ३०३ पर प्राकृतिक उषा के पक्ष में व्याख्यात की जा चुकी है। यहां आध्यात्मिक उषा का वर्णन करते हैं।

१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २
७५१. प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥[2]

---

१. ऋ० ७।१६।२।

२. ऋ० ७।८१।१ 'अपो महि व्ययति चक्षसे' इति पाठः। साम० ३०३।

पदार्थ—आयती आती हुई, **उच्छन्ती** हृदय-प्राङ्गण में उदित होती हुई, **दिवः दुहिता** तेजस्वी परमात्मा की पुत्री के समान विद्यमान अध्यात्मप्रभा **चक्षुषा** अपने दिव्य प्रकाश से **तमः** मोहरूप अंधकार को **अप उ वृणुते** दूर कर रही है। **सूनरी** उत्कृष्ट नेतृत्व करने वाली यह अध्यात्मप्रभारूप उषा **ज्योतिः** विवेकख्यातिरूप ज्योति को **कृणोति** उत्पन्न कर रही है ।।१।।

भावार्थ—परमात्मा की उपासना से हृदय में प्रकट होती हुई दिव्यप्रभा समस्त तामसिकता के जाल को विच्छिन्न करके अन्तःकरण को निर्मल बना देती है ।।१।।

अगले मन्त्र में सूर्य और उषा का वर्णन है ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
७५२. उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
१र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ।।२।।[1]

पदार्थ—प्रथम प्राकृतिक सूर्य और उषा के पक्ष में। **सूर्यः** सूर्य **सचा** एक साथ **उस्रियाः** किरणों को **उत्सृजते** छोड़ता है, जिससे **उद्यत्** उदित होते हुए **नक्षत्रम्** गतिमय ग्रह-उपग्रह आदि **अर्चिवत्** दीप्तिमान् हो जाते हैं। **उषः** हे उषा ! **तव इत्** तेरे **सूर्य्यस्य च** और सूर्य के **व्युषि** प्रकाशित होने पर, हम **भक्तेन** एश्वर्य से **सं गमेमहि** संयुक्त होवें ।।

द्वितीय अध्यात्म पक्ष में। **सूर्यः** सूर्य के समान प्रकाशमय और प्रकाशक परमात्मा **सचा** एक साथ **उस्रियाः** दिव्य प्रकाश की रश्मियों को **उत्सृजते** छोड़ता है, जिससे **उद्यत्** उन्नत होते हुए **नक्षत्रम्** प्रगतिशील मन, बुद्धि आदि **अर्चिवत्** प्रकाशमान हो जाते हैं। **उषः** हे अध्यात्मप्रभा ! **तव इत्** तेरे **सूर्यस्य च** और परमात्मा रूप सूर्य के **व्युषि** प्रकाशित होने पर, हम **भक्तेन** दिव्य ऐश्वर्य से **संगमेमहि** संयुक्त होवें ।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। उपमानोपमेयभाव व्यङ्ग्य है ।।२।।

भावार्थ—जैसे उषा और सूर्य के उदय होने पर सब कुछ प्रकाशित हो उठता है, वैसे ही आध्यात्मिक प्रभा और परमात्मा के उदय होने पर उपासकों का हृदय प्रकाशित हो जाता है ।।२।।

।।१५।। अथ 'इमा उ वां' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। **देवता** अश्विनौ । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

'अश्विनौ' देवता वाली प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ३०४ पर परमात्मा-जीवात्मा और अध्यापक-उपदेशक के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है। यहां राष्ट्र की उन्नति के लिए ब्राह्मण-क्षत्रियों का आह्वान किया गया है ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
७५३. इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ।।१।।[2]

---

१. ऋ० ७।८१।२, 'सचाँ' इति भेदः।

२. ऋ० ७।७४।१, साम० ३०४।

पदार्थ–हे **अश्विना** ज्ञान एवं रक्षा से व्याप्त होने वाले ब्राह्मण और क्षत्रियो ! **इमाः उ** ये **दिविष्टयः** यशः प्रकाश की इच्छुक प्रजाएं **उस्राः वाम्** तुम निवासकों को **हवन्ते** पुकार रही हैं। हे **शचीवसू** कर्म-धन और प्रज्ञा-धन के धनियो ! **अयम्** यह मैं भी **अवसे** रक्षा के लिए **वाम्** तुम्हें **अह्वे** पुकारता हूं, **हि** क्योंकि, तुम **विशं विशम्** प्रत्येक प्रजा के पास **गच्छथः** पहुंचा करते हो ।।१।।

भावार्थ–''जहां ब्रह्म और क्षत्र एक साथ मिलकर रहते हैं उस राष्ट्र को मैं पुण्यवान् समझता हूं (य० २०।२५)।'' इस वेदोक्ति के अनुसार जो ब्राह्मण और क्षत्रिय राष्ट्र को सौभाग्यशाली बनाने के योग्य होते हैं उनका संरक्षण सब प्रजाओं को प्राप्त करना चाहिए ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

७५४. युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।।२।।[1]

पदार्थ–हे **नरा** नेतृत्व करने वाले ब्राह्मण और क्षत्रियो ! **युवम्** तुम **चित्रम्** अद्भुत **भोजनम्** पालन को **ददथुः** देते हो । उस पालन को तुम **सूनृतावते** प्रिय-सत्य वाणी वाले मेरे लिए भी **चोदेथाम्** प्रेरित करो, प्रदान करो । **समनसा** अनुकूल मन वाले होते हुए तुम दोनों, अपने **रथम्** रथ को **अर्वाक्** हमारी ओर **नि यच्छतम्** मोड़ो, अर्थात् हमारी ओर आओ, और आकर **सोम्यम्** सोमरस से युक्त **मधु** मधु को **पिबतम्** पिओ, अर्थात् हमारे द्वारा किये गये सत्कार को ग्रहण करो ।।२।।

भावार्थ–ब्राह्मण लोग ज्ञान-दान के द्वारा और क्षत्रिय लोग रक्षा-प्रदान द्वारा प्रजाजनों का उपकार करते हैं, अतः उनका यथोचित सत्कार और उनसे लाभग्रहण सबको करना चाहिए ।।२।।

इस खण्ड में अग्निहोत्र, दिव्य उषा, दिव्य सूर्य तथा ब्रह्म-क्षत्र का वर्णन होने से पूर्व खण्ड के साथ इस खण्ड की संगति है ।।

द्वितीय अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त

।।१६।। अथ 'अस्य प्रत्नामनु' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अवत्सारः काश्यपः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में सोम नामक परमात्मा का विषय है ।

७५५. अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम् ।।१।।[2]

पदार्थ–**अस्य** इस सोम की अर्थात् सौम्य तेज वाले परमात्मा की **प्रत्नाम्** पुरातन, **सहस्रसाम्** असंख्यात फल प्रदान करने वाली, **ऋषिम्** अनेक कार्यों को सिद्ध करने वाली **द्युतम्** सौम्य द्युति का अनु

---

१. ऋ० ७।७४।२ ।

२. ऋ० ९।५४।१। य० ३।१६ गोऽग्निपयोदेवत्या ।

अनुकूल ध्यान करके **अह्रयः** व्याप्त विद्या वाले विद्वान् उपासकजन **शुक्रम्** शुद्ध **पयः** ब्रह्मानन्दरूप रस को **दुदुह्रे** दुह लेते हैं, पा लेते हैं ।।१।।

भावार्थ—जो सौम्य, शुद्ध परमात्मा अपने उपासकों के हृदय में शुद्ध ब्रह्मानन्द रस को बहाता है उसकी सौम्य द्युति में ध्यान सबको लगाना चाहिए ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

३ ११२ २२ ३२३१२ २२ ३ २ ३२३ १२ २२
७५६. अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ।।२।।[1]

पदार्थ—**अयम्** यह सोम अर्थात् सौम्य परमात्मा **सूर्यः इव** सूर्य के समान **उपदृक्** दर्शाने वाला है । **अयम्** यह सौम्य परमात्मा **सरांसि** हृदय-सरोवरों में **धावति** शीघ्र पहुंचता है तथा उन्हें धोकर शुद्ध कर देता है । यह सौम्य परमात्मा **सप्त** सात **प्रवतः** ज्ञानेन्द्रियों सहित मन और बुद्धि को और **दिवम्** तेजस्वी जीवात्मा को **आ** प्राप्त होता है तथा उन्हें धोकर शुद्ध करता है ।।२।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ—जैसे सूर्य सब वस्तुओं को दिखाता है, अपनी किरणों से बादलरूप सरोवरों में पहुंचता है, भूमि-चन्द्रमा आदि सात ग्रहों-उपग्रहों को अपने प्रकाश से शुद्ध करता है और द्युलोक में स्थित होता है, वैसे ही परमात्मा सबको दृष्टि प्रदान करने वाला, सबके हृदय-सरोवरों में पहुंचने वाला, देहवर्ती सात प्राणों को शुद्ध करने वाला और आत्मपुरी में स्थित होने वाला है ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

३ ११२ २२ ३ १२ २२ ३ १ २ १ २ ३ १२ २२
७५७. अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ।।३।।[2]

पदार्थ—**अयम्** यह **सोमः** सौम्य, जगत्स्रष्टा परमात्मा **देवः** प्रकाशक **सूर्यः न** सूर्य के समान **विश्वानि** सब हृदयों को **पुनानः** पवित्र करता हुआ **भुवना उपरि** सब भुवनों के ऊपर, उनका अधिष्ठाता बनकर **तिष्ठति** विराजमान है ।।३।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ—जैसे सूर्य सौरमण्डल का अधिष्ठाता है, वैसे ही परमात्मा विश्वब्रह्माण्ड का अधिष्ठाता है ।।३।।

।।१७।। अथ 'एष प्रत्नेन' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १ शुनःशेप आजीगर्तिः, २,३ मेघातिथिः काण्वः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा में परमात्मारूप सोम का वर्णन है ।

३२ ३ २३ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ २ १ २ ३ १ २
७५८. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ९।५४।२ ।
२. ऋ० ९।५४।३।
३. ऋ० ९।३।९, साम० १२६४।

पदार्थ–प्रत्नेन जन्मना पुरातन स्वभाव के अनुसार **देवेभ्यः** प्रकाशक आत्मा तथा मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों के लिए **सुतः** अभिषुत हुआ **एषः** यह **देवः** प्रकाशक **हरिः** पापहारी परमात्मारूप सोम **पवित्रे** पवित्र हृदय में **अर्षति** पहुंचता है ।।१।।

भावार्थ–सुचारु विधि से भली भांति आराधना किया गया परमात्मा अवश्य ही उपासक को अपनी अनुभूति कराता है ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

३२ ३ २३ १ २ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ १२ २२

७५९. एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि। कविर्विप्रेण वावृधे ।।२।।[1]

पदार्थ–एषः यह **देवः** प्रकाशक, **कविः** बुद्धिमान् परमात्मारूप सोम **प्रत्नेन मन्मना** पुरातन वैदिक स्तोत्र द्वारा **देवेभ्यः** दिव्य गुणों के प्रदान के लिए **विप्रेण** बुद्धिमान् विद्वान् उपासक के द्वारा **परि वावृधे** चारों ओर बढ़ता है ।।२।।

परमात्मा में वस्तुतः बढ़ना रूप धर्म न होने से यहां असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है ।।२।।

भावार्थ–उपासक से वेदमन्त्रों द्वारा भलीभांति उपासना किया गया परमात्मा सर्वत्र प्रचार पाकर मानो बढ़ता है ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

७६०. दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे। क्रन्दं देवाँ अजीजनः ।।३।।[2]

पदार्थ–हे रस के भण्डार परमात्मारूप सोम ! **प्रत्नम् इत्** सनातन **पयः** आनन्द-रस को **दुहानः** दुहकर देते हुए, आप **पवित्रे** पवित्र हृदय में **परिषिच्यसे** चारों ओर सींचे जाते हो । **क्रन्दन्** मानो कल-कल शब्द करते हुए, आप **देवान्** दिव्य तरंगों को **अजीजनः** उत्पन्न करते हो ।।३।।

भावार्थ–परमात्मा की स्तुति से उपासक के हृदय में ब्रह्मानन्द के प्रवाह बहने लगते हैं ।।३।।

।।१८।। अथ ''उप शिक्षा'' इत्यादिकस्य अष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १,३ असितः काश्यपो देवलो वा, २ अमहीयुराङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा में परमात्मा और राजा को सम्बोधन किया गया है ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २

७६१. उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे। पवमान विदा रयिम् ।।१।।[3]

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में । हे **पवमान** पवित्रताप्रदायक, सर्वान्तर्यामी सोम परमात्मन् ! आप **अप तस्थुषः** हमसे दूर स्थित सद्गुणों को **उप शिक्ष** हमारे समीप ले आओ। **शत्रवे** काम, क्रोध आदि शत्रु के लिए **भियसम्** भय **आधेहि** प्रदान करो, और हमें **रयिम्** सत्य, अहिंसा, न्याय आदि दिव्य सम्पत्ति **विदाः** प्राप्त कराओ ।।

---

१. ऋ० ९।४२।२, 'धारया पवते सुतः' इति तृतीयः पादः ।

२. ऋ० ९।४२।४।

३. ऋ० ९।१९।६।

द्वितीय राजा के पक्ष में। हे **पवमान** गतिमय, कर्मवीर राजन्! आप **अप तस्थुषः** हमसे दूर होकर विरोधी पक्ष में स्थित हुए वीरों को **उप शिक्ष** दण्डित करो, **शत्रवे** शत्रु के लिए **भियसम्** भय **आधेहि** उत्पन्न करो और हमें **रयिम्** धन, धान्य, सुवर्ण आदि सम्पत्ति **विदाः** प्राप्त कराओ ।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है ।।१।।

भावार्थ—जैसे परमेश्वर काम, क्रोध आदि शत्रुओं को पराजित करके स्तोता को सद्गुणों की सम्पदा प्रदान करता है, वैसे ही राष्ट्र में राजा को चाहिए कि शत्रुओं को धूल में मिलाकर प्रजा को सब धन, धान्य आदि प्रदान करे ।।१।।

द्वितीय ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ४८७ पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां जीवात्मा और राजा का विषय वर्णित करते हैं।

२ ३ २ ३२३ २३ १ २ ३१२ २२ १ २ ३ १ २

७६२. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्। इन्दुं देवा अयासिषुः ।।२।।[1]

पदार्थ—प्रथम जीवात्मा के पक्ष में। **सुजातम्** सुप्रसिद्ध, **अप्तुरम्** कर्म में त्वरा करने वाले, कर्मशूर, **भङ्गम्** शत्रु, विपत्ति आदि के भञ्जक, **गोभिः परिष्कृतम्** वाणियों तथा इन्द्रियों से सुसज्जित **इन्दुम्** दीप्तिमान् जीवात्मा को **देवाः** मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि देव, बलप्राप्ति के लिए **उप उ अयासिषुः** समीपता से प्राप्त करते हैं।।

द्वितीय राजा के पक्ष में। **सु जातम्** भली भांति प्रजाओं के बीच से चुनकर बने हुए, **अप्तुरम्** कर्मयोगी, **भङ्गम्** शत्रुओं के भंजक, **गोभिः परिष्कृतम्** भूमियों से परिष्कृत अर्थात् परिष्कृत भूमियों वाले **इन्दुम्** तेजस्वी तथा मधुर स्वभाव वाले राजा को **देवाः** दिव्यगुणों वाले प्रजाजन **उप उ अयासिषुः** निकटता से प्राप्त करते हैं।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार भी है ।।२।।

भावार्थ—जैसे देह में स्थित मन, बुद्धि आदि जीवात्मा से ही बल पाते हैं, वैसे ही प्रजाजन वीर राजा से बलवान् बनते हैं ।।२।।

तृतीय ऋचा उत्तरार्चिक के आरम्भ में क्रमांक ६५१ पर परमात्मोपासना के विषय में तथा गुरुओं के शिष्यों के प्रति कर्तव्य के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहां जीवात्मा और राजा का विषय वर्णित करते है।

१ २ ३ १२ ३१ २ ३ २ ३१२ २२

७६३. उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते ।।३।।[2]

पदार्थ—प्रथम जीवात्मा के पक्ष में। हे **नरः** मनुष्यो! तुम **देवान्** प्रकाशक मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रिय रूप देवों में **अभि इयक्षते** परस्पर संगति कराने वाले, **पवमानाय** मन को पवित्र करने वाले **अस्मै** इस **इन्दवे** तेजस्वी जीवात्मा के लिए अर्थात् तेजस्वी जीवात्मा को लक्ष्य करके **गायत** उद्बोधन-गीत गाओ ।।

---

१. ऋ० ९।६१।१३, साम० ४८७।

२. ऋ० ९।११।१, य० ३३।६२, ऋषिः देवलः, देवता सोमः। साम० ६५१।

द्वितीय राजा के पक्ष में। हे **नरः** राष्ट्र के प्रजाजनो! तुम **देवान्** विद्वान् जनों की **अभि इयक्षते** पूजा करने वाले, **पवमानाय** राष्ट्र के प्रदेशों में इधर-उधर संचार करने वाले **अस्मै** इस **इन्दवे** तेजस्वी, धन-धान्य-दूध आदि से राष्ट्रभूमि को सींचने वाले राजा के लिए अर्थात् राजा को लक्ष्य करके **गायत** उद्बोधन-गीत तथा अभिनन्दन-गीत गाओ ॥३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि अपने आत्मा को तथा स्वराष्ट्र के राजा को उद्बोधन देकर वैयक्तिक तथा राष्ट्रिय उन्नति करें ॥३॥

इस खण्ड में मनुष्यों के अभ्युदय और निःश्रेयस के लिए परमात्मा तथा राजा का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ॥

द्वितीय अध्याय में पञ्चम खण्ड समाप्त।

॥१९॥ अथ 'प्र सोमासो' इत्यादिकस्य एकोनविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** त्रित आप्त्यः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या क्रमांक ४७८ पर ब्रह्मानन्द-रस के विषय में की जा चुकी है। यहां विद्वान् का विषय वर्णित करते हैं॥

७६४. प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः। वनानि महिषा इव ॥१॥[1]

पदार्थ—विपश्चितः विद्वान्, **ऊर्मयः** पढ़ायी हुई विद्याओं से शिष्य के हृदय को आच्छादित करने वाले अथवा क्रियाशील, **सोमासः** शिष्यों को द्वितीय जन्म देने वाले आचार्य लोग **अपः** शिष्यों के कर्म को **प्र नयन्त** उत्कृष्ट दिशा में ले जाते हैं, **इव** जैसे **महिषाः** महान् सूर्यकिरणें **वनानि** जलों को, बादल बनाने के लिए **प्र नयन्त** ऊपर अन्तरिक्ष में ले जाती हैं ॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् गुरुजन ज्ञान-दान तथा आचार-निर्माण के द्वारा विद्यार्थियों का उपकार करते हैं, वैसे ही विद्यार्थियों को भी चाहिए कि मन, वचन और कर्म से उनका सत्कार करें ॥१॥

अगले मन्त्र में विद्वान् आचार्य के द्वारा दिये जाते हुए ज्ञानरसों का वर्णन है।

७६५. अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया। वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२॥[2]

पदार्थ— आचार्य से दिये जाते हुए **बभ्रवः** धारण-पोषण करने वाले, **शुक्राः** पवित्र और प्रदीप्त ज्ञानरसरूप सोम **ऋतस्य** सत्य की **धारया** धारा के साथ **द्रोणानि** शिष्यों के हृदय-रूप द्रोण-कलशों को **अभि** लक्ष्य करके तीव्रता से बहते हैं, और **गोमन्तम्** प्रकाशमय **वाजम्** आत्मबल को **अक्षरन्** स्रवित करते हैं ॥२॥

---

१. ऋ० ९।३३।१ 'ऽपां न यन्त्यूर्मयः' इति द्वितीयः पादः। साम० ४७८।
२. ऋ० ९।३३।२

भावार्थ— सुयोग्य आचार्य को पाकर विद्यार्थी लोग विद्यावान्, विवेकवान्, सत्यवान् ज्योतिष्मान्, पवित्रहृदय तथा आत्मबलयुक्त होवें ॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

७६६. सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः। सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥३॥[1]

पदार्थ—**सुताः** आचार्य द्वारा प्रेरित **सोमाः** ज्ञानरस **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए, **वायवे** प्राण के लिए, **वरुणाय** वरणीय मन के लिए, **मरुद्भ्यः** ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप प्राणों के लिए, अर्थात् इन सबके प्रति **विष्णवे** यज्ञार्थ **अर्षन्तु** पहुंचें ॥३॥

भावार्थ—गुरुजनों से प्रदत्त ज्ञानरसों से विद्यार्थियों के आत्मा, प्राण, मन, इन्द्रियां सब तरंगित होकर देवपूजा, संगतिकरण और दान रूप यज्ञ के लिए समर्थ हो जाते हैं ॥३॥

॥२०॥ अथ 'प्र सोम' इत्यादिकस्य विंशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** भरद्वाजादयः सप्त (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः) । **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती पङ्क्तिः । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ५१४ पर जीवात्मा के विषय में व्याख्यात हुई थी । यहां परमात्मा और उपासक का विषय वर्णित करते हैं।

७६७. प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१॥[2]

पदार्थ—हे **सोम** रसागार परमात्मन्! आप **देववीतये** उपासक के हृदय में दिव्य गुण उत्पन्न करने के लिए **अर्णसा** आनन्द-रस से **प्र पिप्ये** भरपूर हो, **अर्णसा** जल से **सिन्धुः न** जैसे बादल भरपूर होता है। आगे उपासक के प्रति कहते हैं— हे उपासक ! **अंशोः** अंशुमाली सूर्य के **पयसा** वर्षाजल से **मदिरः** हर्ष को प्राप्त किसान के समान **जागृविः** जागरूक हुआ तू **मधुश्चुतम्** आनन्दरूप मधु को चुआने वाले **कोशम्** आनन्द के निधि परमात्मा के **अच्छ** अभिमुख हो ॥१॥

इस मंत्र में उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ—आनन्द-रस की प्राप्ति के लिए आनन्द-रस के खजाने परमेश्वर का ही मनुष्यों को ध्यान करना चाहिए, भौतिक प्रतिमा आदियों के पूजने से क्या लाभ है ॥१॥

आगे पुनः उसी विषय का वर्णन है।

७६८. आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥२॥[3]

---

१. ऋ० ९।३३।३, 'अर्षन्ति' इति भेदः ।
२. ऋ० ९।१०७।१२, साम० ५१४ ।
३. ऋ० ९।१०७।१३, अर्जुने इति पाठः ।

पदार्थ–हर्यतः चाहने योग्य, **अर्जुनः** गौरवर्ण, **प्रियः** प्यारा, **मर्ज्यः** अलंकार पहनाने योग्य **सूनुः** पुत्र **न** जैसे **अत्के** घोड़े पर बैठाया जाता है, वैसे ही **हर्यतः** सर्वान्तर्यामी और कमनीय, **अर्जुनः** शुद्ध, सात्त्विक, **प्रियः** प्यारा, **मर्ज्यः** वक्ष पर अलंकार के समान हृदय में धारण करने योग्य सौम्य परमेश्वर **अत्के** उपासकों की आत्मा में **आ अव्यत** बैठाया जाता है। **तम् ईम्** उसे **अपसः** कर्मण्य लोग **आ हिन्वन्ति** सर्वत्र ले जाते हैं, प्रचारित करते हैं, **यथा** जैसे नाविक लोग **नदीषु** नदियों में **गभस्त्योः** बाहुओं से **रथम्** जलयान को **आ हिन्वन्ति** ले जाते हैं।।२।।

इस मन्त्र में दो उपमाओं की संसृष्टि है। पूर्वार्ध में श्लिष्टोपमा है ।।२।।

भावार्थ–उपासक योगी लोगों को चाहिए कि परमात्मा को अपने आत्मा में धारण करके सर्वत्र उसका प्रचार करें, जिससे संसार में आस्तिकता का वातावरण पैदा हो ।।२।।

।।२१।। अथ 'प्र सोमासो' इत्यादिकस्य एकविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** श्यावाश्वः आत्रेयः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ४७७ पर दिव्य आनन्द-रस के विषय में व्याख्या की गयी थी। यहां ज्ञानरस का विषय वर्णित करते हैं।

७६९. प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम्। सुता विदथे अक्रमुः ।।१।।[1]

पदार्थ–सुताः आचार्य के द्वारा उत्पन्न किये गए, **मदच्युतः** आनन्दवर्षक **सोमासः** अध्यात्मविद्या के रस **मघोनाम् नः** हम विद्याधन के धनियों के **श्रवसे** यश के लिए **विदथे** विद्या-यज्ञ में **प्र अक्रमुः** प्रवाहित हो रहे हैं ।।१।।

भावार्थ–शिष्यों को चाहिए कि सुयोग्य गुरुओं के पास जाकर उनके पास से सब अध्यात्म विज्ञान ग्रहण करके परमात्मा का साक्षात्कार करें ।।१।।

अगले मन्त्र में अध्यात्मज्ञान और ब्रह्मानन्द का कर्तृत्व वर्णित है।

७७०. आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम्। अत्यो न गोभिरज्यते ।।२।।[2]

पदार्थ–आत् ग्रहण किये जाने के अनन्तर **ईम्** यह अध्यात्मज्ञान का और ब्रह्मानन्द का रस **यथा** जैसे **हंसः** सूर्य **गणम्** भूमि, चन्द्रमा आदि ग्रह-उपग्रहों के गण को वश में किये हुए है, वैसे ही **विश्वस्य** सब उपासकों की **मतिम्** बुद्धि को **अवीवशत्** वश में कर लेता है, बुद्धि में छा जाता है। और, **अत्यः न** घोड़ा जैसे **गोभिः** जलों से **अज्यते** स्नान करा कर साफ किया जाता है, वैसे ही यह अध्यात्मज्ञान का रस **गोभिः** वेद-वाणियों से **अज्यते** प्रकट किया जाता है ।।२।।

इस मन्त्र में दो उपमाओं की संसृष्टि है ।।२।।

भावार्थ–ब्रह्मज्ञान का और ब्रह्मानन्द का रस उपासक के आत्मा, मन, बुद्धि आदि में जब व्याप जाता है तब उसकी तरंगों से तरंगित हुआ वह उपासक महाभाग्य का अनुभव करता है ।।२।।

---

१. ऋ० ९।३२।१, 'मघोनाम्' इत्यत्र 'मुघोनः' इति पाठः। साम० ४७७।

२. ऋ० ९।३२।३।

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्द-रस का विषय है ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
७७१ . आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ।।३।।[1]

पदार्थ—आत् और तब **त्रितस्य** ज्ञान-कर्म-उपासना इन तीनों से युक्त जीवात्मा की **योषणः** पत्नियों के समान सहचारिणी बुद्धियां **इन्द्राय** जीवात्मा के **पीतये** पान के लिए **ईम्** इस **इन्दुम्** भिगोने वाले **हरिम्** पाप हर्ता ब्रह्मानन्दरस को **अद्रिभिः** विदीर्ण न होने वाले मनः संकल्पों द्वारा **हिन्वन्ति** जीवात्मा में पहुंचाती हैं ।।३।।

भावार्थ—जब ब्रह्मानन्द-रस जीवात्मा में व्याप जाता है तब उपासक को परम माहात्म्य का अनुभव होता है ।।३।।

।।२२।। अथ 'अया पवस्व' इत्यादिकस्य द्वाविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १, २ अग्निश्चाक्षुषः, ३ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** १, २ उष्णिक्, ३ अनुष्टुप् । **स्वरः** १, २ ऋषभः, ३ गान्धारः।।

प्रथम ऋचा में परमात्मा का तथा उसके आनन्द-रस का वर्णन है ।

३ १ २ ३१२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
७७२. अया पवस्व देवयु रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः । मधोर्धारा असृक्षत ।।१।।[2]

पदार्थ—हे पवित्र करने हारे रसागार परमात्मन् ! **देवयुः** स्तोता उपासक से प्रीति करने वाले आप **अया** इस आनन्दधारा के साथ **पवस्व** प्रवाहित होवो । **रेभन्** उपदेश करते हुए आप **विश्वतः** सब ओर से **पवित्रम्** पवित्र अन्तःकरण में **पर्येषि** आते हो । आपके पास से **मधोः** मधुर आनन्द की **धाराः** धाराएं **असृक्षत** छूटती हैं ।।१।।

भावार्थ—आनन्द-रस के भण्डार परमेश्वर से प्राप्त आनन्द-धाराएं उपासक को कृतकृत्य कर देती हैं ।।१।।

द्वितीय ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक ५७६ पर मनुष्य के उत्साह-कर्म के विषय में की गयी थी । यहां परमात्मा के विषय में वर्णन है ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
७७३ . पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या। अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ।।२।।[3]

पदार्थ—हर्यतः चाहने योग्य, **हरिः** अज्ञान, पाप आदि का हर्ता जगदीश्वर **रंह्या** वेग के साथ **ह्वरांसि अति** कुटिलताओं को पार कराकर **पवते** उपासकों को पवित्र करता है। हे जगदीश्वर! आप **स्तोतृभ्यः** स्तुति करने वाले उपासकों के लिए **वीरवत्** वीर भावों से युक्त **यशः** कीर्ति **अभ्यर्ष** प्राप्त कराओ ।।२।।

---

१. ऋ० ९।३२।२।

२. ऋ० ९।१०६।१४, 'अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत। रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः ।। इति पाठः।

३. ऋ० ९।१०६।१३, अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो इति पाठः । साम० ५७६ ।

भावार्थ—परमात्मा के उपासक जन दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख, पाप, कुटिलता आदियों से छूटकर वीर्य तथा उत्साह से युक्त होकर जीवन बिताते हैं ।।२।।

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ५५३ पर 'कैसा मनुष्य समाज से बहिष्कृत करने योग्य है' इस विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां अन्य प्रकार से व्याख्या की जा रही है ।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
७७४. प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ।।३।।[1]

पदार्थ—**अन्धसः** अन्नादि भोज्य पदार्थों को **सुन्वानाय** उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के लिए **मर्त्तः न** उपासक मनुष्य के समान, तुम **तत्** उस स्तुति-रूप **वचः** वचन को बोलने की **वष्ट** कामना करो । और, **अराधसम्** भक्ति न करने वाले **श्वानम्** कुत्ते की वृत्ति वाले अर्थात् सांसारिक पदार्थों का लोभ करने वाले मनुष्य को **अप हत** दूर कर दो, किस प्रकार ? **भृगवः** तपस्वी महर्षि जन **मखं न** जैसे मन की चंचलता को दूर करते हैं ।।३।।

इस मन्त्र में दो उपमाओं की संसृष्टि है ।।३।।

भावार्थ—परमेश्वर की भक्ति करने वाले लोगों को चाहिए कि वे भक्ति न करने वाले, सांसारिक भोगों के लोभियों की संगति न करें ।।३।।

इस खण्ड में विद्वान् आचार्य, उससे मिलने वाले भौतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञानरस, परमात्मा और उससे मिलने वाले आनन्द-रस का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

द्वितीय अध्याय का षष्ठ खण्ड समाप्त । द्वितीय अध्याय समाप्त ।

प्रथम प्रपाठक का द्वितीय अर्ध समाप्त ।

अथ तृतीयोऽध्यायः द्वितीये प्रपाठके प्रथमोऽर्धश्च

।।१।। अथ 'पवस्व वाचो' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** जमदग्निर्भार्गवः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में सोम जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
७७५. पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः। अभि विश्वानि काव्या।।१।।[2]

पदार्थः—हे **सोम** सबको उत्पन्न करने वाले, सबको प्रेरणा देने वाले, सब ऐश्वर्यों से युक्त, रस के भण्डार, चन्द्रमा के समान आह्लादक जगदीश्वर ! हमारी **वाचः** जिह्वा के **अग्रियः** आगे रहने वाले आप **चित्राभिः** अद्भुत **ऊतिभिः** रक्षाओं के साथ **पवस्व** हमें पवित्र कीजिए। आप **विश्वानि** सब **काव्या** वेद

---

१. ऋ० ९।१०१।१३, प्रजापतिः ऋषिः। 'प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः' इति पाठः। साम० ५५३, १३८६।
२. ऋ० ९।६२।२५।

काव्यों में अभि चारों ओर व्याप्त हैं। कहा भी है- "जिसने ऋचाएं पढ़कर भी जगदीश्वर को नहीं जाना वह ऋचाओ से क्या करेगा ? जो ऋचाओं से उसे जान लेते हैं वे समाधिस्थ हो जाते हैं (ऋ० १।१६।३९)" ।।१।।

भावार्थ- जगदीश्वर जिसकी रक्षा करता है, उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर से प्रार्थना करते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ १ २
७७६. त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन्। पवस्व विश्वचर्षणे ।।२।।[1]

पदार्थ-हे **विश्वचर्षणे** सबके द्रष्टा, अथवा सब मनुष्यों के स्वामी जगदीश्वर ! **वाचः** उपासकों की वाणी के **अग्रियः** आगे रहने वाले **त्वम्** पवित्रकर्ता आप **समुद्रियाः** आनन्दसागर के **अपः** रसों को **ईरयन्** हमारी ओर भेजते हुए, हमें **पुनीहि** पवित्र कीजिए ।।२।।

अगले मन्त्र में सोम जगदीश्वर की महिमा का वर्णन है।

२ ३ १र २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
७७७. तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे। तुभ्यं धावन्ति धेनवः ।।३।।[2]

पदार्थ-हे **कवे** मेधावी, दूरदर्शी **सोम** जगदीश्वर ! **इमा भुवना** ये लोकलोन्तर **तुभ्य** आपकी ही पूजा के लिए **महिम्ने तस्थिरे** महिमावान् हुए हैं। **तुभ्यम्** आपकी ही पूजा के लिए **धेनवः** गौएं, मेघ-मालाएं और सूर्यकिरणें **धावन्ति** दौड़ लगा रही हैं ।।३।।

भावार्थ-इस विशाल ब्रह्माण्ड में सूर्य, चांद, तारे, भूमि, ऋतुएं, नदियां, समुद्र, मेघ-घाटाएं, गौएं घोड़े, मनुष्य, मंगल-बुध-बृहस्पति आदि ग्रह सब परमेश्वर की ही महिमा का गान कर रहे हैं ।।३।।

।।२।। अथ 'पवस्वेन्दो' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अमहीयुराङ्गिरसः **देवता पवमानः सोमः। छन्दः गायत्री। स्वरः षड्जः ।।**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक म ४७९ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ परमात्मा, आचार्य तथा राजा से प्रार्थना की गयी है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
७७८. पवस्वेन्दोवृषा सुतः कृधी नो यशसो जने। विश्वा अप द्विषो जहि ।।१।।[3]

पदार्थ-हे **इन्दो** तेजस्वी परमात्मन्, आचार्य और राजन् ! **वृषा** विद्या और सुख की वर्षा करने वाले, **सुतः** हमसे प्रार्थना और प्रेरणा किये गये आप **पवस्व** हमें पवित्र कीजिए। **जने** जन-समुदाय में **नः** हमें **यशसः** यशस्वी **कृधि** कीजिए, **विश्वाः द्विषः** सब द्वेष-वृत्तियों को और सब द्वेषियों को **अप जहि** विनष्ट कर दीजिए ।।१।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है ।।१।।

---

१. ऋ० ९।६२।२६ 'पर्वस्व विश्वमेजय' इति तृतीयः पादः।
२. ऋ० ९।६२।२७ 'तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः' इति तृतीयः पादः।
३. ९।६१।२८, साम० ४७९।

भावार्थ—जगदीश्वर, आचार्य और राजा से विद्या, सुख, पवित्रता, कीर्ति और द्वेष-पाप आदि का विनाश प्राप्त करके सब लोग सफल जीवन वाले होवें ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं से प्रार्थना की गयी है ।

७७९. यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः । तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ।।२।।[1]

पदार्थ—हे **इन्दो** तेजस्वी जगदीश्वर, आचार्य और राजन् ! **यस्य ते** जिन आपकी **सख्ये** मित्रता में **वयम्** हम हैं, वे हम लोग **पृतन्यतः** सेना से चढ़ाई करने वाले आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को **सासह्याम** अतिशय रूप से बार-बार पराजित कर देवें । और **तव** आपके दिये हुए **उत्तमे** उत्तम **द्युम्ने** यश में, हम रहें ।।२।।

भावार्थ—सबको चाहिए कि परमेश्वर की उपासना करके, गुरु को शिष्यभाव से प्राप्त करके और राजा की सहायता पाकर सब काम, क्रोध आदि आन्तरिक रिपुओं को एवं बाह्य शत्रुओं को निर्मूल करके यशस्वी बनें ।।२।।

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं से प्रार्थना है।

७८०. या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ।।३।।[2]

पदार्थ—हे पवमान सोम ! हे कर्मशूर जगदीश्वर, आचार्य और राजन् ! **धूर्वणे** हिंसक के लिए **या** जो **ते** आपके **भीमानि** भयंकर, **तिग्मानि** तीक्ष्ण **आयुधा** हथियार **सन्ति** हैं, उनके द्वारा आप **समस्य** सब शत्रुओं से की जाने वाली **निदः** निन्दा से **नः** हमें रक्ष बचाइये ।।३।।

यहां अर्थश्लेष अलंकार है ।।३।।

भावार्थ—जगदीश्वर दण्डशक्तिरूप शस्त्रास्त्रों से, आचार्य ब्रह्मतेजरूप शस्त्रास्त्रों से और राजा भौतिक शस्त्रास्त्रों से दुष्टों की दुष्टता को दूर करके उनसे की जाने वाली निन्दा से मनुष्यों, शिष्यों और प्रजाजनों की **रक्षा** करें ।।३।।

।।३।। अथ 'वृषा सोम' इत्यादिकस्य तृतीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कश्यपो मारीचः। **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५०४ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात हुई थी । यहां जगदीश्वर, आचार्य और राजा तीनों को सम्बोधन है ।

७८१. वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ।।१।।[3]

पदार्थ—हे **सोम** सत्कर्मों में प्रेरणा करने वाले जगदीश्वर, आचार्य वा राजन्! **वृषा** सुख, विद्या एवं समृद्धि की वर्षा करने वाले आप **द्युमान्** तेजस्वी **असि** हो । हे **देव** सूर्यादियों के प्रकाशक परमात्मन्,

---

१. ऋ० ९।६१।२९, 'अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे । सासह्याम पृतन्यतः ।। इति पाठः ।

२. ऋ० ९।६१।३० ।

३. ऋ० ९।६४।१ 'दध्रिषे' इत्यत्र 'दधिषे' इति पाठः । साम० ५०४।

वेदविद्या के प्रकाशक आचार्य तथा राजनियमों के प्रकाशक राजन् ! **वृषव्रतः** धर्म, विद्या एवं समृद्धि की वर्षा करना ही जिनका व्रत है ऐसे आप **वृषा** सचमुच बादल हो । **वृषा** ब्रह्मबल, आत्मबल अथवा देहबल से युक्त आप **धर्माणि** चरित्र के नियमों, विद्या के नियमों तथा राजनियमों को **दध्रिषे** धारण करते हो ।।१।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है। सोम में वृषत्व (पर्जन्यत्व) का आरोप होने से रूपक है । उस आरोप में 'वृषव्रतः' इस पद का अर्थ हेतु बन रहा है, अतः काव्यलिंग है। 'वृषा' की आवृत्ति में यमक है ।।१।।

भावार्थ—जिस राष्ट्र में महान् परमेश्वर सुख आदि की, विद्वान् आचार्य विद्या की और धनी राजा धन की वर्षा करते हैं वह राष्ट्र महिमा से बहुत शोभा पाता है ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा, आचार्य और राजा की स्तुति है ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ २ १र २र३ १र २र

७८२. वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः । स त्वं वृषन् वृषेदसि ।।२।।[1]

पदार्थ—हे **वृषन्** सुख, सम्पति, विद्या आदि की वर्षा करने वाले परमात्मन्, आचार्य और राजन् ! **वृष्णः ते** वर्षक आपका **शवः** बल **वृष्ण्यम्** सुख, शान्ति, धन आदि की वर्षा करने के स्वभाव वाला है । आपका **वनम्** तेज भी **वृषा** सुख आदि की वर्षा करने वाला है । **सुतः** आपसे उत्पन्न किया गया वृष्टिरस, विद्यारस और रक्षारस भी **वृषा** सुख आदि की वर्षा करने वाला है । **सः त्वम्** वह आप **वृषा इत्** बादल ही **असि** हो ।।२।।

इस मन्त्र में सोमपदवाच्य परमेश्वर आदि में बादल का आरोप होने से रूपकालंकार है । 'वृष्ण, वृष्ण' में छेकानुप्रास, 'वृषा, वृषा' में लाटानुप्रास और 'वृष्, वृष्, वृषा, वृषा, वृष, वृषे' में वृत्त्यनुप्रास है ।।२।।

भावार्थ—जगदीश्वर, राजा और आचार्य ये तीनों ही मनुष्यों को ऐहिक तथा पारलौकिक उन्नति प्राप्त कराने में सहायक होते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा, आचार्य और राजा को सम्बोधन है ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र १ २ ३१र २र

७८३. अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ।।३।।[2]

पदार्थ—हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रताप्रदायक जगदीश्वर, आचार्य और राजन् ! **वृषा** धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की वर्षा करने वाले आप **अश्वः न** फैले हुए बादल के समान **चक्रदः** शब्द करते हो । हे **इन्दो** तेजस्विन् ! आप **गाः** गौओं, भूमियों और वेदवाणियों को **सम्** हमें संप्राप्त कराओ । **अर्वतः** घोड़ों, बलों और प्राणों को **सम्** संप्राप्त कराओ। और **नः** हमारी **राये** ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए **दुरः** द्वारों को **विवृधि** खोल दो ।।३।।

---

१. ऋ० ९।६४।२, 'सुतः' इत्यत्र 'मदः' इति भेदः। 'स त्वं' इत्यत्र च 'सत्यं' इति पाठः ।
२. ऋ० ९।६४।३।

इस मन्त्र में उपमालंकार तथा अर्थश्लेष है ॥३॥

भावार्थ—जगदीश्वर सबके हृदय में स्थित हुआ सत्प्रेरणा देता है, आचार्य विद्यागृह में स्थित हुआ शिष्यों को उपदेश करता है और राजा राष्ट्र में स्थित हुआ राजनियमों को उद्घोषित करता है। वे सभी यथायोग्य दीर्घायुष्य, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मवर्चस आदि प्रदान करते और रास्ते से विघ्न-बाधाओं को दूर करते हैं ॥३॥

॥४॥ अथ 'वृषा ह्यसि' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४८० क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है। यहां जगदीश्वर तथा राजा का आह्वान है।

२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
७८४. वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे। पवमान स्वर्दृशम् ॥१॥[1]

पदार्थ—हे **पवमान** पवित्रता देने वाले जगदीश्वर और राजन्! आप **वृषा हि** सचमुच सद्गुण, विद्या, सुराज्य, धन आदि की वर्षा करने वाले **असि** हो। **भानुना** तेज से **द्युमन्तम्** देदीप्यमान, **स्वर्दृशम्** मोक्ष के आनन्द वा लौकिक सुख का दर्शन कराने वाले **त्वा** आपको, हम **हवामहे** पुकारते हैं ॥१॥

भावार्थ—जैसे उपासना किया हुआ परमेश्वर हृदय को पवित्र करके उसमें दिव्य ऐश्वर्यों को बरसाता है और मोक्ष का आनन्द देता है, वैसे ही राज्य में राजा राष्ट्रवासियों के भ्रष्टाचार को दूर करके, पवित्र आचरण का प्रचार करके, विविध ऐश्वर्यों की वर्षा करके प्रजाओं को सुख प्रदान करे ॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर और राजा का वर्णन है।

२३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३ १ २
७८५. यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः। द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥२॥[2]

पदार्थ—**प्रथम** जगदीश्वर के पक्ष में। हे राजन्! **यत्** जब **आयुभिः** उपासक मनुष्यों से **मर्मृज्यमानः** बार-बार अत्यधिक सात्त्विक भावों से अलंकृत किये जाते हुए आप **अद्भिः** भक्तिरसों से **परिषिच्यसे** सींचे जाते हो, तब **द्रोणे** हृदयरूप द्रोणकलश में **सधस्थम्** स्थान **अश्नुषे** पा लेते हो ॥

द्वितीय राजा के पक्ष में। हे राजन्! **यत्** जब **आयुभिः** राष्ट्रवासी प्रजाजनों द्वारा **मर्मृज्यमानः** मालाओं आदि से अलंकृत किये जाते हुए आप **अद्भिः** अभिषेकजलों से **परिषिच्यसे** सींचे जाते हो, तब **द्रोणे** लकड़ी के बने सिंहासन पर **सधस्थम्** स्थान **अश्नुषे** पा लेते हो ॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। सोम ओषधि के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए ॥२॥

भावार्थ—जैसे याज्ञिकों द्वारा सोम ओषधि का रस जलों के साथ द्रोणकलश में सींचा जाता है और जैसे प्रजाजनों द्वारा कोई सुयोग्य मनुष्य राजा के पद पर अभिषिक्त किया जाता है, वैसे ही स्तोताओं को चाहिए कि परमेश्वर को भक्तिरसों द्वारा हृदय में अभिषिक्त करें ॥२॥

---

१. ऋ० ९।६५।४, 'स्वर्दृशम्' इत्यत्र 'स्वाध्यः' इति पाठः। साम० ४८०।
२. ऋ० ९।६५।६ 'मृज्यमानो गभस्त्योः। द्रुणा' इति पाठः।

अगले मन्त्र में फिर वही विषय वर्णित है ।

७८६. आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥३॥[1]

पदार्थ—हे **स्वायुध** उत्कृष्ट दण्डसामर्थ्य वाले जगदीश्वर तथा तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राजन् ! **मन्दमानः** प्रसन्न होते हुए आप **सुवीर्यम्** श्रेष्ठ आत्मबल, धैर्यबल, उत्साहबल और शारीरिक बल को **आ पवस्व** हमारे अन्दर प्रवाहित कीजिए । हे **इन्दो** तेजस्वी राजराजेश्वर परमात्मन् और राजन्! आप **इह उ** यहां हमारे हृदय में वा राजगद्दी पर **सु आगहि** भली भांति पधारिए ॥३॥

भावार्थ—जैसे परमात्मा अपने उपासकों का हार्दिक निवेदन सुनकर सज्जनों को उत्साहित और दुर्जनों को दण्डित करता है, वैसे ही राजा को चाहिए कि वह राष्ट्रवासियों का निवेदन सुनकर प्रजा को रक्षित और उत्साहित करे तथा पापी शत्रुओं को बन्दूक, तोप, आकाशीय गोले आदि हथियारों से विनष्ट करे ॥३॥

॥५॥ अथ 'पवमानस्य ते' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अमहीयुराङ्गिरसः। **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और आचार्य को सम्बोधन किया गया है।

७८७. पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥१॥[2]

पदार्थ—हे सोम ! ज्ञान को प्रेरित करने वाले परमात्मा और आचार्य ! **पवमानस्य** हृदय को पवित्र करने वाले, तथा **पवित्रम्** पवित्र हृदय को **अभ्युन्दतः** आनन्दरस वा विद्यारस से भिगोने वाले **ते** आपकी **सखित्वम्** मित्रता को, हम **आ वृणीमहे** स्वीकार करते हैं ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर उपासकों के और आचार्य शिष्यों के हृदय को पवित्र करके उसमें आनन्दरस वा विद्यारस को सींचते हैं ॥१॥

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं को सम्बोधन है ।

७८८. ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृडय ॥२॥[3]

पदार्थ—हे **सोम** ज्ञान के प्रेरक परमात्मन् वा आचार्य ! **ये ते** जो आपकी **ऊर्मयः** आनन्दरस और ज्ञानरस की लहरें **धारया** धारारूप से **पवित्रम्** पवित्र हृदय को **अभि** लक्ष्य करके **क्षरन्ति** बहती हैं , **तेभिः** उनसे **नः** हमें **मृडय** सुखी कीजिए ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर स्तोताओं को आनन्दरस की लहरों से और आचार्य शिष्यों को ज्ञानरस की लहरों से तरंगित करते हैं ॥२॥

---

१. ऋ० ९।६५।५।
२. ऋ० ९।६१।४।
३. ऋ० ९।६१।५।

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं से प्रार्थना की गयी है ।

७८९. स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ।।३।।[1]

पदार्थ—हे **सोम** परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर वा आचार्य ! **ईशानः** समर्थ **सः** वह प्रसिद्ध आप **नः** हमें **पुनानः** पवित्र अन्तःकरण वाला करते हुए **विश्वतः** सब ओर से **रयिम्** आध्यात्मिक तथा भौतिक ऐश्वर्य को, और **वीरवतीम्** वीरतायुक्त **इषम्** प्रगति को **आ भर** प्रदान कीजिए ।।३।।

भावार्थ—जगदीश्वर और आचार्य से सत्प्रेरणा प्राप्त करके पवित्र हृदय वाले होकर मनुष्य महान् उन्नति कर सकते हैं ।।३।।

इस खण्ड में जगदीश्वर, आचार्य और राजा के गुण-कर्म आदि का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।

तृतीय अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।

।।६।। अथ 'अग्निं दूतं' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ३ पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है । यहां आचार्य, राजा और भौतिक अग्नि के पक्ष में व्याख्या करते हैं ।

७९०. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।।१।।[2]

पदार्थ—प्रथम आचार्य के पक्ष में । हम **होतारम्** विद्या और आचार के दाता, **विश्ववेदसम्** सम्पूर्ण वाङ्मय के ज्ञाता, **अस्य** इस किये जाते हुए **यज्ञस्य** विद्या-यज्ञ के **सुक्रतुम्** सुकर्ता, **दूतम्** दुर्गुण, दुर्व्यसन, प्रमाद, आलस्य, दुःख आदि को संतप्त करने वाले **अग्निम्** तेजस्वी, कर्मनिष्ठ, अग्रनेता आचार्य को **वृणीमहे** गुरुरूप से वरते हैं ।।

द्वितीय राजा के पक्ष में । हम **होतारम्** सुराज्य-व्यवस्था से प्रजाओं को सुख देने वाले, **विश्ववेदसम्** सम्पूर्ण राजनीतिविज्ञान के ज्ञाता, **अस्य** इस किये जाते हुए **यज्ञस्य** राष्ट्र-यज्ञ के **सुक्रतुम्** सुकर्ता, **दूतम्** शत्रुओं तथा भ्रष्टाचारियों के संतापक, **अग्निम्** अग्रनेता, कर्मठ, सुयोग्य जन को **वृणीमहे** प्रजा के बीच से राजारूप में चुनते हैं ।

तृतीय भौतिक अग्नि के पक्ष में । हम शिल्पविद्या के ज्ञाता विद्वान् लोग **होतारम्** यानों और यन्त्रों में वेगादि गुण को देने वाले, **विश्ववेदसम्** सब सुख के साधन जिससे प्राप्त होते हैं ऐसे, **अस्य** इस किये जाते हुए **यज्ञस्य** शिल्पयज्ञ के **सुक्रतुम्** सुसम्पादन में साधनभूत, **दूतम्** यन्त्रकलाओं को गति देने वाले **अग्निम्** विद्युत् को **वृणीमहे** शिल्पक्रियाओं में प्रयुक्त करते हैं ।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है ।।१।।

---

१. ऋ० ९।६१।१।

२. ऋ० १।१२।१, साम० ३, अथ० २०।१०१।१ ।

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जगदीश्वर की उपासना से शुभ प्रेरणा पाकर, सुयोग्य, उत्तम शिक्षा देने वाले आचार्य को वरकर, सब विद्याएं पढ़कर, सदाचार को स्वीकार करके, विद्युद्-विद्या से शिल्पविद्या की उन्नति द्वारा भू-यान, जल-यान और अन्तरिक्ष-यानों को तथा तरह-तरह के यन्त्रों को बना कर राष्ट्र की उन्नति करें ।।१।।

अगले मन्त्र में विविध अग्नियों का आह्वान है।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
७९१. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ।।२।। [1]

पदार्थ—**अग्निम् अग्निम्** प्रत्येक अग्नि को —परमात्माग्नि को, आत्माग्नि को, जाठराग्नि को, यज्ञाग्नि को, शिल्पाग्नि को, आचार्याग्नि को, राजाग्नि को **हवीमभिः** हवियों के साथ, मनुष्य **सदा** हमेशा **हवन्त** पुकारें, स्वीकार करें । कैसे अग्नि को ? **विश्पतिम्** जो प्रजाओं का पालक, **हव्यवाहम्** दातव्य वस्तुओं को या सद्गुण, विद्या आदि को प्राप्त कराने वाला, तथा **पुरुप्रियम्** बहुत प्रिय अथवा बहुतों का प्रिय है ।।२।।

भावार्थ—आराधना किया हुआ परमात्माग्नि उपासक के आत्मसमर्पण को स्वीकार करके उसे भद्र गुण-कर्म-स्वभाव प्रदान करता है । उद्बोधन दिया गया आत्माग्नि मन, आंख आदि ज्ञानसाधनों से ज्ञान को स्वीकार करके मनुष्य को बल देता है । जाठराग्नि भोज्य, पेय आदि हवि को स्वीकार करके उसे रस-रक्त आदि के रूप में परिणत करता है । यजमान से होमा हुआ यज्ञाग्नि हवियों को स्वीकार करके वायु के माध्यम से आरोग्यकारी सुगन्ध को इधर-उधर ले जाता है । यान-यन्त्र आदि में प्रयुक्त विद्युत्-रूप अग्नि विमानादि यानों को स्थानान्तर में पहुंचाता है और यन्त्र-कलाओं का संचालन कर विविध पदार्थों के निर्माण में साधन बनता है । आचार्यरूप अग्नि समित्पाणि शिष्यों के समर्पण को स्वीकार करके उन्हें विद्या और सदाचार ग्रहण कराता है । राजारूप अग्नि प्रजाओं से राजकर स्वीकार करके प्रजाओं को सुख देता है । इसलिए सबको चाहिए कि इन अग्नियों का व्यवहार में यथायोग्य प्रयोग करें ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा, आचार्य और राजा को सम्बोधन है ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
७९२. अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ।।३।। [2]

पदार्थ—हे **अग्ने** अग्रनायक तेजस्वी परमात्मन्, आचार्य और राजन् ! **वृक्तबर्हिषे** उपासना-यज्ञ, विद्या-यज्ञ और राष्ट्रसेवा-यज्ञ के हेतु जिसने आसन बिछा लिया है ऐसे मनुष्य के लिए **जज्ञानः** प्रकट होते हुए अर्थात् अपने दर्शन देते हुए आप **इह** इस उपासना-यज्ञ, विद्या-यज्ञ और राष्ट्र-यज्ञ में **देवान्** दिव्यगुणों को, विद्वानों को और राष्ट्रसेवकों को **आवह** उत्पन्न कीजिए । आप **होता** सुख, संपत्ति, विद्या, सदाचार आदि के दाता, और **नः** हमारे **ईड्यः** स्तुति-योग्य **असि** हो ।।३।।

---

१. ऋ० १।१२।२।
२. ऋ० १।१२।३।

भावार्थ—जैसे जगदीश्वर उपासना-यज्ञ में स्तोताओं के हृदय में दिव्यगुण उत्पन्न करता है, वैसे ही आचार्य विद्या-यज्ञ में विद्वान् जनों को तथा राजा राष्ट्र-यज्ञ में राष्ट्र-सेवकों को उत्पन्न करे ।।३।।

।।७।। अथ 'मित्रं वयं' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः । **देवते** मित्रावरुणौ । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

अगले मन्त्र में प्राण-उदान तथा ब्रह्म-क्षत्र विषयों का वर्णन है ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

७९३. मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । या जाता पूतदक्षसा ।।१।।[1]

पदार्थ—**वयम्** हम लोग **सोमपीतये** यश की रक्षा के लिए **मित्रम्** बाहर और अन्दर स्थित जीवन-हेतु प्राण को अथवा ब्रह्म-बल को, **वरुणम्** ऊर्ध्वगति तथा बल के हेतु उदान को अथवा क्षत्र-बल को **हवामहे** पुकारते हैं, ग्रहण करते हैं, **या** जो **पूतदक्षसा** पवित्र बल वाले अथवा बल को पवित्र करने वाले **जाता** हुए हैं ।।१।।

भावार्थ—सब लोगों को चाहिए कि शरीर में प्राणनक्रिया के हेतु प्राण को और ऊर्ध्वगति के हेतु उदान को तथा राष्ट्र में ब्रह्म-बल और क्षत्र-बल को बढ़ाकर शरीर तथा राष्ट्र के स्वास्थ्य को उन्नत करें ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय वर्णित है।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १र २र

७९४. ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ।।२।।[2]

पदार्थ—**प्रथम** प्राण-उदान के पक्ष में । **यौ** जो **ऋतेन** प्राण-क्रिया एवं उदान-क्रिया रूप सत्य व्यापार से **ऋतावृधौ** सत्यक्रियायुक्त मनोमय एवं विज्ञानमय कोशों को बढ़ाने वाले, **ऋतस्य** ऋतम्भरा प्रज्ञा, एवं **ज्योतिषः** ज्योतिष्मती वृत्ति के **पती** रक्षक हैं, **ता** उन **मित्रावरुणा** प्राण-उदान को, मैं **हुवे** पुकारता हूं, स्वस्थरूप से शरीर में प्रवृत्त करता हूं ।।

द्वितीय ब्रह्म-क्षत्र के पक्ष में । **यौ** जो **ऋतेन** सत्य ज्ञान और सत्य क्षात्र-बल से **ऋतावृधौ** सत्यमय राष्ट्र को बढ़ाने वाले, और **ऋतस्य ज्योतिषः** सत्यरूप ज्योति के **पती** रक्षक हैं, **ता** उन **मित्रावरुणा** ब्राह्मण और क्षत्रियों को, मैं **हुवे** पुकारता हूं ।।२।।

भावार्थ—जैसे प्राण और उदान से शरीर का स्वास्थ्य, वैसे ही ब्राह्मण और क्षत्रियों से राष्ट्र का स्वास्थ्य चिरस्थायी होता है ।।२।।

अगले मन्त्र में भी वही विषय है।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ १ २ ३ १ २

७९५. वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ।।३।।[3]

---

१. ऋ० १।२३।४ 'जज्ञाना पूतदक्षसा' इति पाठः ।

२. ऋ० १।२३।५।

३. ऋ० १।२३।६।

पदार्थ—वरुणः शरीर में उदान और राष्ट्र में क्षत्रिय, **मित्रः** शरीर में प्राण और राष्ट्र में ब्राह्मण **विश्वाभिः** सब **ऊतिभिः** रक्षाओं से **प्राविता** हमारे प्रकृष्ट रूप से रक्षक **भुवत्** होवें । साथ ही **नः** हमें **सुराधसः** उत्तम धन से युक्त तथा उत्तम सिद्धि वाला **करताम्** करें ।।३।।

भावार्थः—प्राण-उदान द्वारा शरीर में स्वास्थ्यरूप तथा योगसिद्धिरूप धन को और ब्राह्मण-क्षत्रिय द्वारा राष्ट्र में विद्या, चक्रवर्ती राज्य आदि धन को सब प्राप्त करें ।।३।।

।।८।। अथ 'इन्द्रमिद् गाथिनो' इत्यादिकस्याष्टमस्य चतुर्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १९८ क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात की जा चुकी है । यहां जीवात्मा का विषय कहा जा रहा है ।

२ ३ २ ३ १ २ ३१२ २२३ १ २३ १ २ २ ३ १ २
७९६. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ।।१।।[1]

पदार्थ— इन्द्रम् देह के अधिष्ठाता, काम-क्रोध आदि शत्रुओं को पराजित करने वाले वीर जीवात्मा की **इत्** निश्चय ही **गाथिनः** गायक लोग **बृहत्** बहुत अधिक **अनूषत** स्तुति करते हैं। **इन्द्रम्** जीवात्मा की **अर्किणः** मन्त्रपाठी लोग **अर्कैः** वेदमन्त्रों से **अनूषत** स्तुति करते हैं । **इन्द्रम्** उसी जीवात्मा की **वाणीः** अन्य वाणियां **अनूषत** स्तुति करती हैं ।।१।।

भावार्थ— जीवात्मा ही देहराज्य का सम्राट् है, जो मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदियों को यथा-स्थान बैठाकर देहराज्य का संचालन करता है ।।१।।

द्वितीय ऋचा पूर्वार्चिक में ५९७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां जीवात्मा का विषय कहते हैं ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३ १ २३ १ २
७९७. इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ।।२।।[2]

पदार्थ— इन्द्रः इत् देह का अधिष्ठाता जीवात्मा ही **वचोयुजा** कहते ही जुड़ जाने वाले **हर्योः** ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ों का **सचा** एक साथ **आ सम्मिश्लः** ज्ञान और कर्मों में जोड़ने वाला है । **इन्द्रः** वह जीवात्मा **वज्री** वाणी रूप वज्र का धारण करने वाला और **हिरण्ययः** प्राणमय, ज्योतिर्मय, तथा कीर्तिमय है ।।२।।

भावार्थ —जिस जीवात्मा की प्रेरणा से ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां अपने-अपने व्यापारों में नियुक्त होती हैं, जो जीवात्मा वाणीरूप वज्र से कुतार्किकों के कुतर्कों का खण्डन करता है, जो प्राणों का अधिष्ठाता, तेजस्वी और यशस्वी है, उसे उद्बोधन देकर सब लोग अपने अभीष्टों को सिद्ध करें ।।२।।

तृतीय ऋचा की पूर्वार्चिक में ५९८ क्रमांक पर परमेश्वर और राजा के पक्ष में व्याख्या की गयी थी । यहां जीवात्मा का विषय कहते हैं ।

२ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
७९८. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ।।३।।[3]

---

१. ऋ० १।७।१, साम० १९८।

२. ऋ० १।७।२, साम० ५९७, अथ० २०।३८।५, ४७।५, ७०।८ ।

३. ऋ० १।७।४, साम० ५९८, अथ० २०।७०।१०।

पदार्थ— हे **इन्द्र** शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मन् ! **उग्रः** वीर तू **वाजेषु** संग्रामों में **सहस्रप्रधनेषु च** तथा सहस्रों प्रकृष्ट धन जिनमें प्राप्त होते हैं ऐसे चक्रवर्ती-राज्य-साधक महायुद्धों में **उग्राभिः** अत्यन्त उत्कृष्ट **ऊतिभिः** रक्षाओं से **नः** हमारी **रक्ष** रक्षा कर ॥३॥

भावार्थ— मनुष्य का आत्मा यदि बलवान् है तो उसे कोई भी पराजित नहीं कर सकता ॥३॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा के भी अधिष्ठाता जगदीश्वर की महिमा का वर्णन है ।

७९९. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥४॥[1]

पदार्थ— इन्द्रः सारे संसार को उत्पन्न करने वाले परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर ने **दीर्घाय** दीर्घ **चक्षसे** प्रकाश के लिए **दिवि** द्युलोक में **सूर्यम्** सूर्य को **आरोहयत्** चढ़ाया हुआ है । वही **गोभिः** सूर्य-किरणों से **अद्रिम्** बादल को **वि ऐरयत्** विकंपित करता है, बरसाता है ॥४॥

भावार्थ— जगदीश्वर की ही यह महिमा है कि वह सूर्य को रच कर उसके द्वारा पदार्थों को प्रकाशित करता, दिन-रात-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-वर्ष के चक्र को चलाता, बादल बनाता, वर्षा करता और प्राण-प्रदान आदि कार्य करता है ॥४॥

॥९॥ अथ 'इन्द्रे अग्ना' इत्यादिकस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवते** इन्द्राग्नी । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ॥

प्रथम मन्त्र में इन्द्र और अग्नि के नाम से जीवात्मा-परमात्मा का विषय वर्णित है ।

८००. इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥१॥[2]

पदार्थ— अवस्यवः रक्षा के इच्छुक, हम लोग **इन्द्रे** जीवात्मा को लक्ष्य करके **बृहत्** महान् **नमः** नमस्कार को, **सुवृक्तिम्** निर्दोष क्रिया को और **धिया** ध्यान तथा बुद्धि के साथ **धेनाः** स्तुतिरूप वाणियों को **आ ईरयामहे** प्रेरित करते हैं ॥१॥

भावार्थ— परमात्मा की उपासना के लिए और जीवात्मा को उद्बोधन देने के लिए नमस्कार, गुणवर्णनरूप स्तुति और तदनुरूप क्रिया निरन्तर अपेक्षित होती है । पुरुषार्थ के बिना केवल नमस्कार से या स्तुति से कुछ भी नहीं सिद्ध होता ॥१॥

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय का वर्णन है ।

८०१. ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥२॥[3]

पदार्थ— ता हि उन दोनों इन्द्र और अग्नि अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा की **इत्था** सत्यभाव से **शश्वन्तः** बहुत से, **सबाधः** बाधाओं से पीड़ित **विप्रासः** विप्र जन **ऊतये** रक्षा के लिए, और **वाजसातये** बलप्राप्ति के लिए **ईडते** स्तुति करते हैं, अर्थात् उनके गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन करते हैं ॥२॥

---

१. ऋ० १।७।३ ।

२. ऋ० ७।९४।४।

३. ऋ० ७।९४।५।

भावार्थ– सांसारिक दुःखों को दूर करने के लिए तथा विपत्तियों में रक्षा की प्राप्ति और बल की प्राप्ति के लिए जगदीश्वर की उपासना करनी चाहिए और जीवात्मा को उद्बोधन देना चाहिए ।।२।।

अगले मन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा का आह्वान किया गया है ।

८०२. ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ।।३।।[1]

पदार्थ– **ता** उन **वाम्** तुम दोनों जीवात्मा और परमात्मा को **विपन्युवः** विशेष स्तुति से युक्त, **प्रयस्वन्तः** पुरुषार्थ से युक्त, **सनिष्यन्तः** पाने के इच्छुक हम श्रद्धालु लोग **मेधसाता** संगम की प्राप्ति के निमित्त **गीर्भिः** वेदवाणियों से **हवामहे** पुकारते हैं ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा और जीवात्मा को अनुकूल करने के लिए वाणी से स्तुति, शरीर से प्रयत्न और मन से श्रद्धा तीनों अपेक्षित होते हैं ।।३।।

इस खण्ड में विविध अग्नियों का, आचार्य और राजा का, प्राण-अपान का, ब्रह्म-क्षत्र का और जीवात्मा-परमात्मा का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

तृतीय अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त

।।१०।। अथ 'वृषा पवस्व' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भृगुर्वारुणिर्जमदग्नि-भार्गवो वा । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४६९ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या दी गयी थी । यहां आचार्य का विषय प्रदर्शित किया जा रहा है ।

८०३. वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ।।१।।[2]

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् पवित्र करने वाले आचार्य ! **वृषा** विद्या के वर्षक आप **धारया** ज्ञान-धारा से **पवस्व** शिष्यों को पवित्र कीजिए । **मरुत्वते** प्राणायाम का अभ्यास करने वाले शिष्य के लिए **मत्सरः** ब्रह्मानन्द के स्रावक होइए। साथ ही **ओजसा** विद्या-बल, सदाचार-बल और ब्रह्मचर्य-बल से **विश्वा** सब शिष्यों को **दधानः** धारण कीजिए ।।१।।

भावार्थ– वही आचार्य होता है जो शिष्यों को विद्या की धाराओं से स्नान कराता हुआ, उनका पिता के समान पालन करता हुआ उन्हें महान् पण्डित, तेजस्वी, ब्रह्मचारी, ब्रह्मानन्द में मग्न तथा सदाचारी बनाये ।।१।।

इस प्रकार ब्रह्मविद्या में आचार्य का योगदान कहकर अब परमात्मा का विषय वर्णित करते हैं ।

८०४. तं त्वा धर्त्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ।।२।।[3]

१. ऋ० ७।९४।६।

२. ऋ० ९।६५।१०, साम० ४६९।

३. ऋ० ९।६५।११ ।

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रकर्त्ता, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ! **ओण्योः** द्युलोक और भूलोक को **धर्तारम्** धारण करने वाले, **स्वर्दृशम्** सूर्य वा मोक्षानन्द का दर्शन कराने वाले, **वाजिनम्** बलवान् **तं त्वा** उस प्रसिद्ध तुझको, मैं **वाजेषु** बलों के निमित्त से **हिन्वे** प्रसन्न करता हूं ।।२।।

भावार्थ– जो जगदीश्वर सूर्य, भूमि आदि को धारण करता है वह विपत्तियों में बल-प्रदान द्वारा अपने उपासकों को भी क्यों न धारण करेगा ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है ।

८०५. अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ।।३।।[1]

पदार्थ– हे पवमान सोम ! हे पवित्रकर्त्ता परमात्मन् ! **विपा** मुझ मेधावी के द्वारा **चित्तः** जाने हुए **हरिः** दुःखों एवं पापों के हर्ता आप **अया** वेगवती **अनया** इस **धारया** आनन्द-धारा से **पवस्व** मुझ स्तोता को पवित्र कीजिए । **युजम्** अपने सखा मुझको **वाजेषु** जीवनसंग्रामों में **चोदय** विजय के लिए प्रेरित कीजिए ।।३।।

भावार्थ– स्तुति किया गया परमात्मा स्तोताओं को आनन्द-धाराओं से सींचकर, बल देकर देवासुरसंग्रामों में विजयी करता है ।।३।।

।।११।। अथ 'वृषा शोणो' इत्यादिकस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** उपमन्युर्वासिष्ठः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

प्रथम मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मा ही मेघों को गर्जाता है ।

८०६. वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ।।१।।[2]

पदार्थ– हे सोम परमात्मन् ! **वृषा** वर्षा करने वाले, **शोणः** क्रियाशील आप **गाः** विद्युद्वाणियों को **अभि कनिक्रदत्** गर्जाते हुए, तथा उससे **पृथिवीम्** भूमि को **उत** और **द्याम्** आकाश को **नदयन्** नादयुक्त करते हुए **एषि** व्यवहार करते हो । उस समय ऐसा लगता है कि **आजौ** युद्ध में **इन्द्रस्य इव** मानों सेनापति का **वग्नुः** दुन्दुभि आदि का नाद **आ शृण्वे** सुनाई दे रहा हो । आप ही **इमाम्** इस **वाचम्** मनुष्यों से उच्चारण की जाने वाली व्यक्त वाणी को **प्रचोदयन्** प्रेरित करते हुए **आ अर्षसि** आते हो ।।१।।

इस मन्त्र में उत्प्रेक्षालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जल-वाष्पों का ऊपर जाना, मेघघटाओं का निर्माण, विद्युत् का चमकना, मेघों का गरजना इत्यादि सभी कार्य सूर्य, पवन आदि के माध्यम से परमेश्वर ही करता है । इसके करने में हम जैसों का सामर्थ्य नहीं है । वही मनुष्यों को व्यक्त वाणी प्रदान करता है ।।१।।

---

१. ऋ० ९।६५।१२ ।
२. ऋ० ९।९७।१३, 'नदयन्नेति' 'प्रचेतयन्नर्षति' इति भेदः ।

अगले मन्त्र में जीवात्मा में ब्रह्मानन्दरस का प्रवाह वर्णित हैं ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
८०७. रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ।।२।।[1]

पदार्थ– हे **पवमान सोम** सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा, शुभगुणों के प्रेरक, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ! **रसाय्यः** रस से पूर्ण, **पयसा** रस से **पिन्वमानः** मुझ उपासक के हृदय को सींचते हुए आप **मधुमन्तम्** मधुर **अंशुम्** आनन्द को **ईरयन्** प्रेरित करते हुए **एषि** मुझे प्राप्त होते हो । **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए **परिषिच्यमानः** झरते हुए आप, वहां **सन्तनिम्** विस्तार को **कृण्वन्** प्राप्त करते हुए **एषि** व्याप्त होते हो ।।२।।

भावार्थ– आनन्दरस से पूर्ण परमात्मा की आनन्दरस की धारा से सिंचे हुए स्तोताओं के हृदय सरस हो जाते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय वर्णित है ।

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
८०८. एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् वधस्नुम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ।।३।।[2]

पदार्थ– हे **सोम** रस के भण्डार परमात्मन् ! **उदग्राभस्य** जल में निवास करने वाले ग्राह के समान हिंसक कामादि शत्रु के **वधस्नुम्** वज्रशिखर को अर्थात् उसके हिंसकव्यापार को, **नमयन्** नीचे करते हुए, दूर करते हुए **मदिरः** आनन्दजनक आप **मदाय** आनन्द के लिए **एव** यथोचित रूप से **पवस्व** प्रसुत होवो, बहो । और **सिक्तः** हृदय में सिंचे हुए आप **रुशन्तं वर्णम्** तेजस्वी रूप को **परि भरमाणः** धारण करते हुए **गव्युः** दिव्य प्रकाश की किरणें प्रदान करना चाहते हुए **नः** हमें **परि अर्ष** चारों ओर से प्राप्त होवो ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से दुर्विचार नष्ट होते हैं, सद्विचार तथा सद्गुण उत्पन्न होते हैं, दिव्य ज्योति चमकने लगती है और आनन्दरस की धाराएं उपासक को आप्लुत कर देती हैं ।।३।।

इस खण्ड में ब्रह्मविद्या में आचार्य का योगदान कहकर परमात्मा के पास से जीवात्मा में ब्रह्मानन्द का प्रवाह वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

तृतीय अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।।

।।१२।। अथ 'त्वामिद्धि' इत्यादिकस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शंयुर्बार्हस्पत्यः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

---

१. ऋ० ९।९७।१४ ।

२. ऋ० ९।९७।१५, 'वघ्रस्नैः' इति भेदः ।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३४ क्रमांक पर परमेश्वर और राजा के पक्ष में व्याख्यात हुई थी। यहां परमात्मा और जीवात्मा का आह्वान है।

८०९. त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **इन्द्र** परमात्मन् वा जीवात्मन्! **कारवः** कर्मशूर हम **वाजस्य** संग्राम की **सातौ** प्राप्ति होने पर **त्वाम् इत् हि** तुझे ही **हवामहे** पुकारते या उद्‌बोधन देते हैं। **वृत्रेषु** शत्रुओं वा विघ्नों के उमड़ने पर **सत्पतिम्** सज्जनों के पालनकर्ता **त्वाम्** तुझे ही पुकारते या उद्‌बोधन देते हैं। **नरः** सभी मनुष्य **काष्ठासु** दिशाओं में **अर्वतः** हिंसक शत्रु से रक्षार्थ **त्वाम्** तुझे ही पुकारते या उद्‌बोधन देते हैं ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा की कृपा से और आत्मोद्‌बोधन से सभी विघ्न और सभी शत्रु क्षण भर में पराजित किये जा सकते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और जीवात्मा को सम्बोधन है।

८१०. स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ।।२।।[2]

पदार्थ– हे **चित्र** अद्‌भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाले, **वज्रहस्त** दण्डसामर्थ्ययुक्त अथवा शस्त्रास्त्र हाथ में धारण करने वाले, **अद्रिवः** शत्रुओं से विदारण न किये जा सकने वाले **इन्द्र** परमैश्वर्यवान् परमात्मन् वा जीवात्मन्! **स्तवानः** स्तुति या गुण-वर्णन किया जाता हुआ, **धृष्णुया** धर्षक बल से **महः** महान् **सः** वह प्रसिद्ध **त्वम्** तू **नः** हमें **रथ्यम्** शरीर-रथ के वाहक **गाम्** प्राण-बल को तथा **अश्वम्** इन्द्रिय-बल को **संकिर** प्रदान कर, **न** जैसे **जिग्युषे** संग्राम को जीत लेने वाले योद्धाजन को **सत्रा** सदा **वाजम्** अन्न, धन आदि का पुरस्कार राजा आदि प्रदान करते हैं ।।२।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है।

भावार्थ– आध्यात्मिक विजय के लिए और बाह्य विजय के लिए भी आत्मोद्‌बोधन के साथ परमात्मा की भी सहायता अपेक्षित होती है ।।२।।

।।१३।। अथ 'अभि प्र वः' इत्यादिकस्य त्रगोदशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रस्कण्वः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३५ क्रमांक पर परमेश्वर की अर्चना के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहां आचार्य का विषय वर्णित करते हैं।

८११. अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ६।४६।१, अथ० २०।९८।१, उभयत्र 'साता' इति पाठः। य० २७।३७। साम० २३४ ऋषिः भरद्वाजः बार्हस्पत्यः ।।

२. ऋ० ६।४६।२।

३. ऋ० ८।४९।१, साम० २३५, अथ० २०।५१।१।

पदार्थ– हे छात्रों ! **वः** तुम **सुराधसम्** उत्तम सिद्धि देने वाले **इन्द्रम्** तपस्यारूप ऐश्वर्य से युक्त आचार्य की **अर्च** अर्चना करो, अर्थात् समित्पाणि होकर उसकी शरण में जाकर उसकी सेवा करो, **यथा विदे** जिससे वह तुम्हारी विद्याग्रहण की योग्यता को जाने । कैसे आचार्य की ? **यः** जो **पुरूवसुः** बहुत विद्यारूप धन वाला, **मघवा** विद्या का दान करने वाला आचार्य **जरितृभ्यः** स्तोता छात्रों को **सहस्रेण इव** मानों हजार मुखों से **शिक्षति** शिक्षा देता है ।।१।।

इस मन्त्र में 'मानो हजार मुखों से' में उत्प्रेक्षालंकार है ।।१।।

भावार्थ– आचार्य के पास से ही लोकविद्या और ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है । इस रूप में उसका महत्त्व जानकर कृतज्ञतापूर्वक उसका सबको सम्मान करना चाहिए ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य दोनों का वर्णन है ।

८१२. शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ।।२।।[1]

पदार्थ– यह इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा वा विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य **दाशुषे** आत्मसमर्पण करने वाले उपासक वा शिष्य के हितार्थ **धृष्णुया** अपने धर्षक गुण से **शतानीका इव** सौ शत्रुसेनाओं के तुल्य **वृत्राणि** उपासक या शिष्य के दोषों पर **प्र जिगाति** आक्रमण करता है, और **हन्ति** उन्हें नष्ट कर देता है । **पुरुभोजसः** बहुत पालन करने वाले **अस्य** इस परमात्मा वा आचार्य के **दत्राणि** दान **पिन्विरे** उपासक वा शिष्य के प्रति प्रवाहित होते हैं, **गिरेः इव रसाः** जैसे पर्वत के जल प्रवाहित हुआ करते हैं ।।२।।

इस मन्त्र में दो उपमाओं की संसृष्टि है ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा वा आचार्य के प्रति समर्पणभाव से पहुंचकर उनकी सहायता से दोषों को दूर कर आनन्द-रस और विद्या-रस प्राप्त करने चाहिएं ।।२।।

।।१४।। अथ 'त्वामिदा' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नृमेध आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३०२ क्रमांक पर परमेश्वर और राजा के पक्ष में की गयी थी । यहां विद्वान् का विषय वर्णित किया जा रहा है ।

८१३. त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ।।१।।[2]

पदार्थ– हे **वज्रिन्** दोषों का वर्णन करने वाले विद्वन् ! **त्वाम् इत्** आपको ही **भूर्णयः** वैभवशाली **नरः** लोग **इदा** इस काल में और **ह्यः** अतीत काल में **अपीप्यन्** उपहार आदि प्रदान कर बढ़ाते हैं और

---

१. ऋ० ८।४९।२, अथ० २०।५१।२ ।
२. ऋ० ८।९९।१, 'स्तोमवाहसामिह' इति पाठः, साम० ३०२ ।

बढ़ाते रहे हैं । सः वह, हे **इन्द्र** विद्या के ऐश्वर्य से युक्त विद्वन् ! **स्तोमवाहसः** आपके प्रति स्तोत्र या पदार्थसमूह पहुंचाने वाले हम लोगों को, अर्थात् हमारे निवेदन को **इह** यहां **श्रुधि** आप सुनिए, और सुनकर हमारा आतिथ्य ग्रहण करने तथा हमें उपदेश देने के लिए **स्वसरम्** हमारे घर **उप आगहि** आइए ।।१।।

भावार्थ– सब उन्नति चाहने वाले लोगों को चाहिए कि विद्वानों का सत्कार करें और विद्वानों को भी चाहिए कि अध्ययन की हुई सब विद्याएं उन्हें दें ।।१।।

अगले मन्त्र में गुरुओं के भी गुरु परमात्मा की स्तुति है ।

८१४. मत्स्वा सुशिप्रिन् हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ।।२।।[1]

पदार्थ– हे **सुशिप्रिन्** सर्वान्तर्यामी, **हरिवः** आकर्षणशील सूर्य, चन्द्र आदि लोकों के स्वामी परमात्मन् ! आप **मत्स्व** हमें आनन्दित कीजिए । **तम्** उन आनन्दप्रद आपसे हम **ईमहे** याचना करते हैं । **वेधसः** मेधावी उपासक **त्वया** आप से **भूषन्ति** स्वयं को अलंकृत करते हैं । हे **उक्थ्य** प्रशंसनीय, **गिर्वणः** वाणियों से संभजनीय **इन्द्र** जगदीश्वर ! **तव** आपके **श्रवांसि** यश **सुतेषु** आपके पुत्र मनुष्यों में **उपमानि** उपमान योग्य होते हैं, अर्थात् मनुष्यों के यश परमात्मा के यशों के समान उज्ज्वल हों इस प्रकार उपमान बनते हैं ।।२।।

भावार्थ– हृदय में परमात्मा को धारण करने से ही लोग अलंकृत होते हैं, शरीर के अंगों में कटक, कुण्डल, स्वर्णहार आदि धारण करने से नहीं ।।२।।

इस खण्ड में विद्वानों का और आचार्य का ब्रह्मविद्या में योगदान कहकर जीवात्मा और परमात्मा के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

तृतीय अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

।।१५।। अथ 'यस्ते मदो' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अमहीयुराङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४७० क्रमांक पर परमात्मा के आनन्दरस के विषय में व्याख्यात हुई थी । यहां परमेश्वर और आचार्य से प्रार्थना की गयी है ।

८१५. यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ।।१।।[2]

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्त्ता आनन्दरसागार परमात्मन् वा ज्ञानरसागार आचार्य ! **यः ते** जो आपका **वरेण्यः** वरणीय, **मदः** उत्साहप्रद आनन्द-रस वा ज्ञानरस है, **तेन अन्धसा** उस आनन्द-रस वा ज्ञान रस से **पवस्व** हम उपासकों वा शिष्यों को पवित्र करो । और, आप **देवावीः** दिव्यगुणप्राप्ति कराने वाले, तथा **अघशंसहा** पापप्रशंसक दुर्विचारों का विनाश करने वाले, होवो ।।१।।

---

१. ऋ० ८।९९।२ 'मत्सवा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः । तव श्रवांस्युप्रमान्युक्थ्या' इति पाठः ।
२. ऋ० ९।६१।१९, साम० ४७० ।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर उपासकों को आनन्दरस प्रदान करता, दिव्य गुण प्राप्त कराता और उनके दुर्विचारों को नष्ट करता है, वैसे ही शिष्यों को विद्या देना, उनका आनन्द बढ़ाना, उनके दोषों को नष्ट करना और उनमें सद्गुणों का आरोपण करना गुरुओं का कर्त्तव्य है ॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर और आचार्य का वर्णन है ।

८१६. जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषातिरश्वसा असि ॥२॥[1]

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्त्ता सद्बुद्धिप्रेरक परमात्मन् वा आचार्य ! आप **आमित्रियम्** शत्रु से आने वाले **वृत्रम्** पाप के **जघ्निः** नष्ट करने वाले, **दिवेदिवे** प्रतिदिन **वाजम्** बल को **सस्निः** शुद्ध करने वाले, **गोषातिः** भूमियों, गायों वा वाणियों के दाता और **अश्वसाः** घोड़ों वा प्राणों के दाता **असि** हो ॥२॥

भावार्थ– जगदीश्वर के समान गुरु भी पाप आदियों का विनाशक, आत्मबल, मनोबल, बुद्धिबल, चित्तबल आदि को पवित्र करने वाला, समस्त वाङ्मय को पढ़ाने वाला और प्राणों को परिष्कृत करने वाला होवे ॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर और आचार्य से प्रार्थना की गयी है ।

८१७. सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥३॥[2]

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्त्ता, सद्गुणकर्मस्वभावप्रेरक परमात्मन् वा आचार्य ! **अरुषः** तेज से देदीप्यमान आप **सूपस्थाभिः धेनुभिः** भलीभांति उपस्थित तृप्तिप्रद स्तुतिवाणियों वा गायों से **न** इस समय **सम्मिश्लः** संमानित **भुवः** होवो । और, **श्येनः योनिं न** बाज पक्षी जैसे आवासवृक्ष पर अथवा सूर्य जैसे द्युलोकरूप घर में स्थित होता है, वैसे ही **श्येनः** प्रशंसनीय गति वाले आप **योनिम्** हृदय-मन्दिर वा गुरुकुलरूप गृह में **आसीदन्** निवास करने वाले **भुवः** होवो ॥३॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है॥३॥

भावार्थ– जैसे द्रोणकलश में स्थापित सोमरस गोदुग्ध के साथ मिश्रित कर संमानित किया जाता है, वैसे ही हृदय-गृह में स्थापित परमेश्वर का स्तुति-वाणियों से और गुरुकुल में स्थापित आचार्य का धेनुओं से संमान करना चाहिए ॥३॥

॥१६॥ अथ 'अयं पूषा' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नहुषो मानवः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ॥

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ५४६ पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्या की गयी थी । यहां आचार्य का विषय वर्णित है ।

८१८. अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥१॥[3]

---

१. ऋ० ९।६१।२०, 'गोषा उ अश्वसा असि' इति तृतीयः पादः ।

२. ऋ० ९।६१।२१, 'भुवः' इत्यत्र 'भव' इति पाठः ।

३. ऋ० ९।१०१।७, साम० ५४६ ।

पदार्थ— पूषा शारीरिक तथा आत्मिक पुष्टि का प्रदाता, **रयिः** विद्याधन से युक्त, **भगः** भजनीय, समित्पाणि शिष्यों से सेवनीय **अयं सोमः** यह सद्विद्याओं का प्रेरक आचार्य **पुनानः** शिष्यों को पवित्र करता हुआ **अर्षति** क्रियाशील होता है । **विश्वस्य भूमनः** समस्त विस्तृत ज्ञान का **पतिः** स्वामी यह आचार्य, ज्ञान-प्रदान द्वारा शिष्यों के सम्मुख **उभे रोदसी** आकाश-भूमि दोनों को **व्यख्यत्** प्रकाशित कर देता है । कहा भी है– ''आचार्य विस्तृत, गम्भीर इन दोनों द्यावापृथिवी को ब्रह्मचारी के सम्मुख घड़कर प्रकट कर देता है । उन्हें वह ब्रह्मचारी तप से अपने अन्दर धारण करता है । उसमें सब देव अनुकूल मन वाले हो जाते हैं (अथ० ११।५।८) ।।१।।

भावार्थ— विद्वान् आचार्य को चाहिए कि वह ब्रह्मचारियों को आकाश-भूमि दोनों के सूर्य, नक्षत्र, जल, वायु, विद्युत्, मेघ, नदी, समुद्र, ओषधि, वनस्पति, भूगर्भ आदि का ज्ञान और चारित्रिक शिक्षा देता हुआ उन्हें पवित्र करे ।।१।।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्दरसों का तथा गुरुओं का वर्णन है ।

८१९. समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ।।२।।[1]

पदार्थ— प्रथम ब्रह्मानन्द-रस के पक्ष में । **प्रियाः** परमेश्वर के प्रिय, **घृष्वयः** मानसिक संघर्ष में संलग्न **गावः** स्तोताजन **मदाय** आनन्द-प्राप्ति के लिए **सम् उ अनूषत** भलीभांति परमेश्वर की स्तुति करते हैं। उसकी स्तुति से प्राप्त **इन्दवः** दीप्त या सराबोर करने वाले **सोमासः** ब्रह्मानन्द-रस **पवमानासः** स्तोताओं को पवित्र करते हुए, उनके सम्मुख **पथः** कर्त्तव्य-मार्गों को **कृण्वते** स्पष्ट कर देते हैं ।।

द्वितीय गुरुओं के पक्ष में । **प्रियाः** प्रिय, मधुर, **घृष्वयः** घर्षण अर्थात् पुनः पुनः अभ्यास से उज्ज्वल **गावः** शिष्यों की वाणियां **मदाय** आनन्द-प्राप्ति के लिए **सम् उ अनूषत** गुरुओं की सम्यक् स्तुति करती हैं। वे **इन्दवः** ज्ञान से दीप्त **सोमासः** ज्ञानप्रेरक गुरूजन **पवमानासः** शिष्यों को पवित्र करते हुए, उनके सम्मुख **पथः** गन्तव्य मार्गों को **कृण्वते** स्पष्ट कर देते हैं ।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है ।।२।।

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा की और गुरुजनों की भली-भांति स्तुति करके आनन्द-रस तथा ज्ञान-रस को दुहकर उसके पान से स्वयं को पवित्र करके सन्मार्ग का अनुसरण करें ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य को कहा जा रहा है ।

८२०. य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ।।३।।[2]

---

१. ऋ० ९।१०१।८।

२. ऋ० ९।१०१।९, 'वनामहे' इत्यत्र 'वनामहै' इति पाठः ।

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रकर्त्ता परमात्मन् वा आचार्य **यः** जो आपका **ओजिष्ठः** अतिशय ओजस्वी आनन्दरस वा ज्ञानरस है **तम्** उस **श्रवाय्यम्** यश के हेतु रस को **आ भर** प्रदान कीजिए, **यः** जो आनन्द-रस या ज्ञान-रस **पञ्च चर्षणीः** पांच ज्ञान की साधन इन्द्रियों को या पांच प्राणों को **अभि** अभिव्याप्त कर लेवे, और **येन** जिस आनन्द-रस वा ज्ञान-रस से, हम **रयिम्** भौतिक और आध्यात्मिक धन को **वनामहे** प्राप्त करें ।।३।।

भावार्थ– जैसे परमात्मा अपने उपासक को ऐसा आनन्द प्रदान करता है जिससे वह दिव्य सम्पत्ति पा लेता है, वैसे ही गुरुओं को चाहिए कि वे विद्यार्थियों को वैसा ज्ञान देवें जिससे धन कमाना सुलभ हो ।।३।।

।।१७।। अथ 'वृषा मतीनां' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १, २ सिकता निवावरी, ३ पृष्णयोऽजाः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ५५९ पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है । यहां बहुत से सोमों का परिचय दिया जा रहा है ।

१ २   ३ १ २   ३ २उ   ३ १ २   ३ १र २र ३ २

८२१. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।

३ १र २र ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषिभिः ।।१।।[1]

पदार्थ– सोमः एक सोम **विचक्षणः** विद्वान् आचार्य है, जो **मतीनाम्** ज्ञानों का **वृषा** बरसाने वाला होता हुआ **पवते** शिष्यों को पवित्र करता है । द्वितीय सोम परमेश्वर है, जो **अह्नाम्** दिनों का, **उषसाम्** उषाओं का और **दिवः** सूर्य का **प्रतरीता** उत्तम रूप से तराने वाला अर्थात् व्यतीत कराने वाला है । तृतीय सोम चन्द्रमा है, जो **सिन्धूनाम्** समुद्रों का **प्राणा** बढ़ाने वाला होता है । चौथा सोम सोमौषधि का रस है, जो **कलशान्** द्रोणकलशों को **अचिक्रदत्** शब्दायमान करता है । पांचवां सोम ब्रह्मानन्द-रस है, जो **मनीषिभिः** मन से किये जाते हुए स्तोत्रों के साथ **इन्द्रस्य** जीवात्मा के **हार्दि** हृदय में **आ विशत्** प्रविष्ट होता है ।।१।।

भावार्थ– वेदों में सोम शब्द के बहुत से वाच्यार्थ होते हैं, जो प्रकरणानुसार वेदज्ञ विद्वानों को समझ लेने चाहिएं ।।१।।

अगले मंत्र में परमात्मारूप सोम का वर्णन है ।

३ १ २   ३ २ ३ १र २र३ २उ   ३ १ २

८२२. मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ असिष्यदत् ।

३ २ ३ १ २ ३२३ २ ३ २३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ।।२।।[2]

---

१. ऋ० ९।८६।१९ 'सोमो अह्नः' 'क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य' इति पाठः। साम० ५५९ । अथ० १८।४।५८ प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया इत्युत्तरार्द्धपाठः ।

२. ऋ० ९।८६।२० 'परि कोशाँ अचिक्रदत्' 'मधु क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे' इति पाठः ।

पदार्थ– पूर्व्यः श्रेष्ठ, **कविः** वेदकाव्य का कवि, क्रान्तद्रष्टा, मेधावी वह सोम परमेश्वर **पवते** हृदयों को पवित्र करता है । **मनीषिभिः** बुद्धिमान् **नृभिः** उपासक जनों से **यतः** ग्रहण किया हुआ, ध्यान किया गया वह **कोशान्** शरीरस्थ पंच कोशों में **परि असिष्यदत्** रस को प्रवाहित करता है । वह **त्रितस्य** ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों से युक्त उपासक के **नाम** यश को **जनयन्** उत्पन्न करता हुआ, **मधु** आनन्द को **क्षरन्** झराता हुआ **इन्द्रस्य** जीवात्मा के **सख्याय** सहयोग के लिए, उसके **वायुम्** प्राण को **वर्धयन्** बढ़ाता रहता है ॥२॥

भावार्थ– परमेश्वर उपासक को अपना सखा बनाकर उसके लिए दिव्य आनन्द-रूप मधु टपकाता रहता है ॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
८२३. अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३१ २ ३ १२ ३ २
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥३॥[1]

पदार्थ– अयम् इस **पुनानः** पवित्र करते हुए सोम ने, सर्वोत्पादक परमात्मा ने **उषसः** उषाओं को **अरोचयत्** चमकाया है । **अयम्** यह सोम, सर्वप्रेरक परमात्मा **सिन्धुभ्यः** नदियों के लिए **लोककृत्** यश करने वाला **अभवत् उ** हुआ है । **अयम्** यह **सोमः** रसागार परमात्मा **त्रिः सप्त** इक्कीस छन्दों से युक्त वेदवाणी रूप गौओं से **आशिरम्** ज्ञानरूप दुग्ध **दुदुहानः** दुहता हुआ **हृदे** उपासक के हृदय के लिए **मत्सरः** आनन्दजनक होता हुआ **चारु** सुन्दर रूप में **पवते** प्रवाहित हो रहा है ॥३॥

यहां एक सोमरूप कर्त्ता कारक से अनेक क्रियाओं का योग होने से दीपक अलंकार है ॥३॥

भावार्थ– परमात्मा ही सारे सृष्टि के कार्य का संचालन करता है, उसी ने हमें वेद-रूपिणी गाय दी है, वही स्तोता के हृदय में रस का संचार करता है ॥३॥

इस खण्ड में भी परमेश्वर, आचार्य तथा ब्रह्मानन्द-रस आदि का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ॥

तृतीय अध्याय में पञ्चम खण्ड समाप्त ।

॥१८॥ अथ 'एवा ह्यसि' इत्यादिकस्य अष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३२ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन है ।

३ १र २र ३ २३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
८२४. एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥१॥[2]

१. ऋ० ९।८६।२१, 'अरोचयदयं' इत्यत्र 'विरोचयदयं' इति पाठः ।
२. ऋ० ८।९२।२८, अथ० २०।६०।१ । साम० २३२ ऋषिः श्रुतकक्षः ।

पदार्थ— हे मेरे अन्तरात्मा ! तू **एव हि** सचमुच **वीरयुः** वीरों का प्रेमी **असि है, एव सचमुच, तू शूरः** शूर **उत** और **स्थिरः** विपत्तियों तथा युद्धों में अविचल रहने वाला है । **एव** सचमुच **ते** तेरा **मनः** मन **राध्यम्** सिद्धि प्राप्त करने योग्य है ।।१।।

भावार्थ— मनुष्य का आत्मा यदि अपनी शक्ति को पहचान ले तो संसार में महान् कार्यों को कर सकता है ।।१।।

इस प्रकार अपने आत्मा को उद्बोधन देकर अब परमात्मा को कहते हैं ।

८२५. एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र नः सचा ।।२।।[1]

पदार्थ— हे **तुविमघ** बहुत धनी परमेश ! एव सचमुच, तेरा **रातिः** दान **विश्वेभिः** सब **धातृभिः** धारकों के द्वारा **धायि** धारण किया हुआ है । **अध चित्** इसके अतिरिक्त, हे **इन्द्र** परमैश्वर्यवान् विपत्तिविदारक परमात्मन् ! तू **नः** हमारा **सचा** नित्य का साथी है ।।२।।

भावार्थ— जगदीश्वर यदि हमारा सखा हो जाता है तो हमारे लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ।।२।।

अगले मन्त्र में फिर अन्तरात्मा को उद्बोधन है ।

८२६. मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।।३।।[2]

पदार्थ— हे **वाजानां पते** बलों के अधिपति मेरे अन्तरात्मन् ! **ब्रह्मा इव** यज्ञ के ब्रह्मा के समान उच्च पद पर विद्यमान तू **मा उ सु** कभी मत **तन्द्रयुः** आलसी **भुवः** हो । और **गोमतः सुतस्य** गोदुग्धयुक्त सोमरस से अर्थात् ज्ञानकर्मयुक्त उपासना-रस से **मत्स्व** आनन्द लाभ करता रह ।।३।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिए कभी प्रमाद न करें, प्रत्युत जागरूक होकर सब शुभकर्मों में उत्साह धारण करें ।।३।।

।।१९।। अथ 'इन्द्रं विश्वा' इत्यादिकस्य एकोनविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** जेता माधुच्छन्दसः। **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

प्रथम ऋचा का पूर्वार्चिक में ३४३ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में भाष्य किया गया था । यहां जगदीश्वर और आचार्य का विषय वर्णित है ।

८२७. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ८।९२।२९, अथ० २०।६०।२ उभयत्र 'तुविमघ' इत्यत्र 'तुवीमघ' 'नः' इत्यत्र च 'मे' इति पाठः ।

२. ऋ० ८।९२।३०, अथ० २०।६०।३ ।

३. ऋ० १।११।१, य० १२।५६, १५।६१, १७।६१, साम० ३४३ ।

पदार्थ– **विश्वाः** सब **गिरः** वाणियां **समुद्रव्यचसम्** समुद्र या अन्तरिक्ष के समान विशाल अर्थात् उदारहृदय, **रथीनाम्** रथस्वामियों के मध्य **रथीतमम्** श्रेष्ठ रथस्वामी, **वाजानाम्** आत्मबलों और विद्याबलों के **पतिम्** अधीश्वर, **सत्पतिम्** श्रेष्ठ मनुष्यों वा श्रेष्ठ विद्यार्थियों के पालनकर्ता **इन्द्रम्** जगदीश्वर वा विद्वान् आचार्य को **अवीवृधन्** महिमा से बढ़ाती हैं ।।१।।

'समुद्रव्यचसम् इन्द्रम्' में वाचकलुप्तोपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर ब्रह्माण्डरूप रथ का श्रेष्ठ स्वामी है, वैसे ही आचार्य गुरूकुलरूप रथ का श्रेष्ठ कुलपति होता है ।।१।।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर वा आचार्य से प्रार्थना की गयी है ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २
८२८. सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
२ ३ १र २र ३ १ २३ १ २
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम् ।।२।।[1]

पदार्थ– हे **शवसः पते** बल के अधीश्वर **इन्द्र** परमैश्वर्यवान्, अविद्याविदारक जगदीश्वर वा आचार्य ! **वाजिनः** बलवान् हम **ते** आपकी **सख्ये** मित्रता में रहते हुए **मा भेम** भयभीत न हो । **जेतारम्** सब विघ्नों पर विजय पाने वाले, **अपराजितम्** किसी भी बाधा से पराजित न होने वाले **त्वाम्** तुझ जगदीश्वर वा आचार्य को **अभि** लक्ष्य करके, हम **प्र नोनुमः** अतिशय बार-बार स्तुति करते हैं ।।२।।

भावार्थ– ब्रह्मबल, आत्मबल, विद्याबल आदियों में बलिष्ठ, सब विपत्तियों पर विजय पाने वाले, किसी से भी पराजित न होने वाले जगदीश्वर और आचार्य यदि हमारे साथी हो जाते हैं तो निर्भय रहते हुए हम सम्पूर्ण उत्कर्ष को पा सकते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर और आचार्य का विषय वर्णित है ।

३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
८२९. पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ।।३।।[2]

पदार्थ– **इन्द्रस्य** परमैश्वर्यवान् अविद्याविदारक जगदीश्वर वा आचार्य के **रातयः** दान **पूर्वीः** श्रेष्ठ हैं । उस जगदीश्वर वा आचार्य की **ऊतयः** रक्षाएं **न विदस्यन्ति** कभी क्षीण नहीं होतीं, **यदा** जब वह **स्तोतृभ्यः** अपने सद्गुण व सत्कर्मों के प्रशंसकों को **गोमतः** प्रशस्त गाय, वाणी, विद्या, भूमि, इन्द्रिय आदि से युक्त **वाजस्य** बल का **मघम्** धन **मंहते** प्रदान करता है ।।३।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर के दान, रक्षण आदि सबको नित्य प्राप्त होते हैं, वैसे ही आचार्य के भी सदाचार-विद्या आदि के दान और अविद्या, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि से रक्षण निरन्तर प्रजाओं को प्राप्त करने चाहिएं ।।३।।

---

१. ऋ० १।११।२, 'प्र णोनुमो' इति पाठः ।
२. ऋ० १।११।३, 'यदा वाजस्य गोमत' इत्यत्र 'यदी वाजस्य गोमतः' इति पाठः ।

इस खण्ड में अन्तरात्मा के उद्बोधनपूर्वक जगदीश्वर तथा आचार्य का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।।

तृतीय अध्याय में षष्ठ खण्ड समाप्त ।

तृतीय अध्याय समाप्त ।

द्वितीय प्रपाठक में प्रथम अर्ध समाप्त ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः, द्वितीये प्रपाठके द्वितीयोऽर्धश्च ।

।।१।। अथ 'एते असृग्र०' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** जमदग्निर्भार्गवः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा में उपासक का व्यवहार वर्णित है ।

८३०. एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः। विश्वान्यभि सौभगा ।।१।।[1]

पदार्थ– **एते** ये **तिरः** तिरछी गति से **आशवः** शीघ्र आगे बढ़ने वाले **इन्दवः** तेजस्वी उपासक लोग **पवित्रम्** पवित्र व्यवहार को **असृग्रम्** उत्पन्न करते हैं । इसीलिए **विश्वानि** सब **सौभगा** सौभाग्यों को **अभि** प्राप्त कर लेते हैं ।।१।।

भावार्थ– जगदीश्वर की उपासना से अपने हृदय को पवित्र करके समाज में सबके प्रति पवित्र व्यवहार यदि किया जाए तो निश्चय ही सब सौभाग्य प्राप्त हो जाते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

८३१. विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ।।२।।[2]

पदार्थ– **वाजिनः** आत्मबल से युक्त ये सोम अर्थात् सौम्यगुणी उपासक **पुरु** बहुत से **दुरिता** दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को **विघ्नन्तः** विनष्ट करते हुए, **तोकाय** सन्तान के लिए **सुगा** आसानी से प्राप्त होने योग्य भद्रों को रचते हुए, और **त्मना** स्वयं को **अर्वतः** घोड़ों के समान प्रगतिशील **कृण्वन्तः** करते हुए **सुष्टुतिम्** उत्तम प्रशस्ति को **अभ्यर्षन्ति** प्राप्त करते हैं । [अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम्–यह वाक्य अगले मन्त्र से यहां लाया गया है]।।२।।

भावार्थ– हृदय से की गयी उपासना का यह अनिवार्य फल होता है कि उपासक के दुरित नष्ट हों, भद्र की प्राप्ति हो और वह आगे बढ़े ।।२।।

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

८३२. कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इडामस्मभ्यं संयतम् ।।३।।[3]

---

१. ऋ० ९।६२।१ ।

२. ऋ० ९।६२।२, 'तना कृण्वन्तो अर्वते' इति तृतीयः पादः ।

३. ऋ० ९।६२।३ ।

पदार्थ– ये सोम अर्थात् तेजस्वी उपासक लोग **गवे** अपने जीवात्मा और इन्द्रियसमूह के लिए **वरिवः** ऐश्वर्य को, और **अस्मभ्यम्** हम सखाओं के लिए **संयतम्** संयमयुक्त **इडाम्** भद्र वाणी को **कृण्वन्तः** प्रयुक्त करते हुए **सुष्टुतिम्** उत्तम प्रशस्ति को **अभ्यर्षन्ति** प्राप्त करते हैं ।।३।।

भावार्थ– उपासक के आत्मा, मन, बुद्धि, वाणी, प्राण, इन्द्रिय आदि सब दिव्य ऐश्वर्य से युक्त हो जाते हैं और वह अन्यों के प्रति मधुर तथा भद्र वाणी का ही प्रयोग करता हुआ सुप्रशस्ति प्राप्त करता है ।।३।।

।।२।। अथ 'राजा मेधाभि०' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भृगुर्वारुणिर्जमदग्नि-भार्गवो वा । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा परमेश्वर, राजा, योगी व चन्द्रमा के विषय में है ।

८३३. राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ।।१।।[1]

पदार्थ– प्रथम परमेश्वर के पक्ष में । **राजा** विश्वब्रह्माण्ड का सम्राट्, **पवमानः** पवित्रतादायक सोम परमेश्वर **मनौ अधि** मननशील उपासक के अन्तःकरण में **मेधाभिः** धारणावती बुद्धियों के साथ **ईयते** पहुंचता है । वही मंगल, बुध, बृहस्पति, पृथिवी, चन्द्र आदि ग्रहोपग्रहों को तथा पक्षी आदियों को **अन्तरिक्षेण** आकाश मार्ग से **यातवे** गति करने के लिए समर्थ करता है ।।

द्वितीय राजा के पक्ष में । **राजा** राष्ट्र का सम्राट् **पवमानः** राष्ट्रवासियों के आचरण में पवित्रता उत्पन्न करता हुआ **मनौ अधि** विद्वान् प्रजावर्ग के मध्य में **मेधाभिः** शिल्पियों के बुद्धिकौशलों से **अन्तरिक्षेण यातवे** विमानों द्वारा आकाशमार्ग से यात्रा करने के लिए **ईयते** समर्थ होता है ।।

तृतीय योगी के पक्ष में । **राजा** योगिराज **पवमानः** अपने अन्तःकरण व व्यवहार को पवित्र करता हुआ **अन्तरिक्षेण यातवे** अन्तरिक्ष से जाने के लिए अर्थात् आकाशगमन की सिद्धि प्राप्त करने के लिए **मेधाभिः** ध्यानों के द्वारा **मनौ अधि** मननशील अपनी अन्तरात्मा में तथा सर्वज्ञ परमात्मा में **ईयते** पहुंचता है, अर्थात् मन को अपने अन्तरात्मा में और परमात्मा में केन्द्रित करता है ।।

चतुर्थ चन्द्रमा के पक्ष में । **राजा** देदीप्यमान चन्द्ररूप सोम **पवमानः** अपनी चांदनी से भूमण्डल को पवित्र करता हुआ **मनौ अधि** दीप्तिमान् सूर्य के अधिष्ठातृत्व में **मेधाभिः** आकर्षण द्वारा सूर्य के साथ संगम करके **अन्तरिक्षेण यातवे** आकाशमार्ग से भूमि और सूर्य की परिक्रमा करने के लिए **ईयते** प्रवृत्त होता है ।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे पक्षी और ग्रह-उपग्रह आकाश में भ्रमण करते हैं और मनुष्य विमानों के द्वारा आकाश में यात्रा करते हैं, वैसे ही योगसिद्धि से योगी लोग भी आकाश में भ्रमण कर सकते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

८३४. आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ।।२।।[2]

---

१. ऋ० ९।६५।१६ ।
२. ऋ० ९।६५।१८ ।

पदार्थ– हे **सोम** रसागार परमात्मन् ! **देववीतये** दिव्य गुणों की प्राप्ति कराने के लिए **सुष्वाणः** आनन्द- रस को अभिषुत किये हुए आप **नः** हमारे लिए **सहः** आत्मबल और **जुवः** वेगों को **आभर** लाओ, प्रदान करो, **वर्चसे** कान्ति के लिए **रूपं न** जैसे रूप प्रदान करते हो ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जब परमात्मा से प्राप्त आनन्द-रस की तरंगें उपासक की हृदयभूमि को आप्लावित करती हैं तब उसके अन्दर सब सद्गुण स्वयं मानों 'मैं पहले' 'मैं पहले' की होड़ लगाते हुए प्रकट हो जाते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

१ २ ३२ ३ २ ३ २३ १ २ २ ३ १२ ३१२
८३५. आ न इन्दो शातग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ।।३।।[1]

पदार्थ– हे **इन्दो** तेजस्विन् धनाधीश परमात्मन् ! **ऊतये** रक्षा के लिए **नः** हमें **शातग्विनम्** सैंकड़ों लोगों के पास जाने वाले **गवां पोषम्** गायों या वाणियों के पोषण को, **स्वश्व्यम्** उत्कृष्ट घोड़ों व प्राणबलों के समूह को, और **भगत्तिम्** ऐश्वर्यों को दान को **आ वह** प्राप्त कराओ ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से पुरुषार्थ के लिए प्रेरणा प्राप्त कर सब भौतिक और आध्यात्मिक वैभव पाया जा सकता है ।।३।।

।।३।। अथ 'तं त्वा' इत्यादिकस्य तृतीयस्य पञ्चर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कविर्भार्गवः । **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की कामना की गयी है ।।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
८३६. तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ।।१।।[2]

पदार्थ– हे सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमात्मन् ! **महः दिवः** महान् आकाश के **सधस्थेषु** सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र आदि लोकों में, अथवा **महः दिवः** महान् प्रकाशमय जीवात्मा के **लोकेषु** मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि लोकों में **नृम्णानि** धन और बल **बिभ्रतम्** स्थापित करने वाले, **चारुम्** रमणीय **तं त्वा** उस सुप्रसिद्ध तुझको हम **सुकृत्यया** पुण्य कर्म से **ईमहे** प्राप्त करते हैं ।।१।।

भावार्थ– भूगोल, खगोल और शरीर में सर्वत्र धन और बल को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर शुभ कर्मों से ही पाया जा सकता है, अशुभों से नहीं ।।१।।

अथ परमात्मानं राजानं च विशिनष्टि ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २
८३७. संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ।२।।[3]

---

१. ऋ० ९।६५।१७ ।
२. ऋ० ९।४८।१ ।
३. ऋ०९।४८।२ ।

पदार्थ– संवृक्तधृष्णुम् काम, क्रोध आदि आन्तरिक अथवा बाह्य धर्षणशील शत्रुओं को नष्ट करने वाले, **उक्थ्यम्** प्रशंसायोग्य, **महामहिव्रतम्** अतिशय पूजनीय कर्मों वाले, **मदम्** आनन्दजनक, **शतं पुरः** सौ शत्रु-नगरियों को **रुरुक्षणिम्** तोड़-फोड़ देने के लिए कृतसंकल्प पवमान सोम को अर्थात् पवित्र-कर्ता जगदीश्वर वा राजा को, हम **ईमहे** प्राप्त करते हैं। [यहां 'ईमहे' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है] ॥२॥

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर आन्तरिक रिपुओं को नष्ट करता, प्रशंसनीय कर्म करता और अपने उपासकों को आनन्दित करता है, वैसे ही राजा सब विघ्नकारी शत्रुओं को उच्छिन्न करके राज्य की उन्नति वाले कर्म करके प्रजाओं को आनन्दित करे ॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और चन्द्रमा का विषय वर्णित है।

१ २ ३ २३क २र३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

८३८. अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः। सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥३॥[1]

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में। हे **सुक्रतो** शुभ कर्म करने वाले मनुष्य! **राजानं त्वा** यश से जगमगाने वाले तुझे **दिवः** देदीप्यमान **अतः** इस पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्त्ता जगदुत्पादक परमेश्वर से ही **रयिः** ऐश्वर्य **अभ्ययत्** प्राप्त हुआ है, जिस ऐश्वर्य को **सुपर्णः** शुभ पालनकर्त्ता, **अव्यथी** किसी प्रकार की व्यथा से रहित उस परमेश्वर ने तेरे लिए **भरत्** दिया है॥

द्वितीय चन्द्रमा के पक्ष में। हे पवमान सोम अर्थात् गति करने वाले चन्द्रमा! **राजानं त्वा** दीप्तिमान् तुझे **अतः दिवः** इस सूर्यलोक से ही **रयिः** प्रकाशरूप धन **अभ्ययत्** मिलता है, जिसे **सुपर्णः** सुन्दर किरणों वाला **अव्यथी** अविचल स्थिर सूर्य **भरत्** तेरे अन्दर लाता है ॥३॥

यहां श्लेषालंकार है ॥३॥

भावार्थ– जैसे मनुष्य जगदीश्वर से सब प्रकार का धन प्राप्त करता है, वैसे ही चन्द्रमा सूर्य से दीप्ति पाता है ॥३॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का विषय है।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र

८३९. अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे। अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥४॥[2]

पदार्थ– अध और यह बात भी है कि वह पवमान सोम अर्थात् पवित्रता देने वाला जगत्स्रष्टा परमात्मा **इन्द्रियम्** आंख आदि इन्द्रिय को अथवा आत्मबल को **हिन्वानः** प्रेरित करता हुआ **ज्यायः** अत्यन्त प्रशस्त **महित्वम्** महत्त्व को **आनशे** प्राप्त करता है। वही **अभिष्टिकृत्** अभीष्ट प्रदाता और **विचर्षणिः** विशेषरूप से सबका साक्षात् द्रष्टा है ॥४॥

भावार्थ– जो मन, आंख, कान आदि में मनन करने, देखने, सुनने आदि के सामर्थ्य को तथा आत्मा में बल को निहित करता है उस कामना पूर्ण करने वाले, विश्वद्रष्टा परमात्मा का महत्त्व सबको जानना चाहिए ॥४॥

---

१. ऋ० ९।४८।३, 'रयिमभि राजानं', 'अव्यथिर्भरत्' इति पाठः।

२. ऋ० ९।४८।५।

अगले मन्त्र में भी परमात्मा का ही विषय है ।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
८४० . विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् । गोपामृतस्य विर्भरत् ।।५।।[1]

पदार्थ– **विश्वस्मै इत्** सभी के लिए **स्वः दृशे** सुखदर्शनार्थ **साधारणम्** जो साधारण है, अर्थात् किये कर्मों के अनुसार जो सभी सत्पात्र जनों को बिना पक्षपात के सुख दर्शाता है, **रजस्तुरम्** जो रजोगुण के द्वारा क्रिया करवाता है, **ऋतस्य** सत्य का **गोपाम्** जो रक्षक है, ऐसे पवमान सोम अर्थात् पवित्र करने हारे जगत्स्रष्टा परमात्मा को **विः** गतिशील जीवात्मा **भरत्** अपने अन्तःकरण में धारण करे ।।५।।

भावार्थ– परमात्मा सत्य का ही रक्षक है, असत्य का नहीं । उसके न्याय में विश्वास करके सबको सत्कर्म ही करने चाहिएं ।।५।।

।।४।। अथ 'इषे पवस्व' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कश्यपो मारीचः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा का भाष्य पूर्वार्चिक में क्रमांक ५०५ पर परमात्मा के विषय में किया गया था । यहां गुरु-शिष्य का विषय दर्शाया जा रहा है ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १र २र
८४१ . इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ।।१।।[2]

पदार्थ– हे **इन्दो** तेजस्वी, विद्या के खजाने आचार्य ! **मनीषिभिः** चिन्तनशील शिष्यों के द्वारा **मृज्यमानः** नमस्कारों से अलंकृत किये जाते हुए आप **इषे** इच्छासिद्धि के लिए **धारया** विद्या की धारा से **पवस्व** शिष्यों को पवित्र कीजिए । आप **रुचा** दीप्ति के साथ **गाः अभि** स्तोता शिष्यों के प्रति **इहि** जाइए ।।१।।

भावार्थ– शिष्य समर्पणभाव से गुरुओं के प्रति जाएं और गुरू निश्छल मन से शिष्यों के पास पहुंचकर सब विद्याएं प्रदान करें ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है ।

३ १र २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
८४२ . पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ।।२।।[3]

पदार्थ– हे **गिर्वणः** वेदादि वाङ्मय के लिए सेवनीय ! **हरे** दोष, दुर्व्यसन, दुःख आदि को हरने वाले आचार्य ! **पुनानः** आचरण को पवित्र करते हुए, तथा **आशिरम्** परिपक्व ज्ञान को **सृजानः** उत्पन्न करते हुए आप **जनाय** शिष्यजनों के लिए **वरिवः** धन और **ऊर्जम्** शारीरिक बल तथा प्राणवत्ता **कृधि** प्रदान कीजिए ।।२।।

---

१. ऋ० ९।४८।४ ।
२. ऋ० ९।६४।१३, साम० ५०५ ।
३. ऋ० ९।६४।१४ ।

भावार्थ– शास्त्र पढ़ाना, चरित्र को पवित्र करना, दोषों को हरना, व्यायाम, प्राणायाम आदि द्वारा बल और प्राण प्रदान करना, अर्थकरी विद्या सिखाना गुरुओं का कर्त्तव्य है ।।२।।

अगले मन्त्र में विद्यार्थी को सम्बोधन किया गया है ।

३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

८४३. पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हितः ।।३।।[1]

पदार्थ– हे विद्यार्थी ! तू **देववीतये** अहिंसा, सत्य, अस्तेय, न्याय, दया, उदारता आदि दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए **पुनानः** स्वयं को पवित्र करता हुआ **इन्द्रस्य** कुलपति आचार्य के **निष्कृतम्** घर अर्थात् गुरुकुल को **याहि** जा । और वहां **हितः** प्रविष्ट किया गया तू **वाजिभिः** विज्ञानी गुरुओं के द्वारा **द्युतानः** विद्या के तेज से और सच्चरित्रता के तेज से चमकने वाला बन ।।३।।

भावार्थ– विद्यार्थी गुरुकुल में ब्रह्मचर्यपूर्वक विधि के अनुसार वेदादि शास्त्रों को पढ़कर, सदाचार की शिक्षा लेकर, योगाभ्यास से आध्यात्मिक उन्नति करके, विद्वान् होकर, समावर्तन के बाद बाहर जाकर पढ़ी हुई विद्या का सब जगह प्रचार करें ।।३।।

इस खण्ड में उपासक, योगी, परमात्मा, गुरु-शिष्य और प्रसंगतः राजा, चन्द्रमा आदि के विषय का प्रतिपादन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।।

चतुर्थ अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।

।।५।। अथ 'अग्निनाग्निः' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का विषय और यज्ञ का विषय वर्णित है ।।

३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३क २२

८४४. अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ।।१।।[2]

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में । **अग्निना** नेता जीवात्मा द्वारा **अग्निः** नेता परमात्मा **समिध्यते** हृदय में प्रदीप्त किया जाता है, जो परमात्मा **कविः** दूरदर्शी, बुद्धिमान् **गृहपतिः** घरों का रक्षक, **युवा** सदा युवक, अर्थात् युवक के समान अपार सामर्थ्य वाला, **हव्यवाट्** आत्मसमर्पण को स्वीकार करने वाला अथवा दातव्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाला, और **जुह्वास्यः** वेदवाणी रूप मुख वाला है ।।

द्वितीय यज्ञाग्नि के पक्ष में । **अग्निना** आहिताग्नि यजमान द्वारा उत्पन्न आग से **अग्निः** आहवनीय अग्नि **समिध्यते** प्रदीप्त किया जाता है, जो आहवनीय अग्नि **कविः** गतिमय ज्वालाओं वाला, **गृहपतिः** घरों का रक्षक, **युवा** होमे हुए द्रव्य को जलाकर सूक्ष्म करके स्थानान्तर में पहुंचाने वाला, और **जुह्वास्यः** घृत से भरी हुई स्रुवा जिसके ज्वालारूप मुख में पड़ती है ऐसा है ।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है । प्रथम अर्थ में 'जुह्वास्यः' में रूपक है ।।१।।

---

१. ऋ० ९।६४।१५।

२. ऋ० १।१२।६ ।

भावार्थ– जैसे आत्माग्नि परमात्माग्नि को प्रदीप्त करके उसके तेज द्वारा पहले से भी अधिक दीप्त होकर उत्कर्ष धारण करता है, वैसे ही मनुष्य यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करके उसमें होम के द्वारा वायुशुद्धि करके, आरोग्य प्राप्त कर, अग्नि के समान तेजस्वी होकर स्वयं को उन्नत करता है ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और यज्ञ का विषय वर्णित करते हैं ।।

८४५. यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ।।२।।[1]

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में । हे **देव** स्वतः प्रकाशमान, सबके प्रकाशक, दानादि गुणों से युक्त, सर्वान्तर्यामी **अग्ने** अग्रनायक जगदीश्वर ! **यः** जो **हविष्पतिः** हवियों का स्वामी अर्थात् अपनी हवि देकर तेरी उपासना करने वाला मनुष्य **दूतम्** दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख आदियों को दग्ध करने वाले **त्वा** तुझ परमात्मा की **सपर्यति** उपासना करता है **तस्य** उस उपासक का, तू **प्राविता** प्रकृष्ट रक्षक **भव स्म** हो जा ।।

द्वितीय यज्ञ के पक्ष में । हे **देव** प्रकाशमान, प्रकाशक गतिमय ज्वालाओं वाले यज्ञाग्नि ! **यः** जो **हविष्पतिः** होम के योग्य सुगन्धित, मधुर, पुष्टिप्रद तथा आरोग्यप्रद द्रव्यों का स्वामी याज्ञिक जन **दूतम्** रोग, आलस्य आदियों को दग्ध करने वाले **त्वा** तेरी **सपर्यति** यज्ञानुष्ठान द्वारा सेवा करता है **तस्य** उस याज्ञिक मनुष्य का, तू **प्राविता** प्रकृष्ट रक्षक **भव स्म** हो जा ।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे उपासना किया गया परमेश्वर उपासक के दुर्गुण आदि को दग्ध करके उसे सन्मार्ग पर चलाकर उसकी रक्षा करता है, वैसे ही आरोग्य आदि करने वाले द्रव्यों से होम किया गया यज्ञाग्नि यजमान को आरोग्य आदि प्राप्त कराकर उसका बहुत उपकार करता है ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है ।

८४६. यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृडय ।।३।।[2]

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में । **यः** जो **हविष्मान्** आत्मसमर्पण वाला उपासक **देववीतये** दिव्य गुण-कर्मों की प्राप्ति के लिए **अग्निम्** सब सुख प्राप्त कराने वाले तुझ परमात्मा को **आ विवासति** पूजता है, **तस्मै** उस उपासक को, हे **पावक** पवित्रतादायक परमात्मन् ! आप **मृडय** सुखी कीजिए ।।

द्वितीय यज्ञ के पक्ष में । **यः** जो **हविष्मान्** उत्तम होम के द्रव्यों से युक्त याज्ञिक मनुष्य **देववीतये** तेज की प्राप्ति के लिए अथवा दिव्य सुख के सम्पादनार्थ **अग्निम्** तुझ यज्ञाग्नि का **आ विवासति** होम से सत्कार करता है **तस्मै** उसे, हे **पावक** वायुशुद्धि तथा हृदयशुद्धि करने वाले यज्ञाग्नि ! तू **मृडय** आरोग्य आदि प्राप्त कराने के द्वारा सुखी कर, अर्थात् यज्ञाग्नि सुखी करे ।।३।।

यहां श्लेषालंकार है ।।३।।

---

१. ऋ० १।१२।८।
२. ऋ० १।१२।९।

भावार्थ– जैसे श्रद्धा के साथ आत्मसमर्पणपूर्वक उपासना किया गया परमेश्वर दिव्य गुण-कर्मों को प्रेरित करता है, वैसे ही उत्तमोत्तम हव्य-द्रव्यों से होम किया हुआ यज्ञाग्नि आरोग्य प्रदान से तथा हृदय में तेज, शूरता आदि दिव्य गुणों की प्रदीप्ति से सुखी करता है ।।३।।

।।६।। अथ 'मित्रं हुवे' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । **देवते** मित्रावरुणौ । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में ब्रह्म-क्षत्र का आह्वान किया गया है ।

८४७. मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ।।१।।[1]

पदार्थ– मैं **पूतदक्षम्** पवित्र बल को देने वाले **मित्रम्** सबके मित्र ब्राह्मण को, और **रिशादसम्** हिंसक शत्रुओं को नष्ट करने वाले **वरुणं च** शत्रुनिवारक क्षत्रिय को **हुवे** पुकारता हूं । वे दोनों **धृताचीम्** राष्ट्र को तेज प्राप्त कराने वाली **धियम्** ज्ञानशृंखला एचं कर्मशृंखला को **साधन्तौ** सिद्ध करने वाले होते हैं ।।१।।

भावार्थ– राष्ट्र में ब्राह्मण पवित्र ज्ञान-विज्ञान के बल को बढ़ाते हैं और क्षत्रिय शत्रुओं से राष्ट्र की रक्षा करते हैं, इसलिए उन्नति चाहने वालों को दोनों का सदा सत्कार और पोषण करना चाहिए ।।१।।

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्म-क्षत्र का विषय वर्णित है ।

८४८. ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ।।२।।[2]

पदार्थ– हे **ऋतस्पृशा** सत्य ज्ञान और सत्य कर्म को प्राप्त करने वाले, **ऋतावृधा** सत्य ज्ञान और सत्य कर्म को बढ़ाने वाले **मित्रावरुणौ** ब्राह्मण-क्षत्रियो ! तुम दोनों **ऋतेन** सत्य ज्ञान और सत्य कर्म से **बृहन्तम्** विशाल **क्रतुम्** राष्ट्रयज्ञ को **आशाथे** व्याप्त करते हो ।।२।।

भावार्थ– ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग सत्य ज्ञान और सत्य कर्म को स्वयं ग्रहण करके तथा अन्यों को उसकी शिक्षा देकर राष्ट्र की उन्नति रूप यज्ञ को करते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः ब्रह्म-क्षत्र का ही विषय है ।

८४९. कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षं दधाते अपसम् ।।३।।[3]

पदार्थ– **कवी** क्रान्तद्रष्टा, बुद्धिमान्, **तुविजाता** बहुत प्रसिद्ध, **उरुक्षया** विशाल निवास को देने वाले **मित्रावरुणा** ब्राह्मण-क्षत्रिय **नः** हमारे **दक्षम्** बल को, तथा **अपसम्** कर्म को **दधाते** पुष्ट करते हैं ।।३।।

भावार्थ– राष्ट्रवासियों का बल, कर्म और सुरक्षित निवास ब्रह्म-क्षत्र के समन्वय से ही भलीभांति सिद्ध होता है ।।३।।

---

१. ऋ० १।२।७, य० ३३।५७ ।
२. ऋ० १।२।८ ।
३. ऋ० १।२।९ ।

।।७।। अथ 'इन्द्रेण' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । **देवताः** मरुत इन्द्रश्च । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा और प्राण का विषय है ।

८५०. इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ।।१।।[1]

पदार्थ– हे मरुतों के गण अर्थात् प्राण-गण ! तू **अबिभ्युषा** निर्भय **इन्द्रेण** जीवात्मा के साथ **संजग्मानः** संगत होता हुआ **संदृक्षसे** दिखायी देता है । तुम दोनों अर्थात् प्राण-गण और जीवात्मा **मन्दू** आनन्द देने वाले, तथा **समानवर्चसा** तुल्य तेज वाले हो ।।१।।

भावार्थ– शरीर में जीवात्मा और प्राण दोनों का समान महत्त्व है । प्राण के बिना जीवात्मा और जीवात्मा के बिना प्राण कुछ नहीं कर सकता ।।१।।

अगले मन्त्र में जीवात्मा के पुनर्जन्म का विषय है ।

८५१. आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ।२।।[2]

पदार्थ– आत् अह देहत्याग के अनन्तर सूक्ष्म शरीर में समाविष्ट ये प्राण पूर्वजन्मकृत कर्मों के संस्कारों के अनुसार **स्वधाम् अनु** भोग को लक्ष्य करके, जीवात्मासहित **यज्ञियम्** देहयज्ञ के संचालन-योग्य **नाम** कर्म को **दधानाः** धारण करते हुए **पुनः** पूर्वजन्म के समान फिर भी **गर्भत्वम्** माता के गर्भ में स्थिति को **एरिरे** प्राप्त करते हैं ।।२।।

भावार्थ– पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच सूक्ष्मभूत, मन और बुद्धि यह सत्रह लिंगों वाला सूक्ष्म शरीर जीवात्मा के साथ मृत्यु के बाद भी रहता है । पूर्वजन्म के कर्मों के संस्कारानुसार फल भोगने के लिए सूक्ष्म शरीर के साथ जीवात्मा पुनर्जन्म ग्रहण करने के लिए माता के गर्भ में प्रवेश करता है ।।२।।

अगले मन्त्र में योगमार्ग में प्राणायाम का महत्त्व कहा गया है ।

८५२. वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ।।३।।[3]

पदार्थ– हे **इन्द्र** जीवात्मन् ! तू **वीडु चित्** दृढ़ भी व्यधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य आदि विघ्नों को **आरुजद्भिः** चारों ओर से तोड़ते हुए **वह्निभिः** वाहक प्राणों के सहयोग से **गुहा चित्** गुफा में भी विद्यमान अर्थात् विघ्नों से निगूढ़ हुई भी **उस्रियाः** परमात्मा के पास से आती हुई तेज की किरणों को **अनु अविन्दः** एक- एक करके प्राप्त कर लेता है ।।३।।

भावार्थ– जैसे सूर्य किरणों को बादल ढक लेता है, वैसे ही परमात्मारूप सूर्य के पास से आती हुई तेज की किरणों को योगमार्ग में उपस्थित विघ्न ढक लेते हैं । प्राणायाम की सहायता से वे विघ्न परास्त किये जा सकते हैं ।।३।।

---

१. ऋ० १।६।७, अथ० २०।४०।१, ७०।३ ।

२. ऋ० १।६।४, अथ० २०।४०।३, ६९।१२ सर्वत्र देवताः मरुतः ।

३. ऋ० १।६।५, अथ० २०।७०।१ ।

।।८।। **अथ 'ता हुवे' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । **देवते** इन्द्राग्नी । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा का विषय है ।

८५३. ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ।।१।।[1]

पदार्थ– मैं **ता** उन इन्द्र और अग्नि अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा को **हुवे** बुलाता हूँ, **ययोः** जिनका **इदम्** यह सामने दिखाई देने वाला **पुरा** पहले का **कृतम्** किया हुआ **विश्वम्** समस्त कार्य **पप्ने** सबके द्वारा स्तुति पाता है । **इन्द्राग्नी** उपासना किया हुआ परमात्मा और उद्बोधन दिया हुआ जीवात्मा दोनों **न मर्धतः** कभी हानि नहीं पहुंचाते, प्रत्युत सदा लाभकारी होते हैं ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा ने जो ब्रह्माण्ड रचा है और जीवात्मा देह धारण करके जिन महान् कार्यों को अपने बुद्धिकौशल से करता है, उनसे उन दोनों का महान् गौरव प्रकट होता है ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और जीवात्मा का ही विषय वर्णित है ।

८५४. उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ईदृशे।।२।।[2]

पदार्थ– मृधः हिंसक काम, क्रोध आदि शत्रुओं के **विघनिना** विनाशक, **उग्रा** उग्र बल वाले **इन्द्राग्नी** परमात्मा और जीवात्मा को, हम **हवामहे** पुकारते हैं। **ता** वे दोनों **ईदृशे** ऐसे विकट देवासुरसंग्राम के उपस्थित होने पर **नः** हमें **मृडातः** सुखी करें ।।२।।

भावार्थ– सबको चाहिए कि परमात्मा की उपासना करके और जीवात्मा को उद्बोधन देकर सब विघ्नों तथा सब शत्रुओं को पराजित करें ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है ।

८५५. हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती । हथो विश्वा अप द्विषः ।।३।।[3]

पदार्थ– हे **सत्पती** श्रेष्ठों के पालनकर्ता परमात्मा और जीवात्मा ! **आर्या** श्रेष्ठ तुम दोनों **वृत्राणि** पापों को **हथः** विनष्ट करते हो, **दासानि** क्षय करने वाले काम, क्रोध आदियों को **हथः** विनष्ट करते हो, और **विश्वाः** सब **द्विषः** द्वेष-वृत्तियों को **अप हथः** मार भगाते हो ।।३।।

यहां 'हथो' की तीन बार आवृत्ति में लाटानुप्रास है । पुनः पुनः 'हथः' कहने से यह द्योतित होता है कि इसी प्रकार अन्य भी दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख आदियों को तुम विनष्ट करते हो ।।३।।

भावार्थ– हमें चाहिए कि परमात्मा और जीवात्मा की सहायता से पाप आदियों को नष्ट करके द्वेषवृत्तियों को समाप्त करके आपस में सौहार्द से बर्तें ।।३।।

---

१. ऋ० ६।६०।४ ।

२. ऋ० ६।६०।५, य० ३३।६१ ।

३. ऋ० ६।६०।६ ।

इस खण्ड में परमात्मा और यज्ञ, ब्रह्म और क्षत्र, जीवात्मा और प्राण, जीवात्मा के पुनर्जन्म, प्राणायाम , परमात्मा और जीवात्मा के सम्बन्ध आदि का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

चतुर्थ अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

।।९।। अथ 'अभि सोमास' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्य :, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः) । **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** १,२ बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतो- बृहती), ३ द्विपदा । **स्वरः** १ मध्यमः, २-३ पञ्चमः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ५१८ पर आनन्दरस का पान किये हुए मनुष्यों के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां ज्ञानी गुरुओं का विषय कहा जाता है ।

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
८५६. अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ।।१।।[1]

पदार्थ– आयवः क्रियाशील, **मनीषिणः** मननशील, **मत्सरासः** उत्साह का संचार करने वाले, **मदच्युतः** हर्ष की वर्षा करने वाले **सोमासः** विद्यारस से परिपूर्ण गुरुजन **समुद्रस्य** ज्ञानसागर के **विष्टपे अधि** लोक में अर्थात् गुरुकुल में **मद्यम्** आनन्दजनक **मदम्** तृप्तिप्रद ज्ञानरस को **अभि पवन्ते** शिष्यों के प्रति प्रवाहित करते हैं ।।१।।

भावार्थ– विद्यार्थी जन सुयोग्य गुरुओं के पास से अमृतवर्षी ज्ञानरस को पाकर, स्नातक होकर अन्यों को वह तृप्तिप्रद ज्ञान रस पिलाया करें ।।१।।

अगले मन्त्र में स्नातक का वर्णन है ।

१ २ ३१र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
८५७. तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ।।२।।[2]

पदार्थ– शिष्य **राजा** तेज से दीप्त तथा **देवः** विद्वान् होता हुआ **बृहत् ऋतम्** महान् सत्यज्ञान, सत्य आचरण और सत्य ब्रह्मानन्द को **ऊर्मिणा** तरंगरूप में **पवमानः** अपने आत्मा में प्रवाहित करता हुआ **समुद्रम्** ब्रह्मचर्याश्रमरूप समुद्र को **तरत्** तैर जाता है, अर्थात् स्नातक बन जाता है । आगे प्रत्यक्षरूप से वर्णन है– हे विद्वान् स्नातक ! तू **मित्रस्य** मैत्री के निर्वाहक तथा **वरुणस्य** शिष्य रूप में तुझे वरने वाले आचार्य के **धर्मणा** उपदिष्ट धर्म के अनुसार, जनसमाज में **बृहत्** महान् सत्यज्ञान, सत्य आचरण और सत्य ब्रह्मानन्द को **हिन्वानः** प्रेरित करता हुआ **अर्ष** गति कर, व्यवहार कर ।।२।।

---

१. ऋ० ९।१०७।१४ 'विष्टपे' 'मदच्युतः' इत्यत्र क्रमेण 'वि॒ष्टपि॑' 'स्व॒र्वि॑दः' इति पाठः । साम० ५१८ ।
२. ऋ० ९। १०७।१५ 'अर्षा' इत्यत्र 'अर्ष॑न्' इति पाठः ।

अथर्ववेद में स्नातक का वर्णन इस रूप में किया गया है– ''ब्रह्मचारी देदीप्यमान ज्ञान को अपने अन्दर धारण करता है । उसके अन्दर सब दिव्य गुण समाविष्ट हो जाते हैं । हे ब्रह्मचारी, तू प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन, हृदय, ब्रह्म, मेधा इन सबकी शक्ति को अपने अन्दर उत्पन्न करता हुआ हमें भी चक्षु, श्रोत्र, यश, अन्न, रेतस्, रक्त एवं पाचनशक्ति प्रदान कर। इन सब शक्तियों को ब्रह्मचारी ज्ञानसलिल के पृष्ठ ब्रह्मचर्याश्रमरूप समुद्र में तप करता हुआ प्राप्त करता है । वह जब स्नातक बनता है तब अन्यों का धारक-पोषक और पीतवेषधारी होकर पृथिवी पर बहुत चमकता है । (अथ० ११।५।२४-२६) ।।

भावार्थ– स्नातकों को चाहिए कि गुरुओं से अध्ययन किये हुए सब लौकिक और आध्यात्मिक ज्ञान को समाज में फैलाएं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

८५८. नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः ।।३।।[1]

पदार्थ– नृभिः नेता गुरुजनों से **येमाणः** नियन्त्रण में रखा जाता हुआ, **हर्यतः** प्रिय, **राजा** तेज से देदीप्यमान, **समुद्र्यः** ब्रह्मचर्याश्रमरूप समुद्र में निवास करता हुआ ब्रह्मचारी **देवः** दिव्य गुणों से युक्त, और **विचक्षणः** विद्वान् हो जाता है ।।३।।

भावार्थ– गुरुकुल में गुरुजनों के सान्निध्य में निवास करता हुआ ब्रह्मचारी विद्वान् और सदाचारी होकर स्नातक बनता है ।।३।।

।।१०।। अथ 'तिस्रो वाच' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** पराशरः शाक्त्यः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५२५ क्रमांक पर परमात्मा, जीवात्मा और आचार्य के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां महाकवि के कर्म का वर्णन किया जाता है ।

८५९. तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ।।१।।[2]

पदार्थ– वह्निः काव्य का वाहक महाकवि **तिस्रः** गद्य, पद्य एवं उभयात्मक अथवा अभिधात्मक, लक्षणात्मक एवं व्यंजनात्मक, **वाचः** वाणियों को **प्र ईरयति** प्रयुक्त करता है । वह अपने काव्य में **ऋतस्य** सत्य के **धीतिम्** धारण को, और **ब्रह्मणः** परमात्मा की **मनीषाम्** स्तुति को भी प्रयुक्त करता है । **गावः** वाणियां **गोपतिम्** उस वागीश्वर महाकवि के विषय में **पृच्छमानाः** पूछती हुई **यन्ति** जा रही हैं- कहां है वह महाकवि जो अपने काव्य में प्रयुक्त करके हमें कृतार्थ करेगा, मानो यह पूछती हैं । **मतयः** स्तुतियां भी, मानो **सोमम्** उसी रससिद्ध कवि को **वावशानाः** चाहती हुई, खोजती हुई **यन्ति** जा रही हैं ।।१।।

यहां उत्तरार्ध में असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है ।।१।।

---

१. ऋ० ९।१०७।१६, 'येमानो' इति 'समुद्रियः' इति च पाठः ।

२. ऋ० ९।९७।३४, साम० ५२५ ।

भावार्थः— कोई विरले ही रससिद्ध कवि अभिधा, लक्षणा, व्यंजना वाली गद्य, पद्य, उभय रूप वाणी को प्रयुक्त करते हुए सात्त्विक, शान्तरसमय ब्रह्मस्तोत्रों को रचकर अपनी वाणी को कृतकृत्य करते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में परमकवि परमात्मा का वर्णन है ।

२ ३ १ २ ३१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
८६० . सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
१ २ ३१ २ ३१ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २
सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ।।२।।[1]

पदार्थ— **धेनवः** तृप्ति प्रदान करने वाली **गावः** गौएं या वाणियां **सोमम्** परमकवि परमात्मा की ही **वावशानाः** कामना करती हुई **यन्ति** जा रही हैं । **विप्राः** ज्ञानी लोग **मतिभिः** स्तोत्रों स **सोमम्** परमकवि परमात्मा को ही **पृच्छमानाः** पूछते हुए, जा रहे हैं । **सुतः** ध्यान किया हुआ **सोमः** परमात्मा **पूयमानः** हृदय में प्रेरित होता हुआ **ऋच्यते** सहृदयों से स्तुति पाता है । **सोमे** उस परमात्मा में **त्रिष्टुभः** त्रिष्टुप् छन्द वाले अथवा तीन-तीन पादों से थमे हुए गायत्री छन्द वाले **अर्काः** मन्त्र **सं नवन्ते** संगत हुए-हुए हैं, अर्थात् उसी का प्रतिपादन कर रहे हैं ।।२।।

इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध में असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है ।।२।।

भावार्थ— जगत् में सब प्राणी और सब अचेतन पदार्थ अपने-अपने कर्म में लगे हुए मानो अपने रचयिता परमात्मा को ही खोज रहे हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में परमकवि परमात्मा के काव्यरस का वर्णन है ।

३ १ २ ३ १ २३ १ २ ३१ २ ३ २
८६१ . एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
२ ३ १ २ ३ १२ २र ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १२
इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम् ।।३।।[2]

पदार्थ— हे **सोम** परमकवि परमात्मा के काव्य से उत्पन्न काव्यानन्दरस ! **एव** सचमुच **परिषिच्यमानः** चारों ओर सींचा जाता हुआ, **पूयमानः** हमारे प्रति प्रेरित होता हुआ, तू **नः** हमारे लिए **स्वस्ति** कल्याण को **आ पवस्व** ला । **बृहता** महान् **मदेन** तृप्ति के साथ **इन्द्रम्** जीवात्मा में **आ विश** प्रवेश कर, **वाचम्** स्तुतिवाणी को **वर्धय** बढ़ा, और स्तोता को **पुरन्धिम्** बहुत बुद्धिमान् वा बहुत कर्मवान् **जनय** कर ।।३।।

यहां अनेक क्रियाओं का एक कर्त्ता कारक से योग होने के कारण दीपक अलंकार है ।।३।।

भावार्थ— हृदय में सींचा जाता हुआ महाकवि परमात्मा का काव्यानन्दरस सहृदय के हृदय को चमत्कृत करके उसे प्रभुगीतों का गायक, बहुत मेधावी, बहुत कर्मनिष्ठ, उत्साहवान्, सरस और दयालु बना देता है ।।३।।

इस खण्ड में गुरुजन, स्नातक, महाकविकर्म, परमकवि परमात्मा एवं उसके काव्यरस का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।

चतुर्थ अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

---

१. ऋ० ९।९७।३५, 'सोमः सुतः पूयते अज्यमानः' इति तृतीयः पादः ।
२. ऋ० ९।९७।३६, 'मदेन' इत्यत्र 'रवेण' इति भेदः ।

।।११।। अथ 'यद् द्याव' इत्यादिकस्यैकादश द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** पुरुहन्मा आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २७८ क्रमांक पर परमेश्वर के महत्त्व विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां जीवात्मा का विषय वर्णित करते हैं ।

८६२. यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **इन्द्र** शूरवीर जीवात्मन् ! **यत्** यदि **ते** तेरे सम्मुख **द्यावः** द्युलोक **शतम्** संख्या में सौ, **उत** और **भूमीः** भूमियां भी **शतम्** संख्या में सौ **स्युः** हो जाएं, और **सूर्याः** सूर्य **सहस्रम्** हजार हो जाएं, तो भी हे **वज्रिन्** वज्रधारी के समान शत्रुओं का प्रतिरोध करने में समर्थ जीवात्मन् ! वे **त्वा** तेरी **न अनु** महिमा को नहीं पा सकते, **न** न ही **रोदसी** धरती-आसमान के बीच **जातम्** उत्पन्न कोई भी वस्तु **अष्ट** तेरी महिमा को पा सकती है । [अन्यत्र जीवात्मा स्वयं अपनी महिमा उद्घोषित करता हुआ कहता है– ''मैं इन्द्र हूं, मैं कभी धन को हार नहीं सकता । मैं कभी मरता नहीं'' (ऋ० १०।४८।५)] ।।१।।

यहां अतिशयोक्ति अलंकार है ।।१।।

भावार्थ– जो जीवात्मा अजर, अमर और चेतन है उसकी महिमा को सौ, हजार, लाख, करोड़ गुणा भी होकर ये जड़ सूर्य, पृथिवी आदि प्राप्त नहीं कर सकते ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा दोनों का विषय वर्णित करते हैं ।

८६३. आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिंश्चित्राभिरूतिभिः ।।२।।[2]

पदार्थ– **प्रथम** परमात्मा के पक्ष में । हे **वृषन्** सुखों की वर्षा करने वाले, **शविष्ठ** सबसे अधिक बली जगदीश्वर ! आपने **महिना** महिमा से और **शवसा** बल से **विश्वा** सब **वृष्ण्या** बलों को अर्थात् आत्मबल, विद्युद्बल, वायुबल, सूर्यबल आदि को **आ पप्राथ** फैलाया है । हे **मघवन्** ऐश्वर्यशालिन् ! हे **वज्रिन्** वज्रधर के समान दण्डसामर्थ्ययुक्त ! आप **गोमति व्रजे** सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि लोकलोकान्तरों से युक्त इस ब्रह्माण्ड में **चित्राभिः** अद्भुत **ऊतिभिः** रक्षाओं से **अस्मान्** हम उपासकों की **अव** रक्षा कीजिए ।।

द्वितीय जीवात्मा के पक्ष में । हे **वृषन्** शरीरस्थ मन, बुद्धि आदि में सबसे अधिक बली मेरे आत्मा! तू **महिना** महिमा से और **शवसा** बल से **विश्वा** सब **वृष्ण्या** प्राण, मन, बुद्धि आदि के बलों को **आ पप्राथ** फैलाता है । हे **मघवन्** सद्गुणों के ऐश्वर्य से युक्त ! हे **वज्रिन्** वाणीरूप वज्र वाले ! तू **गोमति व्रजे** इन्द्रियरूप गौओं से युक्त शरीररूप गोशाला में **चित्राभिः** अद्भुत **ऊतिभिः** रक्षाओं से **अस्मान्** हमारा **अव** पालन कर ।।२।।

---

१. ऋ० ८।७०।५, साम० २७८, अथ० २०।८१।१, ९२।२० ।
२. ऋ० ८।७०।६, अथ० २०।८१।२, ९२।२१ ।

यहां श्लेषालंकार है 'वृष्, वृष' और 'शवि, शव' में छेकानुप्रास है ।।२।।

भावार्थ– जैसे ब्रह्माण्ड में सब बलवान् पदार्थों में परमेश्वर से उत्पन्न किया हुआ बल है, वैसे ही शरीररूप पिण्ड में प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदि में जीवात्मा से दिया हुआ सामर्थ्य है, और जीवात्मा भी परमेश्वर से ही वैसा सामर्थ्य प्राप्त करता है ।।२।।

।।१२।। अथ 'वयं घ' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेध्यातिथिः काण्वः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बृहती । **स्वरः** मध्यमः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २६१ क्रमांक पर परमेश्वरोपासना विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां आचार्य का विषय वर्णित है ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
८६४. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ।।१।।[1]

पदार्थ– पुत्रों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने के लिए उनके साथ आए हुए पितृजन आचार्य को कह रहे हैं– हे आचार्यप्रवर ! **वृक्तबर्हिषः** जिन्होंने अन्तरिक्ष को छोड़ दिया है ऐसे **आपः न** बादल के जलों के समान **वृक्तबर्हिषः** घरों को छोड़कर आये हुए, **सुतवन्तः** पुत्रों सहित **वयम्** हम लोग **त्वा घ** आपको ही प्राप्त हुए हैं । हे **वृत्रहन्** दोषों को मारने वाले श्रेष्ठ आचार्य ! **स्तोतारः** समित्पाणि होकर आपके पास आये हुए, आपके गुणों का गान करने वाले शिष्यजन **पवित्रस्य** विशुद्ध ज्ञान और विशुद्ध आचरण के **प्रस्रवणेषु** प्रवाहों में **परि आसते** तैरा करते हैं। अतः हमारे पुत्रों का भी उपनयन संस्कार करके इन्हें विद्वान् बनाइये, यह भाव है ।।१।।

यहां श्लिष्टोपमालंकार है । कारणरूप उत्तरार्ध वाक्य से कार्यरूप पूर्वार्ध वाक्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास भी है ।।१।।

भावार्थः– सब माता-पिताओं को चाहिए कि अपने बालकों वा बालिकाओं को आचार्य वा आचार्या के पास सौंपकर उन्हें विद्वान् और विदुषियां बनायें ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य को पुकारा गया है ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
८६५. स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ।।२।।[2]

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में । हे **वसो** उपासकों के धनरूप तथा उनमें सद्गुणों का निवास कराने वाले परमात्मन् ! **उक्थिनः** स्तोता **नरः** मनुष्य **सुते** श्रद्धारस के **निरेके** उमड़ने पर **त्वा** आपको **स्वरन्ति** पुकार रहे हैं । हे **इन्द्र** परमैश्वर्यवन्, दुर्गुणविदारक ! **कदा** कब **सुतम्** अभिषुत श्रद्धारस के **तृषाणः** प्यासे आप **ओकः** हृदय-सदन में **आगमः** आओगे, **इव** जैसे **वंसगः** सेवनीय गति वाला, **स्वब्द**

---

१. ऋ० ८।३३।१, अथ० २०।५२।१, ५७।१४ । साम० २६१, ऋषिः मेधातिथिः काण्वः ।

२. ऋ० ८।३३।२, अथ० २०।५२।२, ५७।१५ ।

उत्कृष्ट वृष्टि जलों का दाता सूर्य **तृषाणः** जल का प्यासा होता हुआ, किरणों द्वारा **ओकः** भूमिष्ठ समुद्ररूप घर पर आता है ।।

द्वितीय आचार्य के पक्ष में । गुरुकुल से बाहर गये हुए तथा आने में देर करते हुए आचार्य को शिष्यगण उत्सुकता से बुला रहे हैं– हे **वसो** शिष्यों में विद्या आदि का निवास कराने वाले आचार्य ! **उक्थिनः** वेदपाठी **नरः** ब्रह्मचारी लोग **सुते** विद्याध्ययन-सत्र के **निरेके** आ जाने पर **त्वा** आपको **स्वरन्ति** बुला रहे हैं । हे **इन्द्र** अविद्या एवं दुर्गुण आदि को विदीर्ण करने वाले आचार्यवर ! **कदा** कब **तृषाणः** शिष्यों की कामना करने वाले आप **ओकः** गुरुकुलरूप घर में **आगमः** आओगे, **इव** जैसे **वंसगः** संभजनीय गति वाला **स्वब्दी** जल की वर्षा करने वाला सूर्य [जल बरसाने के लिए] **ओकः** अन्तरिक्ष रूप घर में आता है ।।२।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ–जैसे जल का प्यासा सूर्य किरणों से समुद्र के पास पहुंचता है, वैसे ही भक्तिरस का प्यासा परमेश्वर उपासकों के हृदय में जाता है । और जैसे सूर्य अन्तरिक्ष में स्थित जल को भूमि पर बरसाता है, वैसे ही आचार्य विद्यारस को छात्रों पर बरसाता है ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है ।

८६६. कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ।।३।।[1]

पदार्थ–हे **धृष्णो** अविद्या, दोष आदि को दूर करने के स्वभाव वाले परमात्मन् वा आचार्य ! **कण्वेभिः** मेधावी विद्वानों के द्वारा **धृषन्** अविद्या, दीनता आदि को दूर करते हुए आप **सहस्रिणम्** संख्या में हजार **वाजम्** विद्या आदि धन को **आ दर्षि** प्रदान करते हो । हे **मघवन्** ऐश्वर्यशालिन्, **विचर्षणे** सर्वद्रष्टा परमात्मन् वा शास्त्रद्रष्टा आचार्य ! **पिशङ्गरूपम्** पीले रंग वाले वा तेजस्वी रूप वाले, **गोमन्तम्** उत्तम वाणी, गाय, भूमि आदि से युक्त **वाजम्** सुवर्णरूप वा ब्रह्मचर्यरूप धन को, हम **मक्षु** शीघ्र ही **ईमहे** आपसे चाहते हैं ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा और गुरु सुयोग्य उपासकों और शिष्यों को सब सोना, मणि, मोती, गाय आदि तथा विद्या, ब्रह्मचर्य, सदाचार आदि विशाल ऐश्वर्य प्राप्त कराते हैं ।।३।।

।।१३।। 'तरणिरित्' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३८ क्रमांक पर परमेश्वर और राजा के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहां धनदाता की प्रशंसा है ।

८६७. तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ।।१।।[2]

---

१. ऋ० ८।३३।३, अथ० २०।५२।३, ५७।१६।
२. ऋ० ७।३२।२०, 'सुद्रुवम्' इत्यत्र 'सुद्रुम्' इति पाठः । साम० २३८ ।

पदार्थ— तरणिः इत् आपत्ति में पड़े हुओं को दुःखों से तराने की इच्छावाला मनुष्य ही **युजा** सहायक भूत, **पुरन्ध्या** बहुतों का धारण करने वाली सहानुभूतिपूर्ण बुद्धि से **वाजम्** धन **सिषासति** दूसरों को देना चाहता है। इसलिए मैं **पुरुहूतम्** बहुतों से पुकारे जाने वाले **वः** तुम्हारे **इन्द्रम्** धनिक वर्ग को **गिरा** वाणी से, उपदेश के द्वारा **आनमे** झुकाता हूं, अर्थात् गरीबों को धन देने के लिए प्रवृत करता हूं, **तष्टा इव** जैसे शिल्पी **नेमिम्** रथ के पहिए की परिधि को **सुद्रुवम्** सुचारु रूप से घूमने योग्य बनाता है ।।१।।

यहां उपामलंकार है ।।१।।

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वरोपासना के साथ धनादि के दान द्वारा दीनों की सहायता भी करें।।१।।

अगले मन्त्र में फिर धनदाताओं की प्रशंसा है।

८६८. न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन् मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ।।२।।[1]

पदार्थ— द्रविणोदेषु धन का दान करने वालों की **दुष्टुतिः** निन्दा **न शस्यते** नहीं कही जाती। **स्रेधन्तम्** धन, अन्न, वस्त्र आदि के दान द्वारा दीनों की सहायता न करके उन्हें चोट पहुंचाने वाले को **रयिः** धन **न नशत्** प्राप्त नहीं होता। हे **मघवन्** धनिक जन ! **पार्ये दिवि** पार करने योग्य जीवन-व्यवहार में **मावते** मुझ जैसे जन के लिए **यत्** जो **देष्णम्** दातव्य धन है, उसे पाने के लिए मैं **तुभ्यम्** आपके सम्मुख **सुशक्तिः इत्** सुपुरुषार्थी होता हुआ ही, आता हूं। अन्यथा पौरुषहीन मनुष्य की धनादि के दान से सदा सहायता कौन करता रहेगा?।।२।।

भावार्थ— दानवीरों का सर्वत्र कीर्तिगान होता है। निर्धनों को भी अपने पुरुषार्थ से धन कमाना चाहिए। सदा मांगते रहने से मनुष्य का स्वाभिमान नष्ट होता है ।।२।।

इस खण्ड में जीवात्मा, परमात्मा और आचार्य का विषय वर्णित होने से तथा धन के दानी की प्रशंसा होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है यह जानना चाहिए ।।

चतुर्थ अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

।।१४।। अथ 'तिस्रो वाच' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** त्रित आप्त्यः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४७१ क्रमांक पर ब्रह्मानन्द-रस के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहां गुरुकुल का दृश्य वर्णित है।

८६९. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत् ।।१।।[2]

---

१. ऋ० ७।३२।२१, 'न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु' इति प्रथमः पादः।
२. ऋ० ९।३३।४, साम० ४७१।

पदार्थ– विद्यार्थी लोग **तिस्रः वाचः** ऋग्, यजुः, साम रूप तीन वेदवाणियों को **उदीरते** उच्चारण कर रहे हैं। **धेनवः** दूध, मक्खन आदि से तृप्ति देने वाली **गावः** गाएं **मिमन्ति** रंभा रही हैं। **हरिः** दोषों को हरने वाले आचार्य **कनिक्रदत्** शास्त्रों का उपदेश करते हुए **एति** संचार कर रहे हैं ।।१।।

इस मन्त्र में स्वभावोक्ति अलंकार है ।।१।।

भावार्थ– सस्वर वेदपाठ, वेदार्थों के व्याख्यान, यज्ञार्थ घी देने के लिए तथा गोदुग्ध, दही, मक्खन आदि प्रदान करने के लिए गायें, और गुरुओं का उपदेश। यह गुरुकुलों का दृश्य अत्यन्त मनोहर होता है ।।१।।

अगले मन्त्र में वेदवाणी का और चन्द्रमा का विषय वर्णित है ।

८७०. अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः। मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ।।२।।[1]

पदार्थ– प्रथम वेदवाणी के पक्ष में। **यह्वीः** महत्त्वशालिनी, **ऋतस्य मातरः** सत्यज्ञान का निर्माण करने वाली, **दिवः शिशुम्** तेजस्वी परमात्मा के पुत्र मानव को **मर्जयन्तीः** शुद्ध-पवित्र करती हुई **ब्रह्मीः** ब्रह्मा से प्रोक्त वेदवाणियां **अभि अनूषत** गुण-वर्णन द्वारा सब पदार्थों की स्तुति करती हैं ।।

द्वितीय चन्द्र के पक्ष में। **यह्वीः** महान् **ऋतस्य मातरः** वृष्टि-जल का निर्माण करने वाली, **मर्जयन्तीः** अपने प्रकाश द्वारा सबका शोधन करने वाली या सबको अलंकृत करने वाली **ब्रह्मीः** महान् सूर्य की कान्तियां **दिवः** शिशुम् आकाश के शिशु के समान विद्यमान चन्द्रमा को **अभि** लक्ष्य करके अर्थात् उसे प्रकाशित करने के लिए **अनूषत** जाती हैं ।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। द्वितीय व्याख्या में चन्द्रमा को 'आकाश का शिशु' कहने में लुप्तोपमा है ।।२।।

भावार्थ– जैसे माताएं शिशु को प्राप्त होती हैं वैसे ही वेदवाणियां गुणवर्णन द्वारा सब पदार्थों को प्राप्त होती हैं और सूर्यकिरणें चन्द्रमा को प्रकाशित करने के लिए उसे प्राप्त होती हैं ।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है ।

८७१. रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिणः ।।३।।[2]

पदार्थ– हे **सोम** विद्या आदि की हमारे अन्दर प्रेरणा करने वाले, पवित्रकर्त्ता परमात्मन् वा आचार्य आप **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **विश्वतः** सब ओर से **रायः** ऐश्वर्य के **सहस्रिणः** सहस्र फल प्रदान करने वाले **चतुरः** चार **समुद्रान्** समुद्रों को अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को **आ पवस्व** प्रवाहित कर दीजिए ।।३।।

यहां धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को धन के समुद्र कहने से उनका समुद्र के समान अगाध तथा परोपकारी होना द्योतित होता है ।।३।।

---

१. ऋ० ९।३३।५, 'मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम्' इति तृतीयः पादः।
२. ऋ० ९।३३।६।

भावार्थ– दयानिधि ईश्वर की और गुरु की कृपा से अध्ययन-अध्यापन, यम-नियम, प्राणायाम, ब्रह्मचर्य, जप, उपासना आदि कर्म से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शीघ्र ही सिद्धि हमें प्राप्त होवे ।।३।।

।।१५।। अथ 'सुतासो मधुमत्तमा' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** ययातिर्नाहुषः। **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५४७ क्रमांक पर परमानन्द-रस के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां ज्ञानरस का विषय वर्णित है ।

८७२. सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः ।।१।।[1]

पदार्थ– **मधुमत्तमाः** अतिशय मधुर, **मन्दिनः** आनन्दजनक **सोमाः** ज्ञान-रस **इन्द्राय** शिष्य के जीवात्मा के लिए **सुतासः** आचार्य द्वारा अभिषुत किये गये हैं। **पवित्रवन्तः** पवित्र मन से सम्बद्ध वे **अक्षरन्** आत्मा में क्षरित हो रहे हैं । हे शिष्यो ! **वः मदाः** तुम्हें आनन्दित करने वाले वे ज्ञान-रस **देवान्** दिव्य गुणों वाले दूसरे लोगों को भी **गच्छन्तु** प्राप्त हों ।।१।।

भावार्थ– सुयोग्य गुरुओं से मधुर पद्धति द्वारा पढ़ाये गये शिष्य ज्ञानी स्नातक होकर, बाहर जाकर अन्य जनों को भी विद्यादान करें ।।१।।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द और ज्ञान दोनों का विषय वर्णित है ।

८७३. इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ।।२।।[2]

पदार्थ– **इन्दुः** ज्ञानरस वा ब्रह्मानन्द-रस **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए **पवते** क्षरित होता है **इति** यह **देवाः** विद्वान् लोग **अब्रुवन्** कहते हैं। **वाचः पतिः** वाणी का स्वामी परमेश्वर वा आचार्य **मखस्यते** आनन्द-प्रदान-यज्ञ वा अध्यापन-यज्ञ करता है, जो **विश्वस्य ओजसः** सब ब्रह्मबल वा ज्ञानबल का **ईशानः** अधीश्वर है । अतः उसके पास से सबको ब्रह्मबल और ज्ञानबल प्राप्त करना योग्य है, यह आशय है ।।२।।

भावार्थ– आत्मा ही ज्ञान को ग्रहण करने वाला और सुख को भोगने वाला है; यह विद्वानों का अनुभव है । परमेश्वर के पास से ब्रह्मानन्द को और आचार्य पास से ज्ञान को जो ग्रहण करते हैं उनका जीवन सफल होता है ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य का विषय है ।

८७४. सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ।।३।।[3]

---

१. ऋ० ९।१०१।४, साम० ५४७, अथ० २० । १३७।४ ।

२. ऋ० ९।१०१।५, अथ० २०।१३७।५ ।

३. ऋ० ९।१०१।६, अथ० २०।१३७।६, उभयत्र 'सोम॒ः पती॑' इति पाठः ।

पदार्थ– **समुद्रः** आनन्द वा ज्ञान का समुद्र, **वाचमीङ्खयः** वाणी को प्रेरित करने वाला, **रयीणां पतिः** श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव रूप धनों का स्वामी, **इन्द्रस्य सखा** जीवात्मा का सखा **सोमः** परमात्मा वा आचार्य **दिवे दिवे** प्रतिदिन **सहस्रधारः** हजारों धाराओं से उमड़ता हुआ **पवते** उपासकों वा शिष्यों के प्रति आनन्दरस वा ज्ञानरस को प्रवाहित करता है ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर श्रेष्ठ उपासकों को प्राप्त होकर उनके प्रति मधुर आनन्दरस को और आचार्य श्रेष्ठ शिष्यों को प्राप्त होकर उनके प्रति मधुर ज्ञानरस को प्रवाहित करता है ।।३।।

।।१६।। अथ 'पवित्रं ते' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** पवित्र आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५६५ क्रमांक पर परमात्मा के पवित्र करने वाले गुण के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां परमात्मा और आचार्य का विषय वर्णित है ।

८७५. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **ब्रह्मणः पते** ब्रह्माण्ड के अधिपति परमात्मन् अथवा ज्ञान के अधिपति आचार्य ! **ते** आपका **पवित्रम्** पवित्र आनन्दतत्त्व या ज्ञानतत्त्व **विततम्** आप में फैला हुआ है । **प्रभुः** आनन्द के देने वा ज्ञान के देने में समर्थ आप **विश्वतः** सब ओर से **गात्राणि** शरीरों अर्थात् शरीरधारियों को उसे देने के लिए **पर्येषि** प्राप्त होते हो । किन्तु **अतप्ततनूः** जिसने शरीर को तपाया नहीं है, अर्थात् जिसने तपस्या नहीं है ऐसा **आमः** कच्चा मनुष्य **तत्** उस आनन्दतत्त्व या ज्ञानतत्त्व को **न अश्नुते** नहीं प्राप्त करता है । **शृतासः इत्** पके हुये लोग ही **वहन्तः** उद्योगी होते हुए **तत्** उस आनन्दतत्त्व या ज्ञानतत्त्व को **सम् आशत** भली-भांति प्राप्त करने में समर्थ होते हैं ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा के पास से आनन्दरस को और आचार्य के पास से ज्ञानरस को तपस्वी मनुष्य ही प्राप्त करने योग्य होते हैं, विलासी लोग नहीं ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से रचे गए सूर्य के कर्मों का वर्णन है ।

८७६. तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा ।।२।।[2]

पदार्थ– **तपोः** तेजस्वी सोम परमात्मा की कृति **पवित्रम्** पवित्रता का साधन सूर्य **दिवः पदे** द्युलोक में **विततम्** फैला हुआ है । **अस्य** इस सूर्य की **अर्चन्तः** दीप्त होती हुई **तन्तवः** किरणें **व्यस्थिरन्** विविध स्थानों में स्थित होती हैं । **अस्य** इस सूर्य की **आशवः** शीघ्रगामी किरणें **पवितारम्** शुद्धिकर्ता वायु

---

१. ऋ० ९।८३।१, 'वहन्तुस्तत् समाशत' इति पाठः । साम० ५६५ ।
२. ऋ० ९।८३।२, 'ऽर्चन्तो,' 'पवितार,' 'रोहन्ति तेजसा' इत्यत्र क्रमेण 'शोचन्तो', 'पवीतारं,' 'तिष्ठन्ति 'चेतसा' इति पाठः ।

की **अवन्ति** रक्षा करती हैं । इसी सूर्य के **तेजसा** ताप से, समुद्र के जल भाप बनकर **दिवः पृष्ठम्** आकाश के पृष्ठ पर **अधि रोहन्ति** चढ़ते हैं और मेघ के आकार को प्राप्त करते हैं ।।२।।

भावार्थः– परमात्मा ने ही तेजोमय सूर्य रचा है, जिसकी किरणें पदार्थों का शोधन, समुद्रजलों को भाप बनाना, भाप को ऊपर ले जाना, बादल बनाना इत्यादि विविध कार्य करती हैं ।।२।।

तृतीय ऋचा की पूर्वार्चिक में ५९६ क्रमांक पर परमात्मारूप सोम के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां सोम का वर्णन सूर्यरूप में दर्शाते हैं ।

८७७. अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ।।३।।[1]

पदार्थ– यह **अग्रियः** आगे जाने वाला **पृश्निः** सूर्यरूप पवमान सोम **उषसः** उषाओं को **अरूरुचत्** चमकाता है । यह **उक्षा** वर्षाजल से सींचने वाला सूर्य **भुवनेषु** भूमण्डलों में **वाजयुः** दूसरों को अन्न देना चाहता हुआ **मिमेति** बादल के जल को नीचे फेंकता है । **अस्य** इस सूर्य के ही **मायया** कर्म से **मायाविनः** कर्मयुक्त होते हुए वायु, जल, बिजली आदि **ममिरे** पदार्थों का निर्माण करते हैं । और इस सूर्य के ही कर्म से **नृचक्षसः** मनुष्यों को प्रकाश देने वाली **पितरः** पालक किरणें **गर्भम् आदधुः** ओषधी आदियों में गर्भ स्थापित करती हैं ।।३।।

भावार्थ– सौरमण्डल में उषा का प्रादुर्भाव, जल की वर्षा, बिजली चमकना, वायु का चलना, बीजों का अंकुरित होना आदि जो कुछ भी कर्म है वह सब सूर्य के द्वारा ही किया जाता है । इस रूप में उसका महत्त्व जानकर उसका उपयोग शिल्प आदि में करना चाहिए । सूर्य में भी सब शक्ति परमात्मा की ही दी हुई है, इस कारण सूर्य का भी सूर्य परमात्मा है यह भी जानना चाहिए ।।३।।

चतुर्थ अध्याय में पंचम खण्ड समाप्त ।

।।१७।। अथ 'प्र मंहिष्ठाय' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य द्वयृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सोभरिः काण्वः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती) । **स्वरः** १ ऋषभः, २ पञ्चमः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १०७ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां आचार्य, राजा और यज्ञाग्नि का विषय वर्णित है ।

८७८. प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ।।१।।[2]

पदार्थ– हे **उपस्तुतासः** प्रशंसित लोगों ! तुम **मंहिष्ठाय** अतिशय दानी, **ऋताव्ने** सत्यपरायण, **बृहते** महान्, **शुक्रशोचिषे** दीप्त तेज वाले **अग्नये** अग्रनायक आचार्य, राजा वा यज्ञाग्नि के लिए **प्र गायत** प्रकृष्ट रूप से महिमागान करो ।।१।।

---

१. ऋ० ९।८३।३ 'मिमेति भुवनेषु' इत्यत्र 'बिभर्ति भुवनानि' इति पाठः । साम० ५९६ ।
२. ऋ० ८।१०३।८, साम० १०७ ।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि धन, विद्या आदि के दाता, सत्यनिष्ठ, तेजस्वी महान् जन को ही आचार्यरूप में और राजारूप में चुनें, और उन्हें उचित है कि वे बहुत लाभ देने वाले, सत्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले, प्रदीप्त ज्वाला वाले यज्ञाग्नि में मन्त्रोच्चारणपूर्वक होम किया करें ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा, आचार्य, राजा और यज्ञाग्नि का विषय है ।

८७९. आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ।।२।।[1]

पदार्थ– **मघवा** ऐश्वर्यवान्, **समिद्धः** तेजस्वी **द्युम्नी** यशस्वी, **आहुतः** आत्मसमर्पण से, राजकर आदि के प्रदान से एवं हवि-प्रदान से आहुति दिया हुआ परमेश्वर, आचार्य, राजा वा यज्ञाग्नि **वीरवद् यशः** वीरपुत्रों या वीरभावों से युक्त कीर्ति को **आ वंसते** उपासकों, शिष्यों, प्रजाजनों वा यजमानों को प्रदान करता है । **अस्य** इस परमेश्वर, आचार्य, राजा वा यज्ञाग्नि की **भवीयसी** अतिशय होने योग्य **सुमतिः** अनुग्रहबुद्धि या अनुकूलता **नः अच्छ** हमारे प्रति **वाजेभिः** अन्नों, धनों, बलों वा विज्ञानों के साथ **कुवित्** बहुत अधिक **आगमत्** आये ।।२।।

भावार्थ– मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर की उपासना से, गुरु के प्रति श्रद्धा से, राजनियमों के पालन में और यज्ञाग्नि में हवि देने से यथायोग्य वीर सन्तान, वीरभाव, धन, अन्न, बल, आरोग्य, कीर्ति आदि की प्राप्ति करें ।।२।।

।।१८।। अथ 'तं ते मदं' इत्यादिकस्याष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ३८३ पर परमेश्वर के गुण-कर्मों के विषय में व्याख्या की जा चुकी है । यहां परमेश्वर, आचार्य और राजा का विषय वर्णित है ।

८८०. तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ।।१।।[2]

पदार्थ– हे **अद्रिवः** किसी से विदारण न किये जा सकने वाले तथा स्वयं दोषों और शत्रुओं का विदारण करने वाले परमात्मन्, आचार्य वा राजन् ! **ते** आपके **तम्** उस प्रसिद्ध **मदम्** आनन्दप्रद ज्ञान वा बल की हम **गृणीमसि** स्तुति करते हैं, जो ज्ञान वा बल **वृषणम्** सुख आदि की वर्षा करने वाला, **पृक्षु** देवासुरसंग्रामों में **सासहिम्** अतिशय रूप से असुरों का पराभव करने वाला, **उ** और **हरिश्रियम्** मनोहर शोभा वाला है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा के समान आचार्य और राजा का भी ज्ञान वा बल अत्यधिक विशाल, प्रजाओं और शिष्यों को सुख देने वाला, विपत्तियों का विदारण करने वाला, कीर्ति देने वाला और उज्ज्वल होवे ।।१।।

---

१. ऋ० ८।१०३।९, 'भवीयस्यच्छा' इत्यत्र 'नवीयस्यच्छा' इति पाठः ।
२. ऋ० ८।१५।४, अथ० २०।६१।१, उभयत्र 'पृक्षु' इत्यत्र 'पृत्सु' इति पाठः । साम० ३८३ ।

अगले मन्त्र में परमेश्वर, आचार्य और राजा को सम्बोधन है ।

८८१. येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ।।२।।[1]

पदार्थ– हे इन्द्र अर्थात् परमात्मन्, आचार्य वा राजन् ! **येन** जिस आनन्द, ज्ञान वा बल से, आप **आयवे** कर्मयोगी, पुरुषार्थी **मनवे च** और मननशील जन के लिए **ज्योतींषि** अन्तःप्रकाशों एवं बाह्य प्रकाशों को **विवेदिथ** प्राप्त कराते हो, उस आनन्द, ज्ञान वा बल से **मन्दानः** आनन्दित होते हुए आप **अस्य बर्हिषः** इस हृदयासन पर, कुशासन पर वा राजसिंहासन पर **वि राजसि** विशेष रूप से शोभित होते हो ।।२।।

भावार्थ– परमेश्वर आचार्य और राजा से आनन्द, ज्ञान वा बल प्राप्त करके सब लोग सुखी, विज्ञानवान्, बलवान्, पुरुषार्थी और मननशील होते हुए जीवन में सफल हों ।।२।।

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं परमेश्वर, आचार्य और राजा को सम्बोधन है ।

८८२. तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ।।३।।[2]

पदार्थ– हे इन्द्र अर्थात् परमात्मन् आचार्य वा राजन् ! **पूर्वथा** पूर्वकाल के समान **अद्य** आज भी **उक्थिनः** स्तोताजन, शास्त्रों का अध्ययन करने वाले शिष्यजन वा प्रशंसक प्रजाजन **ते** आपके **तत्** उस आनन्द- ज्ञान बल-धन-प्रदान आदि के कर्म की **अनु स्तुवन्ति** अनुक्रम से स्तुति करते हैं। आप **दिवे दिवे** प्रतिदिन **वृषपत्नीः** वृष अर्थात् धर्म जिनका रक्षक है ऐसे **अपः** कर्मों को **जय** वश में कीजिए व हमें प्राप्त कराइये, जैसे सूर्यरूप इन्द्र **वृषपत्नी** बादल जिनका पति है, ऐसे **अपः** जलों को वश करता तथा बरसाता है ।।३।।

इस मन्त्र में श्लिष्ट व्यङ्ग्योपमालङ्कार है ।।३।।

भावार्थ– जैसे परमेश्वर सबके हृदय में धर्म की प्रेरणा करता है, वैसे ही गुरुजनों को शिष्यों में और राजा को प्रजाजनों में धर्म की प्रेरणा सदा करनी चाहिए ।।३।।

।।१९।। अथ 'श्रुधी हवं' इत्यादिकस्यैकोनविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** तिरश्चीराङ्गिरसः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३४६ क्रमांक पर परमात्म-प्रार्थना के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां परमात्मा, आचार्य और राजा तीनों को सम्बोधन है ।

८८३. श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ८।१५।५, अथ० २०।६१।२ ।
२. ऋ० ८।१५।६, अथ० २०।६१।३ ।
३. ऋ० ८।९५।४, साम० ३४६ ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** दोष दूर करने वाले परमात्मन्, आचार्य वा राजन् ! **यः** जो मनुष्य **त्वा** आपको **सपर्यति** पूजता वा सत्कृत करता है, उस **तिरश्च्याः** पुरुषार्थी की **हवम्** पुकार को **श्रुधि** सुनो । **सुवीर्यस्य** उत्कृष्ट बल से युक्त **गोमतः** प्रशस्त गाय, वाणी आदि से युक्त **रायः** विद्या, धन-धान्य आदि ऐश्वर्य की **पूर्धि** पूर्ति करो। आप **महान्** महान् **असि** हो ।।१।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर अपने पूजक पुरुषार्थी जनों को सब ऐश्वर्यों से पूर्ण करता है वैसे ही राजा प्रजाओं से पुरुषार्थ करवाकर उन्हें धन-धान्य आदि से पूर्ण करे और आचार्य पुरुषार्थी शिष्यों को अपरा विद्या, परा विद्या, आरोग्य, सदाचार आदियों से परिपूर्ण करे ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा, आचार्य और राजा को सम्बोधन है ।

८८४. यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ।।२।।[1]

पदार्थ– हे **इन्द्र** परमात्मन्, आचार्य वा राजन् ! **यः** जिस उपासक, शिष्य वा प्रजाजन ने **ते** आपके लिए **नवीयसीम्** अतिशय नवीन, **मन्द्राम्** आनन्दजनक **गिरम्** प्रार्थना की वाणी **अजीजनत्** उच्चारण की है, और **चिकित्विन्मनसम्** मन को जागरूक करने वाली, **प्रत्नाम्** श्रेष्ठ, **ऋतस्य पिप्युषीम्** सत्य को बढ़ाने वाली **धियम्** ध्यान-धारा वा बुद्धि को **अजीजनत्** तेरे प्रति प्रेरित किया है, उसके लिए **रायः** श्रेष्ठ गुण, श्रेष्ठ धन, श्रेष्ठ विद्या, श्रेष्ठ आचरण आदि ऐश्वर्य की **पूर्धि** पूर्ति कीजिए । [यहां 'रायः पूर्धि' यह वाक्य-पूर्ति के लिए पूर्व मन्त्र से यहां लाया गया है] ।।२।।

भावार्थ– जो निश्छल मन, समर्पण-भावना और हृदयस्पर्शी शब्दों से परमात्मा, आचार्य वा राजा से याचना करता है उसकी उत्तम गुण, उत्तम धर्म, उत्तम धन, उत्तम विद्या आदि की वृद्धि वे सदा करते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा, आचार्य और राजा का विषय है ।

८८५. तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थ्यानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ।।३।।[2]

पदार्थ– तम् उ उसी **इन्द्रम्** परमात्मा, आचार्य वा राजा की, हम **स्तवाम** स्तुति करें, प्रशंसा करें, **यम्** जिसे **गिरः** वेदवाणियां और **उक्थ्यानि** स्तोत्र, स्वागत-वचन वा अभिनन्दन-वचन **वावृधुः** कीर्तिगान द्वारा बढ़ाते हैं । हम **अस्य** इस परमात्मा, आचार्य वा राजा के **पुरूणि** बहुत से **पौंस्या** बल, धन, विद्या, सद्गुण आदियों को **सिषासन्तः** अन्यों को देने की इच्छा वाले होकर **वनामहे** मांगते हैं ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा, आचार्य वा राजा से जो धन, बल, विद्या आदि प्राप्त होता है उसे स्वयं अकेले ही उपभोग नहीं करना चाहिए, किन्तु अन्यों को भी देना चाहिए; क्योंकि किसी को केवल अपनी उन्नति से ही सन्तोष करना उचित नहीं है, प्रत्युत सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।।३।।

---

१. ऋ० ८।९५।५ 'इन्द्र यस्ते नवीयसीं' इति पाठः ।

२. ऋ० ८।९५।६ ।

इस खण्ड में अध्ययन, अध्यापन, ज्ञानरस, ब्रह्मानन्दरस, परमेश्वर, आचार्य, राजा आदि विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

चतुर्थ अध्याय में षष्ठ खण्ड समाप्त । चतुर्थ अध्याय समाप्त ।

द्वितीय प्रपाठक में द्वितीय अर्ध समाप्त ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः तृतीये प्रपाठके प्रथमोऽर्धश्च

।।१।। अथ 'प्र त आश्विनीः' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अकृष्टा माषाः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।।

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर तथा उसके उपासक का विषय वर्णित है ।

२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
८८६. प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि ।
१२ २र ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रकर्ता परमात्मन् ! **ते** आपकी **आश्विनीः** व्याप्त, **दिव्याः** आकाश में स्थित, **धेनवः** तृप्ति प्रदान करने वाली मेघरूप गौएं **पयसा** वर्षाजलरूप दूध से **धरीमणि** भूमि पर **प्र असृग्रन्** छूटकर आती हैं। वैसे ही, हे **ऋषिषाण** ऋषियों से सेवनीय परमेश ! **ये** जो **वेधसः** स्तुतियों के विधाता आपके उपासक **त्वा** आपको **मृजन्ति** स्तुतियों से अलंकृत करते हैं **ते** वे **अन्तरिक्षात्** हृदयाकाश से **स्थाविरीः** समृद्ध भक्तिधाराओं को **प्र असृक्षत** आपके प्रति प्रकृष्ट रूप से छोड़ते हैं ।।१।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर वर्षा-धाराओं को हमारे प्रति छोड़ता है, वैसे ही उसके प्रति हमें भक्ति- धाराएं छोड़नी चाहिएं ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा तथा उससे रचित सूर्य का विषय है ।

३ २३ १२ ३ १ २ ३१ २ ३१२ २र ३ १ २
८८७. उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
१ २ ३ २३ १ २ ३ २३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ।।२।।[2]

पदार्थ– प्रथम सूर्य के पक्ष में । **ध्रुवस्य सतः** आकाश में स्थिर रूप से विद्यमान **पवमानस्य** पवित्रकर्ता सूर्य की **केतवः** प्रकाशक **रश्मयः** किरणें **उभयतः** भूगोल के दोनों गोलार्धों में **परियन्ति** पहुंचती हैं। **यदि** जब **हरिः** रसों को हरने वाला किरण-समूह **पवित्रे अधि** अन्तरिक्ष में **मृज्यते** भेजा जाता है, तब **योनौ सत्ता** अन्तरिक्ष में स्थित वह **कलशेषु** मंगल, बुध, चन्द्रमा आदि ग्रहोपग्रह-रूप कलशों में **नि षीदति** पहुंचता है, और पहुंचकर उन्हें प्रकाशित करता है ।।

---

१. ऋ० ९।८६।४, प्रथमे पादे 'धेनवो' इत्यत्र 'धीजुवो' इति पाठः ।' प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत' इति च तृतीयः पादः ।

२. ऋ० ९।८६।६, 'योनौ' इत्यत्र 'योना' इति पाठः ।

द्वितीय परमात्मा के पक्ष में । **ध्रुवस्य सतः** स्थिर, अजर, अमर, सनातन **पवमानस्य** पवित्रकर्ता परमात्मा की **केतवः** प्रज्ञापक **रश्मयः** दिव्य प्रकाश-किरणें **उभयतः** प्रातः सायं दोनों कालों में, संध्या-वंदन के समय **परि यन्ति** उपासक को प्राप्त होती हैं। **यदि** जब **हरिः** दोषों का हर्ता परमात्मा **पवित्रे अधि** पवित्र हृदय के अन्दर **मृज्यते** भक्तिभावरूप अलंकारों से अलंकृत होता है, तब **योनौ सत्ता** हृदयरूप घर में स्थित वह **कलशेषु** अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि कोशों में **निषीदति** स्थिति-लाभ करता है, और वहां स्थित होता हुआ आत्मा, मन, बुद्धि आदि सबको प्रभावित करता है ।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे सोमरस दशापवित्र नामक छन्नी के मार्ग से होता हुआ द्रोणकलशों में स्थित होता है, और जैसे सूर्य-रश्मि अन्तरिक्ष-मार्ग से ग्रहोपग्रहों में स्थित होती है, वैसे ही परमेश्वर हृदय-मार्ग से देहस्थ पंच कोशों में स्थित होता है ।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर का वर्णन है ।

८८८. विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।।३।।[1]

पदार्थ– हे **विश्वचक्षः** विश्वद्रष्टा परमेश ! **ऋभ्वसः** सूर्यकिरणों को ग्रहोपग्रहों में फेंकने वाले अथवा बुद्धिमान् उपासकों को अपनी शरण में लेने वाले **प्रभोः सतः** समर्थ होते हुए **ते** आपकी **केतवः** प्रज्ञाएं **विश्वा धामानि** सब लोकों में **परि यन्ति** पहुंचती हैं, अर्थात् सब लोकों में आपका बुद्धिकौशल दिखायी देता है । हे **सोम** पवित्रकर्ता परमात्मन् ! **व्यानशी** सर्वान्तर्यामी आप **धर्मणा** अपने धर्म अर्थात् गुण-कर्म-स्वभाव से **पवसे** सबको पवित्र करते हो । **विश्वस्य** सम्पूर्ण **भूमनः** ब्रह्माण्ड के **पतिः** अधीश्वर आप **राजसि** अत्यधिक शोभा पाते हो ।।३।।

श्लेष से इस मन्त्र की सूर्य के पक्ष में भी योजना करनी चाहिए ।।३।।

भावार्थ– जैसे सूर्य की किरणें ग्रह-उपग्रह आदियों में दिखायी देती हैं, वैसे ही परमात्मा के बुद्धि-कौशल सर्वत्र दिखायी देते हैं। जैसे सूर्य सबको पवित्र करता है, वैसे ही परमेश्वर भी करता है । जैसे सूर्य सौरलोक का अधिपति है, वैसे ही परमेश्वर समस्त ब्रह्माण्ड का अधिपति है ।।३।।

।।२।। अथ 'पवमानो' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अमहीयुराङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४८४ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां परमात्मा और आचार्य दोनों का विषय वर्णित है ।

८८९. पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ।।१।।[2]

---

१. ऋ० ९।८६।५, द्वितीय पादे 'प्रभोस्ते' इति पाठः । 'व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः' इति तृतीय पादः ।
२. ऋ० ९।६१।१६, साम० ४८४ ।

पदार्थ– **पवमानः** चरित्र को पवित्र करने वाले परमात्मा वा आचार्य ने **दिवः** आकाश की **चित्रम्** अद्भुत **तन्यतुं न** बिजली के समान **वैश्वानरम्** सबका नेतृत्व करने वाली **बृहत्** महान् **ज्योतिः** विज्ञान-ज्योति को अथवा ज्योतिष्मती प्रज्ञा को **अजीजनत्** उत्पन्न कर दिया है ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा और योगप्रशिक्षक आचार्य की कृपा से मनुष्यों के अन्तःकरणों में तमोवृत्ति का विनाश और दिव्य ज्योति, विज्ञान-प्रकाश तथा ज्योतिष्मती प्रज्ञा का उदय होता है ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और आचार्य के विषय का कथन है ।

८९०. पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ।।२।।[1]

पदार्थ– हे **पवमान** जीवन को पवित्र करने वाले **राजन्** तेजस्वी परमात्मन् वा आचार्य ! जो **तव** आपका **अदुच्छुनः** दुर्गति तथा दुःख न उत्पन्न करने वाला, **मदः** उत्साहकारी **रसः** आनन्दरस वा ज्ञानरस है, वह **अव्यम्** अविनश्वर, **वारम्** दोषनिवारक आत्मा को **वि अर्षति** विविध रूप में प्राप्त होता है ।।२।।

भावार्थ– परमेश्वर वा आचार्य से प्रसूत आनन्दरस वा विज्ञानरस को प्राप्त करके मनुष्य का आत्मा कृतार्थ हो जाता है ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं का विषय वर्णित है ।

८९१. पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ।।३।।[2]

पदार्थ– हे परमात्मन् वा आचार्य ! **पवमानस्य** चित्त की शुद्धि करने वाले **ते** आपका **द्युमान्** दीप्तिमान् **रसः** आनन्दरस वा ज्ञानरस और **दक्षः** ब्रह्मबल **वि राजति** विशेष रूप से शोभित है । वह **स्वःदृशे** मोक्ष-सुख के दर्शनार्थ **विश्वं ज्योतिः** सम्पूर्ण अन्तर्दृष्टि को देता है ।।३।।

भावार्थ– आचार्य की सेवा और परमात्मा की उपासना करके लोकविद्या, ब्रह्मविद्या, परम आह्लाद, ब्रह्मवर्चस और दिव्य दृष्टि प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष पाने योग्य हो जाते हैं ।।३।।

।।३।। अथ 'प्र यद् गावो' इत्यादिकस्य तृतीयस्य षड्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेध्यातिथिः काण्वः। **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४९१ क्रमांक पर परमात्मा से उत्पन्न होने वाले आनन्दरस के विषय में व्याख्यात हुई थी । यहां आचार्य से उत्पन्न होने वाले ज्ञान का विषय वर्णित है ।।

८९२. प्र यद् गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ९।६१।१७, 'पवमानस्य ते रसो' इति प्रथमः पादः ।

२. ऋ० ९।६१।१८ 'पवमान रसस्तव' इति प्रथमः पादः ।

३. ऋ० ९।४१।१, 'यद्' इत्यत्र 'ये' इति पाठः । साम० ४९१ ।

पदार्थ– यत् जब **गावः न** गायों के समान **भूर्णयः** भरण-पोषण करने वाले, **त्वेषाः** उज्ज्वल, **अयासः** शिष्यों के प्रति जाने वाले ज्ञानरस **प्र अक्रमुः** प्रदान किये जाने आरंभ होते हैं, तब वे **त्वचम्** ढकने वाली **कृष्णाम्** अविद्या-रात्रि को **घ्नन्तः** नष्ट कर देते हैं ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जब शिष्य विविध लौकिक विद्याओं और ब्रह्मविद्याओं को प्राप्त कर लेते हैं, तब सारी अविद्यारूप निशाएं दूर हो जाती हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य का विषय वर्णित है ।

८९३. सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् । साह्याम दस्युमव्रतम् ।।२।।[1]

पदार्थ– हम **सेतुम्** रुकावट को **अति** अतिक्रान्त अर्थात् पार करके **सुवितस्य** सुप्राप्त आनन्द-रसागार परमात्मा के एवं विद्यारसागार आचार्य के **दुराय्यम्** दुष्प्राप्य आनन्दरस वा विद्यारस को **वनामहे** सेवन करते हैं । उससे हम **अव्रतम्** व्रतविरोधी वा सत्कर्मविरोधी **दस्युम्** उपक्षयकारी काम, क्रोध, आदि छहों रिपुओं को **साह्याम** पराजित कर देवें ।।२।।

भावार्थ– गुरुओं के सत्कार से और परमात्मा की उपासना से विद्या और आनन्द को प्राप्त करके, बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओं को पराजित करके सत्कर्मों का आचरण करना चाहिए ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और आचार्य का ही विषय वर्णित है ।

८९४. शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ।।३।।[2]

पदार्थ– शुष्मिणः बलवान् **पवमानस्य** चित्तशुद्धिकर्ता परमात्मा वा आचार्य का **स्वनः** आनन्दप्रवाह वा ज्ञानप्रवाह का शब्द **वृष्टेः स्वनः इव** वर्षा के शब्द के समान है, उसे मैं **शृण्वे** सुन रहा हूं। **दिवि** आकाश के समान मेरे आत्मा में **विद्युतः चरन्ति** बिजलियों के सदृश अध्यात्म-ज्योतियां विचर रही हैं ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– जैसे वर्षाकाल में शब्द के साथ बादल से जल-धाराएं गिरती हैं और बिजलियां चमकती हैं, वैसे ही आचार्य के पास से ज्ञान का प्रवाह होने पर शब्द आचार्य के मुख से निकलते हैं और ज्ञान को ग्रहण करने वाले जीवात्मा में ज्ञान की ज्योतियां चमकती हैं। उसीप्रकार परमात्मा के पास से आनन्दरस का प्रवाह होने पर भी कोई दिव्य वर्षा की रिमझिम सी सुनाई देती है और अलौकिक ज्योतियों का भी अनुभव होता है ।।३।।

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं का विषय वर्णित है ।

८९५. आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्ववत् सोम वीरवत् ।।४।।[3]

---

१. ऋ० ९।४१।२, 'दुराव्यम्', 'साह्वांसो', इति पाठः ।

२. ऋ० ९।४१।३ ।

३. ऋ० ९।४१।४, 'अश्वावद् वाजवत् सुतः' इति तृतीयः पादः ।

पदार्थ– हे **इन्दो** दीप्तिमान्, ज्ञानरस से भिगोने वाले **सोम** प्रेरक परमात्मन् वा आचार्य ! आप हमारे लिए **गोमत्** श्रेष्ठ गाय से युक्त वा श्रेष्ठ वाणी से युक्त, **हिरण्यवत्** सुर्वण से युक्त, ज्योति से युक्त वा यश से युक्त, **अश्ववत्** घोड़ों से युक्त वा प्राणों से युक्त, **वीरवत्** वीर पुत्रों से युक्त वा वीरभावों से युक्त, **महीम्** बड़ी **इषम्** इच्छासिद्धि को **आ पवस्व** प्राप्त कराइये ।।४।।

भावार्थ– परमात्मा और आचार्य की कृपा से विद्यावान् होकर हम सबप्रकार की लौकिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त करके सुखी होवें ।।४।।

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं का विषय कहा गया है ।

८९६. पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ।।५।।[1]

पदार्थ–हे **विश्वचर्षणे** विश्व ब्रह्माण्ड के द्रष्टा परमात्मन् वा सब विद्याओं के द्रष्टा आचार्य ! आप **पवस्व** अन्तःप्रकाश एवं ज्ञानरस को प्रवाहित करो । उससे **मही रोदसी** महिमामय आत्मा और मन को **आपृण** पूर्ण कर दो, **न** जैसे **उषाः** उषा और **सूर्यः** सूर्य **रश्मिभिः** किरणों से **मही रोदसी** महान् द्यावा-पृथिवी को, पूर्ण करते हैं ।।५।।

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार है ।।५।।

भावार्थ–जैसे उषा और सूर्य के प्रकाश से द्यावापृथिवी भर जाते हैं, वैसी ही परमात्मा और आचार्य द्वारा दी गयी दिव्य अन्तर्ज्योति तथा ज्ञानज्योति से मनुष्य के आत्मा और मन परिपूर्ण होते हैं ।।५।।

अगले मन्त्र में परमात्मा तथा आचार्य से प्रार्थना की गयी है ।

८९७. परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ।।६।।[2]

पदार्थ– हे **सोम** रसागार परमात्मन् वा आचार्य ! आप **शर्मयन्त्या** सुख देने वाली **धारया** अध्यात्मप्रकाश की धारा वा ज्ञान की धारा के साथ **विश्वतः** सब ओर से **नः** हमें **परि सर** प्राप्त हों । **रसा इव** जैस रसीली वर्षा **विष्टपम्** भूलोक को प्राप्त होती है ।।६।।

यहाँ उपमालंकार है । 'सरा, रसे' में वृत्त्यनुप्रास है ।।६।।

भावार्थ– जैसे बादल में से पर्वतों पर हुई वर्षा नदीरूप में भूमि के प्रदेशों को सींचती हुई समुद्र को प्राप्त होती है, वैसे ही परमात्मा वा आचार्य से निकली हुई अन्तःप्रकाश की धारा मन, बुद्धि आदियों को सींचती हुई जीवात्मा को प्राप्त होती है ।।६।।

इस खण्ड में परमेश्वर और उपासक, परमेश्वर और उसके रचे हुए सूर्य एवं परमात्मा और आचार्य का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।

पंचम अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त।

---

१. ऋ० ९।४१।५ ।
२. ऋ० ९।४१।६ ।

।।४।। अथ 'आशुरर्ष' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य षड्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** बृहन्मतिराङ्गिरसः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का आह्वान है ।।

८९८. आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेणा धाम्ना। यत्रा देवा इति ब्रुवन् ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **बृहन्मते** महामति से युक्त एवं महामति को देने वाले परमेश ! **यत्र देवाः** जहां दिव्यगुण रहते हैं वहां मेरा निवास है **इति ब्रुवन्** यह कहते हुए आप **प्रियेण धाम्ना** अपने मधुर तेज के साथ **आशुः** शीघ्रकारी होते हुए **परि अर्ष** हमारे जीवन में चारों ओर व्याप्त हो जाएं ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा की कृपा प्राप्त करने के लिए अपने आत्मा में दिव्य गुणों को धारण करना चाहिए ।।१।।

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं ।।

८९९. परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः। वृष्टिं दिवः परि स्रव ।।२।।[2]

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रतादायक रसागार परमेश्वर ! आप **अनिष्कृतम्** अपरिष्कृत हृदय को **परिष्कृण्वन्** परिष्कृत करते हुए, और **जनाय** उपासक मनुष्य के लिए **इषः** आक्रमणकारी विघ्नों की **यातयन्** हिंसा करते हुए **दिवः** आनन्दमय कोश से **वृष्टिम्** आनन्दरस की वर्षा **परि स्रव** प्रवाहित कीजिए ।।२।।

भावार्थ–जैसे बादल से वर्षा होने पर सूखी भूमि सरस हो जाती है, वैसे ही सबके आत्मा में स्थित परमात्मा के पास से आनन्दरस की वर्षा होने पर आत्मा, मन, बुद्धि आदि सब सरस और सप्राण हो जाते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रस का प्रवाह वर्णित है ।

९००. अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ। सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ।।३।।[3]

पदार्थ– अयम् यह हमसे अनुभव किया जाता हुआ **सः** वह प्रसिद्ध ब्रह्मानन्दरस है, **यः** जो **रघुयामा** शीघ्र गति वाला होता हुआ **दिवः परि** आनन्दमय परमेश्वर के पास से **पवित्रे आ** पवित्र हृदय में आकर **सिन्धोः ऊर्मौ** आत्मारूप समुद्र की तरंग में **व्यक्षरत्** क्षरित हो रहा है ।।३।।

भावार्थ– जैसे सोमौषधि का रस दशापवित्र नामक छन्नी से क्षरित होकर द्रोणकलश में गिरता है, अथवा जैसे चाँदनी का रस पवित्र अन्तरिक्ष से क्षरित होकर समुद्र में गिरता है, वैसे ही परमात्मा के पास से आया हुआ आनन्दरस पवित्र हृदय से क्षरित होकर अन्तरात्मा में आता है ।।३।।

---

१. ऋ० ८।३९।१, 'ब्रुवन्' इत्यत्र 'ब्रवन्' इति पाठः।
२. ऋ० ९।३९।२।
३. ऋ० ९।३९।४।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-प्रदाता परमेश्वर का वर्णन है ।

९०१. सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ।।४।।[1]

पदार्थ– **सुतः** जिसने अपने में से आनन्दरस को प्रवाहित किया है ऐसा यह सोमनामक परमात्मा **त्विषिम्** दीप्ति को **दधानः** धारण करता हुआ **ओजसा** बलपूर्वक **पवित्रे** पवित्र हृदय वा आत्मा में **आ एति** आ रहा है, और **विचक्षाणः** विशेष रूप से अन्तर्दृष्टि को दे रहा है तथा **विरोचयन्** विशेष कान्ति को प्रदान कर रहा है ।।४।।

भावार्थ– परमात्मा के साथ मैत्री स्थापित करता हुआ उपासक अन्तर्दृष्टि तथा ब्रह्मतेज से युक्त होकर परमानन्दमय हो जाता है ।।४।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

९०२. आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ।।५।।[2]

पदार्थ– पवमान सोम अर्थात् चित्तशोधक परमेश्वर **सुतः** हृदय में प्रकट होकर **परावतः** पराविद्या के ज्ञानी **अथ उ** और **अर्वावतः** अपरा विद्या के ज्ञानी उपासकों को **आ विवासन्** संमानित करता है । उस परमेश्वर से झरा हुआ **मधु** मधुर आनन्दरस **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए **सिच्यते** सींचा जाता है ।।५।।

भावार्थ– जो अपने आपको मधुर ब्रह्मानन्द- रस से स्नान कराते हैं वे निर्मल अन्तःकरण वाले उपासक सर्वथा क्लेशों से छूटकर परमगति मोक्ष को प्राप्त करते हैं ।।५।।

अगले मन्त्र में कौन ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं इसका कथन है ।

९०३. समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ।।६।।[3]

पदार्थ– जो उपासक लोग **समीचीनाः** परस्पर मिलकर **अनूषत** पवित्रकर्ता परमात्मा की स्तुति करते हैं, और **हरिम्** अज्ञान, दुःख आदि को हरने वाले उसे **अद्रिभिः** अखण्डित ध्यानों से **हिन्वन्ति** अपने अन्दर बढ़ाते हैं, वे **इन्दुम्** सराबोर करने वाले ब्रह्मानन्द-रस को **इन्द्राय** अपने जीवात्मा को **पातवे** पिलाने में समर्थ होते हैं ।।६।।

भावार्थ– मनुष्यों को योग्य है कि ध्यानयोग द्वारा परमात्मा की आराधना करके ब्रह्मानन्द को प्राप्त करें ।।६।।

।।५।। अथ 'हिन्वन्ति सूर' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भृगुर्वारुणिर्जमदग्नि-भार्गवो वा । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

---

१. ऋ० ९।३९।३ ।

२. ऋ० ९।३९।५ ।

३. ऋ० ९।३९।६ 'योनावृतस्य सीदत' इति तृतीयः पादः ।

प्रथम ऋचा में परमात्मा का विषय कहते हैं ।

९०४. हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ।।१।। [1]

पदार्थ– **सूरम्** सूर्य को **उस्रयः** किरणें **हिन्वन्ति** प्राप्त होती हैं, **स्वसारः** विवाहित **जामयः** बहिनें **पतिम्** अपने पति को **हिन्वन्ति** प्राप्त होती हैं । इसी प्रकार **महीयुवः** पूजा के इच्छुक उपासक **महाम्** महान्, **इन्दुम्** रस से सराबोर करने वाले उपास्य परमात्मा को **हिन्वन्ति** प्राप्त होते हैं ।।१।।

यहां अप्रस्तुत किरणों (उस्रा) और बहिनों (जामयः) का तथा प्रस्तुत पूजेच्छुक उपासकों (महीयुवः) का 'हिन्वन्ति' रूप एक क्रिया से योग होने के कारण दीपक अलंकार है । साथ ही 'स्वसारः' और 'जामयः' दोनों पदों के बहिन वाचक होने के कारण पुनरुक्ति प्रतीत होने से तथा व्याख्यात प्रकार से उसका परिहार हो जाने से पुनरुक्तवदाभास अलंकार भी है । 'सूर, सारो' तथा 'महा, मही' में छेकानुप्रास है ।।१।।

भावार्थ– जो लोग परमात्मा को पाने के लिए सर्वभाव से तत्पर होते हैं वे अन्त में उसे पा ही लेते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है ।

९०५. पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः । विश्वा वसून्या विश ।।२।। [2]

पदार्थ– हे **पवमान** चित्त को शुद्ध करने वाले **देव** आनन्ददायक सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! **देवेभ्यः** प्रकाशक, ज्ञान की साधन मन, बुद्धि, आंख, कान, नासिका, त्वचा और जिह्वा के लिए अर्थात् उन्हें प्रकाशनशक्ति देने के लिए **सुतः** प्रवृत्त आप **रुचारुचा** अधिकाधिकप्रकाशन-शक्ति से **विश्वा वसूनि** उन सब निवासक मन, बुद्धि आदियों में **आ विश** प्रविष्ट होवो । भाव यह है कि आपके द्वारा दी गयी ज्ञान-प्रदान-शक्ति से पुनः- पुनः अनुप्राणित ये मन, बुद्धि आदि सदा ही ज्ञान अर्जन करने में जीवात्मा के साधन बने रहें ।।२।।

भावार्थ– जैसे सूर्य के प्रकाश से सब ग्रहोपग्रह प्रकाशित होते हैं, वैसे ही परमेश्वर के द्वारा प्रकाशित मन, बुद्धि, चक्षु आदि ज्ञान के ग्राहक होते हैं ।।२।।

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं ।

९०६. आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ।।३।। [3]

पदार्थ– हे **पवमान** चित्तशोधक परमेश्वर ! आप **देवेभ्यः** हम प्रकाशयुक्त उपासकों के लिए **इषे** अभीष्टसिद्धि के अर्थ **सुष्टुतिम्** शुभ स्तुतियुक्त अर्थात् सुप्रशंसित **वृष्टिम्** आनन्दवर्षा को, **दुवः** सेवा की भावना को और **संयतम्** संयम की भावना को **आ पवस्व** प्राप्त कराइऐ ।।३।।

---

१. ऋ० ९।६५।१।

२. ऋ० ९।६५।२, 'दे॒वो दे॒वेभ्य॒स्परि॑' इति द्वितीयः पादः।

३. ऋ० ९।६५।३।

भावार्थ– उपासकों को परमेश्वर की उपासना से परम आनन्द, दीनों की सेवा में रस और विषयों से मन तथा इन्द्रियों का निग्रह प्राप्त होता है ।।३।।

इस खण्ड में परमेश्वर का तथा उससे प्राप्त होने वाले ब्रह्मानन्द का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

पंचम अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

।।६।। अथ 'जनस्य गोपा' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सुतंभर आत्रेयः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।।

प्रथम ऋचा में परमेश्वर का स्वरूप वर्णित है ।।

९०७. जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ।।१।।[1]

पदार्थ–जागृविः जागरूक परमेश्वर **जनस्य** सब मनुष्यों का **गोपाः** रक्षक **अजनिष्ट** बना हुआ है । **सुदक्षः** उत्तम बल वाला वह **अग्निः** अग्रनायक परमेश्वर **नव्यसे** अतिशय नवीन **सुविताय** भद्र-प्राप्ति के लिए सहायक होता है । **घृतप्रतीकः** तेजःस्वरूप, **शुचिः** पवित्र वह **भरतेभ्यः** धारणा, ध्यान, समाधि में स्थित जनों के लिए **दिविस्पृशा** आत्मा को छूने वाले **बृहता** महान् तेज से **द्युमत्** दीप्यमान होता हुआ **वि भाति** शोभित होता है ।।१।।

भावार्थ– तेजःस्वरूप परमेश्वर उपासकों का रक्षक होता हुआ उन्हें दिव्य तेज प्रदान करके कृतार्थ करता है ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा की प्राप्ति का विषय है ।

९०८. त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ।।२।।[2]

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक परमेश्वर ! **गुहा हितम्** गुहा में निहित अर्थात् गुह्य, **वने वने** प्रत्येक किरण में वा प्रत्येक जीव में **शिश्रियाणम्** विद्यमान **त्वाम्** आपको **अङ्गिरसः** तपस्वी प्राणायामाभ्यासी जन **अन्वविन्दन्** प्राप्त कर लेते हैं । **सः** वह आप **मथ्यमानः** ध्यान किये जाते हुए **महत् सहः** उपासक के महान् बल **जायसे** हो जाते हो । हे **अङ्गिरः** प्राणों के समान प्रिय ! **त्वाम्** आपको **सहसः** बल का **पुत्रम्** पुतला **आहुः** कहते हैं ।।२।।

भावार्थ– परमेश्वर प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान होता हुआ भी चर्मचक्षु से दिखायी न देने के कारण गुह्य है । तप और ध्यान से ही वह प्राप्त होने योग्य है । ध्यानी लोग उसके महान् बल और तेज का साक्षात्कार करते हैं ।।२।।

---

१. ऋ० ५।११।१, यजु० १५।२७ ।
२. ऋ० ५।११।६, य० १५।२८ ।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा का ही विषय वर्णित है ।।

३१ २ ३१ २३२ ३१ २ ३ १र २र ३ १र २र
९०९. यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।
१ २ ३२ ३२३ २ ३२३ २३ १र २र ३१ २ ३१२
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन् नि होता यजथाय सुक्रतुः ।।३।।[1]

पदार्थ– **यज्ञस्य** अध्यात्म यज्ञ के **केतुम्** ध्वज के समान स्थित अथवा प्रज्ञापक, **प्रथमम्** मुख्य, **पुरोहितम्** सम्मुख निहित **अग्निम्** तेजस्वी परमेश्वर को **नरः** उपासक मनुष्य **त्रिषधस्थे** ज्ञान, कर्म और उपासना ये तीनों जहां एक साथ स्थित होते हैं उस जीवात्मा में **समिन्धते** भली भांति प्रदीप्त करते हैं। **इन्द्रेण** जीवात्मा तथा **देवैः** मन, बुद्धि, प्राण एवं इन्द्रिय रूप देवों के साथ **सरथम्** शरीररूप समान रथ में स्थित, अथवा **इन्द्रेण** सूर्य तथा **देवैः** वायु, जल, पृथिवी, मंगल, बुध, चन्द्र नक्षत्र आदि देवों के साथ **सरथम्** ब्रह्माण्डरूप समान रथ में स्थित **सः** वह **होता** सुख आदि का दाता, **सुक्रतुः** शुभ प्रज्ञा वाला तथा शुभ कर्मों वाला अग्नि नामक परमेश्वर **यजथाय** देह में सब इन्द्रिय आदि में और बाहर सब सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि में सामंजस्य करने के लिए **बर्हिषि** शरीर-यज्ञ वा ब्रहाण्ड-यज्ञ में **निषीदत्** बैठा हुआ है ।।३।।

भावार्थ– अपने अन्तरात्मा में महान् परमात्मा-रूप अग्नि को भली-भांति प्रदीप्त करके उपासनायज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए ।।३।।

।।७।। अथ 'अयं वां' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गृत्समदः शौनकः। **देवते** मित्रा-वरुणौ । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।

प्रथम ऋचा में आत्मा और मन तथा राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री का विषय कहते हैं ।

३१ २ ३ १र २र २उ ३१ २३ १२
९१०. अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ।।१।।[2]

पदार्थ– **प्रथम** आत्मा और मन के पक्ष में । हे **ऋतावृधा** सत्य को बढ़ाने वाले **मित्रावरुणा** आत्मा और मन ! **वाम्** तुम दोनों के लिए **अयम्** यह **सोमः** ज्ञान एवं कर्म का रस **सुतः** अभिषुत है । तुम दोनों **इह** यहां **मम** मेरे **हवम्** उद्बोधन को **श्रुतम्** सुनो ।।

द्वितीय राजा और प्रधानमन्त्री के पक्ष में । हे **ऋतावृधा** न्याय को बढ़ाने वाले **मित्रावरुणा** राजा और प्रधानमन्त्री ! **वाम्** तुम दोनों के लिए **अयम्** यह **सोमः** राजकर **सुतः** अर्पित है । तुम दोनों **इह** इस राष्ट्र में **मम** मेरे **हवम्** राष्ट्रोन्नति के आह्वान को **श्रुतम्** सुनो ।।१।।

यहां श्लेषालंकार है ।।१।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि अपने आत्मा और मन को उद्बोधन देकर सब प्रकार का उत्कर्ष सिद्ध करें । इसीप्रकार राजा और प्रधानमन्त्री का कर्तव्य है कि वे प्रजाओं से राजकर लेकर प्रजा के हित के लिए उसे व्यय करें ।।१।।

---

१. ऋ० ५।११।२, 'समिन्धते' इत्यत्र 'समीधिरे' इति पाठः ।

२. ऋ० २।४१।४ ।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है ।

१ २ ३१२ ३१र २र ३२ ३१२
९११. राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आशाते ॥२॥[1]

पदार्थ– प्रथम आत्मा और मन के पक्ष में । **अनभिद्रुहा** द्रोह न करने वाले, **राजानौ** राजाओं के समान विद्यमान आत्मा और मन **ध्रुवे** दृढ अंगों वाले, **उत्तमे** सर्वोत्कृष्ट, **सहस्रस्थूणे** हड्डीरूप बहुत सारे खम्भों वाले **सदसि** देहरूप घर में **आशाते** निवास करते हैं ॥

द्वितीय राजा और प्रधानमन्त्री के पक्ष में । **अनभिद्रुहा** प्रजा से द्रोह न करने वाले, **राजानौ** राष्ट्र के उच्चपदों पर विराजमान राजा और प्रधानमन्त्री **ध्रुवे** स्थिर, **उत्तमे** सर्वोत्कृष्ट, **सहस्रस्थूणे** हजार खम्भों वाले **सदसि** सभागृह में **आशाते** आकर बैठते हैं ॥२॥

यहां श्लेषालंकार है ॥२॥

भावार्थ– जैसे आत्मा और मन मनुष्य के जीवन को उन्नत करते हैं, वैसे ही राजा और प्रधानमन्त्री राष्ट्र के जीवन को उन्नत करें ॥२॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय वर्णित है ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र३ १ २ १ २ ३ १ २
९१२. ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥३॥[2]

पदार्थ– प्रथम आत्मा और मन के पक्ष में । **ता** वे दोनों **घृतासुती** तेज को प्रेरित करने वाले, **आदित्या** ज्ञान से प्रकाशमान, **दानुनः पती** दान के अधीश्वर , **सम्राजा** देह के सम्राट् आत्मा और मन **अनवह्वरम्** अकुटिल अर्थात् सरल मार्ग को **सचेते** सेवन करें ॥

द्वितीय राजा और प्रधानमन्त्री के पक्ष में । **ता** वे दोनों **घृतासुती** राष्ट्र में घी-दूध आदि को सींचने वाले, **आदित्या** ज्ञान-प्रकाश से भासमान, **दानुनः पती** दान के स्वामी अर्थात् दान के देने वाले **सम्राजा** तेजस्वी राजा और प्रधानमन्त्री **अनवह्वरम्** अकुटिल व्यवहार को **सचेते** सेवन करें ॥३॥

यहां श्लेषालंकार है ॥३॥

भावार्थ– आत्मा और मन में अगाध शक्ति निहित है । किन्तु उन्हें चाहिए कि वे सरल मार्ग का ही आश्रय लें, कुटिल का नहीं । इसीप्रकार राजा और प्रधानमन्त्री भी सरल मार्ग से ही व्यवहार करते हुए राष्ट्र को उन्नत कर सकते हैं ॥३॥

॥८॥ अथ 'इन्द्रो दधीचो' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री ।**स्वरः** षड्जः ॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १७९ क्रमांक पर जीवात्मा और परमात्मा के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है । यहां जगदीश्वर का कर्म वर्णित किया जा रहा है ।

१ २ ३ २ ३ १ २३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
९१३. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः जघान नवतीर्नव ॥१॥[3]

---

१. ऋ० २।४१।५ 'आशाते' इत्यत्र 'आसाते' इति पाठः ।

२. ऋ० २।४१।६ ।

३. ऋ० १।८४।१३, साम० १७९ , अथ० २०।४१।१ ।

पदार्थ— **अप्रतिष्कुतः** कोई भी शत्रु जिसका मुकाबला नहीं कर सकता ऐसा **इन्द्रः** शत्रुविदारक जगदीश्वर **दधीचः** लोकों के धारणकर्ता तथा अपनी धुरी पर घूमने वाले सूर्य की **अस्थभिः** अस्थियों के तुल्य किरणों से **नव नवतीः** निन्यानवे प्रतिशत **वृत्राणि** रोग, मलिनता आदियों को **जघान** नष्ट कर देता है ।।१।।

भावार्थ— अहो, कैसा है जगदीश्वर का महान् कर्म कि वह विशाल सूर्यरूप साधन से प्रायः सभी रोग, मल आदि को नष्ट करके हमारे जीवनों को सुरक्षित कर देता है । यदि वह मलों को हरने वाले सूर्य को न रचता तो भूमण्डल अनेक व्याधियों से और सारे मलों से परिपूर्ण होकर निवासयोग्य भी न रहता ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर का कर्म वर्णित है ।

३ १र २र ३ २उ ३ १२३ १२ १२ ३ १२
९१४. इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ।।२।।[1]

पदार्थ— इन्द्र जगदीश्वर **अश्वस्य** अन्तरिक्ष में व्याप्त बादल के **पर्वतेषु** पहाड़ों पर **अपश्रितम्** गिरे हुए **यत्** जिस **शिरः** जीर्ण-शीर्ण जल को **इच्छन्** फिर से भाप बनाना चाहता है **तत्** उस जल को वह **शर्यणावति** नदियों से युक्त समुद्र में **विदत्** पा लेता है । अभिप्राय यह है कि जो बादल का जल भूमि पर बरस कर नदियों द्वारा समुद्र में चला जाता है उसे फिर वह सूर्य द्वारा भाप बनाकर अन्तरिक्ष में ले जाकर बादल के रूप में परिणत कर देता है ।।२।।

भावार्थ— बादल से वर्षा और बरसे हुए जल से फिर बादल का निर्माण इस चक्र को जगदीश्वर ही चला रहा है । यदि ऐसी उसकी की हुई सुव्यवस्था न होती तो यह भूमण्डल शुष्क एवं वृक्ष-ओषधि-लता आदि से विहीन हो जाता ।।२।।

इस मन्त्र पर सायणाचार्य द्वारा प्रोक्त इतिहास एवं उसका प्रत्याख्यान पूर्वार्चिक मन्त्र क्रमांक १७९ के भाष्य में देखना चाहिए ।।

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १४७ पर सूर्य द्वारा चन्द्रमा के प्रकाशित होने के विषय में तथा परमेश्वर द्वारा हृदयों के प्रकाशन के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहां उससे भिन्न व्याख्या दी जा रही है।

२उ ३ १२ ३ २३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३२
९१५. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ।।३।।[2]

पदार्थ— **अत्र ह** यहां **त्वष्टुः** प्रदीप्त सूर्य से **अपीच्यम्** बाहर गये हुए प्रकाश को, लोग **गोः नाम** पृथिवी पर नत हुआ **अमन्वत** जानते हैं । **इत्था** इस प्रकार, पृथिवी को मध्य में करके वह प्रकाश **चन्द्रमसः गृहे** चन्द्रमण्डल में गिरता है, उसी से चन्द्रमा प्रकाशित होता है । यह इन्द्र परमेश्वर की ही महिमा है ।।३।।

---

१. ऋ० १।८४।१४, अथ० २०।४१।२ ।
२. ऋ० १।८४।१५, अथ० २०।४१।३, साम० १४७ ।

भावार्थ— पृथिवी अण्डाकृति मार्ग से सूर्य की परिक्रमा करती है और चन्द्रमा पृथिवी की परिक्रमा करता हुआ पृथिवी के साथ-साथ सूर्य की भी परिक्रमा करता है। सूर्य और चन्द्रमा के बीच में पृथिवी के आ जाने से प्रतिदिन चन्द्रमा के सम्पूर्ण गोलार्ध पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता। चन्द्रमा का जितना अंश पृथिवी की ओट में आ जाता है उतने अंश में सूर्य का प्रकाश न पड़ने से वह अंश अन्धकार से आच्छन्न ही रहता है। चन्द्रमा की कलाओं की ह्रास-वृद्धि का यही रहस्य है। अमावस्या को सम्पूर्ण चन्द्र के पृथिवी से ढक जाने के कारण पूरा ही चन्द्रमा अन्धकार से आवृत रहता है और पूर्णिमा को सम्पूर्ण चन्द्रमा के पृथिवी से छूटे रहने के कारण सम्पूर्ण ही चन्द्रमा प्रकाशित रहता है। यही परमेश्वर द्वारा की हुई व्यवस्था इस मन्त्र में वर्णित हुई है ॥३॥

॥९॥ अथ 'इयं वामस्य' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। **देवते** इन्द्राग्नी। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति का विषय है।

९१६. इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः। अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि ॥१॥[1]

पदार्थ— हे **इन्द्राग्नी** आत्मा और मन! **मन्मनः** ज्ञानी **अस्य** इस परमेश्वर की **इयम्** यह **वाम्** तुम्हारे द्वारा की गयी **पूर्व्यस्तुतिः** श्रेष्ठ स्तुति **अभ्रात्** बादल से **वृष्टिः इव** वर्षा के समान **अजनि** हुई है ॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ— जैसे बादल से बरसी हुई जलधारा भूमि को आर्द्र करती है, वैसे ही आत्मा और मन से की गयी स्तुति परमेश्वर को आर्द्र (स्नेहयुक्त) करती है। आर्द्र भूमि जैसे वृक्ष, वनस्पति आदियों को उत्पन्न करती है, वैसे ही आर्द्र किया गया परमेश्वर स्तोता के हृदय में सद्गुणों को उत्पन्न करता है ॥१॥

अगले मन्त्र में आत्मा और मन को उद्बोधन देते हैं॥

९१७. शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः। ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥[2]

पदार्थ— हे **इन्द्राग्नी** आत्मा और मन! तुम दोनों **जरितुः** प्रशंसक के **हवम्** उद्बोधन को **शृणुतम्** सुनो। **गिरः** स्तुतिवाणियों को **वनतम्** उच्चारित करो। **ईशाना** देह के अधिष्ठाता तुम दोनों **धियः** ज्ञानों और कर्मों को **पिप्यतम्** बढ़ाओ ॥२॥

यहां एक कर्त्ता-कारक से अनेक क्रियाओं का योग होने से दीपक अलंकार है ॥२॥

भावार्थ— मनुष्य को चाहिए कि आत्मा और मन का उपयोग करके परमेश्वर की उपासना, ज्ञान का संग्रह तथा सत्कर्म करे ॥२॥

---

१. ऋ० ७।९४।१।
२. ऋ० ७।९४।२।

आगे आत्मा और मन से प्रार्थना करते हैं ।

९१८. मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ।।३।।[१]

पदार्थ– हे **इन्द्रागनी** आत्मा और मन ! **नरा** नेतृत्व करने वाले तुम दोनों **मा** न तो **पापत्वाय** पाप कर्म के, **मा** न **अभिशस्तये** हिंसा के, और **मा** न ही **नः** हमें **निदे** निन्दक के **रीरधतम्** वश में करो ।।३।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि आत्मा और मन को उद्‌बोधन देकर पाप, हिंसा, निन्दा आदि से मुक्ति पायें ।।३।।

इस खण्ड में परमेश्वर के स्वरूप, परमेश्वर-स्तुति, परमात्म-प्राप्ति, आत्मा-मन तथा प्रसंगतः राजा और प्रधानमन्त्री का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

पञ्चम अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

।।१०।। अथ 'पवस्व' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** दृढच्युत आगस्त्यः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ४७४ पर ब्रह्म के पास से आनन्दरस-प्रवाह के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां गुरु-शिष्य का विषय वर्णित करते हैं ।

९१९. पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ।।१।।[२]

पदार्थ– हे **हरे** दोषों को हरने वाले आचार्य ! **दक्षसाधनः** विद्या, सच्चरित्रता, ब्रह्मचर्य आदि बलों को सिद्ध करने वाले आप **देवेभ्यः पीतये** दिव्यगुणी शिष्यों के पान के लिए **पवस्व** ज्ञानरस प्रवाहित करो और **मरुद्भ्यः** उन प्राणायाम के साधक शिष्यों की **वायवे** प्रगति के लिए **मदः** उत्साहकारी होवो ।।१।।

भावार्थ– आचार्य को चाहिए कि शिष्यों के लिए जो-जो आवश्यक हो वह-वह सब करे, जिससे वे विद्या में पारंगत, सच्चरित्र, ब्रह्मचारी, प्रगतिशील और कर्मयोगी होवें ।।१।।

आगे फिर गुरु-शिष्य का ही विषय है ।

९२०. सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । पवमानो अदाभ्यः ।।२।।[३]

पदार्थ– **वृषा** ज्ञान की वर्षा करने वाला, **कविः** मेधावी, **प्रियः** शिष्यों से प्रीति रखने वाला, **अदाभ्यः** ठगा न जा सकने वाला **पवमानः** पवित्रतादायक आचार्य **योनौ अधि** गुरुकुलरूप घर में **देवैः** दिव्यगुणी शिष्यों के साथ **सं शोभते** भली-भांति शोभा पाता है ।।२।।

---

१. ऋ० ७।९४।३।

२. ऋ० ९।२५।१, साम० ४७४।

३. ऋ० ९।२५।३, 'वृत्रहा देववीतमः' इति तृतीयः पादः।

भावार्थ– सुयोग्य गुरु और सुयोग्य शिष्य आपस में मिलकर बहुत अधिक शोभा पाते हैं ॥२॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

९२१. पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमारुहः ॥३॥[1]

पदार्थ– हे **पवमान** चित्तशोधक आचार्य ! **धिया** प्रज्ञा और कर्म से **हितः** शिष्यों के हितकारी आप **योनिम् अभि** यम-नियम आदियों के आश्रय शिष्यवर्ग के प्रति **कनिक्रदत्** शास्त्रों का उपदेश करते हुए **धर्मणा** धर्म से **वायुम्** प्रगतिशील शिष्यवर्ग को **आरुहः** परम उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ा देते हो ॥३॥

भावार्थ– आचार्य विद्या आदि के दान से शिष्यों का बहुत उपकार करते हैं, अतः शिष्यों को चाहिए कि मन, वचन, कर्म से उनका सम्मान करें और दूसरों को विद्या आदि देकर उनका ऋण चुकायें ॥३॥

॥११॥ अथ 'तवाहं सोम' इत्यादिकस्यैकादशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः , ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः) । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः , २ पञ्चमः ॥

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५१६ क्रमांक पर उपास्य-उपासक विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है ।

९२२. तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥१॥[2]

पदार्थ– हे **इन्दो** विद्यारस से सराबोर करनेवाले, तेजस्वी **सोम** विद्यारस के भंण्डार आचार्य ! **अहम्** मैं शिष्य **तव सख्ये** आपकी मैत्री में **दिवे-दिवे** प्रतिदिन **रारण** वेदादि शास्त्रों का उच्चारण करता हूं । हे **बभ्रो** सब शिष्यों का भरण-पोषण करने वाले आचार्य ! **पुरूणि** बहुत से दोष **माम्** मुझ शिष्य को **नि अव चरन्ति** कष्ट दे रहे हैं, **परिधीन् तान्** चारों ओर से घेरने वाले उन दोषों को **अति इहि** दूर कर दीजिए ॥१॥

भावार्थ– गुरुओं का यह कर्त्तव्य है कि वे शिष्यों में उत्पन्न हुए दोषों को दूर करके उन्हें निर्मल चरित्र वाला और विद्वान् बनायें ॥१॥

आचार्य की सहायता से दोषों को दूर करके अब परमात्मा से निवेदन करते हैं ।

९२३. तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२॥[3]

---

१. ऋ० ९।२५।२, 'धर्मणा वायुमा विश' इति तृतीयः पादः ।

२. ऋ० ९।१०७।१९ । साम० ५१६ ।

३. ऋ० ९।१०७।२०, 'तवाहं' 'दुहानो' इत्यत्र क्रमेण 'उताहं' 'सख्याय' इति पाठः ।

पदार्थ– हे **बभ्रो** भरण-पोषण करने वाले **सोम** आनन्दरसागार परमेश्वर ! **तव** तेरा **अहम्** मैं उपासक **ते** तेरे **ऊधनि** आनन्दरस के कोश में से **नक्तम्** रात्रि को **उत** और **दिवा** दिन में भी **दुहानः** आनन्दरस को दुह रहा हूं । और **घृणा** तेज से **तपन्तम्** तपते हुए **सूर्यम्** सूर्य को भी **अति** अतिक्रान्त करके अर्थात् सूर्य से भी अधिक तेजस्वी होते हुए हम **शकुनाः इव** पक्षियों के समान **परः** भौतिक जगत् से परे विद्यमान तुझ परमात्मा की ओर **पप्तिम** उड़ रहे हैं ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– मनुष्य को चाहिए कि वह तेजस्वी और तपस्वी होकर परमात्मा का साक्षात्कार करके उसके आनन्द-रस का आस्वाद लेकर मोक्ष पद को पाये ।।२।।

।।१२।। अथ 'पुनानो' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** बृहन्मतिराङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा का परमात्मा विषयक अर्थ पूर्वार्चिक में ४८८ क्रमांक पर देखना चाहिए । यहां आचार्य-शिष्य का विषय वर्णित है ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
९२४. पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः।।१।।[1]

पदार्थ- **पुनानः** मनों को शुद्ध करता हुआ **विचर्षणिः** सब शास्त्रों का पार-द्रष्टा सोम आचार्य, शिष्यों की **विश्वाः मृधः** सब हिंसावृत्तियों को **अभि अक्रमीत्** विनष्ट कर देता है । उस **विप्रम्** मेधावी ब्राह्मण आचार्य को, शिष्यगण **धीतिभिः** शिष्यों के योग्य कर्मों द्वारा **शुम्भन्ति** शोभित करते हैं, अर्थात् उससे बताये हुए कर्मों को करते हुए उसके गौरव को बढ़ाते हैं ।।१।।

भावार्थ- जैसे आचार्य शिष्यों को दोषों का परिमार्जन करके उन्हें निष्पाप करता है, वैसे ही शिष्यों को भी चाहिए कि वे आचार्य के आदेश को शिरोधार्य करके उसे प्रसन्न करें ।।१।।

अगले मन्त्र ब्रह्मानन्द का विषय तथा गुरु-शिष्यों का विषय वर्णित है ।।

१र २ ३ १ २२२३२ ३ १ २ ३२ ३१र २र
१२५. आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् ध्रुवे सद सि सीदतु।।२।।[2]

पदार्थ– प्रथम ब्रह्मानन्द के पक्ष में । **अरुणः** ज्योतिर्मय ब्रह्मानन्दरूप सोम **योनिम्** हृदयरूप गृह में **आ रुहत्** आरूढ़ होता है । **वृषा** बलवान् **इन्द्रः** अन्तरात्मा **सुतम्** अभिषुत ब्रह्मानन्दरूप सोमरस को **गमत्** प्राप्त करता है । हम चाहते हैं कि वह ब्रह्मानन्द **ध्रुवे सदसि** अविचल आत्मारूप सदन में **सीदतु** स्थित हो जाए, अर्थात् उसका अंग बन जाए ।।२।।

द्वितीय गुरु-शिष्य के विषय में । **अरुणः** तेज से चमकता हुआ विद्यार्थी **योनिम्** गुरुकुल में **आ रुहत्** प्रविष्ट होता है । **वृषा** विद्या की वर्षा करने वाला **इन्द्रः** आचार्य **सुतम्** पुत्रतुल्य उस विद्यार्थी के पास **गमत्** उसका अभिनन्दन करने के लिए जाता है । वह विद्यार्थी **ध्रुवे** स्थिर **सदसि** विद्यागृह में **सीदतु** निवास करे, अर्थात् जब तक विद्या पूर्ण न हो जाए तब तक निश्चिन्त होकर वहां रहे ।।२।।

१. ऋ० ९।४०।१, साम० ४८८ ।
२. ऋ० ९।४०।२ 'गमदिन्द्रं वृषा सुतः । ध्रुवे सदसि सीदति' इति पाठः ।

भावार्थ— जैसे मनुष्य का आत्मा ब्रह्मानन्द-रस के पाने से कृतार्थ हो, वैसे ही गुरुकुल में प्रविष्ट विद्यार्थी विद्याओं में पारंगत होकर कृतकृत्य हो ।।२।।

यहाँ श्लेषालंकार है ।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है ।

९२६. नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ।।३।।[1]

पदार्थ— हे **इन्दो** तेजस्वी तथा आनन्दरस वा विद्यारस से आर्द्र करने वाले **सोम** शुभगुणप्रेरक परमात्मन् वा आचार्य ! आप **नु** निश्चय से **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **विश्वतः** सब ओर से **महाम्** महान्, **सहस्रिणम्** हजार की संख्या वाले **रयिम्** धन, धान्य, विद्या, आरोग्य, सच्चरित्रता, न्याय, दया आदि ऐश्वर्य को **आ पवस्व** प्राप्त कराओ ।।३।।

भावार्थ— परमात्मा की कृपा से और आचार्य के प्रयत्न से मनुष्य सभी आध्यात्मिक और भौतिक सम्पत्ति को प्राप्त कर सकते हैं ।।३।।

इस खण्ड में गुरुशिष्य के विषय तथा परमात्मा के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

पंचम अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

।।१३।। अथ 'पिबा सोम' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** विराडनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३९८ क्रमांक पर सेनापति, राजा तथा जीवात्मा के पक्ष में व्याख्यात की जा चुकी है । यहां परमात्मा को सम्बोधन है ।

९२७. पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ।।१।।[2]

पदार्थ— हे **हर्यश्व** आकर्षणशक्तियुक्त हैं व्याप्त सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि लोक जिसके ऐसे **इन्द्र** परमैश्वर्यवन् परमात्मन् ! आप **सोमम्** मेरे भक्तिरस को **पिब** पान कीजिए, स्वीकार कीजिए । वह मेरा भक्तिरस **त्वा** आपको **मन्दतु** आनन्दित करे, जिस भक्तिरस को **सोतुः** रथप्रेरक सारथि की **बाहुभ्याम्** भुजाओं से **सुयतः** सुनियन्त्रित **अर्वा न** घोड़े के समान **सुयतः** यम-नियम आदियों से सुनियन्त्रित **अद्रिः** अविनश्वर मेरे अन्तरात्मा ने **ते** आपके लिए **सुषाव** अभिषुत किया है ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ— मनुष्य का आत्मा तप और श्रद्धा के साथ वेदमन्त्रों को गा-गाकर जब परमात्मा के लिए भक्तिरस प्रवाहित करता है तब परमात्मा उसके अन्दर सद्गुणों और सत्कर्मों को प्रेरित कर उसे महान् बना देता है ।।१।।

---

१. ऋ० ९।४०।३ ।
२. ऋ० ७।२२।१, अथ० २०।११७।१, साम० ३९८ ।

अगले मन्त्र में परमात्मा जीवात्मा को कह रहा है ।

९२८. यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥[1]

पदार्थ– **हर्यश्व** ज्ञान कर्म के आहर्ता हैं ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप घोड़े जिसके ऐसे हे जीवात्मन् ! **यः** जो **तव** तेरा **मदः** उत्साह **युज्यः** तेरा सहयोगी, और **चारुः** श्रेष्ठ **अस्ति** है, **येन** जिस उत्साह से तू **वृत्राणि** बाह्य और आन्तरिक रिपुओं को **हंसि** विनष्ट करता है, **सः** वह उत्साह, हे **प्रभूवसो** बहुत गुणों वाले **इन्द्र** जीवात्मन् ! **त्वा** तुझे **ममत्तु** आनन्दित करे ॥२॥

भावार्थ– मनुष्य का आत्मा अपनी शक्ति को पहचानकर जब जीवन-संग्राम में उतरता है तब उसकी विजय सुनिश्चित है ॥२॥

अब उपासक परमात्मा को सम्बोधन करता है ।

९२९. बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥[2]

पदार्थ– हे **मघवन्** ऐश्वर्यवान् वा दानवान् परमात्मन् ! आप **मे** मेरी **इमाम्** इस **प्रशस्तिं वाचम्** आपके गुण-गान की वाणी को **सु आ बोध** भली भांति जानिए, **याम्** जिस वाणी को **ते** आपके लिए **वसिष्ठः अर्चति** अपने अन्दर सद्गुणों को अतिशयरूप से बसाने वाला मनुष्य उच्चारण कर रहा है– अर्थात् मैं उच्चारण कर रहा हूं । आप **सधमादे** सामूहिक उपासना-यज्ञ में **इमा ब्रह्म** इन स्तोत्रों को **जुषस्व** स्वीकार कीजिए ॥३॥

भावार्थ– जो लोग श्रद्धा से परमात्मा की गुणावलि की प्रशंसा करते हैं वे स्वयं भी गुणी होकर उत्कर्ष प्राप्त करते हैं ॥३॥

॥१४॥ अथ 'विश्वाः पृतनाः' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** रेभः काश्यपः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** १ अतिजगती, २-३ उपरिष्टाद् बृहती । **स्वरः** १ निषादः , २-३ मध्यमः ।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३७० क्रमांक पर कैसे परमेश्वर को और कैसे वीर पुरुष को लोग अपना सम्राट् बनाते हैं इस विषय में व्याख्यात हुई थी । यहां जीवात्मा का विषय वर्णित है ॥

९३०. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥[3]

---

१. ऋ० ७।२२।२, अथ० २०।११७।२ ।

२. ऋ० ७।२२।३, अथ० २०।११७।३३।

३. ऋ० ८।९७।१०, अथ० अथ० २०।५४।१, उभयत्र 'नरः' इत्यत्र 'नरं' उत्तरार्धे च 'क्रत्वावरिष्ठंवर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवस तरस्विनम्' इति पाठः । साम० ३७० ।

पदार्थ– **विश्वाः** सब **पृतनाः** बाह्य और आन्तरिक शत्रुओं की सेनाओं के **अभिभूतरम्** अतिशय पराजेता, **वरे** उत्कृष्ट **स्थेमनि** स्थिरता या दृढ़ता में विद्यमान, **आ मुरीम्** सब ओर विघ्नों और विपत्तियों को मारने वाले, **उत** और **उग्रम्** अन्याय तथा अन्यायी के प्रति प्रचण्ड, **ओजिष्ठम्** सबसे बढ़कर ओजस्वी, **तरसम्** दुःखों से तराने में समर्थ, **तरस्विनम्** अतिशय वेगवान् **इन्द्रम्** जीवात्मा को **नरः** नेता मनुष्य **ततक्षुः** उद्बोधन देते हैं, **च** और **राजसे** साम्राज्य के लिए, तथा **क्रत्वे** महान् कर्म के लिए, **जजनुः** नियुक्त करते हैं ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य अपने आत्मा को उद्बोधन देकर बड़े-बड़े कर्म करने में, यहां तक कि चक्रवर्ती साम्राज्य एवं मोक्ष का साम्राज्य पाने में भी, समर्थ हो सकता है ।।१।।

अगले मन्त्र में उपास्य-उपासक विषय का वर्णन है ।

९३१. नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ।।२।।[1]

पदार्थ– **विप्राः** मेधावी ब्राह्मण लोग **अभिस्वरे** वेद-स्तोत्र में **नेमिम्** रथचक्र में परिधि के समान व्याप्त, **मेषम्** सुख से सींचने वाले इन्द्र परमेश्वर को **चक्षसा** साक्षात्कार से **नमन्ति** अपनी ओर झुका लेते हैं । आगे मनुष्यों को सम्बोधन है– हे **सुदीतयः** भलीभांति अविद्या का क्षय करने वाले जनो ! **वः** तुम **अद्रुहः** द्रोह न करने वाले होवो । **अपि** साथ ही **कर्णे** अपनी और दूसरों की जीवननौका के कर्णधार होने में **तरस्विनः** वेगवान् बनो । **ऋक्वभिः** प्रशस्त स्तुति वाले स्तोता जनों के साथ **सम्** संगति करो ।।२।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर का साक्षात्कार करके द्रोहरहित, सबके मित्र, कर्णधार, क्रियाशील, सत्संगतिपरायण और परोपकारी होकर विचरें ।।२।।

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

९३२. समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ।।३।।[2]

पदार्थ– **रेभासः** स्तोता लोग **इन्द्रम्** विघ्नविनाशक परमात्मा को **सोमस्य पीतये** भक्तिरस के पान के लिए सम् उ अस्वरन् पुकारते हैं। **स्वःपति** दिव्य प्रकाश, आनन्द वा मोक्ष का अधिपति वह **यदि** यदि **वृधे** वृद्धि करने के लिए **धृतव्रतः** संकल्प कर लेता है, तो उपासक को **ओजसा** आत्मबल से और **ऊतिभिः** रक्षाओं से **सम्** संयुक्त कर देता है ।।३।।

भावार्थ– उपासक की दृढ़ श्रद्धा को देखकर परमेश्वर उसमें ओज और पुरुषार्थ की प्रेरणा करके उसकी निरन्तर रक्षा करता है ।।३।।

---

१. ऋ० ८।९७।१२, अथ० २०।५४।३।
२. ऋ० ८।९७।११, अथ० २०।५४।२। समीं रेभासो अस्वन्', स्वर्पतिं यदीं वृधे' इति पाठः।

।।१५।। अथ 'यो राजा' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य द्वयृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** पुरुहन्मा आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक २७३ पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्या की जा चुकी है । यहां जीवात्मा का विषय वर्णित है ।।

९३३. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ।।१।।[1]

पदार्थ– **यः** जो मेरा आत्मा **चर्षणीनाम्** मनुष्यों में **राजा** सम्राट् है, और **अध्रिगुः** किसी से न रोकी जा सकने योग्य क्रिया वाला जो **रथेभिः** देहरूप रथों से **याता** यात्रा करता है, और जो **विश्वासाम्** सब **पृतनानाम्** आन्तरिक वा बाह्य शत्रु-सेनाओं का **तरुता** अतिक्रमण करने वाला है, और **यः** जो वृत्रहा पाप, विघ्न आदि का विनाशक है, उस **ज्येष्ठम्** श्रेष्ठ आत्मा का, मैं **गृणे** गुण-वर्णन करता हूं ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य के आत्मा में महान् शक्ति निहित है । उद्‌बोधन मिलने पर वह बड़े से बड़े कार्य कर सकता है ।।१।।

अगले मन्त्र में मनुष्य को प्रेरणा दी गयी है ।

९३४. इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि ।
हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महान्देवो न सूर्यः ।।२।।[2]

पदार्थ– हे **पुरुहन्मन्** बहुत से शत्रुओं के विनाशक मानव ! तू **अवसे** प्रगति के लिए **तम्** उस प्रसिद्ध **इन्द्रम्** परमवीर परमेश्वर को **शुम्भ** अपने अन्तरात्मा में शोभित कर, **यस्य विधर्त्तरि** जिसे धारण करने वाले मनुष्य के अन्दर **द्विता** दो प्रकार की शक्ति उत्पन्न हो जाती है । परमेश्वर को अपने अन्दर धारण करने वाले उस मनुष्य द्वारा एक ओर तो **हस्तेन** हाथ से **दर्शतः** दर्शनीय **वज्रः** शस्त्रास्त्र **प्रति धायि** पकड़ा जाता है, और दूसरी ओर वह **देवः सूर्यः न** प्रकाशक सूर्य के समान **महान्** महिमाशाली हो जाता है ।।२।।

भावार्थ– अपने अन्तरात्मा में परमात्मा को धारण करने से मनुष्य के अन्दर महान् बल, साहस, तेज, धैर्य और शत्रुपराजय-सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है ।

इस खण्ड में परमात्मा-जीवात्मा, उपास्य-उपासक एवं मानव प्रेरणा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

पंचम अध्याय में पञ्चम खण्ड समाप्त ।

---

१. ऋ० ८।७०।१, अथ० २०।९२।१६, १०५।४, सर्वत्र 'ज्योर्ष्ठ' इयत्र ज्येष्ठो' इति पाठः । साम २७३ ।
२. ऋ० ८।७०।२, अथ० २०।९२।१७, १०५।५, सर्वत्र 'हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः' इत्युत्तरार्ध-पाठः ।

।।१६।। अथ 'परि प्रिया' इत्यादिकस्य षोणशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** असितः काश्यपो देवलो वा । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४७६ क्रमांक पर परमात्मा के आनन्दरस के विषय में व्याख्यात हुई थी । यहां गुरू-शिष्य का विषय वर्णित है ।।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९३५. परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ।।१।।[1]

पदार्थ– शिष्यों के **नप्त्योः** आत्मा और मन का **हितः** हित करने वाला, **कविक्रतुः** मेधावान् और सदाचारी आचार्य **दिवः** यश से प्रकाशित गुरूकुल के **प्रिया वयांसि** प्रिय शिष्यों को **स्वानैः** शास्त्रोपदेश के शब्दों के साथ **परियाति** प्राप्त होता है ।।१।।

भावार्थ– जो स्वयं विद्वान् सदाचारी और पढ़ाने में चतुर है, वही आचार्य शिष्यों को सुयोग्य बना सकता है ।।१।।

अब आचार्य से पढ़ाया हुआ कैसा पुत्र माता-पिता का यश फैलाने वाला होता है, यह कहते हैं ।।

२ ३२ ३२३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९३६. स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ।।२।।[2]

पदार्थ– सः वह सुयोग्य आचार्य से शिक्षा दिया हुआ, **शुचिः** पवित्र हृदय वाला, **जातः** स्नातक बना हुआ **महान्** गुणों में महान् **सूनुः** पुत्र **जाते** विद्याओं से प्रसिद्ध, **मही** महागुणविशिष्ट, **ऋतावृधा** सत्य को बढ़ाने वाले **मातरा** माता-पिता को **अरोचयत्** यश से प्रदीप्त करता है ।

भावार्थ– सुयोग्य गुरुओं से पढ़ाया हुआ सुयोग्य पुत्र सुयोग्य माता-पिताओं और सुयोग्य गुरुओं की कीर्ति फैलाता है ।।२।।

अगले मन्त्र में नवस्नातक को कहा जा रहा है ।।

२३ १ २३ १ २३ १ २३ १ २ ३१ २ ३क २र३ १ २
९३७. प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्ष पनिष्टये ।।३।।[3]

पदार्थ– हे सोम अर्थात् विद्यारस से स्नान किये हुए नवस्नातक ! **जुष्टः** लोगों का प्रिय, **अद्रुहः** द्रोह न करने वाला तू **क्षयाय** प्रजाओं में सद्गुण आदि के निवास के लिए, **पन्यसे जनाय** अतिशय स्तोता जन उत्पन्न करने के लिए, और **पनिष्टये** शुद्ध व्यवहार के लिए **वीती** तीव्रगति से **प्र प्र अर्ष** विचरण कर ।।३।।

भावार्थ– नवस्नातकों का यह कर्त्तव्य है कि वे गुरुकुल से बाहर आकर वेदार्थ का उपदेश करते हुए लोगों को श्रेष्ठ गुण कर्मों से युक्त, परमेश्वर के स्तोता और शुद्ध व्यवहार वाला बनायें ।।३।।

।।१७।। अथ 'त्वं ह्या३ङ्ग' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १ शक्तिर्वासिष्ठः, २ उरुराङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** काकुभः प्रगाथः (१ विषमा ककुब् उष्णिक्, २ समा सतो-बृहती) । **स्वरः** १ ऋषभः, २ पच्चमः ।।

---

१. ऋ० ९।९।१, 'सु॒वा॒नो या॑ति' इति पाठः । साम० ४७६, **ऋषिः** काश्यपोऽसितः ।

२. ऋ० ९।९।३।

३. ऋ० ९।९।२, 'अद्रुहः' 'पनिष्टे' इत्यत्रक्रमेण 'अद्रुहे' 'चनिष्ठता' इति पाठः ।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ५८३ पर परमात्मा के विषय में व्याख्या की गयी थी । यहां आचार्य और शिष्य के विषय का उपदेश करते हैं ।

९३८. त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥१॥ [1]

पदार्थ– हे **अङ्ग** भद्र, **दैव्य** विद्वान् गुरु के शिष्य, **पवमान** चित्तशुद्धिप्रदाता आचार्य ! **द्युमत्तमः** अतिशय ज्ञानप्रकाश से युक्त **त्वं हि** आप **अमृतत्वाय** सुख के प्रदानार्थ **जनिमानि** शिष्यों के ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य रूप द्वितीय जन्मों की **घोषयन्** घोषणा किया करो ॥१॥

भावार्थ– माता-पिता से एक जन्म मिलता है, दूसरा जन्म आचार्य से प्राप्त होता है । जब शिष्य विद्याव्रतस्नातक होते हैं उस समय आचार्य गुणकर्मानुसार यह ब्राह्मण है, यह क्षत्रिय है, यह वैश्य है इस प्रकार स्नातकों को वर्ण देते हैं । उस काल में प्रथम जन्म का कोई ब्राह्मण भी गुण कर्म की कसौटी से क्षत्रिय या वैश्य बन सकता है, क्षत्रिय भी ब्राह्मण या वैश्य बन सकता है और वैश्य या शूद्र भी ब्राह्मण या क्षत्रिय बन सकता है ॥१॥

अगले मन्त्र में आचार्य का महत्त्व कहा गया है ।

९३९. येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥२॥ [2]

पदार्थ– येन जिस पवमान सोम से अर्थात् पवित्रकर्ता, विद्यारस के भण्डार आचार्य से **नवग्वा** नवीन शिक्षा प्राप्त नवस्तानक **दध्यङ्** धारक गुणों को प्राप्त होकर **अपोर्णुते** अविद्या के आवरण को दूर करता है , **येन** जिस आचार्य से उपदेश किये हुए **विप्रासः** मेधावी ब्राह्मण **आपिरे** सच्चरित्र की शिक्षा को प्राप्त करते हैं, **येन** जिस आचार्य से विद्या पाये हुए शिष्य **श्रवांसि** यशों को **आशत** प्राप्त करते हैं, वह आचार्य स्वयम् **देवानाम्** दिव्य गुणों के और **चारुणः** रमणीय **अमृतस्य** मोक्ष के **सुम्ने** सुख में निवास करता है ॥२॥

भावार्थ– सुयोग्य आचार्य से शिक्षा दिये हुए छात्र विद्वान्, सच्चरित्र, दिव्यगुणों वाले और जीवन्मुक्त होकर सब जगह विद्या, सच्चरित्रता आदि गुणों को फैलाते हुए यशस्वी होते हैं ॥२॥

॥१८॥ अथ 'सोमः पुनान' इत्यादिकस्याष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अग्निश्चाक्षुषः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५७२ क्रमांक पर ब्रह्मानन्द-रस के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां वही विषय प्रकारान्तर से दर्शाया जा रहा है ।

९४०. सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१॥ [3]

---

१. ९।१०८।३ 'दैव्य' 'घोषयन्' इत्यत्र क्रमेण 'दैव्या' 'घोषयः' इति पाठः । साम० ५८३ 'दैव्य' इत्यत्र 'दैव्यं' इति पाठः ।

२. ऋ० ९।१०८।४ 'नवग्वो', श्रवांस्यानुशुः इति पाठः ।

३. ऋ० ९।१०६।१०, 'ऊर्मिणाव्यो' इति पाठः। साम० ५७२

पदार्थ– सोमः रसनिधि परमेश्वर **ऊर्मिणा** आनन्दरस की तरंग से **पुनानः** पवित्र करता हुआ **अव्यम्** अविनश्वर **वारम्** वरणीय आत्मा के प्रति **वि धावति** वेग से जाता है । वह **वाचः** स्तुतिवाणी से **अग्रे** पूर्व ही **पवमानः** बहता हुआ **कनिक्रदत्** कल-कल शब्द करता है ।।१।।

यहां ब्रह्मानन्दरसप्रवाह में कारणभूत स्तुतिवाणी के प्रयोग से पहले ही ब्रह्मानन्द का प्रवाह वर्णित होने से 'कारण से पूर्व कार्योदय होना रूप' अतिशयोक्ति अलंकार है । साथ ही वस्तुतः ब्रह्मानन्द-प्रवाह में लहर और कलकल शब्द न होने पर भी उसमें लहर और कलकल शब्द का सम्बन्ध कथित होने से असम्बन्ध में सम्बन्धरूप अतिशयोक्ति भी है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा के ध्यान में मग्न स्तोता परमात्मा के पास से झरती हुई आनन्द की तरंगिणी को अपने अन्दर प्रविष्ट होते हुए अनुभव करके कृतार्थ हो जाता है ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति का विषय है ।

३ १ २ ३ २३ २३ १२ ३ १ २
९४१. धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् ।
३ १ २३ २ ३२ ३ १ २
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ।।२।।[1]

पदार्थ– उपासक लोग **वाजिनम्** बलवान्, **वने क्रीडन्तम्** ब्रह्माण्डरूप वन में क्रीडा करते हुए, **अत्यविम्** अबुद्धिगम्य उस पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता परमात्मा को **धीभिः** ध्यानवृत्तियों से **मृजन्ति** अपने अन्तरात्मा में अलंकृत करते हैं। वे **मतयः** मननशील उपासक **त्रिपृष्ठम्** पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौरूप अथवा आत्मा-मन-प्राणरूप तीन स्तरों में निवास करने वाले उस परमात्मा को **अभि** लक्ष्य करके **समस्वरन्** मिलकर स्तुतिगीत गाते हैं ।।२।।

भावार्थ– जो परमेश्वर जड़-चेतन से परिपूर्ण ब्रह्माण्डरूप वन को रचकर उसमें क्रीड़ा करता हुआ जगत् का संचालन कर रहा है उस सर्वान्तर्यामी को अपने आत्मा का अलंकार बनाकर योगी जन जब उसका ध्यान करते हैं तब वे सब सिद्धियां पा लेते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है ।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
९४२. असर्जि कलशाँ अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
३ १२ २२ ३ १ २
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ।।३।।[2]

पदार्थ– मीढ्वान् आनन्दरस को सींचने वाला, **वाजयुः** स्तोताओं को आत्मबल देने का इच्छुक पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता रसनिधि परमेश्वर **कलशान् अभि** अन्नमय-प्राणमय-मनोमय आदि कोशों को लक्ष्य करके **असर्जि** छोड़ा गया है, **सप्तिः न** जैसे घोड़ा संग्राम को लक्ष्य करके छोड़ा जाता है। **पुनानः** पवित्रता देता हुआ वह **वाचं जनयन्** उपदेश-वाणी को उत्पन्न करता हुआ **असिष्यदत्** अन्तरात्मा में प्रवाहित हो रहा है ।।३।।

---

१. ऋ० ९।१०६।११, 'मृजन्ति' इत्यत्र 'हिन्वन्ति' इति पाठः।
२. ऋ० ९।१०६।१२, 'मीळहे सप्तिर्न वाजयुः' इति द्वितीयः पादः।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से आनन्दरस, आत्मबल, अन्तःकरण की पवित्रता और आत्मोत्थान का सन्देश प्राप्त होता है ।।३।।

।।१९।। अथ 'सोमः पवते' इत्यादिकस्यैकोनविंशस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रतर्दनो दैवोदासिः। **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमाङ्क ५२७ पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां भी वही विषय वर्णित है ।।

९४३. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ।।१।।[1]

पदार्थ– **सोमः** सकल जगत् का उत्पत्तिकर्ता परमेश्वर **पवते** सर्वगत है, सर्वान्तर्यामी है, जो **मतीनाम्** बुद्धियों का **जनिता** उत्पादक, **दिवः** द्युलोक का **जनिता** उत्पादक, **पृथिव्याः** पृथ्वीलोक का **जनिता** उत्पादक, **अग्नेः** आग का **जनिता** उत्पादक, **सूर्यस्य** सूर्य का **जनिता** उत्पादक, **इन्द्रस्य** बिजली का **जनिता** उत्पादक, **उत** और **विष्णोः** व्यापक सूत्रात्मा प्राण का **जनिता** उत्पादक है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा ने ही इन लोकलोकान्तरों को और उनमें स्थित सब अद्भुत पदार्थों को रचा है, क्योंकि जो भी उत्पन्न होता है उसका कर्ता अवश्य होता है यह नियम है और हम जैसे लोगों में जगत् के रचने का सामर्थ्य नहीं है ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुण-कर्म वर्णित हैं ।

९४४. ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ।।२।।[2]

पदार्थ– **देवानाम्** विद्वान् ऋत्विजों के मध्य में **ब्रह्मा** ब्रह्मा के समान मुख्य, **कवीनाम्** मेधावी काव्यकारों के मध्य में **पदवीः** पदप्रयोग के ज्ञाता के समान प्रवीण, **विप्राणाम्** ज्ञानी ब्राह्मणों के मध्य में **ऋषिः** ऋषि कोटि के मनुष्य के समान द्रष्टा, **मृगाणाम्** पशुओं के मध्य में **महिषः** भारी बोझ को ढोने में समर्थ भैंसे के समान जगत् के भार को वहन करने वाला, **गृध्राणाम्** गिद्ध पक्षियों के मध्य में **श्येनः** बाज के समान शीघ्र गति से शत्रुओं का उच्छेद करने वाला, **वनानाम्** मेघ-जलों के मध्य में **स्वधितिः** विद्युद्वज्र के समान ज्योतिष्मान् **सोमः** सर्वोत्पादक परमेश्वर **रेभन्** उपदेश देता हुआ **पवित्रम्** पवित्र मन को **अति** लांघकर **एति** जीवात्मा को प्राप्त होता है ।।२।।

इस मन्त्र में लुप्तोपमालंकार है ।।२।।

---

१. ऋ० ९।९६।५, साम० ५२७ ।
२. ऋ० ९।९६।६ ।

भावार्थ– संसार में जिस गुण या कर्म में जो सबसे अधिक उत्कृष्ट वस्तुएं हैं वे उस गुण या कर्म में कथंचित् परमात्मा का उपमान कह दी जाती हैं। वास्तव में तो क्योंकि परमात्मा सबसे बड़ा है, अतः उसका उपमान लोक में मिलना संभव नहीं है ।।२।।

अगले मन्त्र में उपास्य-उपासक का विषय है ।

९४५. प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान् पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन् वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ।।३।।[1]

पदार्थ– सिन्धुः समुद्र **ऊर्मिं न** जैसे लहर को प्रेरित करता है, वैसे ही उपासक परमात्मा के प्रति **वाचः** स्तुतिवाणियों को **प्रावीविपत्** प्रेरित करता है । परमात्मा उसकी **गिरः** स्तुति-वाणी के **स्तोमान्** समूहों को और **मनीषाः** बुद्धियों को **पवमानः** पवित्र करता है । तब **बृषभः** स्तुतियों की वर्षा करने वाला उपासक **गोषु जानन्** इन्द्रियों के विषय में जानता हुआ अर्थात् इन्द्रियां बाहर की ओर जाने वाली होती हैं यह जानता हुआ **अन्तः पश्यन्** अन्तर्दृष्टि करता हुआ **इमा** इन **अवराणि** बाह्य **वृजना** विषय भोगों के बलों को **आतिष्ठति** दबा देता है ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि विषय-विलासों से मन लौटाकर अन्तर्दृष्टि करके परमात्मा की उपासना कर आनन्दयुक्त हों ।।३।।

इस खण्ड में गुरु-शिष्य, परमात्मा और ब्रह्मानन्द का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।।

पञ्चम अध्याय में षष्ठ खण्ड समाप्त ।

।।२०।। अथ 'अग्निं वो' इत्यादिकस्य विंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रयोगो भार्गवः, अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः, गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ, तयोर्वान्यतरः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में २१ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या की जा चुकी है । यहां भी प्रकारान्तर से वही विषय दर्शाया जा रहा है ।

९४६. अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ।।१।।[2]

पदार्थ– हे मनुष्यो ! तुम **वः** तुम्हें **वृधन्तम्** बढ़ाने वाले, **अध्वराणाम्** यज्ञों के अर्थात् परोपकारार्थ किये जाने वाले कर्मों के **पुरूतमम्** अतिशय पूरक, **अग्निम्** ज्ञानप्रकाशक परमेश्वर की, उपासना करो । **नप्त्रे** पतित न होने देने वाले, अपितु उठाने वाले, **सहस्वते** बलवान् उस परमेश्वर के **अच्छ** अभिमुख होवो ।।१।।

---

१. ऋ० ९।९६।७, 'गिर स्तोमान्' इत्यत्र 'गिरः सोमः' इति पाठः ।

२. ऋ० ८।१०२।८, साम० २१।

भावार्थ– सबको चाहिए कि शुभ कर्मों में उत्साहित करने वाले, दुष्कर्मों से निवारण करने वाले, बलवान्, उत्कर्षकारी, बलप्रदाता परमेश्वर की नित्य उपासना करें ।।१।।

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि क्यों हम परमेश्वर के अभिमुख हों ।

३ १२ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
९४७. अयं यथा न आभुवत् त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ।।२।।[1]

पदार्थ– हम परमेश्वर के अभिमुख होवें **यथा** जिससे, वह **नः** हममें, हमारे जीवनों में **आभुवत्** रम जाए, **त्वष्टा** बढ़ई **तक्ष्या रूपा इव** जैसे घड़े जाने वाले रूपों में रम जाता है । हम **यशस्वतः** यशस्वी **अस्य** इस परमेश्वर के **क्रत्वा** ज्ञान एवं कर्म से, संयुक्त होवें ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जगदीश्वर यदि हमारे जीवनों में व्याप्त हो जाता है तो सदा ही अच्छे-बुरे के विवेक से युक्त हम पुण्य कर्मों को ही करते हुए कीर्तिशाली होते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि उपासना किया गया परमेश्वर हमारे लिए क्या करता है ।

३ १२ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २ २उ ३ १ २
९४८. अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ।।३।।[2]

पदार्थ– अयम् यह **अग्निः** अग्रनायक परमेश्वर **देवेषु** उपासक सदाचारी विद्वानों में **विश्वाः श्रियः** सब आध्यात्मिक और बाह्य सम्पदाओं को **अभि पत्यते** प्राप्त कराता है । वह **वाजैः** दिव्य ऐश्वर्यों तथा बलों के साथ **नः** हमें **उप गमत्** प्राप्त होवे ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर का उपासक सब प्रकार के भौतिक एवं आध्यात्मिक बल और ऐश्वर्य अपने पुरुषार्थ से पाने योग्य हो जाता है ।।३।।

।।२१।। अथ 'इममिन्द्र' इत्यादिकस्यैकविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः । **देवता** इन्द्रः। **छन्द** अनुष्टुप् । स्वरः गान्धारः ।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३४४ क्रमांक पर उपास्य- उपासक और गुरु-शिष्य के विषय में व्याख्यात हुई थी । यहां जीवात्मा का विषय वर्णित करते हैं ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९४९. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ।।१।।[3]

पदार्थ– हे **इन्द्र** विघ्नों के विदारण करने में समर्थ जीवात्मन् ! तू **इमम्** इस **सुतम्** उत्पन्न हुए, **ज्येष्ठम्** अतिशय प्रशंसनीय, **अमर्त्यम्** अमर **मदम्** उत्साहप्रद वीररस और भक्तिरस का **पिब** पान कर । **ऋतस्य सादने** सत्य के सदन तेरे हृदय में **शुक्रस्य** प्रदीप्त वीर रस की और पवित्र भक्तिरस की **धाराः** धाराएं **त्वा अभि** तेरे प्रति **अक्षरन्** क्षरित हो रही हैं ।।१।।

---

१. ऋ० ८।१०२।८ ।

२. ऋ० ८।१०२।९ ।

३. ऋ० १।८४।४, साम० ३४४ ।

भावार्थ– अपने आत्मा को वीरता की और भक्तिरस की तरंगों से आप्लावित करके, सब दुर्दान्त दुर्गुण, दुर्व्यसन आदियों को और दुष्टजनों को भगा कर देवासुरसंग्राम में विजय सबको प्राप्त करनी चाहिए ।।१।।

पुनः जीवात्मा को सम्बोधन किया गया है ।

२ ३ २३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९५०. न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ।।२।।[1]

पदार्थ– हे **इन्द्र** विघ्नों को विदीर्ण करने वाले जीवात्मन् ! **न किः** कोई भी नहीं **त्वत्** तेरी अपेक्षा **रथीतरः** अधिक प्रशस्त रथारोही है, **यत्** क्योंकि, तू **हरी** ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-रूप घोड़ों को **यच्छसे** शरीररूप रथ में नियन्त्रित किये रखता है । **न किः** कोई भी नहीं **त्वा** तेरी **मज्मना** बल में **अनु** बराबरी करता है । **न किः** कोई भी नहीं **स्वश्वः** उत्कृष्ट घोड़ों वाला भी **आनशे** तेरे बराबर हो सकता है ।।२।।

भावार्थ– प्रोद्बोधन दिया हुआ जीवात्मा जब वीररस को अपने अन्दर संचारित करता है तब कोई भी अन्य उसकी बराबरी नहीं कर सकता ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः जीवात्मा के उद्बोधन का विषय है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
९५१. इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ।।३।।[2]

पदार्थ– हे मनुष्यो ! तुम **इन्द्राय** अपने अन्तरात्मा की **नूनम्** अवश्य **अर्चत** स्तुति करो, **उक्थानि च** और उद्बोधनगीतों को **ब्रवीतन** उच्चारण करो । **सुताः** प्रेरित **इन्दवः** वीररस और भक्तिरस तुम्हारे अन्तरात्मा को **अमत्सुः** हर्षित और उत्साहित करें । इस आत्मा के **ज्येष्ठम्** ज्येष्ठ **सहः** बल की, तुम **नमस्यत** प्रशंसा करो ।।३।।

भावार्थ– मनुष्य के अपने अन्तरात्मा में महान् बल निहित है । उसे उद्बोधन देकर और प्रभुभक्ति से मांजकर सब कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं ।।३।।

।।२२।। अथ 'इन्द्र जुषस्व' इत्यादिकस्य द्वाविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भृगुराथर्वणः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बृहती । **स्वरः** मध्यमः ।।

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा का विषय है।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
९५२. इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ।।१।।[3]

---

१. ऋ० १।८४।६ ।
२. ऋ० १।८४।५ ।
३. अथ० २।५।१, 'हरिह' 'मतिर्न' इत्यत्र क्रमेण 'हरिभ्याम्' 'मतेरिह' इति पाठः ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जीवात्मन् ! तू **जुषस्व** प्रसन्न हो, **प्र वह** शरीरयात्रा को भली-भांति वहन कर। हे **शूर** वीर, हे **हरिह** ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों से व्यवहार करने वाले ! तू **आ याहि** आ। तू **सुतस्य** तैयार हुए वीररस का **पिब** पान कर। **मतिः** न मेधावी पुरुष के समान **चारुः** श्रेष्ठ तू **मदाय** उत्साह के लिए **मधोः** मधुर भक्ति-रस का **चकानः** प्रेमी बन ॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ– मनुष्य का आत्मा वीररस का पान कर, उत्साहवान् होकर, भक्तिरस की तरंगों से तरंगित होकर कठिन से कठिन कार्यों को कर सकता है ॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः जीवात्मा का ही विषय है।

९५३. इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न।
अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥२॥[1]

पदार्थ– हे **इन्द्र** जीवात्मन् ! **दिवः न मधोः** अन्तरिक्ष से प्राप्त मधुर वृष्टिजल के समान मधुर ब्रह्मानन्दरस के अंश से, तू **नव्यं न** नवीनसदृश **जठरम्** अपने उदर को अर्थात् स्वयं को **पृणस्व** तृप्त कर। **स्वः न** सूर्य के सदृश जगदीश्वर के पास से **सुतस्य** अभिषुत **अस्य** इस ब्रह्मानन्दरस की **सुवाचः** शुभ स्तुति-वाणियों को प्रेरित करने वाली **मदाः** तृप्तियां **त्वा उप अस्थुः** तेरे संमुख उपस्थित हों ॥२॥

यहां उपमालंकार है। 'नव्यं न' में उत्प्रेक्षा है, नित्य पुरातन भी आत्मा नवीन शरीर को धारण कर मानो नवीन हो जाता है ॥

भावार्थ– मनुष्य का आत्मा ब्रह्मानन्द-रस से तृप्त होकर स्वयं सुख-शान्ति प्राप्त करके दूसरों को भी प्रदान करे ॥२॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा के कार्यों का वर्णन है।

९५४. इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न।
बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥३॥[2]

पदार्थ– **इन्द्रः** मनुष्य का आत्मा **मित्रः न** सूर्य के समान **तुराषाट्** शीघ्रता के साथ विघ्नों को पराजित करता है, **यतिः न** संन्यासी के समान **वृत्रम्** पाप, दुर्व्यसन आदि को **जघान** नष्ट करता है, **भृगुः न** तपस्वी के समान **वलम्** आच्छादक अज्ञान को **विभेद** छिन्न भिन्न करता है, और **सोमस्य** वीररस के **मदे** उत्साह में **शत्रून्** आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को **ससहे** परास्त करता है ॥३॥

यहां मालोपमा अलंकार है ॥३॥

भावार्थ– वीररस के मद में मनुष्य का आत्मा सब अज्ञान, विघ्न, पाप आदियों को पराजित करने में समर्थ हो जाता है ॥३॥

---

१. अथ० २।५।२, 'नव्यं न' इत्यत्र 'नव्यो न', 'स्वा३र्नोप' इत्यत्र च 'स्व१र्णोप' इति पाठः।
२. अथ० २।५।३, 'इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न' इति पूर्वार्धपाठः, उत्तरार्धे 'ससाहे' इत्यत्र 'ससहे'।

इस खण्ड में परमात्मा और जीवात्मा के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

पञ्चम अध्याय में सप्तम खण्ड समाप्त ।

पञ्चम अध्याय समाप्त ।

तृतीय प्रपाठक में प्रथम अर्ध समाप्त ।

अथ षष्ठोऽध्यायः तृतीये प्रपाठके द्वितीयोऽर्धश्च

।।१।। तत्र 'गोवित्पवस्व' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** अकृष्टा माषाः, सिकता निवावरी, पृश्नयोऽजास्त्रय ऋषिगणाः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।।

प्रथम मन्त्र में सोम नाम से परमात्मा का विषय वर्णित करते हैं ।

९५५. गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **इन्दो** तेजस्वी तथा ऐश्वर्य की वर्षा करने वाले परमात्मन् ! **गोवित्** गौएं प्राप्त कराने वाले, **वसुवित्** धन प्राप्त कराने वाले और **हिरण्यवित्** सुवर्ण प्राप्त कराने वाले आप **पवस्व** हमें पवित्र करो । **रेतोधाः** वीर्यप्रदाता आप **भुवनेषु** लोकों में **अर्पितः** व्याप्त हो । हे **सोम** सर्वोत्पादक परमात्मन् ! **त्वम्** आप **सुवीरः** श्रेष्ठ वीर प्राप्त कराने वाले और **विश्ववित्** सर्वज्ञाता **असि** हो । **तं त्वा** ऐसे आपकी **इमे** ये **नरः** उपासक जन **गिरा** स्तुतिवाणी से **उप आसते** उपासना कर रहे हैं ।।१।।

भावार्थ– जगदीश्वर ने ही हमारे उपयोग के लिए बहुमूल्य सब पदार्थ निःशुल्क दिये हुए हैं । ऐसे उपकारक उसको हम कृतज्ञता के साथ स्मरण क्यों न करें ?।।१।।

आगे पुनः परमात्मा का ही विषय है ।

९५६. त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ।।२।।[2]

पदार्थ– हे **सोम** सब जगत् को उत्पन्न करने वाले, शुभ गुणों के प्रेरक परमात्मन् ! **त्वम्** आप **विश्वतः** सब ओर **नृचक्षाः** सब मनुष्यों के द्रष्टा **असि** हो । हे **पवमान** पवित्रकर्ता ! हे **वृषभ** सुखों की वर्षा करने वाले ! आप **ता** उन दृश्यमान सब वस्तुओं में **विधावसि** व्याप्त हो । **सः** वह आप **वसुमत्** निवासक धन से युक्त, **हिरण्यवत्** सुवर्ण से युक्त ज्योति से युक्त, वर्चस् से युक्त, और यश से युक्त ऐश्वर्य को **नः** हमारे लिए **पवस्व** प्राप्त कराओ । **वयम्** हम **भुवनेषु** भूलोकों में **जीवसे** जीने के लिए **स्याम** समर्थ हों ।।२।।

---

१. ऋ० ९।८६।३९ 'नर' इत्यत्र 'विप्रा' इति पाठः ।
२. ऋ० ९।८६।३८ ।

भावार्थ– जो परमेश्वर सर्वद्रष्टा, सर्वान्तर्यामी, धन-धान्य-चांदी-सोना-राज्य आदि देने वाला, ज्योतिप्रदाता, कीर्तिप्रदाता, आरोग्यप्रदाता और दीर्घायुप्रदाता है उसकी उपासना करके उसके रक्षण तथा मार्ग- प्रदर्शन में हम सदा ही रहें ।।२।।

आगे पुनः वही विषय है ।

९५७. ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ।।३।।[1]

पदार्थ– हे **इन्दो** तेजस्विन्, चन्द्रमा के समान आह्लाददायक परमात्मन् ! आप **इमा भुवनानि** इन लोकों के **ईशानः** अधिष्ठाता होते हुए **ईयसे** व्याप्त हो । आप **सुपर्ण्यः हरितः** तीव्र गति वाली सूर्य-किरणों को **युजानः** भूमि, चन्द्रमा आदि ग्रहोपग्रहों में जोड़ते हुए **ईयसे** व्याप्त होते हो । **ते** आपकी **ताः** वे सूर्य-किरणें **मधुमत्** मधुर, **घृतम्** प्रवाहशील **पयः** वर्षाजल को **क्षरन्तु** बरसायें । हे **सोम** शुभगुणप्रेरक परमात्मन् ! **तव व्रते** आपके उपदेश किये हुए कर्म में **कृष्टयः** प्रजाएं **तिष्ठन्तु** स्थित रहें ।।३।।

भावार्थ– जो परमेश्वर सब जगत् को उत्पन्न करके उसकी भली भांति व्यवस्था करता है, जो मेघों में जल निहित करता तथा बरसाता है, उसके बताये व्रतों का पालन करते हुए सब लोग सुखी हों ।।३।।

।।२।। अथ 'पवमानस्य' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कश्यपो मारीचः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रारम्भ में परमात्मा का विषय कहते हैं ।

९५८. पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ।।१।।[2]

पदार्थ– हे **विश्ववित्** सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामिन् जगदीश्वर ! **पवमानस्य** पवित्रता देने वाले **ते** आपकी **सर्गाः** पावन आनन्दधाराएं **न** इस समय **सूर्यस्य** सूर्य की **रश्मयः इव** किरणों के समान **प्र असृक्षत** छूट रही हैं ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा की सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता का विचार करके मनुष्यों को पाप विचारों तथा पाप कर्मों से स्वयं को हटाकर सदा पवित्र अन्तःकरण वाला होना चाहिए ।।१।।

आगे फिर उसी परमात्मा का वर्णन है ।

९५९. केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ९।८६।३७ 'ईयसे' इत्यत्र 'वीयसे' इति पाठः ।
२. ऋ० ९।६४।७ ।
३. ऋ० ९।६४।८ ।

पदार्थ– हे **सोम** जगत् को उत्पन्न करने वाले परमात्मन् ! आप **दिवः परि** चमकीले सूर्य से **केतुम्** प्रकाश को **कृण्वन्** करते हुए **विश्वा रूपा** सब रूपों में **अभ्यर्षसि** व्याप्त हो । वह आप **समुद्रः** मेघ के समान **पिन्वसे** रस की वर्षा करते हो ॥२॥

यहां लुप्तोपमालंकार है ॥२॥

भावार्थ– जगदीश्वर जैसे सूर्य से प्रकाश को और बादल से वर्षा को बखेरता है, वैसे ही ज्ञान का प्रकाश और आनन्द की वर्षा भी करता है ॥२॥

आगे पुनः परमात्मा का ही विषय है ।

९६०. जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । क्रन्दन् देवो न सूर्यः ॥३॥[1]

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रताप्रदायक, परमकारुणिक परमेश्वर ! **विधर्मणि** ज्ञान, इच्छा, सुख आदि के धारणकर्ता जीवात्मा में **जज्ञानः** प्रकट होते हुए, **क्रन्दन्** उपदेश करते हुए आप **वाचम्** दिव्य सन्देश को **इष्यसि** प्रेरित करते हो । और, आप **देवः सूर्यः न** प्रकाशक सूर्य के समान हो ॥३॥

यहां उपमालंकार है ॥३॥

भावार्थ– सबके अन्तरात्मा में पहले ही विद्यमान परमेश्वर प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि साधनों से जब प्रकट कर लिया जाता है, तब वह दिव्य सन्देश को सुनाता हुआ सूर्य के समान प्रकाश देता हुआ, मार्गदर्शक होता है ॥३॥

॥३॥ अथ 'प्र सोमासो' इत्यादिकस्य तृतीयस्य सप्तर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** असितः काश्यपो देवलो वा । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ॥

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्दरूप सोमरसों का वर्णन है ।

९६१. प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥१॥[2]

पदार्थ– **पवमानासः** पवित्रता देने वाले, **इन्दवः** दीप्त तथा रस से सराबोर करने वाले **सोमासः** ब्रह्मानन्दरस **अधन्विषुः** जीवात्मा को प्राप्त हुए हैं। वे **श्रीणानाः** उस आत्मा को परिपक्व करते हुए **अप्सु** उसके द्वारा किये जाते हुए कर्मों में **वृञ्जते** अपने आपको छोड़ते हैं अर्थात् व्याप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ– ब्रह्म के पास से प्राप्त आनन्दरसों से परिपक्व और पूर्णता को प्राप्त मनुष्य शुभकर्मों का ही आचरण करता है, अशुभों का नहीं ॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

९६२. अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाशत ॥२॥[3]

पदार्थ– **प्रवता** ढालू प्रदेश पर **यतीः** बहते हुए **आपः न** जलों के समान **गावः** गतिमय अर्थात् सक्रिय ब्रह्मानन्दरूप सोमरस की धाराएं **अभि अधन्विषुः** जीवात्मा की ओर दौड़ रही हैं। **पुनानाः** पवित्रता करती हुई वे **इन्द्रम्** जीवात्मा को **आशत** व्याप्त कर रही हैं ॥२॥

---

१. ऋ० ९।६४।९ ।
२. ऋ० ९।२४।१, 'अप्सु मृञ्जत' इति पाठः ।
३. ऋ० ९।२४।२ ।

यहां उपमालंकार है॥२॥

भावार्थ– जल जैसे निचले प्रदेश की ओर दौड़ते हुए उस प्रदेश को पवित्र करते हैं वैसे ही ब्रह्मानन्द नम्र जीवात्मा के प्रति दौड़ते हुए उसे पवित्र करते हैं ॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा को सम्बोधन है ।

९६३. प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३॥[1]

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रता करने वाले **सोम** आनन्दरस के भण्डार परमात्मन् ! **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए **मादनः** आनन्ददायक आप **प्र धन्वसि** उसे प्राप्त होते हो । **नृभिः** उपासक नरों से **यतः** ध्यान किये हुए आप **वि नीयसे** विशेष रूप से हृदयप्रदेश में ले जाये जाते हो ॥३॥

भावार्थ– अरणियों में व्याप्त भी अग्नि जैसे प्रकट होने के लिए मन्थन की अपेक्षा रखता है, वैसे ही हृदय और जीवात्मा में पहले से ही विद्यमान भी परमेश्वर प्रकट होने के लिए ध्यान की अपेक्षा करता है ॥३॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है ।

९६४. इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४॥[2]

पदार्थ– हे **इन्दो** रस के भण्डार, चन्द्रमा के समान आह्लाददायक परमेश्वर ! **यत्** जब **अद्रिभिः** सिल-वट्टों के तुल्य ध्यानो से **सुतः** अभिषुत आप **पवित्रम्** पवित्र हृदय-देश में **परि दीयसे** व्याप्त होते हो, तब **इन्द्रस्य** जीवात्मा के **धाम्ने** तेज के लिए, अर्थात् जीवात्मा को तेज से प्रदीप्त करने के लिए **अरम्** पर्याप्त होते हो॥४॥

भावार्थ– ध्यान से प्रकट किया गया परमेश्वर जीवात्मा को तेज से और ब्रह्मवर्चस से अनुप्राणित कर देता है ॥४॥

आगे पुनः परमात्मा के विषय का वर्णन है ।

९६५. त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥५॥[3]

पदार्थ–हे **सोम** रस के भण्डार, शुभकर्मों में प्रेरक, चन्द्रमा के समान आह्लाददायक, सर्वान्तर्यामी, परमपिता जगदीश्वर ! **नृमादनः** मनुष्यों को आनन्दित करने वाले, **चर्षणीधृतिः** मनुष्यों को धारण करने वाले **त्वम्** आप **पवस्व** हमें पवित्र कीजिए, **यः** जो आप सस्निः **सर्वथा** शुद्ध और **अनुमाद्यः** अनुनय द्वारा प्रसन्न करने योग्य हो ॥५॥

भावार्थ–जिस विशुद्ध परमात्मा में पाप की कणिका भी नहीं है वह उपासकों को निर्मल करके पवित्र आनन्दरस से तृप्त करता है ॥५॥

---

१. ऋ० ९।२४।३, 'मादनः' इत्यत्र 'पातवे' इति पाठः ।
२. ऋ० ९।२४।५, 'परिदीयसे' इत्यत्र 'परि धावसि' इति पाठः ।
३. ऋ० ९।२४।४ 'चर्षणीसहे' इति पाठः ।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

९६६. पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥६॥ [1]

पदार्थ– हे सोम ! हे रसागार, परमाह्लादक, जगदाधार परमेश्वर ! **वृत्रहन्तमः** पापों को अतिशय नष्ट करने वाले, **उक्थेभिः** स्तोत्रों से **अनुमाद्यः** प्रसन्न करने योग्य, **शुचिः** पवित्र, **पावकः** पवित्र करने वाले, **अद्भुतः** आश्चर्यकारी गुण–कर्म स्वभाव वाले आप, हम उपासकों को **पवस्व** पवित्र कीजिए ॥६॥

भावार्थ– जो स्वयं पापों का सबसे बढ़कर विनाशक, पवित्र और अद्भुत है वह अन्यों को भी निष्पाप, पवित्र अन्तःकरण वाला और अद्भुत क्यों न करे ?॥६॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर कैसा है, यह बताया गया है ।

९६७. शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् । देवावीरघशंसहा ॥७॥ [2]

पदार्थ– सुतः अभिषुत किया गया **स सोमः** वह रसों का भण्डार परमेश्वर **शुचिः** पवित्र, **पावकः** पवित्र करने वाला, **मधुमान्** मधुर, **देवावीः** दिव्यगुणी विद्वानों की रक्षा करने वाला, और **अघशंसहा** पापप्रशंसकों का विनाशक **उच्यते** कहा जाता है ॥७॥

भावार्थ– स्तुति और उपासना से प्रसन्न किया गया परमेश्वर परम आनन्द के समूह को प्रवाहित करता हुआ उपासकों द्वारा अत्यन्त मधुर और पापों का उन्मूलन करने वाला अनुभव किया जाता है ॥७॥

इस खण्ड में परमात्मा के स्वरूपवर्णनपूर्वक उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना का और ब्रह्मानन्द का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ॥

षष्ठ अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।

॥४॥ अथ 'प्र कविर्' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य सप्तर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** असितः काश्यपो देवलो वा । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की प्राप्ति का विषय है ।

९६८. प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥१॥ [3]

पदार्थ– कविः क्रान्तद्रष्टा और मेधावी यह सोम अर्थात् रस का भण्डार परमात्मा **देववीतये** दिव्यगुणों को उत्पन्न करने के लिए **अव्याः** शुद्ध चित्तवृत्ति के **वारेभिः** विघ्ननिवारक उपाय प्रणव-जप आदियों से **प्र अव्यत** प्राप्त होता है । **साह्वान्** विपत्तियों को दूर करने वाला वह **विश्वाः स्पृधः** सब स्पर्धा करने वाले आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओं को **अभि** पराजित कर देता है ॥१॥

---

१. ऋ० ९।२४।६ 'वृत्रहन्तमोक्थेभि' इति पाठः ।
२. ऋ० ९।२४।७ 'सुतः स मधुमान्' इत्यत्र 'सुतस्य मध्वः' ।
३. ऋ० ९।२०।१ 'ऽव्यो वारेभिरर्षति' इति द्वितीयः पादः ।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से सब दिव्यगुण स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं और विघ्नकारी शत्रु परास्त हो जाते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के उपकारों का वर्णन है।।

९६९. स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ।।२।। [1]

पदार्थ– पवमानः चित्त और आत्मा की शुद्धि करने वाला **स हि** वह सोम अर्थात् जगत् को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर **जरितृभ्यः** स्तोताओं के लिए **सहस्रिणम्** हजार संख्या वाले, **गोमन्तम्** प्रशस्त गाय, प्रशस्त वाणी आदि से युक्त **वाजम्** धन को, अथवा **गोमन्तम्** अन्तःप्रकाशयुक्त **वाजम्** आत्मबल को **आ इन्वति स्म** प्राप्त कराता है ।।२।।

भावार्थ– प्रेय मार्ग का और श्रेय मार्ग का अवलम्बन करने वाले लोगों से ध्यान किया हुआ परमेश्वर उन्हें मनोवांछित सब श्रेय और प्रेय प्रदान कर देता है ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

९७०. परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ।।३।। [2]

पदार्थ– हे परमात्मन् ! **विश्वानि** सब सांसारिक भोगविलास आदि को **परि** छोड़कर, आप ही हमारे द्वारा **चेतसा** चित्त से और **मत्ती** मति से **मृज्यसे** अलंकृत किये जा रहे हो, क्योंकि आप हमें **पवसे** पवित्र करते हो । हे **सोम** परमैश्वर्यशालिन् ! **सः** वह आप **नः** हमें **श्रवः** यश **विदः** प्राप्त कराओ ।।३।।

भावार्थ– जब मनुष्य बाह्य विषयों से मन को हटाकर और परमात्मा में ही केन्द्रित करके परमात्मा का ध्यान करता है तब वह उसे अत्यधिक पवित्रता और अविनश्वर यश प्रदान करता है ।।३।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा से प्रार्थना है ।

९७१. अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।४।। [3]

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता परमैश्वर्यशाली परमेश्वर ! आप **मघवद्भ्यः** दानी धनियों को **ध्रुवम्** स्थिर **रयिम्** धन, और **बृहत्** महान् **यशः** कीर्ति **अभ्यर्ष** प्राप्त कराओ । और **स्तोतृभ्यः** उपासकों के लिए **इषम्** विज्ञान तथा इष्ट सुख **आ भर** लाओ ।।४।।

भावार्थ– दानशील लोग ही धनप्राप्ति के अधिकारी होते हैं । और जो परमात्मा की उपासना करते हैं वे विवेकी तथा सुखी होते हैं ।।४।।

---

१. ऋ० ९।२०।२।

२. ऋ० ९।२०।३ 'मृज्यसे' इत्यत्र 'मृशसे' ।

३. ऋ० ९।२०।४ ।

अब परमात्मा कैसा है यह वर्णन करते हैं ।

९७२. त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५॥[1]

पदार्थ– हे **वह्ने** जगत् के भार के ढोने वाले, **अद्भुत** आश्चर्यकारी गुण-कर्म-स्वभाव वाले, **सोम** सबको उत्पन्न करने वाले, सद्भावों को प्रेरित करने वाले, ऐश्वर्यशालिन् जगदीश्वर ! **पुनानः** हृदयों को पवित्र करते हुए **त्वम्** आप **राजा इव** सम्राट् के समान **सुव्रतः** सुकर्म करने वाले हो। आप **गिरः** वेदवाणियों में **आविवेशिथ** प्रविष्ट हो, अर्थात् वेदवाणियां आपका ही वर्णन कर रही हैं, [क्योंकि ऋग्वेद कहता है कि 'जिसने ऋचा पढ़कर परमेश्वर को नहीं जाना उसे ऋचा से क्या लाभ (ऋ० १।१६४।-३९)] ॥५॥

यहां उपमालंकार है ॥५॥

भावार्थ– जैसे कोई राजा राष्ट्र को उन्नत करने वाले ही कार्य करता है, वैसे ही विश्वब्रह्माण्ड के अधीश्वर परमात्मा के जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि सब कर्म, शुभ, निःस्वार्थ तथा परोपकार करने वाले ही होते हैं ॥५॥

आगे परमात्मा की सर्वव्यापकता का वर्णन है ।

९७३. स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥[2]

पदार्थ– **वह्निः** जगत् के भार को ढोने वाला, **दुष्टरः** दुस्तर, **मृज्यमानः** श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभावों से अलंकृत होने वाला **स सोमः** वह जगत्पति परमेश्वर **अप्सु** नद, नदी, समुद्र, बादल आदि के जलों में, **गभस्त्योः** सौम्य एंव तैजस रूप वाली चन्द्र-सूर्य की किरणों में, **चमूषु** द्यावापृथिवी के मध्य विद्यमान विभिन्न लोकों में **सीदति** बैठा हुआ है ॥६॥

भावार्थ– अगणित ग्रह, उपग्रह, सूर्य नक्षत्र आदियों से युक्त इस अति विस्तीर्ण विश्वब्रह्माण्ड में कोई कण भर भी स्थान नहीं है जहां परमेश्वर विद्यमान न हो ॥६॥

अगले मन्त्र में यह कहते हैं कि क्या करता हुआ परमात्मा कहां जाता है ।

९७४. क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७॥[3]

पदार्थ–हे **सोम** जगत् के सर्जन करने हारे परमात्मन् ! **क्रीडुः** खेल-खेल में विश्व को चलाने वाले तथा **मखः न** यज्ञ के समान **मंहयुः** दूसरों को लाभ पहुंचाने की इच्छा वाले आप **स्तोत्रे** स्तुतिपरायण मनुष्य के लिए **सुवीर्यम्** सुवीर्य से युक्त आत्म-बल **दधत्** प्रदान करते हुए, उसके **पवित्रम्** निर्मल अन्तःकरण में **गच्छसि** व्याप्त होते हो ॥७॥

यहां उपमालंकार है ॥७॥

भावार्थ– जैसे यज्ञ सबके उपकार के लिए होता है वैसे ही परमेश्वर भी दूसरों के उपकार में लगा हुआ स्तोता के अन्तरात्मा में बल, उत्साह, पुरुषार्थ और कर्मयोग की प्रेरणा देता है ॥७॥

---

१. ऋ० ९।२०।५।
२. ऋ० ९।२०।६।
३. ऋ० ९।२०।७।

॥५॥ अथ 'यवंयवं' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य चतुर्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अवत्सारः काश्यपः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ॥

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

९७५. यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव । विश्वा च सोम सौभगा ॥१॥[1]

पदार्थ—हे **सोम** जगदाधार, सर्वैश्वर्यवान्, ब्रह्माण्ड के अधिपति परमात्मन् ! आप **अन्धसा** रस से **पुष्टंपुष्टम्** अत्यधिक परिपुष्ट **यवंयवम्** जौ आदि सब भोग्य पदार्थों को **विश्वा सौभगा च** और सब सौभाग्यों को **नः** हमारे लिए **परिस्रव** चारों ओर प्रवाहित करो ॥१॥

भावार्थ— जिस जगत्पति ने सब बहुमूल्य पदार्थ रचे हैं, उसी की कृपा से मनुष्य अपने पुरुषार्थ द्वारा उन्हें पा सकता है ॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति के साथ उससे प्रार्थना की गयी है ।

९७६. इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२॥[2]

पदार्थ— हे **इन्दो** चन्द्रमा के समान आह्लादक प्रेममय प्रभो ! **यथा** जैसी महान् **तव** आपकी **स्तवः** स्तुति एवं महिमा है और **यथा** जितना महान् **ते** आपके **अन्धसः** आनन्दरस का **जातम्** समूह है, वैसे ही महान् आप हमारे **प्रिये बर्हिषि** प्रिय हृदयासन पर **नि सदः** बैठिए ॥२॥

भावार्थ— अपनी महिमा के अनुरूप महान् रसमय जगदीश्वर हमें प्राप्त होकर आनन्दरस से सराबोर कर दे ॥२॥

अब जगदीश्वर का आह्वान करते हैं ।

९७७. उत नो गोविदश्ववित् पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥३॥[3]

पदार्थ— हे **सोम** सर्वैश्वर्यसम्पन्न राजाधिराज परमात्मन् ! **उत** और, आप **अन्धसा** आनन्दरस के साथ **गोवित्** गौएं प्राप्त कराने वाले वा दिव्य प्रकाश प्राप्त कराने वाले, **अश्ववित्** घोड़े प्राप्त कराने वाले वा प्राण- बल प्राप्त कराने वाले होकर **मक्षूतमेभिः अहभिः** शीघ्रतम दिनों में अर्थात् जल्दी ही **नः** हमें **पवस्व** प्राप्त होवो ॥३॥

भावार्थ—जगदीश्वर हमें पुरुषार्थी बनाकर दिव्य सम्पत्ति वा भौतिक सम्पत्ति से परिपूर्ण करे॥३॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की शक्ति का वर्णन करते हुए उसका आह्वान किया गया है ।

९७८. यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥४॥[4]

---

१. ऋ० ९।५५।१, 'सोम विश्वा च सौभगा' इति तृतीयः पादः ।
२. ऋ० ९।५५।२ ।
३. ऋ० ९।५५।३ ।
४. ऋ० ९।५५।४ ।

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् क्रियाशील जीवात्मन् ! **यः** जो आप **जिनाति** विघ्नों वा विपत्तियों को विनष्ट करते हो, **न जीयते** किसी से पराजित नहीं होते हो, प्रत्युत **अभीत्य** आक्रमण करके **शत्रुम्** शत्रु काम, क्रोध आदि को **हन्ति** मारते हो, **सः** वह आप **सहस्रजित्** हजारों आन्तरिक एवं बाह्य संपदाओं के विजेता होते हुए **पवस्व** प्रगति करो।।४।।

भावार्थ– परमेश्वर का उपासक उसकी मित्रता प्राप्त करके प्रचण्ड से प्रचण्ड बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओं को जीत सकता है ।।४।।

।।६।। अथ 'यास्ते' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** जमदग्निर्भार्गवः । **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम मन्त्र में जगत्पति परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

९७९. यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **इन्दो** आह्लाद देने वाले, चन्द्रतुल्य, रस के भण्डार जगदीश्वर! **याः ते** जो आपकी **मधुश्चुतः** मधुस्राविणी **धाराः** आनन्द की धाराएं **ऊतये** हमारी रक्षा के लिए **असृग्रम्** आपके पास से छूटती हैं **ताभिः** उन धाराओं के साथ, आप **पवित्रम्** हमारे पवित्र अन्तरात्मा में **आसदः** विराजो ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर के ध्यानी योगी लोग अपने अन्तरात्मा में झरते हुए आनन्द के झरने का अनुभव करते हुए परम तृप्ति प्राप्त करते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में आनन्दरस के प्रवाह की आकांक्षा की गयी है ।

९८०. सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया । सीदन्नृतस्य योनिमा ।।२।।[2]

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् प्रवाहशील ब्रह्मानन्दरस! **ऋतस्य योनिम्** सत्य के आश्रय परमात्मा के **आसीदन्** पास स्थित हुआ **सः** वह प्रशंसनीय तू **अव्यया** कठिनाई से अतिक्रमण किये जाने योग्य तथा **वाराणि** योगमार्ग से रोकने वाले व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य आदि विघ्नों को **तिरः** तिरस्कृत करके **इन्द्राय पीतये** जीवात्मा के पान के लिए **अर्ष** प्रवाहित हो।।२।।

भावार्थ– परमात्मा के पास से बहा हुआ परमानन्द का प्रवाह स्तोता की आत्मभूमि को सींचता हुआ उसे सद्गुणरूप सस्यों से श्यामल कर देता है ।।२।।

आगे फिर वही विषय है ।

९८१. त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद् घृतं पयः ।।३।।[3]

पदार्थ– हे **सोम** रसागार परमेश्वर ! **स्वादिष्ठः** सबसे अधिक मधुर और **वरिवोवित्** ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले **त्वम्** आप **अङ्गिरोभ्यः** प्राणायाम के अभ्यासी योगसाधकों के लिए **घृतम्** तेज और **पयः** आनन्दरस को **परिस्रव** क्षरित कीजिए ।।३।।

---

१. ऋ० ९।६२।७ ।

२. ऋ० ९।६२।८, 'रोमाण्यव्यया सीदन् योना वनेष्वा' इति पाठः ।

३. ऋ० ९।६२।९, 'त्वं सोम' इत्यत्र 'त्वमिन्दो' इति पाठः ।

भावार्थ– जो लोग परमात्मा के ध्यान में मग्न हो जाते हैं उन्हें वह सर्वाधिक रसीला, सर्वाधिक मधुर और सर्वाधिक तेजस्वी अनुभूत होता है ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा के स्वरूपवर्णनपूर्वक उसकी स्तुति करने, उसका आह्वान करने और उससे आनन्दरस के प्रवाह की प्रार्थना करने के कारण इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है यह जानना चाहिए ।।

षष्ठ अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

।।७।। अथ 'तव श्रियो' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अरुणो वैतहव्यः। **देवता** अग्निः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।

प्रथम मन्त्र में भौतिक अग्नि के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा का प्रकाशन है ।

९८२. तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ।।१।। [1]

पदार्थ– हे **अग्ने** भौतिक अग्नि ! **तव** तेरी **श्रियः** शोभाएं **वर्ष्यस्य** बरसाऊ मेघ की **विद्युतः इव** बिजलियों के समान, और **उषसाम्** उषाओं के **इतयः इव** आगमनों के समान **आ चिकित्रे** ज्ञात होती हैं, **यत्** जब **ओषधीः** ओषधियों को **वनानि च** और जंगलों को **अभि** लक्ष्य करके **सृष्टः** प्रज्वलित हुआ तू **स्वयम्** अपने आप **आसनि** अपने ज्वालारूप मुख में **अन्नम्** खाद्य को **परि चिनुषे** चारों ओर से संगृहीत करता है ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जगदीश्वर की ही यह प्रशस्ति है कि उसने भयंकर ज्वालाओं से जटिल उस देदीप्यमान अग्नि को उत्पन्न किया है जो जंगलों को भस्म करके नवीन वनस्पतियों को अंकुरित करने में सहायक होता है ।।१।।

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

९८३. वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्द्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ।।२।। [2]

पदार्थ– हे **अग्ने** भौतिक अग्नि! **वातोपजूतः** वायु से कंपित किया हुआ, **वशान् अनु** अभीष्ट वनस्पतियों को लक्ष्य करके **इषितः** प्रेरित हुआ तू **तृषु** तुरन्त **यत्** जब **अन्ना** अन्नों अर्थात् भक्ष्य वनस्पति आदियों में **वेविषत्** व्याप्त होता हुआ **वितिष्ठसे** इधर-उधर चंचल होता है, तब **अजरस्य** जीर्ण न होते

१. ऋ० १०।९१।५ 'विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः', 'अन्नमास्यै' इति पाठः ।
२. ऋ० १०।९१।७, 'वातोपधूतः', 'अजराणि धक्षतः' इति पाठः ।

हुए तथा **धक्षतः** जलाते हुए **ते** तुझ अग्नि के **शर्धांसि** ज्वालारूपी तेज **रथ्यः यथा** रथारोही योद्धाओं के समान **पृथक्** पृथक् पृथक् दिशाओं में **आयतन्ते** उठते हैं ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे रथारोही योद्धा लोग संग्राम में पृथक्-पृथक् विभिन्न दिशाओं में शत्रुओं पर प्रहार करते हैं, वैसे ही जंगलों को भस्म करने के लिए उद्यत अग्नि-ज्वालाएं पृथक्-पृथक् विभिन्न दिशाओं में जलाने का कार्य करती हैं ।।२।।

इस प्रकार भौतिक अग्नि के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा प्रकाशित करके अब अग्नि नाम से जगदीश्वर की स्तुति करते हैं ।

९८४. मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम् ।
त्वामर्भस्य हविषः समानमित् त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ।।३।।[1]

पदार्थ– **मेधाकारम्** धारणावती बुद्धि के प्रदाता, **विदथस्य** ब्रह्माण्ड-यज्ञ के वा मनुष्यों के जीवनयज्ञ के **प्रसाधनम्** सिद्ध करने वाले, **होतारम्** सुख आदि के दाता, **परिभूतरम्** अतिशय रूप से विघ्नों को दूर करने वाले, **मतिम्** सर्वज्ञ **त्वाम् अग्निम्** तुझ अग्रनायक को **समानम् इत्** समानरूप से **अर्भस्य हविषः** छोटे त्याग के लिए, और **त्वाम्** तुझे ही **महः** महान् त्याग के लिए, लोग **वृणते** चुनते हैं, अर्थात् आदर्श रूप से अपने संमुख स्थापित करते हैं, **त्वत् अन्यम्** तुझसे भिन्न को **न** नहीं ।।३।।

यहां विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है । 'तारम्' 'तरम्' में छेकानुप्रास है ।।३।।

भावार्थ– त्याग और परोपकार के लिए परमेश्वर को ही आदर्श रूप में सबको अपने संमुख रखना चाहिए और उसके पीछे चलकर स्वयं भी त्याग एवं परोपकार करना चाहिए ।।३।।

।।८।। अथ 'पुरूरुणा' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** उरुचक्रिरात्रेयः । **देवते** मित्रावरूणौ । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम मन्त्र में मित्र और वरुण की स्तुति है ।

९८५. पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ।।१।।[2]

पदार्थ– हे **मित्र वरुण** परमात्मा और जीवात्मा, राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री, अध्यापक और उपदेशक, प्राण-अपान ! **वाम्** तुम्हारी **अवः** रक्षा **नूनम्** निश्चय ही **पुरूरुणा चित् हि** अतिशय विशाल **अस्ति है** । इसलिए मैं **वाम्** तुम्हारी **सुमतिम्** अनुग्रह-बुद्धि को **वंसि** भजूं ।।१।।

---

१. ऋ०१०।९१।८, 'परि॒भूत॑मं', 'तमिदर्भे॑ह॒विष्या स॑मा॒नमित् तमिन्म॒हे' इति पाठः।।
२. ऋ० ५।७०।१ ।

भावार्थ– परमात्मा-जीवात्मा, राष्ट्रपति-प्रधानमन्त्री, अध्यापक-उपदेशक और प्राण-अपान की सुरक्षा पाकर शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से हम अति उन्नत हो सकते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में मित्र और वरुण से प्रार्थना की गयी है ।

९८६. ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम ।।२।।[1]

पदार्थ–हे **अद्रुह्वाणा** द्रोह न करने वाले, मित्र-वरुण अर्थात् परमात्मा-जीवात्मा, राष्ट्रपति-प्रधानमन्त्री, अध्यापक-उपदेशक, और प्राण-अपानो ! **ता वाम्** उन तुम दोनों की, हम स्तुति करते हैं । तुम्हारी अनुकूलता से हम **इषम्** अन्न, रस, धन, विज्ञान आदि **धाम च** और तेज **सम्यक्** समुचित प्रकार से **अश्याम** प्राप्त करें । हे **मित्रा** सबके मित्रो ! **वयम्** हम स्तोता लोग **वाम्** तुम्हारे **स्याम** हो जाएं ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा-जीवात्मा, राष्ट्रपति-प्रधानमन्त्री, अध्यापक-उपदेशक और प्राण-अपान यथायोग्य उपयोग किये जाने पर महान् उपकार करते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में फिर उनसे प्रार्थना है ।

९८७. पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । साह्याम दस्यून् तनूभिः ।।३।।[2]

पदार्थ– हे **मित्रा** मित्रभूत परमात्मा-जीवात्मा, राष्ट्रपति-प्रधानमन्त्री, अध्यापक-उपदेशक वा प्राण-अपानो ! तुम **पायुभिः** पालन-साधनों से **नः** हमारी **पातम्** पालना करो । **उत** और **सुत्रात्रा** उत्तम त्राण करने वाले गुण-समूह से **त्रायेथाम्** हमारा त्रण करो । तुम्हारी सहायता से हम **तनूभिः** शरीरों द्वारा **दस्यून्** क्षयकारी आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को **सासह्याम** पराजित कर देवें ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा-जीवात्मा, राष्ट्रपति-प्रधानमन्त्री, अध्यापक-उपदेशक, और प्राण-अपान की सहायता पाकर पुरुषार्थ करके हम सदा ही सुरक्षित हो सकते हैं ।।३।।

।।९।। अथ 'उत्तिष्ठन्' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः–** कुरुसुतिः काण्वः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा के वीररस-पान का विषय है ।

९८८. उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ५।७०।२, 'धाम च' इत्यत्र 'धायसे', 'वां मित्रा' इत्यत्र च 'ते रुद्रा' इति पाठः ।

२. ऋ० ५।७०।३, 'मित्रा' इत्यत्र 'रुद्रा', 'सासह्याम' इत्यत्र 'तुर्य्याम' इति पाठः ।

३. ऋ० ८।७६।१०, अथ० २०।४२।३, उभयत्र 'पीत्वी' इति पाठः ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** विघ्नों का विदारण करने में समर्थ जीवात्मन् ! तू **ओजसा सह** तेज के साथ **उत्तिष्ठन्** ऊंचा उठता हुआ **चमू** मन-बुद्धि रूप कटोरों में **सुतम्** निचोड़े गए **सोमम्** वीर-रस को **पीत्वा** पीकर **शिप्रे** जबड़े आदि अंगों को **अवेपयः** चलाता है। [जबड़े आदि को चलाना शत्रु के प्रति उग्रभाव के प्रकाशनार्थ होता है] ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य अपने आत्मा में वीरता के भावों को तरंगित करके, सब विघ्नों का विदारण करके आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं का उच्छेद करे ।।१।।

अगले मन्त्र में जीवात्मा के वीरकर्म की प्रशंसा है ।

९८९. अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ।।२।।[1]

पदार्थ– हे **इन्द्र** शरीरधारी जीवात्मन् ! **स्पर्धमानम्** स्पर्धा करते हुए **त्वा** तुझे **उभे रोदसी** धरती-आकाश दोनों अथवा माता-पिता दोनों **अनु अददेताम्** अनुकूल उत्साह वा साधुवाद देते हैं, **यत्** जब तू **दस्युहा** दस्युओं का विनाशक **अभवः** होता है ।।२।।

भावार्थ– जब मनुष्य उत्साहित होकर दुर्विचारों और दुष्टजनों का वध करता है तब उस कार्य में सब उसका समर्थन करते हैं ।।२।।

जीवात्मा में वीरता तभी आती है जब वह ज्ञानी होता है । इसलिए अगले मंत्र में आचार्य के पास से शिष्य के ज्ञानग्रहण का विषय है ।।

९९०. वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् । इन्द्रात् परितन्वं ममे ।।३।।[2]

पदार्थ– शिष्य कह रहा है– **अहम्** मैं शिष्य **इन्द्रात्** विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य से **अष्टापदीम्** सात विभक्तियों तथा सम्बोधन इन आठ पदों से युक्त अर्थात् सुबन्तरूप, **नवस्रक्तिम्** प्रथम-मध्यम-उत्तम पुरुषों के एकवचन, द्विवचन बहुवचन रूप नौ विभागों से युक्त अर्थात् तिङन्तरूप, **ऋतावृधम्** सत्यज्ञान को बढ़ाने वाली, **तन्वम्** विस्तृत **वाचम्** वाणी को **परिममे** ग्रहण करता हूं । अभिप्राय यह है कि सब सुबन्त और तिङन्त रूपों को जानकर सम्पूर्ण वाङ्मय में पण्डित हो जाता हूं ।।३।।

भावार्थ– सब विद्यार्थियों को चाहिए कि व्याकरणशास्त्र को भलीभांति पढ़कर तथा अन्य वेदांगों में भी प्रवीण होकर, वेदार्थों को जानकर, विद्वान् होकर अपने विद्यार्थियों को पढाएं ।।३।।

।।१०।। अथ 'इन्द्राग्नी' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । **देवते** इन्द्राग्नी । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में इन्द्र और अग्नि के नाम से आत्मा और मन तथा राजा एवं सेनापति का आह्वान किया गया है ।

९९१. इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ८।७६।११, अथ० २०।४२।२, उभयत्र 'क्रक्षमाणमकृपेताम्' इति द्वितीयः पादः ।।
२. ऋ० ८।७६।१२ अथ० २०।४२।१, उभयत्र 'ऋतावृधम्' इत्यत्र 'ऋतस्पृशम्' इति पाठः ।
३. ऋ० ६।६०।७ ।

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** आत्मा और मन तथा राजा और सेनापति ! **युवाम्** तुम्हारी **इमे स्तोमाः** ये स्तोत्र **अभि अनूषत** प्रशंसा कर रहे हैं। हे **शम्भुवा** कल्याणकारियो ! तुम **सुतम्** अभिषुत वीररस को **पिबतम्** पिओ ।।१।।

भावार्थ– वीरता और उद्बोधन को प्राप्त करके ही मनुष्य के आत्मा और मन तथा राजा और सेनापति वैयक्तिक एवं सामाजिक उन्नति करने योग्य होते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय को कहते हैं ।

९९२. या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ।।२।।[1]

पदार्थ– हे **नरा** नेता **इन्द्राग्नी** आत्मा और मन वा राजा एवं सेनापति ! **त्यागशील, परोपकारी जन के लिए याः** जो **वाम्** तुम्हारी **नियुतः** लाख संख्या वाली **पुरुस्पृहः** बहुत महत्त्वाकांक्षा वाली उदात्त कामनाएं हैं **ताभिः** उनके साथ, तुम **आ गतम्** आओ ।।२।।

भावार्थ– शरीर में मनुष्य का अन्तरात्मा और मन तथा राष्ट्र में राजा और सेनाध्यक्ष दूसरों का हित करने वाले मनुष्य का ही उपकार करते हैं, स्वार्थ की कीचड़ से लिप्त मनुष्य का नहीं ।।२।।

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

९९३. ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ।।३।।[2]

पदार्थ– हे **नरा** नेता **इन्द्राग्नी** आत्मा और मन एवं राजा और सेनापति! **इदं सवनम् उप सुतम्** तुम्हारे लिए यह उद्बोधनस्तोत्र गाया गया है । तुम **ताभिः** उन पूर्वमन्त्रोक्त लाख उदात्त कामनाओं के साथ **सोमपीतये** वीररस के पानार्थ **आगच्छतम्** आओ ।।३।।

भावार्थ– मनुष्य के आत्मा में तथा राजा एवं सेनाध्यक्ष में जो बहुत सी महत्त्वाकांक्षाएं रहती हैं वे वीरता से ही सिद्ध की जा सकती हैं। आध्यात्मिक उत्कर्ष भी वीरता से ही संभव है, आलसीपन से नहीं ।।३।।

इस खण्ड में अग्नि की स्तुति द्वारा परमात्मा की स्तुति का वर्णन करने से, मित्र-वरुण नाम से परमात्मा-जीवात्मा एवं प्राण-अपान का वर्णन होने से, इन्द्र नाम से जीवात्मा को उद्बोधन होने से, इन्द्राग्नी नाम से आत्मा और मन को उद्बोधन होने से तथा प्रसंगतः मित्र-वरुण नाम से राष्ट्रपति एवं प्रधानमन्त्री तथा अध्यापक एवं उपदेशक और इन्द्राग्नि नाम से राजा एवं सेनापति के भी कर्तव्य आदि कथित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है यह जानना चाहिए ।।

षष्ठ अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

।।११।। अथ 'अर्षा सोम' इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भृगुर्वारुणिर्जमदग्नि-भार्गवो वा । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

---

१. ऋ० ६।६०।८ ।

२. ऋ० ६।६०।९ ।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५०३ क्रमांक पर परमात्मा और वानप्रस्थ के विषय में व्याख्यात की गयी थी । यहां प्रकारान्तर से परमात्मा का विषय दर्शाते हैं ।।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र३ १ २ २३ २ ३ २३ २
९९४. अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **सोम** जगत् के स्रष्टा परमात्मन् ! **योनौ** अन्तरिक्ष में **वनेषु** जलों में **आसीदन्** रहने वाले, **द्युमत्तमः** देदीप्यमान, **रोरुवत्** गर्जना करते हुए बिजलीरूप अग्नि के समान, **योनौ** घर में, और **वनेषु** जंगलों में, सब जगह **आसीदन्** स्थिर हुए, **द्युमत्तमः** सबसे बढ़कर तेजस्वी, **रोरुवत्** कर्तव्य का उपदेश करने वाले आप **द्रोणानि अभि** आत्मा, मन, बुद्धि, आदि द्रोणकलशों के प्रति **अर्ष** आइए ।।१।।

यहां श्लेषमूलक वाचकलुप्तोपमालंकार है।।१।।

भावार्थ– घर हो या जगंल हो, पहाड़ हो या गुफा हो, नदियां हों या समुद्र हो, भूमि हो या आकाश हो, बिजली हो या अन्तरिक्ष हो, शरीर हो या आत्मा हो, सभी जगह विराजमान भी जगदीश्वर जब तक ध्यान से प्रकाशित न हो जाए तब तक प्रत्यक्ष नहीं होता ।।१।।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रसों का आह्वान है।

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३ १ २
९९५. अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ।।२।।[2]

पदार्थ– **सोमाः** ब्रह्मानन्द-रस **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए, **वायवे** वेगवान् मन के लिए, **वरुणाय** वरने योग्य बुद्धितत्त्व के लिए, **मरुद्भ्यः** इन्द्रियों के लिए, और **विष्णवे** शरीर में व्यापक प्राण के लिए **अप्साः** कर्म को देने वाले एवं पुरुषार्थ की प्रेरणा करने वाले होकर **अर्षन्तु** प्रवृत्त होवें ।।२।।

भावार्थ– जब परमात्मा के पास से ब्रह्मानन्द-रस आत्मा में उतरते हैं तब शरीर का अंग-अंग स्फूर्तिमान् और पौरुषयुक्त हो जाता है ।।२।।

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
९९६. इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ।।३।।[3]

पदार्थ– हे **सोम** परमैश्वर्यशालिन् जगदीश्वर ! आप **नः** हमारे **तोकाय** सन्तान के लिए और **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **विश्वतः** सब ओर से **इषम्** अन्न तथा विज्ञान **दधत्** प्रदान करते हुए **सहस्रिणम्** हजार संख्या वाले आन्तरिक तथा बाह्य ऐश्वर्य को **आ पवस्व** प्राप्त कराइये ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर के ध्यान से बल पाकर मनुष्य सारे विशाल दिव्य एवं भौतिक ऐश्वर्य को पा सकता है ।।३।।

।।१२।। अथ 'सोम उ' इत्यादिकस्य द्वादशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्नि- भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः) । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** बृहती । **स्वरः** मध्यमः ।।

---

१. ऋ० ९।६५।१९, 'सीदञ्छ्येनो न योनिमा' इति पाठः । साम० ५०३, ऋषिः भृगुः ।

२. ऋ० ९।६५।२०, 'सोमो अर्षति विष्णवे' इति तृतीयः पादः।

२. ऋ० ९।६५।२१ ।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५१५ क्रमांक पर सोम ओषधि के रस के विषय में तथा ब्रह्मानन्द के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहां भेड़ के बालों से निर्मित वस्त्रखण्डों से गोदुग्ध को छानने का वर्णन है।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
९९७. सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥१॥[1]

पदार्थ– सोतृभिः गोदुग्ध को छानने वालों द्वारा **अवीनां स्नुभिः** भेड़ के बालों से निर्मित, पर्वतशिखर के समान फैले हुए वस्त्रों से **अधिष्वाणः** छाना जाता हुआ **सोमः** गोदुग्ध **अश्वया इव** शीघ्र-गामिनी नदी के समान **हरिता** तेज **धारया** धारा से **याति** कड़ाहों में छनता है, **मन्द्रया** आनन्ददायिनी **धारया** धारा के साथ **याति** कड़ाहों में छनता है ॥१॥

यहां उपमालंकार है। 'याति धारया' की पुनरुक्ति में लाटानुप्रास है ॥१॥

भावार्थ– जिस देश में गोदुग्ध की धाराएं बहती हैं वहां के लोग हृष्ट, पुष्ट, अधिक बलवान् होते हुए, दीर्घायुष्य पाते हुए, चिरकाल तक यज्ञादि कर्म करते हुए और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए आनन्दित रहते हैं ॥१॥

अगले मन्त्र में दुधारू गायों का वर्णन है ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९९८. अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १र २र
समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते ॥२॥[2]

पदार्थ– यदा जब **गोमान्** गायों का स्वामी **गोभिः** गायों के साथ **अनूपे** अधिक जल वाले देश में **अक्षाः** निवास करता है, तब **दुग्धाभिः** दुही हुई भी गायों से **सोमः** दूध **अक्षाः** झरता रहता है, अर्थात् गायों में इतना अधिक दूध होता है कि दुह लेने के बाद भी पर्याप्य दूध थनों में बचा होकर चूता रहता है। **समुद्रं न** समुद्र में जैसे **संवरणानि** नदियों के जल पहुंचते हैं, वैसे ही गायों के दूध विशाल कड़ाह आदि में **अग्मन्** जाते हैं। **मन्दी** हर्षदायक गोदुग्ध-रूप सोम **मदाय** गोस्वामियों के हर्ष के लिए **तोशते** दुहने के समय शब्द करता है ॥२॥

यहां उपमालंकार है। 'रक्षाः' की आवृत्ति में यमक है ॥२॥

भावार्थ– जिस घर या परिवार में बहुत दूध देने वाली धेनुएं हैं वहां के निवासी यथेच्छ गाय के दूध, दही, मक्खन आदि का सेवन करते हुए और गाय के घी से यज्ञ करते हुए तथा परमात्मा का ध्यान करते हुए सदा खूब प्रसन्न रहते हैं ॥२॥

॥१३॥ अथ 'यत्सोम' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** असितः काश्यपो देवलो वा। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः॥

---

१. ९।१०७।८, 'ष्वाणः' इत्यत्र 'षुवाणः' इति पाठः। साम० ५१५।

२. ऋ० ९।१०७।९।

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है ।

९९९. यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **सोम** दिव्य आनन्द, विद्या आदि परम ऐश्वर्य से युक्त जगदीश्वर वा आचार्य ! **यत्** जो **चित्रम्** अद्‌भुत, **उक्थ्यम्** प्रशंसनीय, **दिव्यम्** योगसिद्धि, मोक्ष आदि दिव्य, तथा **पार्थिवम्** सोना, हीरे, मोती, चक्रवर्ती राज्य आदि भौतिक **वसु** धन है, **तत्** उस धन को, आप **नः** हमें **पुनानः** पवित्र करते हुए **आ भर** प्रदान कीजिए ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा की कृपा को प्राप्त हुए और आचार्य द्वारा तरह-तरह की आध्यात्मिक तथा भौतिक विद्याओं में पारंगत किये हुए हम सकल दिव्य एवं पार्थिव धन को एकत्र कर सकते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और आचार्य का विषय है ।

१०००. वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन्योनिमासदः ।।२।।[2]

पदार्थ– हे परमात्मन् वा आचार्य! **वृषा** आनन्द, विद्या आदि की वर्षा करने वाले आप **आयूंषि** हमारे जीवनों को **पुनानः** पवित्र करते हुए **बर्हिषि अधि** अध्यात्मयज्ञ वा विद्यायज्ञ में **स्तनयन्** उपदेश करते हुए **हरिः सन्** पाप, दुर्व्यसन, दुःख आदि को हरने वाले होते हुए **योनिम्** आत्मारूप सदन में वा गुरुकुल-सदन में **आसदः** विराजमान होते हो ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा हमारे हृदय में स्थित होकर अपनी प्रेरणा द्वारा और गुरु गुरुकुल में स्थित होकर सब विद्याओं के पढ़ाने तथा चरित्रनिर्माण के द्वारा हमारा उपकार करते हैं, इसलिए उनका पूजन और सत्कार सबको करना चाहिए ।।२।।

अगले मन्त्र में सोम नाम से परमेश्वर तथा इन्द्र नाम से आचार्य को कहा जा रहा है।

१००१. युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ।।३।।[3]

पदार्थ– हे **सोम** जगत्स्रष्टा परमात्मन् ! आप **इन्द्रः च** और अज्ञान को दूर करने वाले आचार्य **युवं हि** तुम दोनों ही **स्वःपती** ज्ञानप्रकाश के स्वामी, और **गोपती** वाणी के अधिपति **स्थः** हो । **ईशाना** ज्ञान और वाणी के स्वामी आप दोनों हमारी **धियः** श्रेष्ठ प्रज्ञाओं और श्रेष्ठ क्रियाओं को **पिप्यतम्** बढ़ाओ ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से और गुरु के सत्कार से श्रेष्ठ सत्यज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य अपने जीवन को उन्नत कर सकते हैं ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, ब्रह्मानन्दरस, आचार्य एवं प्रसंगतः गौओं तथा गोदुग्ध का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।।

षष्ठ अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

---

१. ऋ० ९।१९।१ ।

२. ऋ० ९।१९।३ 'आयुंषु', 'योनिमासदत्' इति पाठः ।

३. ऋ० ९।१९।२, 'स्वर्पती' इति पाठः ।

।।१४।। अथ 'इन्द्रो मदाय' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** पङ्क्तिः ।**स्वरः** पञ्चमः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४११ क्रमांक पर परमात्मा, जीवात्मा, राजा और सेनापति के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां मन रूप सेनापति को प्रबोधन दिया गया है ।

१००२. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ।।१।।[1]

पदार्थ– **वृत्रहा** पाप-नाशक **इन्द्रः** वीर मन **नृभिः** विजय की आकांक्षा वाले मनुष्यों द्वारा **मदाय** हर्ष के लिए, और **शवसे** बल के लिए **वावृधे** बढ़ाया अर्थात् उत्साहित किया जाता है । **ऊतिम्** रक्षक **तम् इत्** उस मन को ही, हम **महत्सु** बड़े **आजिषु** आन्तरिक और बाह्य संग्रामों में, तथा **अल्पे** छोटे संग्राम में **हवामहे** पुकारते हैं। **सः** वह मन **वाजेषु** उन युद्धों में **नः** हमारी **अविषत्** रक्षा करे ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य का मन यदि मर गया तो वह जीवन में कोई भी उन्नति नहीं कर सकता, और मन यदि उत्साह से भर गया तो सब विघ्नों को और शत्रुओं को तिरस्कृत करता हुआ वह सब जगह विजय प्राप्त करता है ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः मन को प्रबोधित किया गया है ।

१००३. असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ।।२।।[2]

पदार्थ– हे **वीर** पराक्रमशील मन! तू **सेन्यः** सेनाओं में निपुण अर्थात् सेनापति **असि** है, और **भूरि** भूरि-भूरि **पराददिः** शत्रुओं को दूर फेंकने वाला **असि** है । साथ ही **दभ्रस्य चित्** क्षुद्र का भी **वृधः** बढ़ाने वाला **असि** है। तू **यजमानाय** यजनशील, परोपकारी मनुष्य के लिए **शिक्षसि** बल प्रदान करता है । **सुन्वते** वीररस उत्पन्न करने वाले मनुष्य को **ते** तेरा **भूरि** बहुत अधिक **वसु** ऐश्वर्य प्राप्त होता है ।।२।।

भावार्थ– जब मनुष्य अपने मन को सेनापति पद पर अभिषिक्ति करके आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को जीतने का यत्न करते हैं तब विजय निश्चित मिलती है ।।२।।

तृतीय ऋचा की पूर्वार्चिक में ४१४ क्रमांक पर जीवात्मा, राजा और सेनापति के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां प्रसंगागत मन का विषय ही वर्णित है ।

१००४. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधो ऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ।।३।।[3]

---

१. ऋ० १।८१।१, अथ० २०।५६।१, उभयत्र 'षूतिमर्भे' इत्यत्र 'षूतेमर्भे' इति पाठः । साम० ४११।
२. ऋ० १।८१।२, अथ० २०।५६।२ ।
३. ऋ० १।८१।३, अथ० २०।५६।३, उभयत्र 'धनम्' 'युङ्क्ष्वा' इत्यत्र 'धनं', 'युक्ष्वा' इति पाठः । साम० ४१४।

पदार्थ– **यत्** जब **आजयः** आन्तरिक या बाह्य देवासुरसंग्राम **उदीरते** उठते हैं, तब **धृष्णवे** जो शत्रुओं को परास्त करने वाला है उसी मनुष्य को **धनम्** ऐश्वर्य **धीयते** मिलता है। हे **इन्द्र** विघ्नों को विदीर्ण करने वाले मेरे वीर मन ! तू **मदच्युता** शत्रुओं के मद को चूर करने वाले **हरी** ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-रूप घोड़ों को **युङ्क्ष्व** ज्ञान के ग्रहण और कर्म के करने के लिए नियुक्त कर। **कम्** किसी को अर्थात् शत्रु को **हनः** मार, **कम्** किसी को अर्थात् मित्र को **वसौ दधः** ऐश्वर्य में स्थापित कर। **अस्मान्** हम मित्रों को **वसौ दधः** ऐश्वर्य में स्थापित कर अर्थात् ऐश्वर्य प्रदान कर ।।३।।

भावार्थ– आन्तरिक या बाह्य युद्धों के उपस्थित होने पर मन को उत्साहित करके, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को अपने-अपने विषयों में भली-भांति नियुक्त करके, ठीक-ठीक शत्रुओं की गतिविधि जानकर, उन पर प्रहार करके सब शत्रुओं को पराजित करना और मित्रों को सत्कृत करना चाहिए।।३।।

।।१५।। अथ 'स्वादोरित्था' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** पंक्तिः। **स्वरः** पञ्चमः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४०९ क्रमांक पर आत्मिक तथा राष्ट्रिय स्वराज्य के विषय में व्याख्या की जा चुकी है । यहां सूर्य के स्वराज्य का वर्णन करते हैं ।

१००५. स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ।।१।।[1]

पदार्थ– **गौर्यः** चमकीली सूर्यकिरणें **इत्था** सचमुच **वि-सुवतः** विशेषरूप से भूमि पर बरसते हुए बादल के **स्वादोः** स्वादु **मधोः** मधुर जल का **पिबन्ति** पान करती हैं, **याः** जो सूर्यकिरणें **वृष्णा** वर्षा करने वाले **इन्द्रेण** सूर्य की **सयावरीः** सहगामिनी होती हुई **शोभथा** शोभन प्रकार से **मदन्ति** आनन्दित करती हैं। **वस्वीः** निवासक वे किरणें **स्वराज्यम्** सूर्य के स्वराज्य के **अनु** अनुकूल चलती हैं ।।१।।

भावार्थ– अहो, सूर्य का स्वराज्य कैसा दर्शनीय है ! किस प्रकार सूर्य-किरणें निर्बाध होकर मेघ से बरसाये हुए नदी, नद, समुद्र आदि में व्याप्त जल को पीकर, पुनः बादल बनाकर फिर मेघ-जल को भूमि पर बरसा देती हैं। वैसे ही हमें भी चाहिए कि हम भी आन्तरिक स्वराज्य तथा अपने राष्ट्र के स्वराज्य की अर्चना करें ।।१।।

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

१००६. ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ।।२।।[2]

पदार्थ– **अस्य** इस इन्द्रनामक सूर्य की **ताः पृश्नयः** वे रंग-बिरंगी किरणें **पृशनायुवः** मानो चन्द्रमा के साथ स्पर्श को चाहती हुई **सोमम्** चन्द्रमा को **श्रीणन्ति** प्रकाश से परिपक्व करती हैं। **इन्द्रस्य** सूर्य की,

---

१. ऋ० १।८४।१०, अथ० २०।१०९।१, उभयत्र 'मधोः', शोभथा' इत्यत्र 'मध्वः', 'शोभसे' इति पाठः । साम० ४०९ ।
२. ऋ० १।८४।११ ।

वे **प्रिया:**प्रिय **धेनवः** किरणें **सायकम्** दुर्भिक्ष आदि का अन्त करने वाले **वज्रम्** मेघ के विद्युत्रूप वज्र को **हिन्वन्ति** प्रेरित करती हैं। इसप्रकार **वस्वीः** वे निवासक किरणें **स्वराज्यम्** सूर्य के स्वराज्य के **अनु** अनुकूल चलती हैं ।।२।।

यहां 'पृशनायुवः' में व्याङ्ग्योत्प्रेक्षा अलंकार है ।।२।।

भावार्थ– सूर्य-किरणों का ही यह महान् कार्य है कि वे सूर्य के स्वराज्य का अनुसरण करती हुई चन्द्र आदि लोकों को प्रकाशित करती हैं, मेघों में विद्युत्रूप वज्र को गरजाती हुई वर्षा करती हैं और सबको बसाती हैं। उसीप्रकार मनुष्यों को भी अपना आन्तरिक एवं बाह्य स्वराज्य प्रकाशित करना चाहिए ।।२।।

अगले मन्त्र में सूर्यकिरणों और सेनाओं के स्वराज्य का वर्णन है ।

१००७. ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ।।३।।[1]

पदार्थ– प्रथम सूर्य-किरणों के पक्ष में । **प्रचेतसः** प्रज्ञापक **ताः** वे सूर्यकिरणें **नमसा** चन्द्र आदि लोकों के प्रति झुकने के द्वारा **अस्य** इस सूर्यरूप इन्द्र के **सहः** बल को **सपर्यन्ति** बढाती हैं। और **पूर्वचित्तये** सूर्य के क्षितिज में उदय होने से पूर्व ही उसका ज्ञान कराने के लिए **अस्य** इस सूर्य के **पुरूणि** बहुत से **व्रतानि** प्रकाशप्रदान आदि कर्मों को **सश्चिरे** कर देती हैं। इस प्रकार **वस्वीः** वे निवासक किरणें **स्वराज्यम्** सूर्य के अपने साम्राज्य को **अनु** अनुक्रम से बढाती हैं ।।

द्वितीय सेना के पक्ष में । **प्रचेतसः** प्रकृष्ट चित्त वाली **ताः** वे सेनाएं **नमसा** नमस्कार के साथ **अस्य** इस सेनाध्यक्षरूप इन्द्र के **सहः** बल की **सपर्यन्ति** प्रशंसा करती हैं। और **अस्य** इस सेनाध्यक्ष को **पूर्वचित्तये** पहले ही ज्ञान करा देने के लिए **पूरूणि** बहुत से **व्रतानि** शत्रुओं में भय उत्पन्न करना आदि **कर्मों को सश्चिरे** कर देती हैं। इस प्रकार **वस्वीः** अपने राष्ट्र के निवास में कारणभूत वे सेनाएं **स्वराज्यम्** स्वराज्य के **अनु** अनुकूल आचरण करती हैं ।।३।।

भावार्थ– सूर्यकिरणें जैसे सूर्य के साथ मिल कर और सेनाएं जैसे सेनापति के साथ मिल कर स्वराज्य को बढ़ाती हैं, वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर के साथ मिलकर अपने आध्यात्मिक स्वराज्य को बढायें ।।३।।

इस खण्ड में मन को प्रबुद्ध करने एवं सूर्य तथा सूर्यरश्मियों के स्वराज्य के वर्णन द्वारा प्रजाओं के आध्यात्मिक स्वराज्य की सूचना देने के कारण इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए।।

षष्ठ अध्याय में पंचम खण्ड समाप्त ।

।।१६।। अथ 'असाव्यंशुर्' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** जमदग्निर्भार्गवः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

---

१. ऋ० १।८४।१२ ।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४७३ क्रमांक पर आनन्दरस के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां सोम ओषधि के रस का तथा ज्ञानरस का विषय वर्णित किया जाता है ।

१ २ ३१र २र ३ १र २र ३ २ ३ २उ ३ १ २
१००८. असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥१॥[1]

पदार्थ– प्रथम सोमौषधि के रस के विषय में । **गिरिष्ठाः** पर्वतों पर उत्पन्न, **दक्षः** बलदायक **अंशुः** सोम ओषधि का रस **मदाय** पीने पर उत्साहवर्धन के लिए **अप्सु** जलों में **असावि** निचोड़ा गया है । **श्येनः न योनिम्** बाज पक्षी जैसे अपने आवासवृक्ष पर बैठता है, वैसे ही यह सोम ओषधि का रस **योनिम्** द्रोणकलश में **आसदत्** आकर स्थित हो गया है ॥

द्वितीय–ज्ञानरस के विषय में । **गिरिष्ठाः** वेदवाणी में स्थित, **दक्षः** आत्मबल देने वाला **अंशु** ज्ञानरस **मदाय** आनन्द प्राप्त कराने के लिए **अप्सु** विद्यार्थियों के कर्मों में **असावि** अभिषुत किया जाता है । **श्येनः न योनिम्** बाज पक्षी जैसे अपने आवास-वृक्ष पर बैठता है, वैसे ही यह ज्ञानरस **योनिम्** जीवात्मारूप सदन में **आसदत्** आकर स्थित होता है ॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार तथा श्लेष है॥१॥

भावार्थ– कर्मरहित अकेला ज्ञान नीरस और निष्फल होता है ॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है ।

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २
१००९. शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥२॥[2]

पदार्थ– प्रथम सोम ओषधि के रस के विषय में । **देववातम्** सूर्य या मेघ द्वारा बढ़ाये हुए **अप्सु** जलों में **धौतम्** धोये हुए, **नृभिः** ऋत्विज् मनुष्यों से **सुतम्** अभिषुत किये गये **शुभ्रम् अन्धः** स्वच्छ सोमरस को **गावः** गौएं **पयोभिः** अपने दूधों से **स्वदन्ति** स्वादु बनाती हैं ।

द्वितीय ज्ञानरस के विषय में । **देववातम्** विद्वान् आचार्य से प्रेरित, **अप्सु** कर्मों में, आचरणों में **धौतम्** पहुंचाये हुए, **नृभिः** अन्य मार्गदर्शक गुरुजनों से **सुतम्** उत्पन्न किये गये **शुभ्रम् अन्धः** स्वच्छ ज्ञानरस को **गावः** वेदवाणियां **पयोभिः** ओंकाररूप दूध से **स्वदन्ति** मधुर कर देती हैं ॥२॥

यहां श्लेषालंकार है ॥२॥

भावार्थ– भौतिक ज्ञान अध्यात्म ज्ञान से मिलकर महान् कल्याण करने वाला हो जाता है ॥२॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

२ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
१०१०. आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय । मधो रसं सधमादे ॥३॥[3]

पदार्थ– प्रथम सोम ओषधि के रस के विषय में । **आत्** उसके अनन्तर अर्थात् सोमरस में गाय का दूध मिलाने के पश्चात्, **हेतारम्** बल बढ़ाने वाले **ईम् मघोः रसम्** इस मधुर सोम के रस को, योद्धा लोग **अमृताय** युद्ध में विजय की प्राप्ति के निमित्त **अशूशुभन्** पीने के लिए पात्रों में अलंकृत करते हैं, **हेतारम् अश्वं न** जैसे शीघ्रगामी घोड़े को अश्वपाल योग्य अलंकारों से अलंकृत करते हैं ॥

---

१. ऋ० ९।६२।४, साम० ४७३ ।

२. ऋ० ९।६२।५, 'मप्सु धूतो नृभिः सुतः' इति द्वितीयः पादः ।

३. ऋ० ९।६२।६, हेतारो', 'मध्वो' इति पाठः।

द्वितीय ज्ञानरस के विषय में। **आत्** गुरु के पास से ज्ञान की उपलब्धि के अनन्तर **हेतारम्** पुरुषार्थ को बढ़ाने वाले **ईम् मघोः रसम्** इस मधुर ज्ञानरस को, शिष्यगण **अमृताय** मोक्ष की प्राप्ति के लिए **अशूशुभन्** योगाभ्यासों से अलंकृत करते हैं ।।३।।

यहां श्लेष और श्लिष्टोपमा अलंकार हैं ।।३।।

भावार्थ– जैसे पिया हुआ सोम ओषधि का रस बल की वृद्धि करने वाला होता हुआ युद्ध में विजय प्राप्त कराता है, वैसे ही आचार्य से ग्रहण किया गया ज्ञान योगाभ्यास से मिलकर मोक्ष प्राप्त कराता है ।।३।।

।।१७।। अथ 'अभि द्युम्नं' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १ ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः, २ कृतयशा आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** काकुभः प्रगाथः (१ विषमा ककुबुष्णिक्, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ ऋषभः, २ पञ्चमः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५७९ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधन की गयी थी । यहां योगिराज आचार्य को सम्बोधन है ।

१०११. अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् ।
वि कोशं मध्यमं युव ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **इषः पते** विज्ञान के स्वामी योगिप्रवर आचार्य! आप **द्युम्नम्** अध्यात्म तेज, **बृहद् यशः** विशाल कीर्ति, हम शिष्यों को **अभि** प्राप्त कराइये । हे **देव** योगविद्या से प्रकाशित विद्वन् ! आप **देवयुम्** परमात्मदेव के इच्छुक मुझको **दिदीहि** परमात्मा का दर्शन कराकर प्रकाशित कर दीजिए । **मध्यमं कोशम्** पंच कोशों में से बीच में स्थित मेरे मनोमय कोश को **वि युव** उद्घाटित कर दीजिए, जिससे मैं विज्ञानमय और आनन्दमय कोश में आरोहण कर सकूं ।।१।।

भावार्थ– योगविद्या में निष्णात आचार्य के अनुशासन में स्थित शिष्य सारी अध्यात्म-विद्या पाकर परमात्मा के साक्षात्कार में समर्थ हो जाता है ।।१।।

अगले मन्त्र में फिर आचार्य को कहा जा रहा है ।

१०१२. आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः ।।२।।[2]

पदार्थ– हे **सुदक्ष** शुभ योगबल से युक्त आचार्यप्रवर ! **चम्वोः** द्यावापृथिवी के तुल्य परा और अपरा विद्याओं में **सुतः** निष्णात आप **विशाम्** प्रजाओं के **वह्निः** भार को उठाने वाले **विश्पतिः न** प्रजापालक राजा के समान **आ वच्यस्व** प्रशंसा प्राप्त कीजिए, **गविष्टये** दिव्य प्रकाश के इच्छुक **मुझ**

---

१. ऋ० ९।१०८।९, 'देवयुः' इति पाठः। साम० ५७९ ।
२. ऋ० ९।१०८।१०, 'रीतिमपां जिन्वा' इति पाठः ।

शिष्य के लिए **धियः** प्रज्ञानों को **जिन्वन्** प्रेरित करते हुए आप **दिवः** मूर्धा-लोक से **वृष्टिम्** धर्ममेघ समाधि में होने वाली ज्योति की वर्षा को, और **अपः** आनन्द-जल की **रीतिम्** धारा को **पवस्व** प्रवाहित कीजिए ॥२॥

यहां उपमालंकार है ॥२॥

भावार्थ– योगविद्या में पारंगत आचार्य भौतिक विज्ञानों के पाण्डित्य के साथ-साथ योगविद्या का पाण्डित्य भी शिष्यों में उत्पन्न करता हुआ उनके संमुख मानो दिव्य ज्योति एवं ब्रह्मानन्द की धारा को प्रवाहित कर देता है ॥२॥

॥१८॥ अथ 'प्राणा' इत्यादिकस्याष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** त्रित आप्त्यः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः॥

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५७० क्रमांक पर परमात्मा के महत्त्व के विषय में व्याख्या की गयी थी । यहां वही विषय प्रकारान्तर से कहा जा रहा है ।

३ १र २र३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१०१३. प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २३१ २ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१॥[1]

पदार्थ– प्राणा सबको प्राण देने वाला, **शिशुः** शिशु के समान प्रेम करने योग्य, **महीनाम्** मंगल, बुध, बृहस्पति, चन्द्रमा आदि की भूमियों के पृष्ठ पर **ऋतस्य** सूर्य की **दीधितिम्** किरणावलि को **हिन्वन्** भेजता हुआ, पवमान सोम अर्थात् सर्वान्तर्यामी परमेश्वर **विश्वा** सब **प्रिया** प्रिय वस्तुओं में **परि भुवत्** चारों ओर से व्याप्त है । **अध** और **द्विता** दो प्रकार के इसके कार्य हैं-बर्फ, नद, नदी, समुद्र, चन्द्रमा, बादल आदि सौम्य कार्य तथा आग, बिजली, सूर्य, आदि तैजस कार्य ॥१॥

भावार्थ– जो जगदीश्वर सब प्राणियों को प्राण देता है, सूर्य के प्रकाश को सब जगह बखेरता है, सर्वान्तर्यामी होता हुआ सब जगत् की व्यवस्था करता है, उसकी सब मनुष्य आराधना क्यों करें? ॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है ।

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १र २र ३ २
१०१४. उप त्रितस्य पाष्यो३रभक्त यद् गुहा पदम् ।
३ १ २ ३ १र २र ३१ २ ३ २
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥२॥[2]

पदार्थ– यत् क्योंकि, वह पवमान सोम अर्थात् सर्वान्तर्यामी जगत्स्रष्टा परमेश्वर **पाष्योः** द्यावापृथिवी की **गुहा** गुफाओं में भी **त्रितस्य** पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौ रूप तीन स्थानों में स्थित सूर्य के **पदम्** किरण-समूह को **उप अभक्त** पहुंचाता है, **अध** इस कारण **यज्ञस्य** शरीर में संगत जीवात्मा के **सप्त धामभिः** पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि इन सात धामों से **प्रियम्** उस प्रिय परमेश्वर की, पूजा करो ॥२॥

---

१. ऋ० ९।१०२।१, साम० ५७० ।

२. ऋ० ९।१०२।२ ।

भावार्थ– परमात्मा की कैसी अद्भुत व्यवस्था है कि सूर्य की किरणें विभिन्न लोकों के भूगर्भ में भी पहुंचकर वहां अपने ताप से सुवर्ण आदि धातुओं को उत्पन्न कर देती हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के कार्यों का वर्णन है।

१०१५. त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ।।३।।[1]

पदार्थ– **त्रितस्य** सूर्य के **त्रीणि** तीन पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक रूप पृष्ठ हैं । उन **पृष्ठेषु** तीनों पृष्ठों में, उस पवमान सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमेश्वर ने **रयिम्** ऐश्वर्य को **ऐरयत्** प्रेरित किया हुआ है । साथ ही **सुक्रतुः** उस सुकर्मा परमेश्वर ने **अस्य** इस सूर्य के **योजना** योजनों को, अर्थात् सूर्य कितने योजन विस्तार वाला है इस माप को भी **वि मिमीते** मापा हुआ है ।।३।।

भावार्थ– भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक में सब जगह ही जगदीश्वर ने विशिष्ट ऐश्वर्य रखे हुए हैं। सब ग्रह-उपग्रह-सूर्य-नक्षत्र-नीहारिका आदियों का बनाने वाला वह उनके परिमाण को भी ठीक-ठाक जानता है ।।३।।

।।१९।। अथ 'पवस्व' इत्यादिकस्यैकोनविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषी** रेभसूनू काश्यपौ । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** **अनुष्टुप्** । **स्वरः** गान्धारः ।।

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर का आह्वान है ।

१०१६. पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ।।१।।[2]

पदार्थः– हे **सोम** रस के भण्डार जगत्पति परमात्मन् ! **सुतः** आत्मा में प्रकट हुए, **मधुमत्तरः** अत्यन्त मधुर आप **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए, **विष्णवे** शरीर में व्यापक प्राण के लिए, और **देवेभ्यः** इन्द्रियों के लिए **वाजसातये** बलप्रदानार्थ **पवित्रे** पवित्र हृदय में **धारया** आनन्द की धारा के साथ **पवस्व** प्रवाहित होवो ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा के पास से आनन्द का झरना झरने पर जीवात्मा, मन, बुद्धि आदि सभी रस से सिक्त और कृतकृत्य हो जाते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का वर्णन है ।

१०१७. त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ९।१०२।३ 'पृष्ठेष्वेरया रयिम्' इति पाठः ।

२. ऋ० ९।१००।६ ।

३. ऋ० ९।१००।७, 'धीतयो' इत्यत्र 'मातरो', 'मातरः' इत्यत्र 'धेनवः' इति भेदः ।

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रतादायक रस के भण्डार जगदीश्वर ! **हरिम्** पाप के हरने वाले आपको **विधर्मणि** विशेष रूप से सद्गुणों के धारक **पवित्रे** पवित्र अन्तरात्मा में **अद्रुहः** द्रोहरहित **धीतयः** धी-वृत्तियाँ **रिहन्ति** चाटती हैं, ध्याती हैं, **जातम्** नवजात **वत्सम्** बछड़े को **मातरः न** जैसे गौ माताएं चाटती हैं ।।२।।

भावार्थ– जैसे धेनुएं अपने बछड़े को जीभ से चाटती हुई आनन्द अनुभव करती हैं, वैसे ही मनुष्य परमात्मा को ध्याते हुए आनन्द से तरंगित होते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है ।

१०१८. त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ।।३।।[1]

पदार्थ– हे **महिव्रत** महान् कर्मों के कर्ता सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमात्मन्! **त्वम्** आप **द्यां च** द्यौ लोक को **पृथिवीं च** और भूलोक को भी **अति** लांघकर **जभ्रिषे** सबको धारण किये हुए हो । हे **पवमान** सर्वान्तर्यामिन् आपने **महित्वना** अपनी महिमा से **द्रापिम्** रक्षा-कवच को **प्रति अमुञ्चथाः** धारण किया हुआ है, अर्थात् आपकी महिमा ही आपका रक्षा-कवच है, क्योंकि अलौकिक आपको कवच आदि भौतिक साधनों की अपेक्षा नहीं होती । अथवा, **द्रापिम्** निद्रा को **प्रति अमुञ्चथाः** छोड़ा हुआ है, अर्थात् सदैव जागरुक होने से आप निद्रा-रहित हो ।।३।।

भावार्थ– न केवल द्युलोक तथा भूलोक को, किन्तु उनसे परे भी जो कुछ है उस सबको भी जगदीश्वर ही धारण करता है। वह भौतिक कवच के बिना भी रक्षित रहता है और नींद के बिना भी विश्राम को प्राप्त रहता है ।।३।।

।।२०।। अथ 'इन्दुर्वाजी' इत्यादिकस्य विंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मन्युर्वासिष्ठः। **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५४० क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां ब्रह्मानन्दरस का वर्णन है ।

१०१९. इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा ।।१।।[2]

पदार्थ– **गोन्योघाः** मन, बुद्धि, प्राण एवं इन्द्रियों में प्रवाहित होने वाला, **वाजी** वेगवान्, **इन्दुः** सराबोर करने वाला ब्रह्मानन्दरस **पवते** प्रवाहित हो रहा है । **सोमः** अभिषुत वह ब्रह्मानन्दरस **इन्द्रे** जीवात्मा में **मदाय** उत्साह के लिए **सहः** बल **इन्वन्** प्रेरित करता है । वह रस **रक्षः** पाप को **हन्ति** विनष्ट करता है, **अरातिम्** अदानवृत्ति को **परिबाधते** दूर करता है । **वृजनस्य** आत्मिक बल का **राजा** राजा, वह **वरिवः** आध्यात्मिक धन को **कृण्वन्** उत्पन्न करता हैं ।।१।।

---

१. ऋ० ९।१००।९ ।
२. ऋ० ९।९७।१०, 'पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्' इति पाठः। साम० ५४० ।

भावार्थ– योगाभ्यास द्वारा आनन्दरस की नदी जीवात्मप्रदेश में जब बहती है तब सब दोष दूर हो जाते हैं और चित्त निर्मल हो जाता है ॥१॥

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्दरस का वर्णन है।

१०२०. अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥२॥[1]

पदार्थ– **अध** और, **अद्रिदुग्धः** मन-बुद्धिरूप सिलबट्टों से अभिषुत वह ब्रह्मानन्द-रूप सोम **मध्वा धारया** मधुर धारा से **पृचानः** संपृक्त करता हुआ **तिरः रोम** रोमांच उत्पन्न करता हुआ **पवते** प्रवाहित होता है । **देवः** प्रकाश का दाता, **मत्सरः** मद-जनक **इन्दुः** सराबोर करने वाला वह ब्रह्मानन्दरस **देवस्य** दिव्यगुणयुक्त **इन्द्रस्य** जीवात्मा की **सख्यम्** मैत्री को **जुषाणः** सेवन करता हुआ, उसके **मदाय** उत्साह के लिए होता है ॥२॥

यहां ध-र-द-म आदियों की अनेक बार आवृति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है । 'देवो, देव' में छेकानुप्रास है ॥२॥

भावार्थ– ब्रह्म के पास से बही हुई आनन्दधाराएं जब जीवात्मा को नहला देती हैं तब अत्यन्त निर्मल अन्तःकरण वाला जीवन्मुक्त वह बड़े से बड़े दुःख को भी तिनके के बराबर भी नहीं समझता ॥२॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि बहता हुआ ब्रह्मानन्दरस क्या करता है।

१०२१. अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये॥३॥[2]

पदार्थ– **देवः** दिव्यगुणमय ब्रह्मानन्दरूप सोमरस **देवान्** मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदियों को **पुनानः** पवित्र करता हुआ **स्वेन रसेन** अपने रस से **पृञ्चन्** स्नान कराता हुआ **व्रतानि अभि** कर्मों में **पवते** प्रवाहित होता है । **इन्दुः** आर्द्र करने वाला आनन्दरस **ऋतुथा** समय-समय पर **धर्माणि** सत्य, न्याय, दया आदि धर्मों को **वसानः** धारण करता हुआ **दश क्षिपः** दस इन्द्रियों या दस प्राणों को **अव्ये सानौ** पहुंचने योग्य उन्नति-शिखर पर **अव्यत** पहुंचा देता है ॥३॥

भावार्थ– ब्रह्मानन्द-रस जब जीवन में व्याप्त हो जाता है तब मनुष्य के सब अंगों को, सब प्राणों को, सब मन-बुद्धि आदियों को अपने प्रभाव से नचाता हुआ सा चमत्कृत करता है ॥३॥

इस खण्ड में आचार्य, ज्ञानरस परमात्मा और ब्रह्मानन्दरस का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है॥

षष्ठ अध्याय में षष्ठ खण्ड समाप्त ।

---

१. ऋ० ९।९७।११ ।

२. ऋ० ९।९७।१२, 'व्रतानि' इत्यत्र 'प्रियाणि' इति पाठः।

।।२१।। अथ 'आ ते अग्न' इत्यादिकस्यैकविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसुश्रुत आत्रेयः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** पङ्क्ति । **स्वरः** पञ्चमः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४१९ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधित की गयी थी । यहां आचार्य को सम्बोधन करते हैं ।

१०२२. आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **देव** ज्ञान-प्रकाश के प्रदाता **अग्ने** विद्वन् आचार्य ! हम **ते** आपके **द्युमन्तम्** तेजस्वी, **अजरम्** पुराना न होने वाले ज्ञान-समूह को **इधीमहि** अपने अन्दर प्रदीप्त करते हैं । **यत् ह** जो **स्या** वह **ते** आपकी **पनीयसी** अतिशय स्तुति-योग्य **समित्** ज्ञान-दीप्ति **द्यवि** प्रकाशित आपके आत्मा में **दीदयति** प्रदीप्त हो रही है, उस **इषम्** व्याप्त ज्ञानदीप्ति को **स्तोतृभ्यः** ईश्वर-स्तोता हम शिष्यों को **आ भर** प्रदान कीजिए ।।१।।

भावार्थ– जो कोई भी विद्याएं आचार्य जानता है उन सभी को शिष्यों के लिए भली भांति देवे, जिससे शिष्य विद्वान् होकर अपने शिष्यों को पढ़ायें । इस प्रकार विद्या के पढ़ने-पढ़ाने का क्रम आगे-आगे बिना विघ्न के चलता रहे ।।१।।

अगले मन्त्र में आचार्य के अधीन निवास करता हुआ शिष्य यज्ञाग्नि में हवि की आहुति देता हुआ कहता है ।

१०२३. आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।२।।[2]

पदार्थ– हे **शुक्रस्य** दीप्त **ज्योतिषः** तेज के **पते** स्वामिन् ! यह **ते** तेरे लिए **ऋचा** वेदमन्त्र के उच्चारण के साथ **हविः** हवि है । हे **सुश्चन्द्र** उत्तम आह्लाद देने वाले, **दस्म** रोगों को नष्ट करने वाले, **विश्पते** प्रजापालक, **हव्यवाट्** होमी हुई हवि को जलाकर सूक्ष्म करके वायु के माध्यम से स्थानान्तर में पहुंचाने वाले **अग्ने** यज्ञाग्नि ! **तुभ्यम्** तेरे लिए, यह हवि **हूयते** होमी जा रही है । तू **स्तोतृभ्यः** मन्त्रपाठ द्वारा तेरे गुणवर्णन में तत्पर हम लोगों के लिए **इषम्** अभीष्ट आरोग्य आदि **आ भर** प्रदान कर ।।२।।

भावार्थ– गुरुकुल में विद्या पढ़ने के लिए निवास करते हुए सब छात्र नियम से प्रातः-सायम् अग्निहोत्र करते हुए वायुशुद्धि द्वारा आरोग्य आदि को और तेजस्विता को प्राप्त कर सुखी होवें ।।२।।

---

१. ऋ० ५।६।४, अथ० १८।४।८८ (ऋषिः अथर्वा), अथर्ववेदे 'आ त्वोग्न, यद् घ सा', 'द्यवि इषं' इति पाठः साम० ४१९।

२. ऋ० ५।६।५, 'ज्योतिषस्पते' इत्यत्र 'शोचिषस्पते' ।

अगले मन्त्र में शिष्य परमेश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं ।

१०२४. ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।३।।[1]

पदार्थ– हे **सुश्चन्द्र** शुभ आह्लाद देने वाले, **विश्पते** प्रजापालक अग्रनायक परमात्मन् ! आप **आसनि** खोले हुए मुख के तुल्य खाली स्थान में **उभे दर्वी** द्युलोक-पृथिवीलोक दोनों को **आश्रीणीषे** चारों ओर से परिपक्व करते हो । **उत उ** और, हे **शवसः पते** बल के अधीश्वर ! **उक्थेषु** प्रशंसित धर्म-कर्मों में **नः** हमें **उत्पुपूर्याः** पूर्ण करो । **स्तोतृभ्यः** हम स्तोताओं के लिए **इषम्** अभीष्ट गुण-कर्म-स्वभाव आदि **आभर** लाओ ।।३।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर द्यावापृथिवी को परिपक्व और परिपूर्ण करता है वैसे ही वह स्तोताओं को परिपक्व मति वाला तथा धर्म-कर्म में पूर्ण करे ।।३।।

।।२२।। अथ 'इन्द्राय साम' इत्यादिकस्य द्वाविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नृमेध आङ्गिरसः। **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ३८८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या की जा चुकी है । यहां आचार्य शिष्यों को कह रहा है ।

१०२५. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ।।१।।[2]

पदार्थ– हे शिष्यो! तुम **विप्राय** मेधावी, **बृहते** महान्, **ब्रह्मकृते** जल, अन्न, धन, वेद, विद्युत्, प्राण, मन, वाणी, श्रोत्र, हृदय आदियों के रचयिता, **विपश्चिते** विद्वान्, सर्वज्ञ **पवस्यवे** दूसरों को स्तुतिमान् अर्थात् कीर्तिमान् बनाना चाहने वाले, **इन्द्राय** विघ्नों के विदारक परमेश्वर के लिए **बृहत् साम** 'त्वामिद्धि हवामहे' साम० २३४, ८०९ इस ऋचा पर गाये जाने वाले बृहत् नामक साम को **गायत** गाओ ।।१।।

भावार्थ– आचार्य के अधीन गुरुकुल में निवास करने वाले शिष्यों को चाहिए कि वे अनेक गुणों वाले जगदीश्वर को लक्ष्य करके बृहत् आदि सामों को गायें और स्वयं भी उसके गुणों का अनुकरण करें ।।१।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर के गुण-कर्मों का वर्णन है ।

१०२६. त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ५।६।९, 'उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो' इति प्रथमः पादः।

२. ऋ० ८।९८।१, अथ० २०।६२।५, उभयत्र 'ब्रह्मकृते' इत्यत्र 'धर्मकृते' इति पाठः । साम० ३८८ ।

३. ऋ० ८।९८।२, अथ० २०।६२।६।

पदार्थ– हे इन्द्र जगदीश्वर! **त्वम्** आप **अभिभूः** सब काम, क्रोध आदि शत्रुओं को परास्त करने वाले **असि** हो, **त्वम्** आपने **सूर्यम्** सूर्य को **अरोचयः** चमकाया है । आप **विश्वकर्मा** सब कर्मों को करने वाले, **विश्वदेवः** सबको आनन्द देने वाले, तथा **महान्** महान् **असि** हो ।।२।।

भावार्थ– जो संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रकाशप्रदान आदि कर्मों से तथा आनन्द देने के द्वारा हमारा उपकार करता है, उस अनन्त महिमा वाले परमेश्वर के स्तुतिगीत सबको गाने चाहिएं ।।२।।

आगे फिर वही विषय कहा गया है ।

१०२७. विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वा३रगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ।।३।।[1]

पदार्थ– हे **इन्द्र** महान् महिमा वाले जगत्पति ! **ज्योतिषा** तेज से **विभ्राजन्** देदीप्यमान, आप **दिवः** द्युलोक के **रोचनम्** दीप्तिमान् **स्वः** सूर्य में **अगच्छः** पहुंचे हुए हो । **देवाः** विद्वान् लोग **ते** आपकी **सख्याय** मैत्री के लिए **येमिरे** स्वयं को केन्द्रित करते हैं, लालायित रहते हैं ।।३।।

भावार्थ– ज्योतिष्मान् परमेश्वर से ही ज्योति पाकर आग, बिजली, सूर्य, तारे, चांदी, सोना, हीरे आदि सब चमकते हैं। इसलिए मनुष्यों को भी ज्योति पाने के लिए उसकी मित्रता का आश्रय लेना चाहिए ।।३।।

।।२३।। अथ 'असावि सोम' इत्यादिकस्य त्रयोविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः। **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ३४७ पर जीवात्मा और सेनाध्यक्ष के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां परमात्मा जीवात्मा को कह रहा है ।

१०२८. असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ।।१।।[2]

पदार्थ– हे **इन्द्र** सखा जीवात्मा ! मैंने **ते** तेरे लिए **सोमः** आनन्दरस **असावि** उत्पन्न किया है । हे **शविष्ठ** बलिष्ठ! हे **धृष्णो** कामादि शत्रुओं के पराजेता! **आगहि** आ । **इन्द्रियम्** आत्मबल **त्वा** तुझे **आ पृणक्तु** परिपूर्ण करे, **सूर्यः न** जैसे सूर्य **रश्मिभिः** किरणों से **रजः** पृथिवी, चन्द्रमा आदि लोकों को, परिपूर्ण करता है ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा के साथ मैत्री करके जीवात्मा अविच्छिन्न आनन्द-रस की धारा को और अनन्त आत्मबल को पा लेता है ।।१।।

---

१. ऋ० ८।९८।३, अथ० २०।६२।७ ।
२. ऋ० १।८४।१, साम० ३४७ ।

अथ परमेश्वरो जीवात्मानं नवजन्मनि देहं प्रवेशयति ।

१०२९. आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥२॥[1]

पदार्थ– हे **वृत्रहन्** पाप, विघ्न आदि के विनाशक जीवात्मन् ! तू **रथम्** नवीन शरीर-रूप रथ पर **आ तिष्ठ** आकर बैठ । **ब्रह्मणा** मुझ परमेश्वर ने **ते** तेरे लिए **हरी** प्राण-अपान वा ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय **युक्ता** तुझमें नियुक्त किये हैं। कुमारावस्था में गुरुकुल में प्रविष्ट होने के पश्चात् **ग्रावा** विद्वान् उपदेष्टा गुरु **वग्नुना** उपदेश-रूप शब्द से **ते मनः** तेरे मन को **अर्वाचीनम्** धर्म के अभिमुख **सु कृणोतु** भली-भांति करे ॥२॥

भावार्थः– जीवात्मा मातुर्गर्भं प्रविश्य जन्म गृहीत्वा मातापित्रोरङ्के क्रीडन् तयोः सकाशात् प्रारम्भिक- शिक्षां प्राप्य कुमारः सन् यथाकालं गुरुकुलं गत्वा गुरुभ्यः शास्त्राध्ययनं कुर्वन् मनो धर्मे प्रवर्तयेत् ॥२॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि गुरुकुल से स्नातक बनकर किस प्रकार क्या करे ।

१०३०. इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥३॥[2]

पदार्थ– अप्रतिधृष्टशवसम् जिसके बल को कोई दबा नहीं सकता ऐसे, **इन्द्रम्** आचार्यों से विद्या ग्रहण किये हुए विद्वान् स्नातक को **इत्** ही **हरी** रथ में नियुक्त उत्तम घोड़े एवं जलयान तथा विमान में नियुक्त विद्युत् और वायु **ऋषीणाम्** मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषियों के **सुष्टुतीः** शुभ मन्त्रार्थोपदेशों में **मानुषाणां यज्ञं च** और मनुष्यों के यज्ञ-समारोह में **उपवहतः** ले जाएं ॥३॥

भावार्थ– आचार्य के गर्भ से द्वितीय जन्म प्राप्त करके विद्वान् द्विज सामाजिक उत्थान के कार्यों में भाग लेता हुआ धर्मपूर्ण यज्ञादि समारोहों में जाए ॥३॥

इस खण्ड में गुरु-शिष्य और परमात्मा-जीवात्मा का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।

षष्ठ अध्याय में सप्तम खण्ड समाप्त ।

षष्ठ अध्याय समाप्त ।

तृतीय प्रपाठक में द्वितीय अर्ध समाप्त ।

॥१॥ अथ 'ज्योतिर्यज्ञस्य' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** अकृष्टा माषाः, सिकता निवावरी, पृश्नयोऽजाश्च । **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ॥

---

१. ऋ० १।८४।३ ।
२. ऋ० १।८४।२, 'ऋषीणां च स्तुतीरुप' इति तृतीयः पादः ।

आरम्भ में परमात्मा का और उसके रस का वर्णन है ।

१०३१ . ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१॥[1]

पदार्थ– **यज्ञस्य ज्योतिः** देवपूजा, संगतिकरण, दान आदि रूप यज्ञ का प्रकाश करने वाला, **देवानाम्** प्रकाशक सूर्य, चन्द्रमा आदियों का और विद्वानों का **पिता** पालनकर्ता, **जनिता** सबको जन्म देने वाला, **विभूवसुः** प्रचुर वा व्यापक धन वाला पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता जगत्पति परमेश्वर **प्रियं मधु** प्रिय मधुर वर्षाजल को, ज्ञानरस को वा आनन्दरस को **पवते** भूमि पर वा उपासक के अन्तरात्मा में प्रवाहित करता है, और **स्वधयोः** द्यावापृथिवी में **अपीच्यम्** छिपे हुए **रत्नम्** चांदी, सोना, मणि, मोती आदि रत्नों को **दधाति** परिपुष्ट करता है । इसका **इन्द्रियः रसः** जीवात्मा से सेवित ज्ञानरस वा आनन्दरस **मत्सरः** स्फूर्तिदायक तथा **मदिन्तमः** अत्यन्त उत्साहप्रद होता है॥१॥

भावार्थ– जो सब भौतिक रसों को तथा आध्यात्मिक रस को प्रवाहित करता है वह जगदीश्वर किसका वन्दनीय नहीं है ॥१॥

अगले मन्त्र में वर्षक बादल और परमात्मा का वर्णन है ।

१०३२. अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥२॥[2]

पदार्थ– **प्रथम** बादल के पक्ष में । **वाजी** बलवान् सोम अर्थात् वर्षा करने वाला बादल **अभिक्रन्दन्** गर्जता हुआ, वर्षाजल द्वारा **कलशम्** भूमण्डलरूप कलश में **अर्षति** जाता है । वह **दिवः पतिः** अन्तरिक्ष का अधिपति, **शतधारः** बहुत धारों वाला, और **विचक्षणः** कार्यकुशल है । **हरिः** जलों को जहां-तहां ले जाने वाला वह **मित्रस्य** सूर्य के **सदनेषु** स्थिति-स्थान पर्वत आदियों में **सीदति** जाता है । साथ ही **वृषा** वर्षा करने वाला वह **अविभिः** वेगगामिनी **सिन्धुभिः** नदियों के द्वारा **मर्मृजानः** भूमि के भागों को अतिशय शुद्ध करता है ॥

द्वितीय परमात्मा के पक्ष में । **वाजी** बलवान् सोम अर्थात् आनन्दवर्षक परमात्मा **अधिक्रन्दन्** उपदेश देता हुआ **कलशम्** आत्मा रूप कलश में **अर्षति** जाता है । वह **दिवः पतिः** जीवात्मा का पालनकर्ता, शतधारः आनन्द की सैंकड़ों धाराओं को बहाने वाला, और **विचक्षणः** विशेष द्रष्टा है । **हरिः** पापों का हर्ता वह **मित्रस्य** अपने सखा जीवात्मा के **सदनेषु** अन्नमय-प्राणमय-मनोमय आदि कोशों में **सीदति** स्थित होता है । साथ ही, **वृषा** सुख बरसाने वाला वह **अविभिः** रक्षा करने वाली **सिन्धुभिः** आनन्दरस की नदियों से **मर्मृजानः** उपासक के अन्तःकरण को शुद्ध करता है ॥२॥

---

१. ऋ० ९।८६।१०, ऋषयः अकृष्टा माषाः ।
२. ऋ० ९।८६।११, ऋषिः सिकता निवावरी ।

यहां श्लेषालंकार है ।।२।।

भावार्थ– बादल की जल-वर्षा से पृथिवी के समान परमात्मा की आनन्दवर्षा से योगसाधक की मनोभूमि सरस और निर्मल हो जाती है ।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर का कर्तृत्व वर्णित है ।

२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
१०३३. अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि ।
२३ १ २ ३१र २र ३ २ ३ १ २
अग्रे वाजस्य भजसे महद् धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ।।३।।[1]

पदार्थ– हे सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमात्मन्! **पवमानः** पवित्रकर्ता आप **सिन्धूनाम्** नदियों के **अग्रे** आगे-आगे **अर्षसि** चलते हो, अर्थात् उन्हें आप ही प्रवाहित करते हो । **वाचः** मनुष्यों से उच्चारण की जाती हुई वाणी के **अग्रे** आगे **गच्छसि** चलते हो, अर्थात् आपकी दी हुई वाक्शक्ति से ही मनुष्य व्यक्त वाणी का उच्चारण करते हैं। **अग्रियः** आगे स्थित आप **गोषु** सूर्य किरणों में **गच्छसि** पहुंचते हो, अर्थात् सूर्य किरणों को भी आप ही प्रकाशित एवं प्रेरित करते हो । और, **वाजस्य** अन्न तथा संग्राम के भी **अग्रे** आगे, आप ही जाते हो, अर्थात् अन्न आदि की उत्पत्ति और संग्राम में विजय भी आप ही कराते हो । आप **महत् धनम्** महान् ऐश्वर्य को **भजसे** प्राप्त किये हुए हो । हे **सोम** परमात्मन् ! **स्वायुधः** उत्तम शस्त्रास्त्र जिसके पास हैं ऐसे सेनापति के समान रक्षा करने में समर्थ आप **सोतृभिः** ध्यानयज्ञ करने वाले उपासकों के द्वारा **सूयसे** अभिषुत किये जाते हो, अर्थात् वे आप से अपने लिए आनन्द-रस को क्षरित करते हैं ।।३।।

भावार्थ– बाहरी जगत् में और शरीर के अन्दर होने वाली सारी व्यवस्था को सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ही कराता है ।।३।।

।।२।। अथ 'असृक्षत' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कश्यपो मारीचः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४८२ क्रमांक पर भक्तिरस के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां ब्रह्मानन्द-रस का प्रवाह वर्णित है ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
१०३४. असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ।।१।।[2]

पदार्थ– **वाजिनः** बलवान्, **शुक्रासः** पवित्र, **आशवः** शीघ्रगामी **सोमासः** ब्रह्मानन्द-रस **गव्या** इन्द्रियबलों की प्राप्ति की इच्छा से, **अश्वया** प्राण-बलों की प्राप्ति की इच्छा से, और **वीरया** वीर-भावों की प्राप्ति की इच्छा से **प्र असृक्षत** परमेश्वर के पास से अभिषुत किये जा रहे हैं ।।१।।

भावार्थ– उपासक के आत्मा में जब ब्रह्मानन्द-रस की धाराएं बहती हैं तब मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि का सात्त्विक बल स्वयं ही उपस्थित हो जाता है ।।१।।

---

१. ऋ० ९।८६।१२ ऋषिः सिकता निवावरी । 'अर्षत्यग्रे' 'गच्छति' 'अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा' इति पाठः ।
२. ऋ० ९।६४।४, साम० ४८२ ।

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्द-रस के प्रवाह का वर्णन है ।

१०३५. शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ।।२।।

पदार्थ– **शुम्भमानाः** शोभित होते हुए, **ऋतायुभिः** अध्यात्म-यज्ञ के अभिलाषियों द्वारा **गभस्त्योः** मन-बुद्धि-रूप द्यावापृथिवियों में **मृज्यमानाः** अलंकृत किये जाते हुए ब्रह्मानन्द-रूप सोमरस **अव्यये** अविनाशी **वारे** दोषों के निवारक अन्तरात्मा में **पवन्ते** प्रवाहित हो रहे हैं ।।२।।

भावार्थ– धर्ममेघ-समाधि में जब योगी के अन्तरात्मा में ब्रह्मानन्द के झरने झरते हैं तब उसके मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि सभी रस से सिंचे हुए के सदृश हो जाते हैं ।।२।।

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि ब्रह्मानन्द-रस क्या करें ।

१०३६. ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ।।३।।[२]

पदार्थ– **ते सोमाः** उपासक के अन्तरात्मा में बहते हुए वे ब्रह्मानन्द-रस **दाशुषे** परमात्मा को आत्मसमर्पण करने वाले उस उपासक के लिए **दिव्यानि** आनन्दमय और विज्ञानमय लोकों से सम्बद्ध, **पार्थिवा** अन्नमय और प्राणमय लोकों से सम्बद्ध तथा **आन्तरिक्ष्या** मनोमय लोक से सम्बद्ध **विश्वा वसु** सब ऐश्वर्यों को **पवन्ताम्** प्रवाहित करें ।।३।।

भावार्थ– ब्रह्मानन्द अधिगत हो जाने पर देह, प्राण, मन, बुद्धि एवं आत्मा से सम्बद्ध सभी सम्पदाएं वा सिद्धियां योगियों को प्राप्त हो जाती हैं।।३।।

।।३।। अथ 'पवस्व' इत्यादिकस्य तृतीयस्य दशर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा में सोम नाम द्वारा जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

१०३७. पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।।१।।[३]

पदार्थ– हे **सोम** रस के भण्डार जगदीश्वर ! **देववीः** सदाचारी विद्वानों को प्राप्त होने वाले आप **रंह्या** वेग से **पवित्रम् अति** पवित्र हृदय-रूप छन्नी को पार करके **पवस्व** अन्तरात्मा में परिस्रुत होवो। हे **इन्दो** रस से आर्द्र करने वाले जगत्पति! **वृषा** आनन्द की वर्षा करने वाले आप **इन्द्रम्** जीवात्मा में **विश** प्रवेश करो ।।१।।

भावार्थ– जैसे सोमौषधि का रस दशापवित्र नामक छन्नी के माध्यम से द्रोणकलश में पहुंचता है, वैसे ही परमेश्वर से आता हुआ आनन्दरस हृदय के माध्यम से अन्तरात्मा में पहुंचता है ।।१।।

आगे पुनः वही विषय कहा गया है ।

१०३८. आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ।।२।।[४]

---

१. ऋ० ९।६४।५ ।

२. ऋ० ९।३६।५, 'ते' 'सोमाः', 'पवन्ताम्' इत्यत्र 'स' 'सोमो' 'पवताम्' इति पाठः । ऋ० ९।६४।६ ।

३. ऋ० ९।२।१।

४. ऋ० ९।२।२।

पदार्थ– हे परमात्मन्! आप हमारे द्वारा **आ वच्यस्व** स्तुति किये जाओ । आप हमारे लिए **महि प्सरः** सत्य, न्याय, शूरता, दया, उदारता आदि के महान् रूप को प्रदान करो । हे **इन्दो** रसागार, रस से आर्द्र करने वाले भगवन् ! आप **वृषा** आनन्दवर्षी और **द्युम्नवत्तमः** सबसे अधिक तेजस्वी हो । **धर्णसिः** जगत् के धारणकर्ता आप **योनिम्** हमारे आत्म-गृह में **आ सदः** आकर बैठो ।।२।।

यहां जगत् का धारक विराट् परमेश्वर छोटे से जीवात्मारूप घर में कैसे समा सकता है, अतः विरूपसंघटनारूप विषमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– आराधना किया गया परमेश्वर उपासक के अन्तरात्मा में आनन्द बरसा-बरसा कर उसका महान् उपकार करता है ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के ध्यान का फल वर्णित है ।

१०३९. अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ।।३।।[1]

पदार्थ– **सुतस्य** अन्तरात्मा में प्रकट किये गए, **वेधसः** सब जगत् के विधाता सोम नामक परमात्मा की **धारा** वेदवाणी की धारा **प्रियम्** प्रिय, **मधु** मधुर आनन्दरस को **अधुक्षत** उपासक के अन्तरात्मा में दुहती है । **सुक्रतुः** शुभकर्मों का कर्ता वह परमात्मा **अपः** उपासक के कर्मों को **वसिष्ट** व्याप्त कर लेता है अर्थात् उपासक के द्वारा शुभ लोकहितकारी कर्म ही कराता है, अशुभ नहीं ।।३।।

भावार्थ– मनुष्यों को योग्य है कि वे परमेश्वर के ध्यान से आनन्द की प्राप्ति और शुभकर्मों में प्रवृत्ति करें ।।३।।

अब परमात्मा की महिमा वर्णित करते हैं ।

१०४०. महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ।।४।।[2]

पदार्थ– हे सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमात्मन् ! **महान्तम्** अतिशय महान् **त्वा अनु** आपके आदेशानुसार **महीः** विशाल, **सिन्धवः** प्रवाहमयी **आपः** नदियां **अर्षन्ति** गति करती हैं, **यत्** क्योंकि, आप **गोभिः** सूर्यकिरणों से **वासयिष्यसे** वर्षा द्वारा उन्हें बसाये रखोगे ।।४।।

भावार्थ– नदी आदि सब पदार्थ परमात्मा के निर्धारित नियमों के अनुसार ही चलते हैं, क्योंकि वह जगत् का सम्राट् है ।।४।।

अगले मन्त्र में परमात्मा का शुद्धिकार्य वर्णित है ।

१०४१. समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ।।५।।[3]

पदार्थ– **समुद्रः** आनन्द-रसों को उमड़ाने वाला, **विष्टम्भः** सबको सहारा देने वाला, **दिवः** सूर्य का **धरुणः** थामने वाला, **अस्मयुः** हमसे प्रीति करने वाला **सोमः** जगत्स्रष्टा परमेश्वर **पवित्रे** वायु में और **अप्सु** जलों में **मामृजे** नित्य शुद्धि करता रहता है ।।५।।

---

१. ऋ० ९।२।३।
२. ऋ० ९।२।४।
३. ऋ० ९।२।५ ।

भावार्थ– यदि जल, वायु आदि प्राकृतिक पदार्थों को सूर्य द्वारा प्रतिदिन जगदीश्वर शुद्ध न करता रहता तो मलों के पुंज होकर वे किसी के उपयोग के योग्य भी न रहते ॥५॥

छठी ऋचा ४९७ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात की गयी थी । यहां बादल के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा प्रकट की गयी है ।

१०४२. अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ॥६॥[1]

पदार्थ– परमेश्वर की ही यह महिमा है कि **हरिः** वायु से इधर-उधर ले जाया जाता हुआ, **वृषा** वर्षा करने वाला बादल **अचिक्रदत्** स्वयं को गरजाता है । **महान्** विशाल वह बादल **मित्रः न** मित्र के समान **दर्शतः** दर्शनीय होता है । और वह बादल **सूर्येण** सूर्य द्वारा **सं दिद्युते** भली भांति दीप्त होता है, बिजली की छटाओं से भासित होता है ॥६॥

यहां उपमालंकार है ॥६॥

भावार्थ– बादल जब गरजता है, बिजली चमकाता है और बरसता है तब गरमी की धूप से तप्त लोग उसका मित्र के समान स्वागत करते हैं। बादल के जो उपकार हैं वे वास्तव में परमेश्वर के ही उपकार समझने चाहिएं, क्योंकि वह उसी से संचालित होता है ॥६॥

अगले मन्त्र में उपासक को सम्बोधन किया गया है ।

१०४३. गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥७॥[2]

पदार्थ– हे इन्दो परमेश्वर के उपासक मानव ! **ते** तेरी **अपस्युवः** कर्म की कामना वाली **गिरः** वाणियां तुझे **ओजसा** तेज से **मर्मृज्यन्ते** अधिकाधिक बार-बार अलंकृत करती हैं, **याभिः** जिनसे, तू **मदाय** आनन्द-प्राप्ति के लिए **शुम्भसे** शोभित होता है ॥७॥

भावार्थ– वाणी कर्म के साथ ही मनुष्य का भूषण होती है, कर्म के बिना नहीं ॥७॥

अब उपासक परमात्मा को कह रहा है ।

१०४४. तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तये महे ॥८॥[3]

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता रसागार परमात्मन् ! **तम् उ** उस **लोककृत्नुम्** लोकों के रचयिता **त्वा** तुझे हम **घृष्वये** बुराइयों से संघर्ष करने में समर्थ **मदाय** उत्साह के लिए ईमहे प्राप्त करते हैं । हम **महे** महती **प्रशस्तये** प्रशस्ति पाने के लिए **तव** तेरे हो जाएं ॥८॥

भावार्थ– परमात्मा के साथ मित्रता संस्थापित करके ही मनुष्य जीवन में सफलता, विजय और यश पा सकता है ॥८॥

---

१. ऋ० ९।२।६, साम० ४९७ ।

२. ऋ० ९।२।७ ।

३. ऋ० ९।२।८, 'तवप्रशस्तयो मुहीः' इति तृतीयः पादः ।

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुण-कर्मों का वर्णन है ।

१०४५. गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ।।९।।[1]

पदार्थ– हे **इन्दो** तेजस्वी, आनन्द-रस से आर्द्र करने वाले परमात्मदेव ! आप **गोषाः** गायों, वेदवाणियों, भूमियों वा इन्द्रियों को देने वाले, **नृषाः** पुरुषार्थी वीर सन्तानों को देने वाले, **अश्वसाः** घोड़ों और प्राणों को देने वाले, **उत** और **वाजसाः** बल, अन्न, धन और विज्ञान को देने वाले **असि** हो। आप **यज्ञस्य** परोपकार-रूप यज्ञ के **पूर्व्यः** सनातनकाल से चले आये **आत्मा** प्राण हो ।।९।।

भावार्थ– अहो, महान् हैं जगदीश्वर के उपकार, जो हमें अनेक बहुमूल्य वस्तुएं उत्पन्न करके देता है, और ऐसा करता हुआ वह सबको परोपकार का उपदेश करता है ।।९।।

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं ।

१०४६. अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ।।१०।।[2]

पदार्थ– हे **इन्दो** रस के भण्डार, करुणासागर परमेश ! **वृष्टिमान्** वर्षा करने वाले **पर्जन्यः इव** बादल के समान, आप **मधोः** मधुर आनन्द-रस की **धारया** धारा के साथ **अस्मभ्यम्** हम उपासकों के लिए **इन्द्रियम्** जीवात्मा से सेवित आत्मबल **पवस्व** प्रवाहित कीजिए ।।१०।।

यहां उपमालंकार है ।।१०।।

भावार्थ– बादल की रस-वर्षा से पृथिवी के समान परमेश्वर की आनन्द-वर्षा से मनुष्य की आत्मभूमि सरस, सद्गुणों से अंकुरित और हरी-भरी हो जाती है ।।१०।।

इस खण्ड में परमात्मा के गुण-कर्मों का, उपास्य-उपासक सम्बन्ध का, ब्रह्मानन्द-रस का और प्रसंगतः पर्जन्य का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

सप्तम अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।

।।४।। अथ 'सना च' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य दशर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में सोम नाम से जीवात्मा को उद्बोधन है ।

१०४७. सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ।।१।।[3]

पदार्थ– हे **पवमान** गतिशील, कर्मशूर, पवित्रतादायक **सोम** ऐश्वर्यवान्, शुभगुणकर्मों के प्रेरक जीवात्मन् ! तू **महि श्रवः** महान् यश व महान् शास्त्रश्रवण को **सन** प्राप्त कर, **जेषि च** और संसार के समरांगण में विजयलाभ कर । **अथ** और उसके अनन्तर **नः** हमें भी **वस्यसः** अतिशय ऐश्वर्यवान् **कृधि** कर ।।१।।

---

१. ऋ० ९।२।१०।

२. ऋ० ९।२।९ 'विन्द्रियं मधोः' इत्यत्र विन्द्रयुर्मध्वः' इति पाठः ।

३. ऋ० ९।४।१ ।

भावार्थ– जो स्वयं परमात्मा का उपासक, पुरुषार्थी, शास्त्र की मर्यादा को सीखा हुआ और विजयशील है वही दूसरों को प्रशस्त गुण- कर्मों वाला परमैश्वर्यशाली बना सकता है ।।१।।

आगे पुनः जीवात्मा को उद्बोधन है ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
१०४८. सना ज्योतिः सना स्वा३र्विश्वा च सोम सौभगा ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ।।२।।[1]

पदार्थ– हे **सोम** अग्रेगामी जीवात्मन् ! तू **ज्योतिः** दिव्य प्रकाश को **सन** प्राप्त कर, **स्वः** ब्रह्मानन्द को **सन** प्राप्त कर, **विश्वा च** और सब **सौभगा** सौभाग्यों को **सन** प्राप्त कर । **अथ** और उसके अनन्तर **नः** हमें भी **वस्यसः** अतिशय ऐश्वर्यवान् **कृधि** कर ।।२।।

भावार्थ– जीवात्मा ने सबसे उत्कृष्ट मानव-शरीर सब प्रकार की उन्नति करने के लिए प्राप्त किया है। इसलिए उसे चाहिए कि आध्यात्मिक और भौतिक सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष प्राप्त करे ।।२।।

अगले मन्त्र में फिर जीवात्मा का ही विषय है ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ १
१०४९. सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ।।३।।[2]

पदार्थ– हे **सोम** ऐश्वर्य उत्पन्न करने में समर्थ जीवात्मन् ! तू **दक्षम्** बल को **उत** और **क्रतुम्** कर्म तथा प्रज्ञान को **सन** प्राप्त कर । **मृधः** संग्रामकारी हिंसक काम क्रोध आदि आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को **अप जहि** विनष्ट कर । **अथ** इस प्रकार अपना उत्कर्ष करने के अनन्तर **नः** हमें भी **वस्यसः** अतिशय ऐश्वर्यवान् **कृधि** कर ।।३।।

भावार्थ– मनुष्य को चाहिए कि स्वयं बल, कर्म, प्रज्ञान, सारे ही ऐश्वर्य को संचित करके तथा विघ्नकारियों को पराजित करके, सबका अगुआ बनकर दूसरों का भी उपकार करे ।।३।।

अब मनुष्यों को प्रेरित करते हैं ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
१०५०. पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ।।४।।[3]

पदार्थ– हे **पवीतरः** पवित्रता के कार्य में संलग्न मनुष्यो ! तुम **इन्द्राय पातवे** जीवात्मा के पान के लिए **सोमम्** ज्ञान, कर्म, उपासना के रस को **पुनीतन** पवित्र करो । **अथ** और उसके अनन्तर, हे पवित्र ज्ञान, कर्म, उपासना वाले मानव ! तू **नः** हमें भी **वस्यसः** अतिशय ऐश्वर्यवान् **कृधि** कर ।।४।।

भावार्थ– जिनके ज्ञान, कर्म और उपासना पवित्र होते हैं उनकी संगति से दूसरे लोग भी पवित्र अन्तःकरण वाले तथा ऐश्वर्यवान् हो जाते हैं ।।४।।

---

१. ऋ० ९।४।२।
२. ऋ० ९।४।३ ।
३. ऋ० ९।४।४ ।

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है ।

१०५१. त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५॥[1]

पदार्थ– हे सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमात्मन् वा राष्ट्र के स्रष्टा राजन् ! आप **तव क्रत्वा** अपने कर्म वा प्रकृष्ट ज्ञान से, **तव ऊतिभिः** और अपनी रक्षाओं से **सूर्ये** सूर्यलोक के समान प्रकाशमय एवं सब उन्नतियों से युक्त राष्ट्र में **नः** हमें **आ भज** भागी बनाओ । **अथ** और उसके अनन्तर **नः** हमें **वस्यसः** अतिशय ऐश्वर्यवान् **कृधि** करो ॥५॥

भावार्थ– यदि परमात्मा की कृपा, राजा का उद्योग, और प्रजाजनों का पुरुषार्थ हो तो राष्ट्र में सूर्य के समान उन्नति का प्रकाश सर्वत्र फैल जाए ॥५॥

आगे पुनः उसी विषय का कथन है ।

१०५२. तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६॥[2]

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रताकारक शुभ गुणकर्मों के प्रेरक परमात्मन् वा राजन् ! **तव क्रत्वा** आपके कर्म वा प्रकृष्ट ज्ञान से, **तव ऊतिभिः** और आपकी रक्षाओं से, हम **ज्योक्** चिरकाल तक **सूर्यम्** सूर्य को **पश्येम** देखते रहें, अर्थात् दीर्घजीवी होवें । **अथ** और **नः** हमें, आप **वस्यसः** अतिशय ऐश्वर्यवान् **कृधि** करो ॥६॥

भावार्थ– परमात्मा और राजा की रक्षा तथा प्रेरणा प्राप्त करके विज्ञानयुक्त एवं कर्मण्य होकर प्रजाजन पुरुष की पूर्ण आयु जीने वाले हो जाते हैं ॥६॥

आगे फिर परमात्मा और राजा से प्रार्थना है ।

१०५३. अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७॥[3]

पदार्थ– हे **स्वायुध सोम** शस्त्रधारी के समान शासन करने में समर्थ परमात्मन् और उत्कृष्ट शस्त्रास्त्रों से युक्त राजन् ! आप **द्विबर्हसम्** व्यवहार और परमार्थ दोनों के बढ़ाने वाले **रयिम्** ऐश्वर्य को **अभ्यर्ष** प्राप्त कराइये । **अथ** इस प्रकार **नः** हमें **वस्यसः** अतिशय ऐश्वर्यवान् **कृधि** कर दीजिए ॥७॥

भावार्थ– भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार का धन मनुष्य के अभ्युदय और निःश्रेयस के लिए समर्थ होता है ॥७॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है ।

१०५४. अभ्या३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८॥[4]

---

१. ऋ० ९।४।५ ।
२. ऋ० ९।४।६ ।
३. ऋ० ९।४।७ ।
४. ऋ० ९।४।८, 'रयिं समत्सु सासहिः' इति द्वितीयः पादः ।

पदार्थ– हे **वाजिन्** बलवान् सोम अर्थात् वीर परमात्मन् वा राजन् ! **अनपच्युतः** विचलति न होने वाले, **समत्सु सासहिः** देवासुरसंग्रामों में शत्रुओं का पराजय करने वाले आप **अभ्यर्ष** क्रियाशील होवो । **अथ** और इस प्रकार **नः** हमें **वस्यसः** अतिशय ऐश्वर्यवान् **कृधि** करो ।।८।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना करके और राजा को उद्बोधन देकर सब आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं का उच्छेद करके लोग विजयी, ऐश्वर्यवान् तथा सुखी होवें ।।८।।

आगे पुनः वही विषय है ।

१०५५. त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ।।९।।[1]

पदार्थ– हे **पवमान** जन-मानस को पवित्रता देने वाले, क्रियाशील परमात्मन् वा राजन् **विधर्मणि** विशेष-धर्म-युक्त अन्तरात्मा में वा राष्ट्र में **त्वाम्** आप परमात्मा वा राजा को **यज्ञैः** उपासनायज्ञों वा राष्ट्रयज्ञों से प्रजाएं **अवीवृधन्** बढ़ाती हैं । **अथ** अतः, आप **नः** हमें **वस्यसः** अतिशय ऐश्वर्यवान् **कृधि** कर दीजिए ।।९।।

भावार्थ– परमेश्वर को उपासना द्वारा अन्तरात्मा में बढ़ाकर और राजा को राष्ट्रसेवा रूप यज्ञों से राष्ट्र में बढ़ाकर उनकी सहायता से प्राप्त कीर्तियों तथा ऐश्वर्यों से प्रजाजन यशस्वी और ऐश्वर्यवान् होवें ।।९।।

आगे पुनः परमात्मा और राजा का ही विषय कहा गया है ।

१०५६. रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर। अथा नो वस्यसस्कृधि।।१०।।[2]

पदार्थ– हे **इन्दो** चन्द्रमा के समान आह्लाददायक परमैश्वर्यशालिन् जगदीश्वर वा राजन् ! आप **नः** हमारे लिए **चित्रम्** अद्भुत, चित्र-विचित्र **अश्विनम्** शीघ्रगामी, **विश्वायुम्** पूर्ण आयु देने वाला अथवा सब मनुष्यों का हित करने वाला **रयिम्** धन **आ भर** प्राप्त कराओ । **अथ** इस प्रकार **नः** हमें **वस्यसः** अतिशय ऐश्वर्यवान् **कृधि** करो ।।१०।।

भावार्थ– वही धन वास्तव में धन होता है, जिससे पूर्ण आयु और सब मनुष्यों का हित सिद्ध हो। जो विलास में लिप्त करके आयु को क्षय करने वाला तथा दीनजनों से द्वेष करने वाला धन होता है वह धन नहीं, किन्तु मौत होती है ।।१०।।

।।५।। अथ 'तरत्स' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य चतुर्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अवत्सारः काश्यपः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५०० क्रमांक पर ऐहिक एवं पारलौकिक उत्कर्ष के विषय में व्याख्यात हुई थी । यहां मोक्ष-प्राप्ति का विषय वर्णित किया जाता है ।

१०५७. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ९।४।९ ।

२. ऋ० ९।४।१० ।

३. ऋ० ९।५८।१, साम० ५०० ।

पदार्थ– सः वह **मन्दी** स्तुतिकर्ता मनुष्य **सुतस्य** परमेश्वर के पास से परिस्रुत होकर आये हुए **अन्धसः** ब्रह्मानन्दरूप सोमरस की **धारा** धारा से **धावति** अन्तरात्मा को धो लेता है, और **तरत्** दुःख सागर को तर जाता है। सचमुच, **मन्दी सः** मुदित हुआ वह **धावति** लक्ष्य के प्रति दौड़ लगाता है, और **तरत्** ब्रह्मानन्द-सागर में तैरता रहता है ॥१॥

यहां प्रथम चरण की तृतीय चरण में आवृत्ति होने पर पादावृत्ति यमक अलंकार है ॥१॥

भावार्थ– परमेश्वर के ध्यान में जो लोग मग्न हो जाते हैं वे उसके पास से बहती हुई आनन्द की तरंगिणी से धोये जाकर निर्मलात्मा होते हुए त्रिविध दुःखों से छूटकर मुक्त हो जाते हैं ॥१॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि ब्रह्मानन्द-रस की धारा क्या करती है।

३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २३ २ ३ १ २
१०५८. उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः। तरत्स मन्दी धावति ॥२॥[1]

पदार्थ– देवी सत्य, न्याय, दया आदि दिव्य गुणों से युक्त, **उस्रा** ब्रह्मानन्दरूप सोमरस की परमेश्वररूप स्रोत से निकलती हुई धारा **मर्तस्य** मरणधर्मा मानव के **वसूनाम्** ऐश्वर्यों को **अवसः च** और रक्षा को **वेद** देना जानती है। उस धारा से **सः मन्दी** वह स्तोता **धावति** अपने अन्तरात्मा को धो लेता है, और **तरत्** जन्म-मरण के बन्धन से तथा दुःखसमूह से तर जाता है ॥२॥

भावार्थ– ब्रह्मानन्द-रस की धारा से लोग आध्यात्मिक ऐश्वर्य तथा संकटों से रक्षा पाकर सांसारिक दुःख-सागर को तर जाते हैं ॥२॥

अगले मन्त्र में ध्वस्र और पुरुषन्ति विशेषणों से आत्मा और मन के विषय में कहा गया है।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २३ २ ३ १ २
१०५९. ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे। तरत्स मन्दी धावति ॥३॥[2]

पदार्थ– ब्रह्मानन्दरुप सोम की धारा से नहाए हुए हम **ध्वस्रयोः** दोषों का ध्वंस करने वाले, **पुरुषन्त्योः** बहुत से लाभों को देने वाले आत्मा और मन के **सहस्राणि** हजारों ऐश्वर्यों को **आदद्महे** ग्रहण करते हैं, क्योंकि **मन्दी** परमेश्वर का स्तोता **सः** वह आनन्द-मग्न मनुष्य **धावति** स्वयं को धो लेता है, और **तरत्** दुःख-जाल को तर लेता है ॥३॥

भावार्थ– आत्मा और मन को उद्‌बोधन देकर लोग हजारों से भी अधिक लाभों को प्राप्त कर सकते हैं और अन्त में वे परमात्मा में मग्न होकर मोक्षपद पा लेते हैं ॥३॥

यहां सायणाचार्य 'ध्वस्र' और 'पुरुषन्ति' को किन्हीं विशेष राजाओं के नाम मानते हैं। तदनुसार उन्होंने इस मन्त्र का अर्थ करते हुए लिखा है कि 'ध्वस्र कोई एक राजा था, पुरुषन्ति कोई दूसरा। उन दोनों राजाओं के सहस्रों धन हम ले लें। वह हमारे द्वारा लिया हुआ धन उत्तम हो। इस प्रकार ऋषि सोम से प्रार्थना कर रहा है।' सायण का यह लिखना संगत नहीं है, क्योंकि सृष्टि के आदि में प्रोक्त वेदों में परवर्ती इतिहास नहीं हो सकता ॥३॥

---

१. ऋ० ९।५८।२।
२. ऋ० ९।५८।३।

आगे पुनः आत्मा और मन का ही विषय वर्णित है ।

१०६०. आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ।।४।।[1]

पदार्थ– ययोः दोषों का ध्वंस करने वाले और बहुत से लाभों को देने वाले जिन आत्मा और मन के **त्रिंशतम्** तीस और **सहस्राणि** हजारों **तना** विस्तीर्ण ऐश्वर्य, हम **आदद्महे** ग्रहण कर लेते हैं, उन ऐश्वर्यों से **सः मन्दी** वह स्तोता **धावति** स्वयं को धो लेता है, और **तरत्** शोक को तर जाता है, अर्थात् मुक्ति पा लेता है ।।

आत्मा और मन के तीस ऐश्वर्य इसप्रकार हैं- ८ योगाङ्ग, २ अभ्यास-वैराग्य, १ प्रणवजप, १ वशीकार, १ अध्यात्मप्रसाद, ३ तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान, ४ वृत्तियां–मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा, ८ अणिमा आदि सिद्धियां, १ विवेकख्याति, १ कैवल्य । अनेक सहस्र ऐश्वर्य उन्हीं के महिमारूप हैं । आत्मा और मन को शुद्ध करके तथा उनका यथोचित उपयोग करके उपासक अगणित ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है यह तात्पर्य है ।।४।।

भावार्थ– केवल भौतिक धन ही धन नहीं है, प्रत्युत उसकी अपेक्षा अधिक महान् धन आध्यात्मिक धन है, जिसे पाने के लिए मनुष्यों को यत्न करना चाहिए ।।४।।

।।६।। अथ 'एते सोमा' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** जमदग्निर्भार्गवः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में गुरुओं का वर्णन है ।

१०६१. एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे। मदिन्तमस्य धारया ।।१।।[2]

पदार्थ– एते ये **गृणानाः** शास्त्रों का उपदेश करते हुए **सोमाः** विद्यारस के भण्डार गुरुजन **महे शवसे** महान् बल के लिए **मदिन्तमस्य** अत्यधिक आनन्ददायक ज्ञान की **धारया** धारा के साथ **असृक्षत** विद्यादान कर रहे हैं ।।१।।

भावार्थ– योग्य गुरुओं से ग्रहण की गयी विद्या शिष्यों की कीर्ति करने वाली होती है ।।१।।

अगले मन्त्र में छात्र आचार्य को कह रहे हैं ।

१०६२. अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ।।२।।[3]

पदार्थ– हे सोम अर्थात् विद्यारस के भण्डार आचार्य ! **वीतये** हम शिष्यों की प्रगति के लिए **गव्यानि** इन्द्रियों के **नृम्णा** बलों को **पुनानः** पवित्र करते हुए, आप **अभि अर्षसि** हमारे प्रति आते हो । वे आप **सनद्वाजः** अन्न, धन आदि देते हुए **परि स्रव** बहो, अर्थात् हमें विद्या पढ़ाओ ।।२।।

भावार्थ– कुलपति आचार्य छात्रों के चरित्रों को पवित्र करते हुए, उन्हें अन्न-वस्त्र-बल आदि प्रदान करते हुए अगाध विद्या पढ़ाएं ।।२।।

---

१. ऋ० ९।५८।४।

२. ऋ० ९।६२।२२, 'शवसे' इत्यत्र 'श्रवसे' ।

३. ऋ० ९।६२।२३ ।

आगे फिर वही विषय है ।

१०६३. उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ।।३।।[1]

पदार्थ– **उत** और हे सोम अर्थात् विद्वन् आचार्य ! **जमदग्निना** समित्पाणि अग्निहोत्री शिष्यवर्ग से **गृणानः** स्तुति किये जाते हुए आप **नः** हम शिष्यों को **गोमतीः** वेदवाणी से युक्त, **परिष्टुभः** सहारा देने वाली **विश्वाः** सब **इषः** अभीष्ट अपरा तथा परा नामक विद्याएं **अर्ष** प्रदान करो, पढ़ाओ ।।३।।

भावार्थ– आचार्य का भली-भांति सत्कार करके, उसके पास से अध्यात्म विज्ञान और भौतिक विज्ञान सम्पूर्ण निष्ठा के साथ ग्रहण करके, विद्वान् होकर शिष्य समाज में ज्ञान का विस्तार करें ।।३।।

।।७।। अथ 'इमं स्तोम' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कुत्स आङ्गिरसः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ६६ क्रमांक पर परमेश्वरस्तुति के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां आचार्य और शिष्य का विषय वर्णित है ।

१०६४. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।१।।[2]

पदार्थ– हम **अर्हते** सुयोग्य **जातवेदसे** विद्वान् आचार्य के लिए **मनीषया** मनोयोग के साथ **इमं स्तोमम्** इस श्रद्धा-स्तोत्र को **सं महेम** भली-भांति पहुंचाएं, **रथम् इव** जैसे रथ को अन्यत्र पहुंचाते हैं। अभिप्राय यह है कि जैसे किसी पूज्य जन को अपने घर लाने के निमित्त उसके लिए सुन्दर रथ भेजते हैं, ऐसे ही आचार्य को अपने प्रति अनुकूल करने के लिए उसके प्रति श्रद्धा-वचन प्रेरित करें । **अस्य** इस विद्वान् आचार्य की **संसदि** संगति में **नः** हमें **भद्रा हि** कल्याणकारी ही **प्रमतिः** श्रेष्ठ विद्या प्राप्त होती है । **हे अग्ने** विद्या, विनय आदि के प्रकाशक आचार्य ! **तव सख्ये** आपके साहचर्य में **वयम्** हम शिष्य **मा रिषाम** अज्ञान, दुराचार आदि से उत्पन्न होने वाली क्षति को न प्राप्त करें ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– विद्वान्, सदाचारी शिक्षणकला में कुशल आचार्य को वर कर उसकी संगति में गुरुकुल में निवास करते हुए विनीत छात्र सुयोग्य और निर्दोष बनते हैं ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः आचार्य और शिष्य का विषय वर्णित करते हैं ।

१०६५. भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ९।६२।२४ ।
२. ऋ० १।९४।१, अथ० २०।१३।३, साम० ६६।
३. ऋ० १।९४।४ ।

पदार्थ– हे आचार्यप्रवर ! **वयम्** आपके शिष्य हम **इध्मम्** समिधा **भराम** लायें अर्थात् समित्पाणि होकर आपके समीप आयें । **ते** आपके लिए **हवींषि** समर्पण **कृणवाम** करें । और फिर **पर्वणा पर्वणा** एक-एक खण्ड करके **चितयन्तः** पूर्ण ज्ञानी हो जाएं । आप **जीवातवे** जीवन के लिए **प्रतराम्** अत्यन्त रूप से **धियः** हमारी बुद्धियों को **साधय** परिष्कृत कीजिए । हे **अग्ने** ज्ञानी आचार्य ! **वयम्** हम शिष्य **तव सख्ये** आपके साहचर्य में रहकर **मा रिषाम** निन्दा आदि से होने वाली हिंसा को न प्राप्त हों ।।२।।

भावार्थ– आचार्य के प्रति जो सर्वथा समर्पित हो जाते हैं वे ही विद्वान् और सदाचारी होते हैं एक-एक बूंद से जैसे घड़ा भरता है वैसे ही कण-कण करके विद्या ग्रहण कर पण्डित बन जाते हैं ।।२।।

आगे फिर आचार्य और शिष्य का ही विषय कहा गया है ।

१०६६. शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यू३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।३।।[1]

पदार्थ– हे आचार्यप्रवर! हम शिष्य **त्वा** आपको **समिधं शकेम** ज्ञान-दानार्थ प्रदीप्त कर सकें । आप **धियः** हमारी बुद्धियों को **साधय** परिष्कृत करो । **त्वे** आपसे **आहुतम्** दिये गये **हविः** ग्राह्य ज्ञान को **देवाः** प्रमुदित शिष्य **अदन्ति** ग्रहण करते हैं। आप **आदित्यान्** आदित्य ब्रह्मचारी **आवह** समाज को प्राप्त कराओ, **तान् हि** उन्हें हम **अश्मसि** चाह रहे हैं। हे **अग्ने** विद्वन्, शिक्षणकला के ज्ञाता आचार्य ! **वयम्** हम शिष्य **तव सख्ये** आपके साहचर्य में **मा रिषाम** कभी दोषयुक्त वा क्षतिग्रस्त न हों ।।३।।

भावार्थ– शिष्यों की समर्पण-रूप समिधा से जब आचार्य प्रदीप्त हो जाता है तभी वह शिष्यों के साथ अन्तरंगता स्थापित करके अपनी कमायी हुई सब विद्या उन्हें दे देता है और उनका चारित्रिक विकास भी करता है ।।३।।

इस खण्ड में जीवात्मा के उद्बोधनपूर्वक परमात्मा, जीवात्मा, ब्रह्मानन्द एवं मोक्षप्राप्ति का वर्णन, आचार्य-शिष्य विषय का वर्णन और प्रसंगतः राजा के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

सप्तम अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

।।८।। अथ 'प्रति वां' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** आदित्याः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में मित्र, वरुण, अर्यमा की स्तुति की गयी है ।

१०६७. प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ।।१।।[2]

पदार्थ– सूरे उदिते सूर्य के उदय होने पर मैं **वाम्** तुम दोनों **मित्रम्** मित्र जगदीश्वर और **वरुणम्** वरणीय जीवात्मा को, तथा **रिशादसम्** हिंसक दोषों के नाशक **अर्यमणम्** प्राण को **प्रति गृणीषे** एक-एक करके गुणवर्णनरूप स्तुति का विषय बनाता हूं ।।१।।

---

१. ऋ० १।९४।३ ।
२. ऋ० ७।६६।७ ।

भावार्थ– प्रभातकाल में मनुष्यों को चाहिए कि अपने आत्मा को उद्‌बोधन देते हुए प्राणायामपूर्वक प्रतिदिन परमेश्वर की उपासना करें ।।१।।

अगले मन्त्र में मित्र जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

१०६८. राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ।।२।।[1]

पदार्थ– हे सर्वमित्र जगदीश्वर ! **इयं मतिः** यह हमारी बुद्धि वा स्तुति **हिरण्यया राया** सुवर्णरूप धन के साथ **अवृकाय** अखण्डित **शवसे** आत्मबल के लिए होवे । और **विप्रा इयम्** विशेष रूप से पूर्ण करने वाली यह बुद्धि वा स्तुति **मेधसातये** आपके साथ संगम की प्राप्ति के लिए हो ।।२।।

भावार्थ– अपने बुद्धि के बल से और परमेश्वर की स्तुति से हम चांदी, सोना, मणि, मोती आदि धन को, पराजित न होने वाले बल को और परमात्मा के साथ मिलाप को प्राप्त कर लें ।।२।।

आगे वरुण और मित्र से प्रार्थना करते हैं ।

१०६९. ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ।।३।।[2]

पदार्थ– हे **देव** प्रकाशक, ज्ञानी **वरुण** वरणीय जीवात्मन्! हम **ते** तेरे **स्याम** होवें । हे **मित्र** मित्र परमात्मन् ! **सूरिभिः सह** विद्वानों सहित, हम **ते** तेरे **स्याम** होवें । **इषम्** अभीष्ट ऐश्वर्य को **स्वः च** और आनन्द को **धीमहि** धारण करें ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा और जीवात्मा की मित्रता प्राप्त करके सब मनुष्य ज्ञानवान्, प्रकाशवान्, आनन्दवान् और ऐश्वर्यवान् हों तथा मुक्ति को प्राप्त करें ।।३।।

।।९।। अथ 'भिन्धि विश्वा' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** त्रिशोकः काण्वः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १३४ क्रमांक पर परमात्मा, राजा और आचार्य को संबोधित की गयी थी । यहां अपने अन्तरात्मा को उद्‌बोधन दे रहे हैं ।

१०७०. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ।।१।।[3]

पदार्थ– हे इन्द्र अर्थात् मेरे वीर अन्तरात्मन्! तू **विश्वाः द्विषः** सब द्वेष करने वाली शत्रु-सेनाओं को **अपभिन्धि** चीर दे, **बाधः** बाधा डालने वाले **मृधः** हिंसकों को **परि जहि** चारों ओर नष्ट कर दे। जो **स्पार्हम्** चाहने योग्य **वसु** दिव्य तथा भौतिक धन है **तत्** उसका **आ भर** उपार्जन कर ।।१।।

यहां एक कर्ता कारक के साथ अनेक क्रियाओं का योग होने से दीपक अलंकार है ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य का अन्तरात्मा यदि प्रबुद्ध है तो वह सब कुछ सिद्ध कर सकता है ।।१।।

---

१. ऋ० ७।६६।८।

२. ऋ० ७।६६।९।

३. ऋ० ८।४५।४०, अथ० २०।४३।१, साम० १३४।

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

१०७१. यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ।।२।।[1]

पदार्थ– हे इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! **यस्य ते** जिस तेरे **भूरेः** बहुत अधिक **दत्तस्य** दिये हुए धन के विषय में **विश्वम्** सारा संसार **आनुषक्** निरन्तर **वेदति** जानता है **तत्** उस **स्पार्हम्** चाहने योग्य **वसु** आध्यात्मिक तथा भौतिक धन को **आ भर** हमें भी प्रदान कर ।।२।।

भावार्थ– ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी धन बिखरा पड़ा है वह सब परमात्मा का दिया हुआ ही है । हम भी अपने पुरुषार्थ से उस धन के भागी बनें ।।२।।

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में २०७ क्रमांक पर परमात्मा, राजा और आचार्य को संबोधित की जा चुकी है। यहां अपने अन्तरात्मा को संबोधित कर रहे हैं ।

१०७२. यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ।।३।।[2]

पदार्थ– हे **इन्द्र** मेरे वीर अन्तरात्मन् ! **यत्** जो धन **वीडौ** दृढ़ मनुष्य में, **यत्** जो धन **स्थिरे** अविचल मनुष्य में, **यत्** जो धन **पर्शाने** बादल के समान सींचने वाले दानशील मनुष्य में **पराभृतम्** दूर देश से भी ले आया जाता है, **तत्** वह **स्पार्हम्** चाहने योग्य **वसु** आध्यात्मिक तथा भौतिक धन **आ भर** तू अपने पास ला, प्राप्त कर ।।३।।

भावार्थ– संसार में दृढ़ स्वभाव वाले, सैंकडों विघ्नों से भी विचलित न किये जाने वाले परोपकारी जन अपने पराक्रम से जिस ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते हैं उसे मैं क्यों नहीं पा सकता । हे मेरे अन्तरात्मन् ! तू भी दृढ़, अविचल और बरसाने वाला होकर सब प्रकार का धन संचित कर ।।३।।

।।१०।। अथ 'यज्ञस्य हि' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** श्यावाश्व आत्रेयः **देवते** इन्द्राग्नी । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम मन्त्र में इन्द्राग्नी के नाम से जीवात्मा और प्राण तथा राजा और सेनापति को सम्बोधन करते हैं ।

१०७३. यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ।।१।।[3]

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** जीवात्मा और प्राण एवं राजा और सेनापति ! तुम दोनों **यज्ञस्य** शरीर-यज्ञ एवं राष्ट्र-यज्ञ के **हि** निश्चय ही **ऋत्विजा** ऋत्विज्, संचालक **स्थः** हो, **वाजेषु** विज्ञानों में तथा **कर्मसु** कर्मों में **सस्नी** निष्णात हो । तुम दोनों **तस्य** उस देहयज्ञ एवं राष्ट्रयज्ञ को **बोधतम्** करना वा कराना जानो ।।१।।

---

१. ऋ० ८।४५।४२, अ० २०।४३।३, उभयत्र 'विश्वमानुषो' इति पाठः ।

२. ऋ० ८।४५।४१, अथ० २०।४३।२, साम० २०७ ।

३. ऋ० ८।३८।१।

भावार्थ– जीवात्मा और प्राण के आधिपत्य में वैयक्तिक शरीर-यज्ञ को भली-भांति सञ्चालित करके राजा और सेनापति के सहयोग से राष्ट्र को उन्नत करना चाहिए ॥१॥

आगे फिर वही विषय वर्णित है ।

३ १ २ ३ १ २ ३१र २र १ २ ३ १ २
१०७४. तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥२॥[1]

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** जीवात्मा और प्राण एवं राजा और सेनापति ! **तोशासा** सन्तुष्टि करने वाले, **रथयावाना** देहरूप रथ से वा विमान आदि यान से गमन करने वाले, **वृत्रहणा** शत्रु, विघ्न, पाप आदि को नष्ट करने वाले, **अपराजिता** पराजित न होने वाले तुम दोनों **तस्य** उस-उस कर्म को **बोधतम्** करना वा कराना जानो ॥२॥

भावार्थ– जीवात्मा और प्राण एवं राजा और सेनापति को नेता बनाकर वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रिय उन्नति सबको सिद्ध करनी चाहिए ॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं को सम्बोधन किया गया है ।

३१ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
१०७५. इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥३॥[2]

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** जीवात्मा और प्राण एवं राजा और सेनापति ! **वाम्** आप दोनों को लक्ष्य करके **नरः** पुरुषार्थी मनुष्यों ने **अद्रिभिः** वाणीरूपी सिलबट्टों से **इदम्** इस **मदिरम्** आनन्दजनक एवं उत्साहजनक **मधु** मधुर वीर रस को **अधुक्षन्** दुहा है । आप दोनों **तस्य** उस वीररस को **बोधतम्** पीना जानो ॥३॥

भावार्थ– शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मा, मन, प्राण, आदि तथा राष्ट्र के अधिकारी राजा, सेनापति आदि में वीररस का संचार करके उनकी सहायता से सबको उत्कर्ष सिद्ध करना चाहिए ॥३॥

इस खण्ड में मित्र-वरुण-अर्यमा नामों से परमेश्वर-जीवात्मा-प्राण के विषय का, अन्तरात्मा के उद्बोधन का, परमात्मा से प्रार्थना का और इन्द्राग्नी नाम से जीवात्मा और प्राण एवं राजा और सेनापति के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।

सप्तम अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

॥११॥ अथ 'इन्द्रायेन्दो इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कश्यपो मारीचः । **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४७२ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां गुरु-शिष्य विषय का वर्णन करते हैं ।

१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०७६. इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥१॥[3]

---

१. ऋ० ८।३८।२।

२. ऋ० ८।३८।३।

३. ऋ० ९।६४।२२, 'अर्कस्य' इत्यत्र 'ऋतस्य' । साम० ४७२ ।

पदार्थ– हे **इन्दो** ज्ञानरस के भण्डार आचार्य ! **मधुमत्तमः** अतिशय मधुर आप **मरुत्वते** उत्कृष्ट प्राण वाले **इन्द्राय** मुझ शिष्य के लिए **पवस्व** ज्ञानरस प्रवाहित कीजिए । मैं **अर्कस्य** पूजनीय आपके **योनिम्** विद्यागृह अर्थात् गुरुकुल में **आसदम्** आया हूं ।।१।।

भावार्थ– गुरुकुल में प्रविष्ट छात्रों को विद्वान्, मधुर स्वभाव वाले गुरुजन प्रेम से सब विद्याएं प्रदान करें, और शिष्य श्रद्धा से उनका सत्कार करें ।।१।।

अगले मन्त्र में फिर गुरु-शिष्य का ही विषय है ।

१०७७. तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ।
सं त्वा मृजन्त्यायवः ।।२।।[1]

पदार्थ– हे शिष्य ! **धर्णसिम्** विद्या का ग्रहण करने वाले, **तं त्वा** गुरुकुल में प्रविष्ट हुए उस तुझको **वचोविदः** सम्पूर्ण वाङ्मय के ज्ञानी **विप्राः** ब्राह्मण गुरुजन **परिष्कृण्वन्ति** परिष्कृत करते हैं, **आयवः** क्रियाशील आचार्य लोग **त्वा** तुझे **सं मृजन्ति** भली भांति शुद्ध करते एवं सद्गुणों से अलंकृत करते हैं ।।२।।

भावार्थ– गुरुओं का यह कर्त्तव्य है कि वे विद्या और सदाचार के दान से शिष्यों के हृदयों को परिष्कृत, शुद्ध और अलंकृत करें ।।२।।

आगे पुनः वही विषय कहा गया है ।

१०७८. रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ।।३।।[2]

पदार्थ– हे **कवे** मेधावी विद्वद्वर आचार्य ! **पवमानस्य ते** शिष्यों के जीवनों को पवित्र करने वाले आपके **रसम्** विद्यारस को **मित्रः** सबके साथ मित्रवत् व्यवहार करने वाला शिष्य, **वरुणः** अपने दोषों का निवारण करने के लिए प्रयत्नशील शिष्य, **अर्यमा** शत्रुओं का निग्रह करने वाला शिष्य, **मरुतः** और अन्य सभी शिष्य **पिबन्तु** पान करें ।।३।।

भावार्थ– शिष्यों की विभिन्न योग्यताएं और विभिन्न गुण होते हैं । उनकी योग्यता के अनुसार उनका विकास गुरुओं को करना चाहिए। जिस-जिस में ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व आदि के गुण हों उस-उसको उसके अनुरूप विद्यादान से उस-उस वर्ण का अधिकारी बनाना चाहिए ।।३।।

।।१२।। अथ 'मृज्यमानः' इत्यादिकस्य द्वादशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः) । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

---

१. ऋ० ९।६४।२३, 'धर्णसिम्' इत्यत्र 'वेधसः'।
२. ऋ० ९।६४।२४, 'पिबन्तु' इत्यत्र 'पिबन्ति' ।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५१७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहां भी वही विषय प्रकारान्तर से वर्णित किया जा रहा हैं।

१०७९. मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥१॥[1]

पदार्थ– हे **सुहस्त्य** उत्कृष्ट हस्तकला में कुशल जगदीश्वर! **मृज्यमानः** श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभावों से अलंकृत होते हुए आप **समुद्रे** अन्तरिक्ष में **वाचम्** विद्युद्गर्जना के शब्द को **इन्वसि** प्रेरित करते हो। और, हे **पवमान** सर्वान्तर्यामिन्! आप **बहुलम्** प्रचुर, **पुरुस्पृहम्** बहुत चाहने योग्य **पिशङ्गं रयिम्** पीले वर्ण के धन सुवर्ण आदि को **अभि** हमारी ओर **अर्षसि** भेजते हो ॥१॥

भावार्थ– अन्तरिक्ष में बादलों का निर्माण, वर्षाकर्म आदि और बिना ही शुल्क लिए बहुमूल्य धन आदि को उत्पन्न करना परमेश्वर का ही कर्म है ॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के कर्मों का वर्णन है।

१०८०. पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२॥[2]

पदार्थ– वारे वरणीय **अव्यये** पार्थिवलोक में **पवमानः** पहुंचता हुआ और **पुनानः** पवित्रता करता हुआ **वृषा उ** सुख आदि की वर्षा करने वाला परमात्मा **वने** मेघजल में **अचिक्रदत्** विद्युद्गर्जना कराता है। हे **पवमान** पवित्रतादायक **सोम** जगत्स्रष्टा परमात्मन्! आप **देवानाम्** दिव्य अग्नि, जल, वायु आदि के **निष्कृतम्** घर अर्थात् भूलोक को **गोभिः** सूर्यकिरणों से **अञ्जानः** प्रकाशित करते हुए **अर्षसि** कर्मण्य बने हुए हो ॥२॥

भावार्थ– अन्तरिक्ष में बादल गर्जाना, वर्षाद्वारा भूलोक को पवित्र करना, सूर्यकिरणों द्वारा भूमण्डल को प्रकाशित करना इत्यादि सब कर्म जगत्पति परमेश्वर ही करता है, अन्य कोई नहीं ॥२॥

॥१३॥ अथ 'एतमु त्यं' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अमहीयुराङ्गिरसः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा का विषय वर्णित है।

१०८१. एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम्। समादित्येभिरख्यत ॥१॥[3]

पदार्थ– सिन्धुमातरम् आनन्द-रस बहाने वाली जगदम्बा जिसकी माता है ऐसे **एतम् उ त्यम्** इस उस सोम नामक जीवात्मा को **दश क्षिपः** इन्द्रियदोषों को दूर फेंकने वाले दस प्राण **मृजन्ति** अलंकृत करते हैं। यह सोम जीवात्मा **आदित्येभिः** सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित गुरुजनों से **सम् अख्यत** विद्याप्रकाश को प्राप्त करता है ॥१॥

---

१. ऋ० ९।१०७।२१, 'सुहस्त्य' इति पाठः। साम० ५१७।

२. ऋ० ९।१०७।२२, 'मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषावचक्रदो वने' इति पूर्वार्द्धपाठः।

३. ऋ० ९।६१।७।

भावार्थ– प्राणों से युक्त ही मनुष्य का आत्मा शरीर को जीवित किये रखता है और शरीर का अधिष्ठातृत्व करता है। गुरुओं के उपदेश के बिना वह स्वयं ज्ञानी नहीं होता ॥१॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि आत्मा में ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है।

१०८२. समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ। सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥२॥[1]

पदार्थ– **इन्द्रेण** मन से **उत** और वायुना प्राण से **सुतः** अभिषुत ज्ञानरस **पवित्रे** पवित्र जीवात्मा में **सम् आ एति** समागत होता है और **सूर्यस्य रश्मिभिः** सूर्य की किरणों से अथवा चक्षु की वृत्तियों से **सम्** समागत होता है ॥२॥

भावार्थ– मनुष्य का आत्मा जिस ज्ञान को संचित करता है उसमें मन, प्राण, नेत्र की वृत्तियां, अग्नि, वायु, सूर्यकिरणें, गुरुजन सभी कारण बनते हैं ॥२॥

अगले मन्त्र में फिर ज्ञानरस का विषय वर्णित है।

१०८३. स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्। चारुर्मित्रे वरुणे च ॥३॥[2]

पदार्थ– हे ज्ञानरस! **सः** वह **मधुमान्** मधुर तू **नः** हमारे **भगाय** सूर्य तुल्य राजा के लिए, **वायवे** गतिमान् सेनाध्यक्ष के लिए, और **पूष्णे** पशुपालन, कृषि, व्यापार आदि से समाज का पोषण करने वाले वैश्य के लिए **पवस्व** क्षरित हो। और **चारुः** रमणीय तू **मित्रे** राष्ट्र के मित्र ब्राह्मण में **वरुणे च** और शत्रु-निवारक क्षत्रिय में **पवस्व** क्षरित हो ॥३॥

भावार्थ– राष्ट्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, राजा, सेनापति, न्यायाध्यक्ष आदि और सामान्य प्रजाजन भी सभी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ज्ञान का संचय करने वाले होवें, जिससे राष्ट्र प्रगतिपथ पर अग्रसर हों ॥३॥

इस खण्ड में गुरु-शिष्य, परमात्मा-जीवात्मा और ज्ञानरस का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

सप्तम अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त।

॥१४॥ अथ 'रेवतीर्न' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शुनशेप आजीगर्तिः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १५३ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां योग का विषय कहा जाता है।

१०८४. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥[3]

---

१. ऋ० ९।६१।८।
२. ऋ० ९।६१।९।
३. ऋ० १।३०।१३, अथ०, २०।१२२।१, साम० १५३।

पदार्थ— सधमादे जहाँ मन, बुद्धि इन्द्रियां आदि सब मिलकर प्रहृष्ट होती हैं उस योगयज्ञ में **नः** हम उपासकों की **रेवतीः** ऐश्वर्यवती मैत्रीं, करुणा, मुदिता, उपेक्षा आदि वृत्तियां **तुविवाजाः** बहुत बलवती होती हुई **इन्द्रे** जीवात्मा में **सन्तु** विद्यमान होवें **याभिः** जिन वृत्तियों से **क्षुमन्तः** निवासयुक्त होकर हम **मदेम** आनन्दलाभ करें ।।१।।

भावार्थ— प्राणियों के सुखभोगयुक्त होने पर उनके प्रति मैत्री की भावना रखे, दुःखियों के प्रति करुणा की, पुण्यात्माओं के प्रति मुदिता की और अपुण्यशीलों के प्रति उपेक्षा की । इस प्रकार भावना करने वालों के अन्दर शुक्ल धर्म उत्पन्न हो जाता है । उससे चित्त प्रसादयुक्त होता है और प्रसन्न तथा एकाग्र होकर स्थितिपद को पा लेता है । ये चित्तवृत्तियां जब मनुष्य के आत्मा में उद्भूत होती हैं तब चित्तप्रसाद से वह निवासयुक्त और आनन्दवान् हो जाता है ।।१।।

अगले मन्त्र में फिर योग का ही विषय है ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
१०८५. आ घ त्वावान् त्मना युक्त स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः ।
३ २उ ३ २ ३क २र
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ।।२।।[1]

पदार्थ— हे **धृष्णो** शत्रु को धर्षण करने के स्वभाव वाले परमात्मन् ! **ईयानः** उपासकों से याचना किये हुए, **त्मना युक्तः** आत्मबल से युक्त **त्वावान्** स्वसदृश स्वयमेव आप **घ** निश्चय ही **स्तोतृभ्यः** उपासक योगियों को योगसिद्धि **ऋणोः** प्राप्त कराते हो, **चक्र्योः** दो रथचक्रों के मध्य में **अक्षं न** जैसे धुरी को रथकार प्राप्त कराता है ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ— जैसे दोनों रथ के पहियों को धुरी की कीली से जोड़ने पर ही पहियों का घूमना और रथ का आगे जाना संभव होता है वैसे ही योगी को योगसिद्धि होने पर ही उसका लक्ष्य के प्रति आरोहण और मोक्षलाभ सिद्ध होता है ।।२।।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

१र २र ३ १र २र ३ २ ३ २उ ३ १र २र
१०८६. आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ।।३।।[2]

पदार्थ— हे **शतक्रतो** सैंकड़ो कर्मों को करने वाले इन्द्र अर्थात् जगत्पति परमात्मन् ! उपासकों द्वारा आपके प्रति **यत् दुवः** जो पूजन **आ** किया जाता है, उससे प्रेरित आप **जरितॄणाम्** स्तोताओं के **कामम्** मनोरथ को **आ ऋणोः** पूर्ण करो, रथ बनाने वाला कारीगर **शचीभिः** बुद्धिकौशलों वा कर्मों से **अक्षं न** जैसे रथचक्रों के मध्य में धुरी की कीली की पूर्ति करता है ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ— जैसे रथ के पहियों के मध्य में धुरी की कीली जोड़े बिना रथ की गति नहीं हो सकती, वैसे ही परमात्मा के कृपायोग के बिना स्तोताओं की मनोरथपूर्ति संभव नहीं होती ।।३।।

---

१. ऋ० १।३०।१४, अथ० २०।१२२।२, उभयत्र 'त्मनाप्तः' 'धृष्णवियानः' इति पाठः।

२. ऋ० १।३०।१५, अथ० २०।१२२।३ ।

।।१५।। अथ 'सुरूप०' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १६० क्रमांक पर परमात्मा, राजा और आचार्य के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां योगमार्ग के गुरु और शिल्पकार का आह्वान किया जा रहा है ।

१०८७. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ।।१।।[1]

पदार्थ– हम **ऊतये** योगमार्ग में प्रवेश के लिए और सुरूपवान् पदार्थों की प्राप्ति के लिए **सुरूपकृत्नुम्** शुभ रूपों को अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान, समाधियों को कराने वाले गुरु को और सुन्दर रूपवान् पदार्थों के रचयिता शिल्पकार को **द्यविद्यवि** प्रतिदिन **जुहूमसि** बुलाते हैं, **गोदुहे** गोदुग्ध के इच्छुक गाय दुहने वाले के लिए **सुदुघाम् इव** जैसे दुधार गाय को बुलाते हैं ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे गोदुग्ध पाने के लिए गाय बुलायी जाती है, वैसे ही योगाभ्यास के लिए योगी गुरु और शिल्प की उन्नति के लिए शिल्पकार को बुलाना चाहिए ।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा, राजा, आचार्य, योगी और शिल्पकार का विषय वर्णित है।

१०८८. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ।।२।।[2]

पदार्थ– हे इन्द्र अर्थात् परमात्मा, राजा, आचार्य, योगी, वा शिल्पकार ! आप **नः** हमारे **सवना** उपासना-यज्ञों में, प्रजाओं से किये गये उत्सवों में, शिक्षा-सत्रों में, योग-शिविरों में वा शिल्प-यज्ञों में **आगहि** आओ **सोमपाः** रस का पान करने वाले आप **सोमस्य** भक्ति-रस, वीर-रस, विद्या-रस, ध्यान-रस वा कला-रस को **पिब** पान करो । **रेवतः** ऐश्वर्यवान् आपका **मदः** उत्साह **इत्** सचमुच **गोदाः** अध्यात्म प्रकाशों का, गायों का, वेदवाणियों का, योगशास्त्र के वचनों का वा शिल्पशास्त्र के वचनों का देने वाला है ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना करके और राजा, आचार्य, योगी तथा शिल्पकार का सत्कार करके उनसे यथायोग्य लाभ सबको पाने चाहिएं ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं को सम्बोधन किया गया है ।

१०८९. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ।।३।।[3]

पदार्थ– हे इन्द्र अर्थात् परमात्मा, राजा, आचार्य, योग के गुरु वा शिल्पकार ! **अथ** और हम **ते** आपकी **अन्तमानाम्** समीपतम **सुमतीनाम्** सुमतियों को **विद्याम** जानें । आप **नः अति** हमें लांघकर **मख्यः** अपना उपदेश मत करो, प्रत्युत **आगहि** हमारे पास आओ, और आकर अपनी देनों का पात्र हमें बनाओ ।।३।।

---

१. ऋ० १।४।१, अथ० २०।५७।१, ६८।१, साम० १६० ।

२. ऋ० १।४।२, अथ० २०।५७।२, ६८।२ ।

३. ऋ० १।४।३, अथ० २०।५७।३, ६८।३ ।

भावार्थ– परमात्मा, राजा, आचार्य, योगी और शिल्पी के जो ज्ञान और कर्म हैं उनसे उपकार लेकर अपने आपको उन्नत करना चाहिए ।।३।।

।।१६।। अथ 'उभे यदिन्द्र' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १, २ (पूर्वार्धस्य), ३ मान्धाता यौवनाश्वः, २ (उत्तरार्द्धस्य) गोधाः आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** महापङ्क्तिः जगती । **स्वरः** निषादः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ३७९ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां वीर मानव को उद्बोधन दिया जा रहा है ।

१०९०. उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **इन्द्र** वीर मानव ! **यत्** जो तूने **उषाः इव** उषा के समान **उभे रोदसी** आकाश-पृथिवी दोनों को **आ पप्राथ** अपने यश से पूर्ण किया हुआ है, ऐसे **महीनां महान्तम्** महानों में महान् **चर्षणीनां सम्राजम्** मनुष्यों के सम्राट् **त्वा** तुझे **देवी जनित्री** दिव्यगुणमयी माता ने **अजीजनत्** जन्म दिया है, **भद्रा जनित्री** श्रेष्ठ माता ने **अजीजनत्** जन्म दिया है ।।१।।

यहां उपमालंकार और वीररस है ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य अपनी महिमा को पहचानकर बड़े-बड़े कार्य कर सकता है ।।१।।

आगे फिर वीर मानव को सम्बोधन किया गया है।

१०९१. दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन् पदा वयामजो यथा यमः ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।२।।[2]

पदार्थ– हे **मन्तुमः** ज्ञानी वीर मानव ! तू **दीर्घं हि अंकुशं यथा** लम्बे अंकुश के समान **शक्तिम्** शक्ति को **बिभर्षि** धारण किये हुए है। हे **मघवन्** धन के धनी ! **पूर्वेण पदा** अगले पैर से **अजः** बकरा **वयां यथा** जैसे शाखा को पकड़ता है, वैसे तू शत्रुओं को **यमः** पकड़ । तुझे **देवी जनित्री** दिव्यगुणमयी जगन्माता ने **अजीजनत्** जन्म दिया है, **भद्रा जनित्री** श्रेष्ठ मानवी माता ने **अजीजनत्** जन्म दिया है ।।२।।

यहां उपमालंकार है । दो उपमाओं की संसृष्टि है ।।२।।

---

१. ऋ० १०।१३४।१, साम० ३७९ ।
२. ऋ० १०।१३४।६ ।

भावार्थ— हे मानव ! तू अपनी माता का नाम कलंकित मत करना । तू अपनी अद्वितीय शक्ति को पहचान । मित्रों से सौहार्द और शत्रुओं से संघर्ष करके समरांगण में विजय पा ।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है ।

१०९२. अव स्म दुर्हृणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।३।।[1]

पदार्थ— हे वीर मानव ! तू **दुर्हृणायतः मर्तस्य** दुःखप्रद मार करने वाले दुष्ट मनुष्य के **स्थिरम्** दृढ बल को **अव तनुहि स्म** नीचा कर दे । **तम् ईम्** उसे **अधस्पदं कृधि** पादाक्रान्त कर दे **यः** जो शत्रु **अस्मान्** हम वीरों को **अभिदासति** दास बनाने का यत्न करता है । तुझे **देवी जनित्री** दिव्यगुणमयी जगन्माता ने **अजीजनत्** जन्म दिया है, **भद्रा जनित्री** श्रेष्ठ मानवी माता ने **अजीजनत्** जन्म दिया है ।।३।।

भावार्थ— हे मानव! गहरी नींद छोड़कर जाग उठ । तू दिव्य जननी का पुत्र है, भद्र जननी का पुत्र है । जो तुझे दास बनाना चाहता है उसके मनसूबे को अपनी वीरता से विफल कर दे । संसार में सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त कर ।।३।।

इस खण्ड में योग, परमात्मा, वीरोद्बोधन तथा राजा, आचार्य, योगी एवं शिल्पकार का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

सप्तम अध्याय में पञ्चम खण्ड समाप्त।

।।१७।। अथ 'परि स्वानो' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** असितः काश्यपो देवलो वा । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४७५ क्रमांक पर आनन्दरसप्रवाह के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है ।

१०९३. परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ।।१।।[2]

पदार्थ— **गिरिष्ठाः** पर्वत के समीपस्थ गुरुकुल में स्थित, **सोमः** ज्ञानरस का भण्डार आचार्य **स्वानः** ज्ञानरस को प्रेरित करता हुआ **पवित्रे** शिष्यों के पवित्र आत्मा में **परि अक्षरत्** ज्ञानरस को सींचता है । हे आचार्यवर! **त्वम्** आप **मदेषु** प्रदान किये हुए आनन्दों में **सर्वधाः** सब शिष्यों को धारण करने वाले **असि** होते हो ।।१।।

भावार्थ— आचार्य शिष्य को जो ज्ञान और ब्रह्मानन्द प्रदान करता है उसकी तुलना संसार में नहीं है ।।१।।

---

१. ऋ० १०।१३४।२, 'दुर्हृणायतो' इत्यत्र 'दुर्हणायुतो', 'अभिदासति' इत्यत्र 'आदिदेशति' ।
२. ऋ० ९।१८।१ 'परिसुवानो गिरिष्ठाः पुवित्रे सोमो अक्षाः' इति पाठः । साम ४७५।

आगे फिर गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है।

१०९४. त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः। मदेषु सर्वधा असि ॥२॥[1]

पदार्थ– हे सोम अर्थात् ज्ञानरस के भण्डार आचार्य! **त्वं विप्रः** आप ब्राह्मण-स्वभाव वाले हो, **त्वं कविः** आप मेधावी और विद्वान् हो। आपके **अन्धसः** ज्ञानरस से **मधु प्रजातम्** मधुर ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है। आप **मदेषु** प्रदत्त विद्यानन्दों में **सर्वधाः** सब शिष्यों के धारणकर्ता **असि** होते हो ॥२॥

भावार्थ– ज्ञान के अगाध समुद्र, ब्राह्मणवृत्ति, मेधावी, विद्वान् आचार्य से जो भौतिक और दिव्य ज्ञान तथा उस ज्ञान से उत्पन्न आनन्द प्राप्त होता है उसके कारण वह सबका पूज्य होता है ॥२॥

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय को कहा गया है।

१०९५. त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत। मदेषु सर्वधा असि ॥३॥[2]

पदार्थ– हे सोम अर्थात् ज्ञानरसागार आचार्य! **विश्वे** सब **सजोषसः** परस्पर समान प्रीतिवाले **देवासः** दिव्यगुणयुक्त ब्रह्मचारी शिष्य **त्वे** आपसे **प्रतिम्** ज्ञानरस के पान को **आशत** प्राप्त करते हैं। आप **मदेषु** ज्ञानजनित आनन्दों में **सर्वधाः** सब शिष्यों को धारण करने वाले **असि** होते हो ॥३॥

भावार्थ– जो शिष्य तपस्वी, ज्ञानानुरागी, गुरुओं का सत्कार करने वाले और अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि दिव्य गुणों से युक्त होते हैं वे ही आचार्य के पास से ज्ञान ग्रहण करने के अधिकारी और उसके प्रीतिपात्र बनते हैं ॥३॥

॥१८॥ अथ 'स सुन्वे' इत्यादिकस्याष्टादशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १ ऋणञ्चयो राजर्षिः, २ शक्ति- र्वासिष्ठः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** १ यवमध्या गायत्री, २ सतोबृहती। **स्वरः** १ षड्जः, २ पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ५८२ पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां भी वही विषय वर्णित है।

१०९६. स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम्।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१॥[3]

पदार्थ– सः सोमः वह सर्वान्तर्यामी परमेश्वर **सुन्वे** सब जगत् को उत्पन्न करता है, **यः** जो **रायाम्** विद्या, आरोग्य, सत्य, अहिंसा, न्याय, वैराग्य आदि धनों का, **यः** जो **इडानाम्** गायों और भूमियों का, **यः** और जो **सुक्षितीनाम्** जिनमें उत्कृष्ट मनुष्य निवास करते हैं उन राष्ट्रों का **आनेता** लाने वाला है ॥१॥

---

१. ऋ० ९।१८।२।
२. ऋ० ९।१८।३, 'त्वे' इत्यत्र 'तव' इति पाठः।
३. ऋ० ९।१०८।१३, साम० ५८२।

भावार्थ– परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कौन चांदी, सोना, भूमि अन्तरिक्ष, नदी, समुद्र, अग्नि, वायु, जल, विद्युत्, सूर्य, वृक्ष, वनस्पति, मनुष्य, गाय, घोड़े आदि जड़-चेतन पदार्थों का, वेदविद्या, सत्य, अहिंसा आदि गुणों का और धार्मिक जनों का उत्पन्न करने वाला हो सकता है ? इसकारण उसकी हमें कृतज्ञता पूवर्क प्रशंसा, वन्दना और पूजा करनी चाहिए ॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमेश्वर की महिमा वर्णित है ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१०९७. यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
१र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥२॥[1]

पदार्थ– यस्य ते जिस जगत्स्रष्टा तुझ जगदीश्वर के उत्पन्न किये रस को **इन्द्रः** सूर्य **पिबात्** पीता है, **यस्य** जिस तेरे उत्पन्न किये रस को **मरुतः** पवन पीते हैं, **यस्य वा** और जिस तेरे उत्पन्न किये रस को **अर्यमणा** शत्रु का नियमन करने वाले बुद्धितत्त्व के साथ **भगः** मन पीता है, **येन** जिस तुझ सर्वान्तर्यामी और सर्वप्रेरक परमेश्वर की सहायता से, हम **मित्रावरुणा** प्राण-अपान को **आ करामहे** अपने अनुकूल करते हैं, और जिस तेरी सहायता से **महे अवसे** महान् रक्षा के लिए **इन्द्रम्** जीवात्मा को **आ करामहे** अनुकूल करते हैं। **सः** वह तू सोम परमेश्वर **सुनुषे** सब भौतिक रसों को वा दिव्य आनन्दरस को अभिषुत करता है । [यहां 'स सुन्वे' इसका परिवर्तित रूप 'स सुनुषे' पूर्वमन्त्र से लाया गया है ।] ॥२॥

भावार्थ– परमेश्वर के ही रस और शक्ति से सब शरीरस्थ मन, बुद्धि, प्राण आदि और बाह्य सूर्य, चांद, तारे, बादल, पहाड़, समुद्र, धरती-आकाश आदि रसवान् और शक्तिमान् दिखायी देते हैं ॥२॥

॥१९॥ अथ 'तं वः सखायो' इत्यादिकस्यैकोनविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषी** पर्वतनारदौ काश्यपौ । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५६९ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हुई थी । यहां भी प्रकारान्तर से उसी विषय का वर्णन करते हैं ।

१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१०९८. तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥१॥[2]

पदार्थ– हे **सखायः** साथियो! **वः मदाय** अपनी आनन्दप्राप्ति एवं उत्साहप्राप्ति के लिए, तुम **तम्** उस प्रसिद्ध **पुनानम्** पवित्र करने वाले जगत्पति सोम परमेश्वर को **अभि** लक्ष्य करके **गायत** स्तुतिगीत गाओ । अन्य लोग भी उसे **गूर्तिभिः** अपने पुरुषार्थों से **स्वदयन्त** प्रसन्न किया करें, **शिशुं न** जैसे शिशुरूप यज्ञाग्नि को **हव्यैः** हवियों से तृप्त किया जाता है ॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

---

१. ऋ० ९।१०८।१४, 'त इन्द्रः' इत्यत्र 'नु इन्द्रः'।
२. ऋ० ९।१०५।१ 'हव्यैः' इत्यत्र 'युज्ञैः' । साम० ५६९ ।

भावार्थ– जैसे यज्ञाग्नि हवियों से जागता है वैसे परमात्मा मनुष्य के पुरुषार्थों से प्रसन्न होता है सबको चाहिए कि उसके स्तुतिगीत गाते हुए अपने जीवन को उन्नत करें ।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१०९९. सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
३ १र २र ३ २ ३ १ २
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ।।२।।[1]

पदार्थ– देवावीः सदाचारी विद्वानों का रक्षक, **मदः** उत्साह देने वाला, **इन्दुः** रस से सराबोर करने वाला, रस का भण्डार परमेश्वर **हिन्वानः** स्तोताओं को शुभ गुण-कर्मों में प्रेरित करता हुआ, **मातृभिः** गौओं द्वारा **परिष्कृतः** जीभ से चाट कर स्वच्छ किये गये **वत्सः इव** बछड़े के समान **मतिभिः** स्तुतियों से **परिष्कृतः** अलंकृत होकर **समज्यते** अन्तरात्मा में प्रकट हो जाता है ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– गौओं द्वारा जीभ से चाटकर बछड़ा जैसे अलंकृत किया जाता है वैसे ही स्तोताओं द्वारा स्तुतियों से परमेश्वर अलंकृत किया जाता है । तभी छिपा बैठा हुआ वह उपासक के अन्तरात्मा में प्रकट होता है ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा मनुष्यों का क्या उपकार करता है यह कहते हैं ।

३१र २र३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
११००. अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ।।३।।[2]

पदार्थ– साधनः सिद्धिप्रदाता **अयम्** यह पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता परमेश्वर **दक्षाय** आत्मबल के लिए होता है । **अयम्** यह परमेश्वर **शर्धाय** उत्साह देने के लिए, और **वीतये** लोगों की प्रगति के लिए होता है । **सुतः** ध्यान किया गया **अयम्** यह **देवेभ्यः** विद्वान् सदाचारी उपासकों के लिए **मधुमत्तरः** अतिशय मधुर होता है ।।३।।

भावार्थ– श्रद्धा से उपासना किया गया परमेश्वर उपासक को आत्मबल, उत्साह, प्रगति तथा वाणी, कर्म एवं व्यवहार में मधुरता प्रदान करता है ।।३।।

।।२०।। अथ 'सोमाः पवन्त' इत्यादिकस्य विंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मनुः सांवरणः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५४८ क्रमांक पर परमानन्दरस के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है । यहां विद्वान् गुरुओं और राजपुरुषों का विषय कहते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११०१. सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
३ २ ३ १ २३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ९।१०५।२ ।

२. ऋ० ९।१०५।३, 'मधुमत्तमः' इति पाठः ।

३. ऋ० ९।१०१।१०, 'सुवाना' इति पाठः । साम० ५४८ ।।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५४८ क्रमांक पर परमानन्दरस विषय में व्याख्यात की जा चुकी है । यहां विद्वान् गुरुओं और राजपुरुषों का विषय कहते हैं ।।

पदार्थ— **इन्दवः** मधुर व्यवहार से वा ज्ञानरस से आर्द्र करने वाले, **अस्मभ्यं गातुवित्तमाः** हमारे लिए अतिशय मार्ग दिखाने वाले, **मित्राः** मित्रभूत, **स्वानाः** सद्गुणों को उत्पन्न करने वाले, **अरेपसः** निष्पाप, **स्वाध्यः** उत्तम ध्यान वाले, **स्वर्विदः** दिव्य प्रकाश वा आनन्द को प्राप्त कराने वाले **सोमाः** ज्ञानरस के भण्डार गुरुजन वा सत्कर्मों में प्रेरित करने वाले राजपुरुष **पवन्ते** शिष्यों वा प्रजाजनों के जीवनों को पवित्र करते हैं ।।१।।

भावार्थ— गुरुजन और राजपुरुष यदी विद्वान्, मधुर, मार्गदर्शक, मित्र के समान व्यवहार करने वाले, शिक्षा द्वारा सद्गुण उत्पन्न करने वाले, निरपराध, निर्दोष, अपने कार्य में दत्तावधान और पवित्रकर्ता होते हैं, तभी वे शिष्यों और प्रजाओं की उन्नति करने में समर्थ हो पाते हैं ।।१।।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
११०२. ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
१ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में फिर गुरुजन और राजपुरुषों का वर्णन है ।

पदार्थ— **पूतासः** पवित्र, **विपश्चितः** विद्वान्, **दध्याशिरः** ज्ञान के धारणकर्ता और परिपक्व, **सूरासः न** सूर्यों के समान **दर्शतासः** दर्शनीय तथा दृष्टि देने वाले, **जिगत्नवः** गतिमान् एवं कर्मण्य और **घृते** विवेक के प्रकाश में **ध्रुवाः** स्थिर रहने वाले जो हों **ते** वे ही **सोमासः** विद्या, धर्म आदि की प्रेरणा करने वाले गुरु और राजपुरुष होवें ।।२।।

भावार्थ— जो पवित्र आचरण वाले, विविध विद्याओं को पदे हुए, दूसरों की सहायता करने वाले, परिपक्वमति, सूर्य के समान प्रकाशक, कर्मशूर स्थिर प्रकाश वाले विघ्नों से बार-बार प्रहार किये जाते हुए भी ग्रहण किये कार्य को न छोड़ने वाले गुरु और राजपुरुष होते हैं वे ही सफल होते हैं ।।२।।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २
११०३. सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ।।३।।[2]

आगे फिर उन्हीं का वर्णन है ।

पदार्थ— **अद्रिभिः** मेघों के समान सरस मनों से **सुष्वाणासः** उपदेश देने वाले, **गोः** राष्ट्रभूमि के **त्वचि अधि** पृष्ठ पर **चितानाः** शिक्षण कला वा राजनीति को जानने वाले, **वसुविदः** विद्याधन वा सुवर्ण आदि धन को प्राप्त कराने वाले गुरु वा राजपुरुष **इषम्** अभीष्ट ज्ञान वा धन **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **अभितः** सब ओर से **समस्वरन्** घोषित करें अर्थात् प्रदान करें ।।३।।

---

१. ऋ० ९।१०१।१२, 'पूतासो', 'सूरासो' इत्यत्र 'पूता', 'सूर्यासो' ।

२. ऋ० ९।१०१।११ ।

भावार्थ– गुरुओं वा राजपुरुषों को विद्वान् कीर्तिमान्, विद्योपदेशक तथा अभीष्ट धन आदि प्राप्त कराने वाला होना चाहिए ।।३।।

।।२१।। 'अया पवा' इत्यादिकस्यैकविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कुत्स आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

११०४. अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रघ्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५४१ क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात की जा चुकी है। यहां वही विषय प्रकारान्तर से वर्णित किया जा रहा है ।।

पदार्थ– हे **इन्दो** तेजस्वी, आनन्दरस से सराबोर करने वाले परमात्मन्, आप **अया** इस **पवा** धारा के साथ **एना** इन **वसूनि** दिव्य और भौतिक धनों को **पवस्व** प्रवाहित करो, **मांश्चत्वे** अभिमानी काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट करने वाले **सरसि** गतिशील जीवात्मा में **प्र धन्व** पहुंचो, **पुरुमेधाः चित्** बहुत मेधावी मनुष्य भी **तकवे** प्रगति के लिए **यस्य** जिन आपके **नरम्** नेतृत्व के गुण को **धात्** धारण करता है, **ब्रघ्नः चित्** महान **वातः** वायु **न** जैसे **जूतिम्** वेग को **धात्** धारण करता है ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– वायु आदि सभी प्राकृतिक पदार्थ और सभी मनुष्य परमात्मा के ही पास से अपनी-अपनी शक्ति पाते हैं, उसके संरक्षण के बिना वे कुछ भी नहीं कर सकते ।।१।।

११०५. उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में ब्रह्मज्ञान के लिए आचार्य-शिष्य विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– हे सोम अर्थात् ज्ञानरस के भण्डार आचार्य! **उत** अब **श्रवाय्यस्य** गुरुमुख से सुने जाने वाले ज्ञान के **श्रुते** प्रसिद्ध **तीर्थे** विद्यातीर्थ गुरुकुल में **एना** इस **पवया** ज्ञानधारा से **नः** हमें **पवस्व** पवित्र करो । आगे परोक्षरूप में वर्णन है– **नैगुतः** अत्यन्त गुप्त अर्थों का प्रकाशक यह आचार्य **रणाय** रमणीय सुख के लिए **षष्टिं सहस्रा** साठ हजार अर्थात् असंख्येय **वसूनि** एश्वर्यों को **धूनवत्** कंपाता अर्थात् प्रदान करता है, **पक्वं वृक्षं न** पके फलों वाले वृक्ष को कंपाकर जैसे बाग का माली किसी को असंख्य फल प्रदान करता है ।।२।।

---

१. ऋ० ९।९७।५२ 'ब्रघ्नश्चिदत्रवातो न जूतः पुरू मेधश्चित् तकवे नरं दात्' इत्युत्तरार्ध पाठः । साम० ५४१

२. ऋ० ९।९७।५३

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– विद्यातीर्थ गुरुकुल में निवास करता हुआ आचार्य जैसे शिष्यों को विशाल ज्ञानराशि प्रदान करता है, वैसे ही असंख्य सदगुणों का ऐश्वर्य भी प्रेम से देता है ।।२।।

११०६. महीमे अस्य वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन् निगुतः स्नेहयश्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ।।३।।[1]

अब नास्तिक शत्रुओं के पराजय के लिए तथा राष्ट्र में परमात्मा के प्रचार के लिए राजा का विषय वर्णित करते हैं ।

पदार्थ– अस्य इस सोम अर्थात् वीररस के भण्डार राजा की **इमे** ये **वृषनाम** वर्षक गुण वाली, **शूषे** बलवान् **मही** विशाल भुजाएं हैं, जो **मांश्चत्वे वा** घोड़ों से होने वाले संग्राम में **पृशने वा** अथवा परस्पर स्पर्श जिसमें होता है ऐसे मल्लयुद्ध में **वधत्रे** शत्रुओं का वध करने वाली हैं। वह वीर राजा **निगुतः** किले, खाई आदि में छिपे हुए शत्रुओं को **अस्वापयत्** सुला देता है, अर्थात् धराशायी कर देता है, **स्नेहयत् च** और मित्रों पर स्नेह करता है । आगे प्रत्यक्षरूप से वर्णन है- हे सोम, शान्तिप्रिय प्रजाध्यक्ष । आप **इतः** इस राष्ट्र से **अमित्रान्** द्रोहकारी रिपुओं को **अप अच** दूर कर दो, **अचितः** अविवेकी, अधार्मिक नास्तिकों को **अप अच** दूर कर दो । इस प्रकार राष्ट्र में परमेश्वर के प्रचार के लिए वेदप्रचार के लिए कटिबद्ध होवो ।।३।।

भावार्थ– सभी वीर राष्ट्रवासी शत्रुओं को नष्ट करने वाले तथा परमात्मा की पूजा करने वाले तभी होते हैं, जब राष्ट्र का अध्यक्ष उसमें रुचि ले ।।३।।

इस खण्ड में गुरु-शिष्य, उपास्य-उपासक और आस्तिक राजा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

सप्तम अध्याय में षष्ठ खण्ड समाप्त ।।

।।२२।। अथ 'अग्ने त्वं' इत्यादिकस्य द्वाविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धु र्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा । **देवता** अग्निः । **छन्दः** द्विपदा विराट् । **स्वरः** पञ्चमः।।

११०७. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४४८ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्या की जा चुकी है । यहां परमात्मा, राजा और आचार्य तीनों का विषय है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक परमात्मन्, राजन् वा विद्वन् आचार्य! आप **नः** हमारे **अन्तमः** निकटतम **उत** और **त्राता** अपराधों से रक्षा करने वाले, तथा **शिवः** मंगलकारी, **वरूथ्यः** और वरणीय **भुवः** होवो ।।१।।

---

१. ऋ० ९।९७।५४

१. ऋ० ५।२४।१, 'भुवो' इत्यत्र 'भवा' इति पाठः। साम० ४४८।

भावार्थ– परमात्मा, राजा और आचार्य का संरक्षण पाकर लोग दोषों से मुक्त, निरपराध, निश्छल, निष्पाप, विद्वान्, ब्रह्मज्ञ और सदाचारी हो जाते हैं ।।१।।

११०८. वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ।।२।।[1]

आगे पुनः उसी विषय को कहा गया है ।

पदार्थ– अग्निः अग्रनायक परमात्मा, राजा वा विद्वान आचार्य **वसुः** सद्गुणों का निवासक, और **वसुश्रवाः** विद्यादि् धनों से कीर्तिमान् है । हे **परमात्मन्,** राजन् वा आचार्य! आप **अच्छ** हमारे अभिमुख **नक्षि** प्राप्त होवो । **द्युमतमः** अत्यधिक तेजस्वी आप **रयिम्** विविध दिव्य और भौतिक धन **दाः** दो ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा, राजा और आचार्य के गुण-कर्मों को देखकर उनसे लोगों को लाभ प्राप्त करना योग्य है ।।२।।

११०९. तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।।३।।[2]

आगे पुनः वही विषय है ।

पदार्थः– हे **शोचिष्ठ** अत्यधिक पवित्र और अतिशय पवित्रकर्ता, **दीदिवः** सत्य के प्रकाशक परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! **तं त्वा** उन आपसे हम **नूनम्** निश्चय ही **सखिभ्यः** साथियों के **सुम्नाय** सुख के लिए **ईमहे** याचना करते हैं ।।३।।

भावार्थ– जो स्वयं पवित्र हृदय वाला और सत्य का समर्थक है वही दूसरों को वैसा बना सकता है।।३।।

।।२३।। अथ ‘ इमा नु’ इत्यादिकस्य त्रयोविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भुवन आप्त्यः साधनो वा भौमनः । **देवताः** विश्वेदेवाः । **छन्दः** द्विपदा त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१११०. इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।।१।।[3]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४५२ क्रमांक पर अध्यात्म विषय में और राष्ट्र के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां भिन्न अर्थ प्रदर्शित किया जाता है ।

पदार्थ– हम **इन्द्रः च** हमारा जीवात्मा **विश्वे च देवाः** और मन, बुद्धि, प्राण, ज्ञानेन्द्रिय, कार्मेन्द्रिय रूप अन्य देव मिलकर **नु कम्** शीघ्र ही **इमा भुवना** इन सब सूर्य, चन्द्र, मगंल, बुध, बृहस्पति, भूमि आदि भुवनों को **सीषधाम** सिद्ध करें, अर्थात् उनके विषय में ज्ञान प्राप्त कर तथा साधनों का प्रयोग करके उन्हें अपने अनुकूल करें ।।१।।

---

१. ऋ० ५।२४।२, ‘द्युमत्तमं’ इति पाठः ।

२. ऋ० ५।२४।४।

३. ऋ० १०।१५७।१, साम० ४५२ ।

भावार्थ– विद्वानों को चाहिए कि सब भूगोल और खगोल की विद्याएं जानकर अन्य लोकों से होने वाले सब लाभों को प्राप्त करें तथा उनसे संभावित हानियों को दूर करें ।।१।।

१११११. यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में अध्यात्म विषय तथा राष्ट्र का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– **इन्द्रः** हमारा जीवात्मा **आदित्यैः सह** सूर्य के समान ज्ञानसाधक मन-बुद्धि-सहित ज्ञानेन्द्रियों के साथ मिलकर, अथवा **इन्द्रः** राष्ट्र का राजा **आदित्यैः सह** विद्वानों के साथ मिलकर **नः** हमारे **यज्ञं च** यज्ञ को **तन्वं च** शरीर को **प्रजां च** और सन्तति वा राष्ट्र की प्रजा को **सीषधातु** सिद्ध करे।।२।।

यहां श्लेषालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जीवात्मा मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करके सब कुछ सिद्ध कर सकता है। उसी प्रकार विद्वान् प्रजाजन, राजा और राज्याधिकारी मिलकर पुरुषार्थ से सब यज्ञसुख, देहसुख, सन्ततिसुख और प्रजासुख सिद्ध कर सकते हैं।।२।।

१११२. आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ।।३ ।।[2]

आगे फिर उसी विषय में कहा गया है ।

पदार्थ– **इन्द्रः** जीवात्मा **आदित्यैः** मन-बुद्धिसहित ज्ञानेन्द्रियों और **मरुद्भिः** प्राणों के **सगणः** गण से युक्त होकर, अथवा **इन्द्रः** राजा **आदित्यैः** सूर्यसम प्रकाशक ब्राह्मणों और **मरुद्भिः** योद्धा सैनिकों के **सगणः** गण से युक्त होकर **अस्मभ्यम्** हम मनुष्यों के लिए **भेषजा** औषध **करत्** करे ।।३।।

यहां श्लेषालंकार है ।।३।।

भावार्थ– मनुष्य के शरीर वा राष्ट्र में जो कुछ भी कष्ट होता है उसका शरीर में स्थित जीवात्मा, मन, बुद्धि प्राण आदि वा राष्ट्र में स्थित राज्याधिकारी ब्राह्मण और वीर सैनिक युक्ति से प्रतीकार करें ।।३।।

।।२४।। अथ 'प्र व इन्द्राय' इत्यादिकस्य चतुर्विंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वामदेवः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** द्विपदा विराट्। **स्वरः** पञ्चमः ।।

१११३. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ।।१।।[3]

प्रथमा ऋचा पूर्वार्चिक में ४४६ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां गुरु-शिष्य का और राजा-प्रजा का विषय वर्णित है ।।

पदार्थ– हे शिष्यो वा हे प्रजाजनों ! **वः** तुम **वृत्रहन्तमाय** दोषों वा शत्रुओं के अतिशय विनाशक, **विप्राय** विद्वान् **इन्द्राय** आचार्य वा राजा के लिए **गाथम्** गुणवर्णनपरक स्त्रोत्र **प्र गायत** भली भांति गाओ, **यम्** जिस स्त्रोत्र को, वह **जुजोषते** प्रीति के साथ सेवन करे ।।१।।

---

१. थ० १०।१५७।२ 'सीषधातु' इत्यत्र 'चीक्लृपाति' इति पाठः।

२. ऋ० १०।१५७।३, 'मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम्' इति पाठः।

३. साम० ४४६ ।

भावार्थ– शिष्यों को गुरुओं के और प्रजाजनों को राजा के गुणों का कीर्तन करके उनसे यथायोग्य विद्या, विनय, राष्ट्र का उत्थान आदि लाभ प्राप्त करने चाहिएं ।।१।।

१११४. अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ।।२।। [1]

२. साम० ४४५ ।

द्वितीय ऋचा पूर्वार्चिक में ४४५ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां गुरु- शिष्य का और राजा-प्रजा का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– प्रथम गुरु और शिष्य के पक्ष में । **स्वर्काः** शुभ वेदमन्त्रों का पाठ करने वाले **मरुतः** प्राणायाम के अभ्यासी शिष्य **अर्कम्** पूजनीय आचार्यदेव का **अर्चन्ति** सत्कार करते हैं। **श्रुतः** प्रसिद्ध, **युवा** युवा के तुल्य सक्रिय **सः इन्द्रः** वह आचार्य, उन्हें **आ स्तोभति** विद्या आदि के प्रदान द्वारा सहारा देता है।।

द्वितीय राजा और प्रजा के पक्ष में । **स्वर्काः** सूर्यसम अतितेजस्वी **मरुतः** राष्ट्रवासी मनुष्य **अर्कम्** तेजस्वी राजा का **अर्चन्ति** सत्कार करते हैं। **श्रुतः** सबके द्वारा जिसके गुण सुने गये हैं ऐसा **युवा** युवक **सः इन्द्रः** वह वीर राजा, उनकी **आ स्तोभति** शरण देकर रक्षा करता है ।।२।।

यहां श्लेषालंकार है ।।२।।

भावार्थ– शिष्यों से सत्कार किया गया आचार्य और प्रजाजनों से सत्कार किया गया राजा पूर्णरूप से उनका हित करता है ।।२।।

१११५. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ।।३।। [2]

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ४४४ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां गुरु-शिष्य का और राजा-प्रजा का विषय वर्णित है ।।

पदार्थ– हे **इन्द्र** विद्वन् आचार्य वा परमैश्वर्यशाली वीर श्रेष्ठ राजन्! हम **ते** आपको **धीमहे** आचार्य के पद वा राजा के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। **तव** आपके **मधुमति** मधुर **प्रक्षे** ज्ञान के झरने में वा ऐश्वर्य के झरने में **उप क्षियन्तः** निवास करते हुए, हम **रयिम्** विद्याधन को वा सुवर्ण, वस्त्र, आभूषण आदि धन को **पुष्येम** पुष्ट रूप से प्राप्त करें ।।३।।

भावार्थ– आचार्य के पद पर वा राजा के पद पर यदि सुयोग्य विद्वान् पुरुष प्रतिष्ठापित किया जाए तो वह सब शिष्यों वा प्रजाजनों को विद्वान् वा धनपति कर सकता है ।।३।।

इस खण्ड में अध्यात्म और अधिराष्ट्र तथा गुरु-शिष्य और राजा-प्रजा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है।।

सप्तम अध्याय में सप्तम खण्ड समाप्त ।

सप्तम अध्याय समाप्त ।

चतुर्थ प्रपाठक में प्रथम अर्ध समाप्त ।

---

१. साम० ४४५।

२. साम० ४४४ ।

॥१॥ तत्र 'प्र काव्य०' इत्यादिकस्य प्रथमस्य द्वादशर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १–३ वृषगणो वासिष्ठः, ४–१२ असितः काश्यपो देवलो वा। **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** १–३ त्रिष्टुप्, ४–१२ षड्जः ॥

तत्र प्रथमा ऋक् पूर्वार्चिके ५२४ क्रमाङ्के परमात्मविषये व्याख्याता। अत्राचार्यशिष्यविषय उच्यते।

१११६. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥१॥[१]

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५२४ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहां आचार्य और शिष्य का विषय कहा जा रहा है ॥

पदार्थ– उशना इव मनुष्यों के हितकांक्षी परमेश्वर के समान अर्थात् जैसे परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में वेदकाव्य का उपदेश किया था वैसे ही **काव्यम्** वेदकाव्य को **प्र ब्रुवाणः** छात्रों के लिए उपदेश करता हुआ **देवः** दिव्य गुणों से युक्त सोम अर्थात् विद्यारस का भण्डार आचार्य **देवानाम्** जगत् के दिव्य पदार्थ सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, नक्षत्र, जल, वायु, अग्नि, पर्वत, नदी, समुद्र आदियों के **जनिम** जन्म की **विवक्ति** व्याख्या करता है अर्थात् कैसे उन पदार्थों की उत्पत्ति हुई, उन पदार्थों में क्या गुण है, क्या उनका उपयोग है, आदि बातें शिष्यों को बतलाता है। **महिव्रतः** महान् व्रतों और महान् कर्मों वाला, **शुचिबन्धुः** पवित्र परमेश्वर जिसका बन्धु है ऐसा, **पावकः** पवित्रता देने वाला **वराहः** जलवर्षी बादल के समान विद्यावर्षी आचार्य **पदा** शास्त्रों के सुबन्त एवं तिङन्त पदों का **रेभन्** उच्चारण करता हुआ **अभ्येति** पढ़ाने के लिए आता है ॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ– सब शास्त्रों में पारंगत, सुयोग्य आचार्य शास्त्र के गूढ़ तत्त्व का भी इस प्रकार उपदेश करता है जिससे विद्यार्थियों की बुद्धि में वह विषय हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जाता है । स्वयं पवित्र, दूसरों को पवित्र करने वाला, परमेश्वर का सखा वह आचार्य छात्रों का वन्दनीय होता है ॥१॥

अथ कीदृशाः शिष्याः कीदृशमाचार्यं प्रति विद्याध्ययनाय गच्छन्तीत्याह ।

१११७. प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥२॥[२]

कैसे शिष्य कैसे आचार्य के पास विद्या पढ़ने के लिए जाते हैं यह अगले मन्त्र में कहा गया है ।

---

१. ऋ० ९।९७।७, साम० ५२४ ।

२. ऋ० ९।९७।८, 'तृपलं मन्युमच्छा' इति पूर्वार्द्धे, 'आङ्गूष्यं ३ पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम्' इति चोत्तरार्द्धे पाठः।

कैसे शिष्य कैसे आचार्य के पास विद्या पढ़ने के लिए जाते हैं यह अगले मन्त्र में कहा गया है ।

पदार्थ– **तृपला** शीघ्रकारी, **वृषगणाः** धार्मिक गणवाले, **हंसासः** हंसों के समान नीरक्षीर विवेकी, निर्मल हृदय वाले छात्र **अमात्** विद्याबल प्राप्त करने के हेतु से **वग्नुम् अच्छ** वाचस्पति आचार्य के प्रति **अस्तम्** गुरुकुलरूप घर में **अयासुः** जाते हैं। **सखाय** सहाध्यायी वे **साकम्** एक साथ मिलकर **अङ्गोषिणम्** वेदों का आघोष करने वाले, **पवमानम्** हृदयों को पवित्र करने वाले, **दुर्मर्षम्** दुर्धर्ष, **वाणम्** सेवनीय आचार्य को **प्रवदन्ति** पढ़ाने के लिए निवेदन करते हैं।।२।।

यहां 'हंसासः' में लुप्तोपमा है । वाणीवाचक 'वग्नु' शब्द लक्षणावृत्ति से 'वाचस्पति' अर्थ को लक्षित करता है, जिसमें वाणी पर अधिकार का अतिशय व्यङ्ग्य है ।।२।।

भावार्थ– सुयोग्य गुरुजन सुयोग्य शिष्यों को जब पा लेते हैं तभी दोनों यशस्वी होते हैं।।२।।

अथाचार्यः शिष्यान् सूर्याच्चन्द्रमसः प्रकाशनमाह ।

१११८. स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः।
परीणसं कृणुते तिग्मश्रृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में आचार्य शिष्यों को यह उपदेश दे रहा है कि चन्द्रमा सूर्य से प्रकाशित होता है ।

पदार्थ– **सः** वह सोम चन्द्रमा **उरुगायस्य** विस्तीर्ण ग्रहोपग्रहों में जिसका प्रकाश पहुंचता है ऐसे सूर्य के **जूतिम्** वेगवान् किरणसमूह को **योजते** अपने साथ जोड़ता है । **वृथा** अनायास **क्रीडन्तम्** भूमि और सूर्य के चारों ओर क्रीड़ा करने वाले उस चन्द्रमा को **गावः** सूर्यकिरणें **न मिमते** सम्पूर्ण रूप में व्याप्त नहीं करती, किन्तु जितने भाग में सूर्यकिरणें पहुंचती है चन्द्रमा का उतना ही भाग प्रकाशित होता है । तो भी कभी-कभी **तिग्मश्रृङ्गः** तीक्ष्ण किरणों वाला सूर्य चन्द्रमा को **परीणसम्** परि व्याप्त **कृणुते** कर लेता है, तब पूर्मिणा में चन्द्रमा पूर्णतः प्रकाशित हो जाता है । वह चन्द्रमा **दिवा** दिन में **हरिः** हरा-काला सा **ददृशे** दिखाई देता है, **नक्तम्** रात्रि में **ऋज्रः** शुभ्र ।।३।।

भावार्थ– पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है और चन्द्रमा पृथिवी के चारों ओर घूमता-घूमता पृथिवी के साथ-साथ सूर्य की भी परिक्रमा करता है। चन्द्रमा सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है । चन्द्रमा की जितनी कलाओं पर सूर्य-किरणें पहुंचती हैं उतनी ही कलाएं प्रकाशित दीखती हैं। प्रतिपदा को एक कला, द्वितीया को दो कलाएं, तृतीया को तीन कलाएं, अष्टमी को आठ कलाएं, और पूर्णमासी को सब कलाएं प्रकाशित होती हैं। अमावस्या को चन्द्रमा पर कहीं भी सूर्य किरणों के न पहुंचने से सारा ही चन्द्र-मण्डल अन्धकार से ढका रहता है । यह भी ध्यान देने योग्य है कि सूर्य-किरणें हमेशा चन्द्रमा के एक गोलार्ध पर ही पडती हैं, अतः दूसरे गोलार्ध में सदा अन्धेरा ही रहता है । गुरुओं को चाहिए कि चन्द्रमा के प्रकाशित होने का यह नियम तथा भूगोल और खगोल सम्बन्धी अन्य भी नियम शिष्यों को उपदेश करते रहें ।।३।।

---

१. ऋ० ९।९७।९ 'स रंहत उरुगायस्य' इति पाठः ।

१११९. प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः। सोमासो राये अक्रमुः ।।४।।[1]

अगले मन्त्र में गुरुओं का वर्णन है ।

पदार्थ– **सोमासः** विद्वान् गुरु लोग **रथाः इव** रथों के समान **सवानासः** शब्द करने वाले, और **अर्वन्तः इव** आक्रमणकारी योद्धाओं के समान **श्रवस्यवः** कीर्ति के इच्छुक होते हुए **राये** विद्या रूप ऐश्वर्य के लिए अर्थात् राष्ट्र में विद्या-रूप ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिए **प्र अक्रमुः** उद्योग करते हैं।।४।।

यहां उपमालंकार है ।।४।।

भावार्थ– जैसे सड़क पर चलते हुए रथ शब्द करते हैं वैसे ही गुरुजन पढ़ाते समय भाषण करते हैं। जैसे युद्ध करने में उद्भट योद्धागण विजय की कीर्ति चाहते हैं, वैसे ही गुरु लोग राष्ट्र में सुयोग्य विद्वानों को उत्पन्न करके उससे प्राप्त होने वाली कीर्ति की कामना करते हैं।।४।।

११२०. हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः। भरासः कारिणामिव ।।५।।[2]

अगले मन्त्र में पुनः गुरुओं का ही विषय है ।

पदार्थ– **इव** जैसे **हिन्वानासः** चलते हुए **रथाः** रथ, और **इव** जैसे **कारिणाम्** भारवाहक कर्मचारियों के **भरासः** भार **गभस्त्योः** बाहुओं से **दधन्विरे** धारण किये जाते हैं। वैसे ही **सोमासः** विद्वान् गुरुजन राजा द्वारा और गृहस्थ प्रजाजनों द्वारा धन आदि के दान से **दधन्विरे** धारण किये जाते है। यहां **'सोमासः'** पद पूर्वमन्त्र से लाया गया है।।५।।

यहां उपमालंकार है ।।५।।

भावार्थ– जैसे मार्ग पर चलते हुए रथ घोड़ों की लगाम के नियन्त्रण द्वारा बाहुओं से धारण किये जाते हैं और जैसे सिर पर भार ढोते हुए श्रमिक उस भार को बाहुओं से धारण किये रखते हैं, वैसे ही विद्वान् गुरुजन राजकीय सहायता द्वारा धारण किये जाने चाहिएं ।।५।।

११२१. राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते। यज्ञो न सप्त धातृभिः ।।६।।[3]

आगे फिर गुरुओं का ही वर्णन है ।

पदार्थ– **राजनः न** राजा लोग जैसे **प्रशस्तिभिः** विजय-प्रशस्तियों से भासित होते हैं, **यज्ञः न** मानसयज्ञ जैसे **सप्त धातृभिः** मन, बुद्धि, पंच ज्ञानेन्द्रिय इन सात होताओं से भासित होता है, अथवा **यज्ञः न** अग्निष्टोम यज्ञ जैसे **सप्त धातृभिः** सप्त होताओं से शोभित होता है, वैसे ही **सोमासः** विद्वान् गुरुलोग **गोभिः** ज्ञान-रश्मियों से वा वेद-वाणियों से **अञ्जते** भासित होते हैं।।६।।

यहां उपमालंकार है ।।६।।

भावार्थ– राजा लोग जैसे प्रशस्ति-गीतों से शोभित होते हैं, यज्ञ जैसे ऋत्विजों से शोभित होता हैं, वैसे ही गुरुलोग विद्या, ब्रह्मसाक्षात्कार, तेज, तप, प्रेम, क्षमा, और मधुर व्यवहार से सोभा पाते हैं।।६।।

११२२. परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ।।७।।[4]

सातवीं ऋचा पूर्वार्चिक में ४८५ क्रमांक पर आनन्दरस के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां गुरुओं का वर्णन है ।

---

१. ऋ० ९।१०।१
२. ऋ० ९।१०।२
३. ऋ० ९।१०।३
४. ऋ. ९. १०.४ सा० ४८५

पदार्थ– स्वानासः पढ़ाने के समय शद्धोच्चारण या भाषण करने वाले **इन्दवः** तेजस्वी, विद्यारस से भिगोने वाले गुरुलोग **मदाय** शिष्यों के आनन्द के लिए **बर्हणा** विरोधियों के सिद्धान्तों का खण्डन करने वाली **गिरा** वाणी से **मधो** मधुर ज्ञानरस की **धारया** धारा के साथ **परिअर्षन्ति** शिष्यों को चारों ओर प्राप्त होते हैं।।७।।

भावार्थ– शिष्यों के प्रति अगाध प्रेम से परिप्लुत विद्वान् गुरु लोग उनके हित के लिए उन्हें ज्ञानधारा से सींचते हैं।।७।।

अथ पुनर्गुरुशिष्यविषयो वर्ण्यते ।

११२३. आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् ।
सूरा अण्वं वि तन्वते ।।८।।[1]

अगले मन्त्र में फिर गुरु-शिष्य का विषय है ।

पदार्थ– आपानासः ज्ञानरस के कुएं के तुल्य, **सूराः** सूर्य के समान तेजस्वी गुरु लोग **विवस्वतः** अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य की, तथा **उषसः** उषा की **भगम्** शोभा को **जिन्वन्तः** शिष्यों के हृदयों में प्रेरित करते हुए **अण्वम्** सूक्ष्म से सूक्ष्म भी विज्ञान को **वितन्वते** शिष्य की बुद्धि में फैला देते हैं।।८।।

भावार्थ– जैसे उषा और सूर्य रात्रि के अंधेरे को चीरकर भूमि पर प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही गुरुजन शिष्यों के अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करके सूक्ष्म से सूक्ष्म विज्ञान को उनके संमुख हस्तामलकवत् कर देते हैं और विद्या की ज्योति से उनके आत्मा को चमका देते हैं।।८।।

अथ पुनस्तमेव विषयमाह ।

११२४. अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ।।९।।[2]

आगे फिर वही विषय कहा गया है ।

पदार्थ– प्रत्नाः पुरातन अर्थात् ज्ञान एवं आयु में वृद्ध, **कारवः** मौखिक एवं व्यावहारिक विद्याओं के शिल्पकार, **आयवः** कर्मयोगी गुरुलोग **वृष्णः** सुखवर्षी ज्ञान को **हरसे** शिष्यों के अन्तरात्मा में लाने के लिए **मतीनाम्** शिष्यों की बुद्धियों के **द्वारा** द्वारों को **अप ऋण्वन्ति** खोल देते हैं ।।९।।

भावार्थ– गुरुओं को चाहिए कि वे शिष्यों की बुद्धियों के बन्द द्वारों को खोलकर उन्हें गभ्भीर ज्ञान के ग्रहण करने योग्य करके पण्डित बना दें ।।९।।

अथ पुनर्गुरुशिष्यविषयमाह ।

११२५. समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः । पदमेकस्य पिप्रतः ।।१०।।[3]

आगे फिर गुरु-शिष्य का विषय है ।

---

१. अण्वं वितन्वते सूक्ष्मं वितानं कुर्वन्ति-इति वि०। अभिषववेलायामुपरवेषु शब्दं कुर्वन्ति-इति सा० ऋ० ९.१०.५ ।

२. ऋ० ९.१०.६ ।

३. ऋ० ९।१०।७, 'आशत', 'सप्तजानयः' इत्यत्र 'आसते', 'सप्तजामयः'।

पदार्थ— समीचीनासः भली-भांति पढ़ाने आदि कर्म में तत्पर, **सप्तजानयः** अग्नि की सात ज्वालाएं जिन्हें पत्नी के समान प्रिय हैं अर्थात् जो अग्निहोत्री हैं ऐसे, **होतारः** विद्यायज्ञ के होता के समान विद्वान् गुरुलोग **एकस्य** एक परमेश्वर के **पदम्** स्वरूप को **पिप्रतः** छात्रों के अन्तःकरण में भरते हुए **आशत** विद्यागृह में कार्यरत रहते हैं ।।

अग्नि की सात ज्वालाएं मु० उप० १।२।४ में प्रोक्त 'काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वरुची' समझनी चाहिएं ।।१०।।

भावार्थ— गुरु-शिष्य आपस में मिलकर विद्या-यज्ञ को सिद्ध करें, और विविध विद्याओं के पढ़ने-पढ़ाने के साथ ब्रह्म के स्वरूप को भी साक्षात् करें तथा करायें ।।१०।।

११२६. नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे। कवेरपत्यमा दुहे ।।११।।[1]

अगले मन्त्र में गुरु के बताये मार्ग द्वारा परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन है ।

पदार्थ— मैं गुरु द्वारा निर्दिष्ट उपाय से **नाभा** केन्द्रभूत अन्तरात्मा में **नः** अपने **नाभिम्** केन्द्रभूत परमात्मा को **आ ददे** ग्रहण करता हूं, **चक्षुषा** अन्दर की आंख से **सूर्यम्** सूर्यसम प्रभावान् उस परमात्मा को **दृशे** देखने के लिए, समर्थ होता हूं। **कवेः** कवि सोम परमात्मा की **अपत्यम्** सन्तान वेदकाव्य को **आ दुहे** दुहता हूं।।११।।

भावार्थ— आचार्य द्वारा वेद दुहने की कला को सीखकर जो वेदार्थों को दुहते हैं और वेदप्रतिपाद्य परमेश्वर की आराधना करते हैं उनका जीवन सफल हो जाता है ।।११।।

अथ पुनः परमात्मसाक्षात्कारं वर्णयति ।

११२७. अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ।।१२।।[2]

आगे पुनः परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन है ।

पदार्थ— प्रियम् प्रिय, **दिवः** द्युलोक के **पदम्** प्रतिष्ठापक, **गुहा हितम्** गुफा में निहित अर्थात् गुह्य सोम नामक परमात्मा को **अध्वर्युभिः** योग-यज्ञ के अध्वर्यु-रूप योगप्रशिक्षक गुरुओं के द्वारा शिक्षा दिया हुआ **सूरः** विद्वान् उपासक **चक्षसा** अन्तर्दृष्टि से **अभि पश्यति** साक्षात्कार कर लेता है ।।१२।।

भावार्थ— सुयोग्य योगप्रशिक्षक गुरुओं से योग का अभ्यास करके उपासक जन चर्म-चक्षुओं से अदृश्य, सर्वान्तर्यामी परमात्मा की अनुभूति पाने में समर्थ हो जाते हैं ।।१२।।

इस खण्ड में गुरु-शिष्य के विषय का तथा गुरु द्वारा प्रदर्शित मार्ग से परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

अष्टम अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।

---

१. ऋ० ९.१०.८ ।

२. ऋ० ९।१०।९, 'प्रियं' इत्यत्र 'प्रि॒या' इति पाठः ।

तत्रादौ विदुषां विषयमाह ।

११२८. असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजना ॥१॥[1]

प्रथम मन्त्र में विद्वानों का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– **सुश्रियः** उत्तम श्री वाले, **इन्दवः** तेजस्वी, ज्ञानरस से भिगोने वाले विद्वान् गुरु लोग **ऋतस्य पथा** सत्य के मार्ग से **धर्मन्** धर्म में **असृग्रम्** तत्पर होते हैं, क्योंकि वे **अस्य** इस धर्ममार्ग की **योजना** क्रियान्वयन-पद्धतियों को **विदानाः** जानते हैं ॥१॥

भावार्थ– विद्वान् लोग स्वयं भी सत्य और धर्म के मार्ग में चलें तथा योजनाएं बनाकर दूसरों को भी उस मार्ग पर चलाएं ॥१॥

अथ पुनरपि विद्वद्विषय एवोच्यते ।

११२९. प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविःषु वन्द्य ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में पुनः विद्वान् का विषय है ।

पदार्थ– **अग्रियः** अगुआ श्रेष्ठ, **हविःषु** हवि देने वालों में **हविः** उत्कृष्ट हवि देने वाला, **वन्द्यः** वन्दनीय सोम अर्थात् ज्ञान के उत्पादक विद्वान् **महीः अपः** महान् कर्मों को **विगाहते** आलोडित करता है अर्थात् ज्ञान के अनुकूल कर्मों का आचरण करता है । उसके पास से **मधोः** मधुर ज्ञानरस की **धारा** धारा **प्र** प्रवाहित होती है॥२॥

भावार्थ– वही विद्वान् प्रशंसनीय है जो ज्ञान के अनुकूल कर्म भी करता है और सबके लिए ज्ञान की मधुर धाराएं बहाता है ॥२॥

अथ कीदृशो गुरुः किं करोतीत्याह ।

११३०. प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३॥[3]

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि कैसा गुरु क्या करता है ।

पदार्थ– **अग्रियः** श्रेष्ठ, **वृषा** ज्ञान की वर्षा करने वाला, **सत्यः** सत्यनिष्ठ, **अध्वरः** यज्ञमय जीवन वाला विद्वान् गुरु **वने** जंगल में **सदम अभि** गुरुकुल रूप घर में **वाचः युजा** वाणी के योग से **उ** निश्चय ही **प्र अचिक्रदत्** शिष्यों को कर्तव्यों का उपदेश करता है ॥३॥

भावार्थ– पर्वतों के एकान्त में नदियों के संगम पर गुरुकुलों का संचालन करते हुए सत्यनिष्ठ गुरु शिष्यों को पढ़ाकर विद्वान्, कर्तव्यपरायण और सदाचारी करें ॥३॥

अथ पुनस्तमेव विषयमाह ।

---

१. ऋ० ९।७।१, 'योजनम्' इति पाठः ।

२. ऋ० ९।७।२, 'मध्वो', 'हुविष्षु' इति पाठः।

३. ऋ० ९।७।३, 'प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदुद्वने' इति पूर्वार्धपाठः ।

११३१. परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ।।४।।[1]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– **कविः** क्रान्तद्रष्टा, बुद्धिमान्, कविहृदय, विद्वान् आचार्य **नृम्णा** बलों को **पुनानः** पवित्र करता हुआ **यत्** जब **काव्या** वेदादि काव्यों की **परि अर्षति** व्याख्या करता है, तब **वाजी** बलवान् और विज्ञानवान् वह शिष्यों को **स्वः** आनन्द **सिषासति** प्रदान करना चाहता है।।४।।

भावार्थ– विद्वान् आचार्य की वेदादिशास्त्रों की व्याख्या शिष्यों को परमानन्द देने वाली और उनकी ज्ञानवृद्धि करने वाली होती है ।।४।।

११३२. पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ।।५।।[2]

आगे फिर गुरु-शिष्य का ही विषय है ।

पदार्थ– **यत** जब **ईम्** इस आचार्य को **वेधसः** अन्य विद्वान् गुरु **ऋण्वन्ति** प्राप्त होते हैं, तब यह **विशः** प्रजाओं को **राजा इव** जैसे राजा वैसे **पवमानः** पवित्र आचरण वाला करता हुआ **स्पृधः** विद्यायज्ञ में विघ्न डालने वाले स्पर्धालुओं को **अभि सीदति** दूर कर देता है ।।५।।

यहां उपमालंकार है ।।५।।

भावार्थ– आचार्य दूसरे सुयोग्य गुरुजनों की सहायता से ही छात्रों को विद्वान् और पवित्र हृदय वाला करने में समर्थ होता है ।।५।।

अथ पुनस्तमेव विषयमाह ।

११३३. अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ।।६।।[3]

आगे पुनः वही विषय है ।

पदार्थ– **प्रियः** प्रिय, **हरिः** चित्त को हरने वाला वा दोषों को दूर करने वाला आचार्य **अव्याः वारे** पृथिवी के चुने हुए स्थान पर **वनेषु** एकान्त जंगलों में **परि सीदति** स्थित होता है । **रेभः** विद्या का उपदेष्टा वह **मती** मति से **वनुष्यते** विद्या के विघ्नों को नष्ट करता है ।।६।।

भावार्थ– विद्यारूप यज्ञ के लिए वन का एकान्त प्रदेश ही चुनना चाहिए, जहां विद्या में विघ्न डालने वाले नगरों के प्रलोभन न हों ।।६।।

---

१. ऋ० ९।७।४, 'पुनानो' इत्यत्र 'वसानो'।

२. ऋ० ९।७।५।

३. ऋ० ९।७।६, 'अव्यो वारे' इति पाठः।

११३४. स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति। रणा यो अस्य धर्मणा ॥७॥[1]

अगले मन्त्र में फिर गुरु-शिष्य का विषय है।

पदार्थ– यः जो शिष्य **अस्य** इस सोम के अर्थात् विद्याप्रेरक आचार्य के **धर्मणा** नियम से **रण** चलता है, **सः** वह शिष्य **मदेन साकम्** उत्साह के साथ **वायुम्** प्राणविद्या वा पवनविद्या को, **इन्द्रम्** आत्मविद्या वा विद्युद्- विद्या को, और **अश्विना** मन-बुद्धि की विद्या वा सूर्य-चन्द्र की विद्या को **गच्छति** प्राप्त कर लेता है ॥७॥

भावार्थ– शिष्यों को चाहिए कि समर्पणभाव से गुरुओं के संरक्षण में रहते हुए सब विद्याएं पढ़कर वायु, बिजली आदि के प्रयोग से यान, यन्त्र आदि चलाएं, सब भूगोल-खगोल का ज्ञान प्राप्त करें और आध्यात्मिक सिद्धियां पाएं ॥७॥

११३५. आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः। विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥[2]

अब ज्ञान तथा ब्रह्मानन्द का विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ– मधोः मधुर ज्ञान-रस वा ब्रह्मानन्द-रस की **ऊर्मयः** तरंगें **मित्रे** मित्रभूत जीवात्मा में, **वरुणे** दोषनिवारक मन में, और **भगे** सेवनीय प्राण में **आ पवन्ते** आती हैं। **विदानाः** उन तरंगों को प्राप्त करने वाले लोग **अस्य** इस मधुर ज्ञान वा ब्रह्मानन्द की **शक्मभिः** शक्तियों से युक्त हो जाते हैं॥८॥

भावार्थ– ज्ञान वा ब्रह्मानन्द की तरंगों से शरीर में स्थित सब कुछ मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियां आदि और रोम-रोम तरंगित हो जाता है ॥८॥

११३६. अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये। श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥[3]

आगे पुनः ज्ञान और ब्रह्मानन्द का ही विषय है।

पदार्थ– हे **रोदसी** आत्मा और मन! तुम दोनों **मध्वः** मधुर सोम की अर्थात् ज्ञानरस और आनन्दरस की **सातये** प्राप्ति के लिए **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **रयिम्** भौतिक चांदी, सोना आदि धन, **श्रवः** यश वा शास्त्रश्रवण, और **वसूनि** आध्यात्मिक धारणा, ध्यान, समाधि, योगसिद्धि, विवेकख्याति आदि धन **संजितम्** जीतो ॥९॥

भावार्थ– ज्ञान वा ब्रह्मानन्द में मन लगाने के लिए पहले धन, धर्म आदि का उपार्जन अपेक्षित होता है॥९॥

११३७. आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे। पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥[4]

दसवीं ऋचा पूर्वार्चिक में ४९८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां जगदीश्वर और आचार्य को सम्बोधन किया जा रहा है।

---

१. ऋ० ९।७।७, 'धर्मणा' इत्यत्र 'धर्मभिः'।

२. ऋ० ९।७।८, 'आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः' इति पूर्वार्धपाठः।

३. शक्मभिः सुखैः-इति सा०। शक्तैः कर्मभिः-इति वि० ऋ० ९।७।९।

४. ऋ० ९।६५।२८।

पदार्थ— हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रतादायक, विद्या-सद्गुणों आदि के प्रेरक जगदीश्वर वा आचार्य! हम **ते** आपके **मयोभुवम्** सुखजनक, **वह्निम्** जीवनरथ को आगे ले जाने वाले, **पान्तम्** रक्षक, **पुरुस्पृहम्** बहुत चाहने योग्य **दक्षम्** विद्याबल, धर्मबल और सच्चरित्रता के बल को **अद्य** आज **आ वृणीमहे** पाना चाहते हैं।।१०।।

भावार्थ— परमात्मा और आचार्य से ग्रहण किये गए विद्या, धर्म, तप, तेज, ब्रह्मवर्चस्, सच्चरित्रता आदि के बल शिष्यों का कल्याण करने वाले होते हैं।।१०।।

११३८. आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम्। पान्तमा पुरुस्पृहम् ।।११।।[1]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और आचार्य का विषय है ।

पदार्थ— हे सोम अर्थात् ज्ञान-रस वा ब्रह्मानन्द-रस के प्रेरक परमात्मन् वा आचार्य! हम **मन्द्रम्** आनन्दप्रदायक आपको **आ** वरते हैं, **वरेण्यम्** वरणीय आपको **आ** वरते हैं, **विप्रम्** विशेष रूप से धन-धान्य-विद्या-आरोग्य आदियों से पूर्ण करने वाले आपको **आ** वरते हैं, **मनीषिणाम्** मनीषी आपको **आ** वरते हैं, **पान्तम्** विघ्न, विपत्ति, अविद्या आदि से रक्षा करने वाले और **पुरुस्पृहम्** बहुत स्पृहणीय आपको **आ** वरते हैं। [यहां आ की बार-बार आवृत्ति की गयी है। उसके साथ 'वृणीमहे' पद पूर्वमन्त्र से आ जाता है] ।।११।।

भावार्थ— असंख्य गुणों से विभूषित, शुभ गुण-कर्म-स्वभाव वाले, विपत्तियों को दूर करने वाले, संपत्तिप्रदाता, विद्या-आनन्द आदि प्राप्त कराने वाले, सरस सोम-नामक परमात्मा और आचार्य को वर कर, उपासना और सत्कार करके अपरिमित लाभ सबको प्राप्त करने चाहिएं ।।११।।

११३९. आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा। पान्तमा पुरुस्पृहम् ।।१२।।[2]

आगे फिर परमात्मा और आचार्य का विषय वर्णित है ।

पदार्थ— हे **सुक्रतो** शुभ ज्ञान वाले वा शुभकर्मों वाले परमात्मन् और आचार्य! आप **आ** हमारे पास आओ । हम आपसे **रयिम्** धन **आ** पाना चाहते हैं, **सुचेतुनम्** उत्कृष्ट ज्ञान **आ** पाना चाहते हैं। **तुनूषु** शरीरों के हित के लिए, हम आपको **आ** पाना चाहते हैं। **पान्तम्** रक्षा करने वाले तथा **पुरुस्पृहम्** बहुत स्पृहणीय आपको **आ** पाना चाहते हैं ।।१२।।

भावार्थ— परमात्मा और आचार्य का सेवन करके सबको धन, ज्ञान, जागरूकता, स्वास्थ्य आदि की सम्पत्ति प्राप्त करनी चाहिए ।।१२।।

इस खण्ड में विद्वान् आचार्य, परमात्मा और ब्रह्मानन्द का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

अष्टम अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त

---

१. ऋ० ९।६५।२९ ।

२. ऋ० ९।६५।३० ।

११४०. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ६७ क्रमांक पर परमात्मा के साक्षात्कार के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां भी वही विषय है ।

पदार्थ– **मूर्धानम्** मूर्धा के समान सर्वोपरि विराजमान, **दिवः** सूर्य के और **पृथिव्याः** पृथिवी के **अरतिम्** स्वामी, **वैश्वानरम्** सबके नेता, **ऋते** यज्ञ में **आ जातम्** सर्वत्र प्रसिद्ध, **कविम्** वेदकाव्य के कवि, **सम्राजम्** ब्रह्माण्ड के राजराजेश्वर, **जनानाम्** मनुष्यों के **अतिथिम्** अतिथि के समान पूज्य, **नः** हमारे **पात्रम्** पालनकर्ता **अग्निम्** अग्रनायक परमेश्वर को **देवाः** विद्वान् उपासक जन **आसन्** मुख से प्रणव-जप आदि करके **जनयन्त** अन्तरात्मा में प्रकट करते हैं ।।१।।

भावार्थ– सबके वन्दनीय, सब शुभ गुण-कर्म-स्वभावों से युक्त, विश्व के सम्राट् परमात्मा को जानकर, उसकी स्तुति और उपासना करके मनुष्यों को अपनी और दूसरों की उन्नति सिद्ध करनी चाहिए ।।१।।

११४१. त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा और मोक्ष का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– हे **अमृत** अमर परमात्मन्! **जायमानम् त्वाम्** अन्तरात्मा में प्रकट होते हुए आपकी **जायमानं शिशुं न** पैदा होते हुए शिशु के समान **विश्वे देवाः** सब विद्वान् उपासक लोग **अभि सं नवन्ते** स्तुति करते हैं। **तव क्रतुभिः** आपके कर्तृत्वों से, उपासक जन **अमृतत्वम्** मोक्ष को **आयन्** प्राप्त कर लेते हैं, **यत्** क्योंकि हे **वैश्वानर** सब मनुष्यों को धर्मकार्यों में प्रवृत्त करने वाले परमात्मन्! आप **पित्रोः** माता-पिता के समान विद्यमान द्यावापृथिवी में **अदीदेः** दीप्त हो, प्रख्यात हो ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे घर में शिशु उत्पन्न होने पर सब गृहवासी हर्ष मनाते हैं, वैसे ही गुह्य परमात्मा के हृदय में प्रकट होने पर साधक जन प्रसन्न होते हैं। मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हुए लोग परमात्मा की ही व्यवस्था से मोक्ष पाते हैं। विद्वान् भक्तजन आकाश में और भूमि पर सब जगह परमेश्वर की ही विभूति देखते हैं।।२।।

११४२. नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ।।३।।[3]

---

१. ऋ० ६।७।१, य० ७।२४, ३३।८, सर्वत्र 'मासन्ना' इति पाठः । साम० ६७ ।

२. ऋ० ६।७।४ ।

३. ऋ० ६।७।२ ।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है ।

पदार्थ– **यज्ञानाम्** पूजा-कर्मों के **नाभिम्** केन्द्र, **रयीणाम्** धनों के **सदनम्** सदन, **महाम्** महान् तेजों के **आहावम्** कूप परमात्मा की, लोग **अभि सं नवन्त** चारों ओर भली भांति स्तुति करते हैं। **अध्वराणाम्** हिंसारहित व्यवहारों के **रथ्यम्** रथी, **यज्ञस्य** परोपकार रूप यज्ञ के **केतुम्** ध्वज के समान स्थित, **वैश्वानरम्** सबके नेता परमात्मा को **देवाः** विद्वान् उपासक **जनयन्त** अपने अन्तरात्मा में प्रकट करते हैं ।।३।।

भावार्थ– विविध गुणों के भण्डार जगदीश्वर की पूजा करके योगाभ्यास द्वारा उसका साक्षात्कार अपने अन्तरात्मा में सबको करना चाहिए ।।३।।

११४३. प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में मित्र-वरुण नाम से परमात्मा और जीवात्मा का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– हे मनुष्यो! **वः** तुम **विपा** बुद्धिपूर्ण **गिरा** वाणी से **मित्राय** विपत्ति से त्राण करने वाले परमात्मा के लिए, और **वरुणाय** वरण करने योग्य जीवात्मा के लिए **गायत** गाओ, अर्थात् उनका गुणगान करो। हे **महिक्षत्रौ** महान् बल वाले परमात्मा और जीवात्मा! तुम दोनों का **ऋतम्** सत्य ज्ञान और सत्य कर्म **बृहत्** महान् है ।।१।।

भावार्थ– जीवात्मा परमात्मा के साथ मित्रता स्थापित करके महान् सत्यज्ञानों को पा सकता है और महान् सत्यकर्मों को कर सकता है ।।१।।

अथ पुनस्तमेव विषयमाह ।

११४४. सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का कथन है ।

पदार्थ– **या** जो **सम्राजा** सम्राट् और **घृतयोनी** तेज के घर **मित्रः च वरुणः च** परमात्मा और जीवात्मा **उभा** दोनों **देवा** प्रकाशक और **देवेषु** प्रकाश करने वाले अग्नि, सूर्य, बिजली आदियों के बीच **प्रशस्ता** प्रशस्त हैं, उनके लिए **गायत** गुण-गान करो। ['गायत' पद पूर्व मन्त्र से यहां लाया गया है] ।।२।।

भावार्थ– जैसे परमेश्वर विश्वब्रह्माण्ड का सम्राट है वैसे ही जीवात्मा शरीर का सम्राट् है। दोनों के प्रकाश को पाकर मनुष्य को महान् बनना योग्य है ।।२।।

अथ पुनरपि स एव विषयो वर्ण्यते ।

११४५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ।।३।।[3]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

---

१. ऋ० ५।६८।१ ।

२. ऋ० ५।६८।२ ।

३. ऋ० ५।६८।३ साम० १४६५ ।

पदार्थ– **ता** वे तुम दोनों मित्र-वरुण अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा **पार्थिवस्य** सांसारिक **दिव्यस्य** तथा आध्यात्मिक **महः** महान् **रायः** धन को **नः** हमारे लिए **शक्तम्** देने में समर्थ होवो। **देवेषु** सूर्य, चन्द्रमा, बिजली आदियों में तथा प्रकाशक मन, बुद्धि, प्राण आदियों में **वाम्** तुम्हारा **महि** महान् **क्षत्रम्** बल, निहित है।।३।।

भावार्थ– परमात्मा और जीवात्मा की सहायता से न केवल लौकिक, किन्तु पारमार्थिक दिव्य धन भी प्राप्त किया जा सकता है। शरीर में स्थित मन, बुद्धि आदि आत्मा और परमात्मा दोनों के बल से और सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि परमात्मा के ही बल से बलवान् बने हुए हैं। अतः हम भी उन दोनों के बल को क्यों न प्राप्त करें ।।३।।

११४६. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ।।१।।[1]

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर का आह्वान किया गया है।

पदार्थ– हे **इन्द्र** ऐश्वर्यशाली परमात्मन्! हे **चित्रभानो** अद्भुत दीप्ति वाले! आप **आयाहि** आओ, इमे ये **सुताः** हमारे पुत्र **त्वायवः** आपकी कामना कर रहे हैं, और **अण्वीभिः** सूक्ष्म धार्मिक वृत्तियों के कारण, **तना** धन से **पूतासः** पवित्र हैं।।१।।

भावार्थ– हमें और हमारी सन्तानों को परमेश्वर का उपासक और पवित्र लक्ष्मी वाला होना चाहिए। पाप से कमाया गया धन धन नहीं, किन्तु साक्षात् पाप ही होता है ।।१।।

अथ पुनस्तमेव विषयमाह।

११४७. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

पदार्थ– हे **इन्द्र** परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! **धिया इषितः** ध्यान द्वारा प्रेरित, **विप्रजूतः** मेधावी जीवात्मा से स्तुति किये गये आप **सुतावतः** पुत्रवान्, **वाघतः** अध्यात्मयज्ञ के वाहक मेरे **ब्रह्माणि** स्तोत्रों के **उप आ गहि** समीप आओ ।।२।।

भावार्थ– परिवार में पत्नी, पुत्र, पौत्र आदि सहित सबको प्रातः- सायम् ध्यानपूर्वक परमेश्वर की आराधना करनी चाहिए ।।२।।

११४८. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय का वर्णन है।

---

१. ऋ० १।३।४, य० २०।८७ अथ० २०।८४।१।

२. ऋ० १।३।५, य० २०।८८, अथ० २०।८४।२

३. ऋ० १।३।६, य० २०।८९, अथ० २०।८४।३।

पदार्थ– हे **हरिवः** परस्पर आकर्षण वाले सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि लोकों के स्वामी **इन्द्र** जगदीश्वर ! आप **तूतुजानः** शीघ्रता करते हुए, हमारे **ब्रह्माणी** स्तोत्रों के **उप आ याहि** समीप आओ । **नः** हमारे **सुते** पुत्र आदि सन्तान में **चनः** उपासना से मिलने वाला आनन्द-रस **दधिष्व** धारण कराओ ।।३।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि सपरिवार परमेश्वरोपासना का आनन्द-रस प्रतिदिन प्राप्त करके दैनिक कार्यों में प्रवृत्त हों ।।३।।

११४९. समीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में भौतिक अग्नि के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा प्रकट की गयी है ।

पदार्थ– हे मनुष्य! तू **तम्** उस अग्नि के **ईडिष्व** गुणों का वर्णन कर, **यः** जो **अर्चिषा** दीप्ति, से **विश्वा वना** सब वनों का **परिष्वजत्** आलिंगन करता है, और **जिह्वया** ज्वाला से, उन वनों को **कृष्णा** काले **करोति** करता है ।।१।।

भावार्थ– जो यह भौतिक अग्नि विशाल वनों को जलाता हुआ उन्हें कृष्ण वर्ण वाला तथा घास, वनस्पति आदि के अंकुरित होने योग्य करता है वह सब महिमा परमेश्वर की ही है ।।१।।

११५०. य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि अग्नि में परमेश्वर की ही दी हुई ज्योति है ।

पदार्थ– यः मर्त्यः जो मनुष्य **इद्धे** अग्नि के प्रदीप्त होने पर **इन्द्रस्य** परमात्मा के **सुम्नम्** सुखदायक दान की **आ विवासति** प्रशंसा करता है, वह **द्युम्नाय** तेज और यश के लिए **अपः** विकट भी कर्मों को **सुतराः** आसानी से सिद्ध होने वाला कर लेता है ।।२।।

भावार्थ– प्रज्वलित अग्नि में उसकी अपनी ज्योति नहीं है, प्रत्युत परमात्मा की ही है, ऐसा जो मानता है वह परमात्मा का आराधक होता हुआ तेजस्वी और यशस्वी बनता है । पर जो भौतिकवादी होता है वह भौतिक पदार्थों में ही रमता हुआ भोगों से ही भोगा जाता है ।।२।।

११५१. ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । एन्द्रमग्निं च वोढवे ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में परमेश्वर द्वारा रचित वायु और बिजली का विषय है ।

पदार्थ– हे इन्द्र-अग्नि अर्थात् वायु और बिजली **ता** वे तुम दोनों **वाजवतीः** बलसहित **इषः** अभीष्ट अन्न-धनादि को, और **आशून्** शीघ्रगामी **अर्वतः** भूमि, जल एवं अन्तरिक्ष में चलने वाले यानों तथा यन्त्रों को **पिपृतम्** प्रदान करो। **इन्द्रम्** वायु को **अग्निं च** और बिजली को, हम **वोढवे** पदार्थों को ढोने के लिए यान आदियों में **आ** प्रयुक्त करें ।।३।।

---

१. ऋ० ६।६०।१० ।
२. ऋ० ६।६०।११
३. ऋ० ६।६०।१२ ।

भावार्थ– परमेश्वर का ही यह महत्त्व है कि उसने ऐसे वायु और बिजली रचे हैं, जिनसे बहुत से कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा-जीवात्मा, मोक्ष एवं परमात्मा से रचित भौतिक अग्नि, वायु तथा विद्युत् का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।।३।।

अष्टम अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

११५२. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५५७ क्रमांक पर जीवात्मा और परमात्मा की मित्रता के विषय में हो चुकी है । यहां सोम ओषधि के रस का विषय वर्णित करते हैं ।

पदार्थ– **इन्दुः** सोम ओषधि का रस **इन्द्रस्य** यजमान के **निष्कृतम्** घर में **प्र उ अयासीत्** पहुंचता है । **सखा** मित्रतुल्य सोमरस **सख्युः** अपने मित्र यजमान के **संगिरम्** यज्ञ को **न प्रमिनाति** भंग नहीं करता, प्रत्युत सिद्ध करता है । **सोमः** सोमरस **शतयामना पथा** दशापवित्र नामक छन्नी की सौ छिद्रों वाले मार्ग से छनकर **कलशे** द्रोणकलश में **समर्षति** जल की लहरियों के साथ मिलता है, **मर्यः इव युवतिभिः** जैसे मनुष्य घर की युवतियों के साथ **समर्षति** मिलता अर्थात् यथायोग्य व्यवहार करता है ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे सोम ओषधि का रस सोमयाग को सिद्ध करता है, वैसे ही मनुष्यों को व्यवहार-यज्ञ और उपासना-यज्ञ सिद्ध करना चाहिए ।।१।।

११५३. प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ।
हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति के लिए मनुष्यों को प्रेरणा दी गयी है ।

पदार्थ– हे मनुष्यो **वः** तुम्हारी **मन्द्रयुवः** आनन्दप्रद परमेश्वर की कामना करने वाली, **पनस्युवः** दूसरों के प्रति उत्कृष्ट व्यवहार करने की इच्छुक, **विपन्युवः** विशेष स्तुतिशील **धियः** बुद्धियां **संवरणेषु** उपासना-यज्ञों में **प्र अक्रमुः** उपासना आरम्भ करें । **क्रीडन्तम्** जगत् की खेलें खेलते हुए, **हरिम्** हृदयहारी परमात्मा की **स्तुभः** अर्चना करने वाले जन **अभ्यनूषत** पूजा करें । परमात्मा की दी हुई **धेनवः** गौएं **पयसा इत्** दूध से **अशिश्रयुः** सबकी सेवा करती रहें, अथवा **धेनवः** वेदवाणियां **पयसा इत्** प्रतिपाद्य अर्थ रूप दूध से **अतिश्रयुः** सबकी सेवा करती रहें ।।२।।

---

१. ऋ० ९।८६।१६, अथ० १८।४।६० उभयत्र 'शतयामना' इति पाठः साम० ५५७

२. ऋ० ९।८६।१७, संवर्सनेष्वक्रमुः। सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धनवः पयसेमशिश्रयुः ।। इति पाठः ।।

भावार्थ– खगोल में बहुत से सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह आदि लोक जो इधर-उधर घूम रहे हैं वह मानो जगदीश्वर गेंदों से क्रीडा कर रहा है। वही खिलाड़ी अपने खेल से सब जड़-चेतन-रूप जगत् का संचालन कर रहा है। इस कारण हम क्यों न उसकी अर्चना और वन्दना करें ।।२।।

अथ परमात्मानं प्रार्थयते ।

११५४. आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा ।
या नो दोहत त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **इन्दो** तेजस्वी, आनन्द-रस से भिगोने वाले, **पवमान** पवित्रतादायक, **सोम** रस के भण्डार, जगत्स्रष्टा परमात्मन्! आप **नः** हमारे लिए **संयतम्** सुबद्ध, **पिप्युषीम्** अतिशय समृद्ध **इषम्** अभीष्ट सम्पत्ति को **ऊर्मिणा** तरंग रूप में **पवस्व** प्रवाहित कीजिए, **या** जो सम्पत्ति **असश्चुषी** बिना प्रतिबन्ध के **नः** हमारे लिए **अहन्** दिन में **त्रिः** तीन बार अर्थात् सोमयाग के तीनों सवनों में **क्षुमत्** निवासगृह से युक्त, **वाजवत्** अन्न, धन, विज्ञान से युक्त, **मधुमत्** मधुर, **सुवीर्यम्** श्रेष्ठ वीरता से युक्त फल को **दोहते** दुहे, प्रदान करे ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर की कृपा से हम पुरुषार्थी लोग अधिकाधिक भौतिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त करें ।।३।।

११५५. न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २४३ क्रमांक पर परमेश्वर के महत्त्व के विषय में की गयी थी। यहां फिर वही विषय प्रदर्शित किया जा रहा है ।

पदार्थ– **तम्** उस प्रसिद्ध **इन्द्रम्** जगदीश्वर के **कर्मणा** कर्म में **न किः** कोई नहीं **नशन्** प्राप्त कर सकता है, अर्थात् कोई भी उसकी कर्म में बराबरी नहीं कर सकता है, **यः** जिस जगदीश्वर ने **सदावृधम्** सदा बढ़ते रहने वाले इस ब्रह्माण्ड को **चकार** उत्पन्न किया है । **न** नहीं **विश्वगूर्तम्** सर्वोन्नत, **ऋभ्वसम्** अत्यधिक भासमान, **अधृष्टम्** अपराजित, **ओजसा** प्रताप से **धृष्णुम्** दूसरों को पराजित करने वाले उस जगदीश्वर की **यज्ञैः** जगत् के उत्पादन, धारण, पालन आदि यज्ञों में **नशत्** कोई बराबरी कर सकता है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा के तुल्य कर्म करने वाला और परमात्मा के तुल्य यज्ञ करने वाला संसार में न कोई हुआ है, न है, न भविष्य में होगा ।।१।।

११५६. अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ९।८६।१८, 'सं॒यन्तं॑', 'पव॑मानो अ॒स्रिध॑म्' इति पाठः ।
२. ऋ० ८।७०।३, अथ० २०।९२।१८, उभयत्र 'धृष्ण्वोजसम्' इति पाठः । साम० २४३ ।
३. ऋ० ८।७०।४, अथ० २०।९२।१९, उभयत्र 'द्याव॒: क्षामो॑ अनोनवुः' इति पाठः ।

अगले मन्त्र में फिर जगदीश्वर की महिमा वर्णित करते हैं।

पदार्थ– **अषाढम्** किसी से भी परास्त न होने वाले, **उग्रम्** पापियों के लिए प्रचण्ड, **पृतनासु** काम, क्रोध आदि की सेनाओं को **सासहिम्** पुनः पुनः पराजय देने वाले, उस परमेश्वर की [कर्मणा न किः नशत् न यज्ञैः] कर्म और यज्ञ में कोई बराबरी नहीं कर सकता, **यस्मिन्** जिसकी अधीनता में **उरुज्रयः** बहुत वेगवाली **महीः** पृथिवी, चन्द्र आदि लोकों में स्थित भूमियां हैं, जिसके **जायमाने** जगत् की उत्पत्ति के अनन्तर प्रसिद्धि प्राप्त करने पर **धेनवः** वेदवाणियों ने **सम् अनोनवुः** प्रशंसा की, **द्यावः** सूर्यों ने, और **क्षामीः** भूमिवासिनी प्रजाओं ने **सम् अनोनवुः** प्रशंसा की [इस पदार्थ में 'कर्मणा न किः नशत् न यज्ञैः' ये शब्द पूर्व मन्त्र से लाये गये हैं।] ॥२॥

भावार्थ– ब्रह्माण्ड में अनेक सौरमण्डल हैं, जिनके पृथक् पृथक् सूर्य हैं। वे सब लोक और मानवी प्रजाएं सर्वविजेता परमात्मा की ही महिमा को गाते हैं॥२॥

इस खण्ड में परमात्मा का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है।।

अष्टम अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

११५७. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५६८ क्रमांक पर परमात्मा की उपासना के विषय में की जा चुकी है । यहां अपने अन्तरात्मा का विषय वर्णित करते हैं।।

पदार्थ– हे **सखायः** साथियो! तुम **आ निषीदत** आकर बैठो, **पुनानाय** मन, बुद्धि आदि को पवित्र करने वाले अपने अन्तरात्मा के लिए **प्र गायत** उद्बोधन-गीत गाओ । और **श्रिये** शोभा के लिए उस सोम नामक अन्तरात्मा को **यज्ञैः** देवपूजा, संगतिकरण, दान आदियों से **परि भूषत** अलंकृत करो, **शिशुं न** जैसे शिशु को, सुरम्य वस्त्र, आभूषण आदियों से अलंकृत करते हैं॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ– जीवात्मा में महान् शक्ति निहित है । उद्बोधन-गीतों से उस शक्ति को जगाना चाहिए और नवीन-नवीन गुणों से तथा यज्ञ-भावनाओं से उसे अलंकृत करना चाहिए ॥१॥

११५८. समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
देवाव्यां३ मदमभि द्विशवसम् ॥२॥[2]

आगे पुनः उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– हे साथियो ! तुम **गयसाधनम्** शरीर-रूप घर के परिष्कर्ता, **देवाव्यम्** प्रकाशक मन, बुद्धि व ज्ञानेन्द्रियों के रक्षक, **मदम्** ब्रह्मानन्द का अनुभव करने वाले, **द्विशवसम्** आत्मिक और शारीरिक दो प्रकार के बल से युक्त **ई** इस सोम नामक जीवात्मा को **मातृभिः** माताओं के समान हितकारिणी श्रद्धाओं

---

१. ऋ० ९।१०४।१, साम० ५६८ ।
२. ऋ० ९।१०४।२ ।

से अभि सं सृजत चारों ओर से संयुक्त करो, **वत्सं न** जैसे बछड़े को **मातृभिः** गायों से संयुक्त करते हैं ।।२।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– विविध गुणों से विभूषित भी आत्मा में माता के समान हित करने वाली श्रद्धा यदि नहीं है, तो वह कुछ नहीं कर सकता । गाय से संयुक्त किया हुआ बछड़ा जैसे उसका दूध पीकर पुष्ट हो जाता है, वैसे ही श्रद्धा से संयुक्त जीवात्मा ब्रह्मानन्द के पान से परिपुष्ट होता है ।।२।।

अथ पुनस्तमेव विषयमाह ।

११५९. पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

पदार्थ– हे साथियो! तुम **दक्षसाधनम्** दक्षता के साधक सोम नामक जीवात्मा को **पुनात** पवित्र करो, **यथा** जिससे, वह **शर्धाय** उत्साह के लिए, और **वीतये** प्रगति के लिए हो अर्थात् उत्साहित होकर प्रगति कर सके, और **यथा** जिससे **मित्राय** मित्र मन के लिए और **वरुणाय** दोषनिवारक प्राण के लिए **शन्तमम्** शान्तिकारक हो ।।३।।

भावार्थ– जीवात्मा के पवित्र हो जाने पर शरीरस्थ मन, बुद्धि, प्राण आदि सब पवित्र हो जाते हैं ।।३।।

११६०. प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ।।१।।[2]

पदार्थ– **वाजी** बलवान्, **सहस्रधारः** अनन्त धाराओं वाला पवमान सोम अर्थात पवित्रं करने वाला ज्ञानरस **पवित्रम्** पवित्र मन को **तिरः** पार करके **अव्यम्** अविनश्वर **वारम्** दोषनिवारक जीवात्मा के प्रति **प्र वि अक्षाः** उत्तम प्रकार से विविध रूप में क्षरित हो रहा है ।।१।।

भावार्थ– आचार्य से प्रवाहित होता हुआ विज्ञानरस मन के माध्यम से जीवात्मा में प्रविष्ट होकर उसे पवित्र और विद्वान् बना देता है ।।१।।

११६१. स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ।।२।।[3]

अगले में फिर उसी विषय को कहा गया है ।

पदार्थ– **वाजी** वेगवान्, **सहस्ररेताः** सहस्र वीर्य वाला, **अद्भिः** शुभकर्मों से **मृजानः** जीवात्मा को अलंकृत करता हुआ, **गोभिः** विवेक के प्रकाशों से **श्रीणानः** जीवात्मा को परिपक्व करता हुआ **सः** वह सोम अर्थात् ज्ञान-रस **अक्षाः** आचार्य के पास से क्षरित होता है ।।२।।

भावार्थ– आचार्य के पास से जो ज्ञान-रस शिष्य द्वारा प्राप्त किया जाता है वह उसके कर्मों को शुद्ध करता है और उसके अन्तरात्मा को परिपक्व करता है ।।२।।

११६२. प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ।।३।।[4]

---

१. ऋ० ९।२०४।३, 'शंतमः' इत भेदः ।
२. ऋ० ९।१०९।१६, 'प्र सुवानो अक्षाः' इति भेदः ।
३. ऋ० ९।१०९।१७।
४. ऋ ९।१०९।१८ ।

अगले मन्त्र में फिर वही विषय वर्णित है ।

पदार्थ– हे **सोम** ज्ञानरस ! **नृभिः** नेता गुरुओं से **येमानः** नियन्त्रित किया जाता हुआ, **अद्रिभिः** अखण्डित पाण्डित्यों से **सुतः** प्रेरित किया गया, तू **इन्द्रस्य** जीवात्मा के **कुक्षा** गर्भ में **प्र याहि** उत्तम प्रकार से पहुंच ।।३।।

भावार्थ– विद्वान्, नियमपरायण गुरु लोग जब छात्रों को पढ़ाते हैं तब उन छात्रों के अन्तरात्मा में विशुद्ध ज्ञान-रस का प्रवाह सुगमता से प्रकट हो जाता है ।।३।।

११६३. ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ।।१।।[1]

११६४. य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ।।२।।[2]

११६५. ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ।।३।।[3]

इस सम्पूर्ण सूक्त में एक वाक्य में विद्वानों से प्राप्त कराये जाते हुए ब्रह्मानन्द का वर्णन है ।

पदार्थ– ये सोमासः जो ज्ञान-प्रेरक विद्वान् लोग **परावति** परा विद्या के विषय में, और **ये** जो **अर्वावति** अपरा विद्या के विषय में, **ये वा** और जो **अदः** इस **शर्यणावति** शरीर- विद्या के विषय में **सुन्विरे** ज्ञान देते हैं, **ये** जो विद्वान् लोग **पस्त्यानाम्** प्रजाओं के **मध्ये** अन्दर, **ये वा** और **पञ्चसु जनेषु** यजमान, ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता और उद्गाता इन पांच जनों में **सुन्विरे** ज्ञान देते हैं, **ते** वे **स्वानाः** पढ़ाने वाले **इन्दवः** ज्ञान-रस से भिगोने वाले **देवासः** विद्वान् लोग **नः** हमारे लिए **दिवः परि** द्युतिमय परमात्मा के पास से **वृष्टिम्** आनन्दरस की वर्षा को, और **सुवीर्यम्** सुवीर्य से युक्त आध्यात्मिक धन को **आ पवन्ताम्** प्रवाहित करें ।।१-३।।

भावार्थ– आप्त विद्वान् लोग भिन्न-भिन्न लोगों को उन-उन से सम्बद्ध विद्याओं में निष्णात करके और ब्रह्मानन्द प्रदान करके सुयोग्य बनाते हैं, इसलिए उनका सबको सत्कार करना चाहिए ।।१-३।।

इस खण्ड में परमात्मा का और विद्वान् गुरुओं के पास से प्राप्त होने वाले ज्ञानरस तथा ब्रह्मानन्दरस का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए।।

अष्टम अध्याय में पंचम खण्ड समाप्त

११६६. आ ते वत्सो मनो यमत् परमाश्चित् सधस्थात् ।
अग्ने त्वां कामये गिरा ।।१।।[4]

प्रथमा ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां भी उसी विषय को दर्शाते हैं।

---

१. ऋ० ९.६५.२२ ।
२. ऋ० ९।६५।२३ ।
३. ऋ० ९।६५।२४, 'सुवाना' इति भेदः ।
४. ऋ० ८।११।७ । य० १२।११५, उभयत्र 'कामया' इति पाठः । साम० ८।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक, सर्वज्ञ, तेजस्वी परमात्मन् ! मैं **गिरा** स्तुति-वाणी से **त्वाम् कामये** तुझे चाहता हूँ। **ते वत्सः** तेरा पुत्र तुझे पाने के लिए **परमात् चित्** सुदूर भी **सधस्थात्** लोक से **मनः** अपने मन को **आयमत्** लौटा लाया है ।।१।।

भावार्थ– समीप वा दूर जहां कहीं भी मेरा मन चला गया है वहां से उसे लौटाकर परमात्मा में ही केन्द्रित करता हूँ।।१।।

११६७. पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति करते हुए उसका आह्वान किया गया है ।

पदार्थ- हे अग्नि अर्थात् सर्वान्तर्यामी परमात्मन् ! आप **पुरुत्रा** सभी के प्रति **सदृङ्** समदर्शी **असि** हो । **विश्वाः दिशः अनु** सब दिशाओं में अर्थात् सब क्षेत्रों में **प्रभुः** समर्थ हो।हम **समत्सु** आन्तरिक तथा बाह्य देवासुरसंग्रामों में **त्वा** आपको **हवामहे** पुकारते हैं।।२।।

भावार्थ– जो पक्षपात से रहित, सब बातों में समर्थ परमेश्वर विपत्ति के समय शक्ति-प्रदान द्वारा रक्षा करता है उसमें सबको ध्यान लगाना चाहिए ।।२।।

११६८. समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा का आह्वान है ।

पदार्थ– **समत्सु** देवासुरसंग्रामों में **वाजयन्तः** बल की कामना करते हुए, हम **अवसे** रक्षा के लिए **अग्निम्** अग्रनायक जगदीश्वर को **हवामहे** पुकारते हैं। **चित्रराधसम्** अद्भुत धन वाले उसे **वाजेषु** धनप्राप्ति के निमित्त **हवामहे** हम पुकारते हैं।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर बल देकर ही लोगों की रक्षा करता है । अद्भुत दिव्य एवं भौतिक धनों का स्वामी वह पुरुषार्थियों को ही धन देता है ।।३।।

११६९. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णां शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनासहम् ।।१।।[3]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४०५ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां क्षात्रधर्म के शिक्षक आचार्य को कह रहे हैं ।

पदार्थ– हे **शतक्रतो** बहुत बुद्धिमान्, **विचर्षणे** शिष्यों पर दृष्टि रखने वाले, **इन्द्र** क्षात्रधर्म के शिक्षक आचार्य! **त्वम्** आप **नः** हमें **ओजः** उत्साह और **नृम्णम्** बल **आ भर** प्रदान कीजिए । साथ ही **पृतनासहम्** शत्रु-सेनाओं को हराने वाला **वीरम्** वीर क्षत्रिय योद्धा **आ** प्रदान कीजिए ।।१।।

भावार्थ– उस-उस विद्या में निष्णात गुरु ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वा वैश्य राष्ट्र के लिए उत्पन्न करता है।।१।।

---

१. ऋ० ८।११।८, ४३।२१ उभयत्र 'विशो विश्वा' इति पाठः ।
२. ऋ० ८।११।९ ।
३. ऋ० ८।९८।१०, अथ० २०।१०८।१, उभयत्र भरे, पृतनाषहम् इति भेदः । साम० ४०५ ।

११७०. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अथा ते सुम्नमीमहे ।।२।।[1]

आचार्य से प्रार्थना करके अब परमात्मा की स्तुति तथा उससे प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे **वसो** निवासप्रदाता, **शतक्रतो** सैंकड़ों कर्मों को करने वाले परमेश! **त्वं हि** आप ही **नः** हमारे **पिता** पिता और **त्वम्** आप ही **माता** माता **बभूविथ** हो । **अथ** इसलिए, हम **ते** आपसे **सुम्नम्** सुख **ईमहे** मांगते हैं ।।२।।

भावार्थ– परमेश्वर एक ही होता हुआ सबका पिता के समान पालनकर्ता और माता के समान स्नेह देने वाला वा चरित्र-निर्माता हैं। वह माता-पिता के तुल्य सबको सुख देता है ।।२।।

११७१. त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा से प्रार्थना है ।

पदार्थ– हे **शुष्मिन्** बलवान्, **पुरुहूत** बहुतों से पुकारे गए, **सहस्कृत** बलप्रदाता जगदीश्वर! **वाजयन्तं त्वाम्** दूसरों को बल देना चाहने वाले आपसे, मैं **उपब्रुवे** प्रार्थना करता हूँ! **सः** वह आप **नः** हमें **सुवीर्यम्** उत्कृष्ट वीरता से युक्त सन्तान **रास्व** दीजिए ।।३।।

भावार्थ– हम और हमारी सन्तानें बलवान् होकर, शत्रुओं को हराकर, अपना चक्रवर्ती राज्य संस्थापित करके धर्म से प्रजाओं का पालन करें ।।३।।

११७२. यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ।।१।।[3]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३४५ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी। यहां परमात्मा और आचार्य का विषय दर्शाया जा रहा है ।।

पदार्थ– हे **चित्र** अद्भुत, **अद्रिवः** अविनष्ट गुणों वाले **विदद्वसो** प्राप्त ऐश्वर्य वाले **इन्द्र** जगदीश्वर वा आचार्य! **त्वादातम्** आपसे शोधित **यत् राधः** जो आत्मबल, धर्म, विद्या आदि का धन **मे** मेरे पास **इह** यहां **न अस्ति** नहीं है **तत्** वह धन, आप **उभयाहस्ति** जैसे दोनों हाथों से किसी को दिया जाता है वैसे **नः** हमें **आ भर** दीजिए ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर और आचार्य की कृपा से शुद्ध दिव्य और भौतिक धन के हम अधिपति हो जाएं।।१।।

---

१. ऋ० ८।९८।११, अथ० २०।१०८।२, उभयत्र 'अधा' इत पाठः ।

२. ऋ० ८।९८।१२, अथ० २०।१०८।३, उभयत्र 'सहस्कृत' इत्यत्र 'शतक्रतो' ।

३. ऋ० ५।३९।१, 'मेहनास्ति' इति भेदः । साम० ३४५ ।

११७३. यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में फिर परमेश्वर और आचार्य का विषय है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर वा आचार्य! **यत्** जिसे, आप **वरेण्यम्** ग्रहण करने योग्य **मन्यसे** मानते हो **तत्** उस **द्युक्षम्** धर्म और विद्या के प्रकाश के निवासक अपने दान को **आ भर** हमें प्राप्त कराओ । **ते** आपके **अकूपारस्य** जिसका भरना या संग्रह करना बुरा नहीं है ऐसे **तस्य** उस **दावनः** दान को **वयम्** हम **विद्याम** पा लेवें ।।२।।

भावार्थ– परमेश्वर और आचार्य का जो सद्गुण, विद्या, धर्म, सदाचार आदि का दान है उसे पाकर हम अपने आपको उन्नत करें ।।२।।

११७४. यत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

पदार्थ– हे इन्द्र परमात्मन् वा आचार्य! **यत् ते** जो आपका **प्र राध्यम्** प्रसन्न करने योग्य **बृहत् मनः** विशाल शक्ति वाला मन **दिक्षु** दिशाओं में **श्रुतम्** प्रसिद्ध **अस्ति** है, **तेन** उस मन से, हे **अद्रिवः** अविनष्ट बल वाले! आप **दृढा चित्** कठिन और दुष्प्राप्य भी **वाजम्** धर्म, विद्या आदि के धन के **सातये** हमें प्राप्त कराने के लिए **आदर्षि** लाओ ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर और आचार्य सत्पात्र जनों को धर्ममार्ग की सुशिक्षा देकर, विद्या आदि का दान करके, पुरुषार्थ की प्रेरणा कर परमैश्वर्यवान् बनाते हैं ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा और आचार्य के गुण वर्णित होने से उनका आह्वान होने से, और उनसे प्रार्थना की जाने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

अष्टम अध्याय में षष्ठ खण्ड समाप्त ।

अष्टम अध्याय समाप्त ।।

चतुर्थ प्रपाठक में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

११७५. शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येन कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ५।३९।२, 'दावने' इति पाठः ।१

२. ऋ० ५।३९।३, 'दिक्षु' इत्यत्र 'दिक्षु' ।

३. ऋ० ९।९६।१७

प्रथम मन्त्र में परमात्मा के आविर्भाव का वर्णन है।

पदार्थ— **शिशुं जज्ञानम्** पैदा होते हुए शिशु के समान अन्तरात्मा में प्रकट होते हुए **हर्यतम्** उस प्रिय सोम परमात्मा को, उपासक जन **मृजन्ति** स्तोत्रों से अलंकृत करते हैं। **विप्रम्** विशेष रूप से पूर्णता प्रदान करने वाले उस मेधावी परमात्मा को **मरुतः** प्राण **गणेन** अपने तरंगसमूह से **शुम्भन्ति** शोभित करते हैं। **गीर्भिः** प्रेरक वाणियों से **कविः** दिव्य सन्देश देने वाला और **काव्येन** वेदकाव्य से **कविः** काव्यकार **सन्** होता हुआ **सोमः** सन्मार्गप्रेरक परमेश्वर **रेभन्** उपदेश देता हुआ **पवित्रम् अत्येति** पवित्र हृदय को लांघकर अन्तरात्मा में पहुंचता है ।।१।।

यहां 'शिशु जज्ञानम्' में लुप्तोपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ— अपने अन्तरात्मा में परमेश्वर को प्रकट करके भक्तिभाव से परिपूर्ण स्तोत्रों द्वारा उसे अधिकाधिक अलंकृत और प्रसादित करना चाहिए ।।१।।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
११७६. ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुण-कर्मों का वर्णन है ।

पदार्थ— **यः** जो **ऋषिमनाः** ऋषि स्वभाववाला, **ऋषिकृत्** उपासकों को ऋषि बनाने वाला, **स्वर्षाः** आनन्दप्रदाता, **सहस्रनीथः** सहस्रनीतियों वाला, **कवीनाम्** क्रान्तदर्शियों को **पदवीः** उच्च पद प्राप्त कराने वाला है, वह **महिषः** महान्, **स्तुप्** सबका आधारस्तम्भ रूप **सोमः** जगदीश्वर **तृतीयं धाम** मुक्ति पद को **सिषासन्** देना चाहता हुआ **विराजम्** विशेष तेज से युक्त मनुष्य को **अनुराजति** अनुरंजित करता है ।।२।।

भावर्थ-जो परमेश्वर को ऋषिपद प्राप्त कराकर मोक्ष देता है उसकी उपासना करके सब सौभाग्यवान् होवें ।।२।।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
११७७. चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का वर्णन है।

पदार्थ— **चमूषत्** द्यावापृथिवी में स्थित, **श्येनः** प्रशंसनीय कर्मों वाला, **शकुनः** शक्तिशाली, **विभृत्वा** विशेष रूप से भरण-पोषण करने वाला, **गोविन्दुः** गायों और भूमियों को प्राप्त कराने वाला, **द्रप्सः** आनन्दरस से भरपूर, **आयुधानि बिभ्रत्** शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाले सेनापति के समान दण्ड देने की शक्ति से युक्त, **अपाम् ऊर्मिम्** जलों के धारणकर्ता **समुद्रम्** समुद्र वा अन्तरिक्ष को **सचमानः** आश्रयस्थान बनाता हुआ अर्थात् उनमें विद्यमान रहता हुआ, **महिषः** महान् वह सोम नामक जगत्पति परमेश्वर **तुरतीयं धाम** पुरुषार्थचतुष्टय में चौथे मोक्ष का **विवक्ति** उपदेश करता है ।।

---

१. ऋ० ९।९६।१८

२. ऋ० ९।९६।१९

यहां यह शंका होती है कि पूर्वमन्त्र में मोक्ष को तृतीय धाम कहा गया है और इस मन्त्र में चतुर्थ धाम, यह कैसे संगत है? इसका उत्तर है कि 'प्रकृतिलोक, जीवात्मलोक, मोक्षलोक' इस वर्गीकरण के अनुसार मोक्ष तृतीय धाम है और 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष' इस वर्गीकरण में चतुर्थ धाम। अतः दोनों संगत हैं ।।३।।

भावार्थ– सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, सज्जनों की उन्नति करने वाले, दुष्टों को दण्ड देने वाले जगदीश्वर, का अनुभव करके सब दुःखों से मुक्ति पानी चाहिए ।।३।।

११७८. एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ।।१।।[1]

पदार्थ– एते ये **सोमाः** ब्रह्मानन्दरस **अस्य** इस **इन्द्रस्य** जीवात्मा के **वीर्यम्** बल को **वर्धन्तः** बढ़ाते हुए **प्रियम्** प्रिय **कामम्** अभ्युदय एवं निः श्रेयस की प्राप्ति रूप मनोरथ को **अभि अक्षरन्** पूर्ण करते हैं ।।१।।

भावार्थ– मनुष्यों को योग्य है कि वे उपासना से ब्रह्मानन्द पाकर अभ्युदय एवं निःश्रेयस की सिद्धि प्राप्त करें ।।१।।

११७९. पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धत्त सुवीर्यम् ।।२।।[2]

आगे फिर ब्रह्मानन्द का ही विषय है ।

पदार्थ– **पुनानासः** पवित्रता देते हुए, **चमूषदः** आत्मा एवं बुद्धिरूप कटोरों में स्थित और **वायुम्** गतिशील मन में तथा **अश्विना** प्राण-अपान में **गच्छन्तः** जाते हुए **ते** वे तुम सोम अर्थात् ब्रह्मानन्द-रस **नः** हमें **सुवीर्यम्** श्रेष्ठ वीर्ययुक्त दिव्यधन **धत्त** प्रदान करो ।।२।।

भावार्थ– ब्रह्मानन्द के प्राप्त हो जाने पर मन तथा बुद्धि की पवित्रता, प्राण-अपान की कार्यक्षमता और आध्यात्मिक धन स्वयं ही उपासक के पास दौड़े चले आते हैं ।।२।।

११८०. इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । देवानां योनिमासदम् ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा को सम्बोधन है ।

पदार्थ– हे **सोम** रसागार परमात्मन्! **इन्द्रस्य** जीवात्मा की **राधसे** ऐश्वर्य प्राप्ति और सिद्धि प्राप्ति के लिए **पुनानः** पवित्रता देते हुए आप **देवानाम् योनिम्** दिव्य मुक्तजनों के घर अर्थात् मोक्षलोक को **आ सदम्** प्राप्त कराने के लिए **हार्दि** सबके प्रति सौहार्द को **चोदय** हमारे अन्तर प्रेरित करो ।।३।।

भावार्थ– जन साधारण से विद्वेष करने वाले लोग मोक्ष पाने में समर्थ नहीं होते ।।३।।

११८१. मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
अनु विप्रा अमादिषुः ।।४।।[4]

---

१. ऋ० ९।८।१

२. ऋ० ९।८।२ 'धत्त' इत्यत्र 'धान्तु' ।

३. ऋ० ९।८।३, 'ऋतस्य योनिमासदम्' इति तृतीयः पादः ।

४. ऋ० ९।८।४ ।

अगले मन्त्र में जीवात्मा का विषय है ।

पदार्थ– हे **सोम** कर्मानुसार मानव-शरीर में भेजे गए जीवात्मन्! **दश क्षिपः** दस प्राण **त्वा** तुझे **मृजन्ति** अलंकृत करते हैं। **सप्त धीतयः** मन, बुद्धि और पांच ज्ञानेन्द्रियां ये सात ज्ञान-साधन, तुझे **हिन्वन्ति** तृप्त करते हैं। **विप्राः** मेधावी विद्वज्जन, तुझे **अनु अमादिषुः** साथ-साथ उत्साहित करते हैं।।४।।

भावार्थ– जीवात्मा को परमेश्वर ने सब परमोत्कृष्ट साधनों के साथ शरीर में प्रविष्ट किया है। अतः वहां निवास करते हुए उसे पूर्ण उन्नति करनी चाहिए ।।४।।

११८२. देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः। सं गोभिर्वासयामसि ।।५।।[1]

अब जगदीश्वर को सम्बोधन करते हैं।

पदार्थ– हे सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमेश्वर! **मेष्यः** सींचने वाली आनन्द-धाराएं **अति सृजानम्** छोड़ते हुए, **कम्** सुखस्वरूप **त्वा** तुझे **देवेभ्यः** आत्मा, मन, बुद्धि आदि के **मदाय** हर्ष के लिए हम **गोभिः** स्तुति- वाणियों से **सवासयामसि** संछादित करते हैं।।५।।

भावार्थ– जगत्पति परमेश्वर उपासकों को आनन्द की धाराओं से सींचता हुआ और उनके आत्मा, मन, बुद्धि आदियों को तृप्त करता हुआ उनका उपकार करता है ।।५।।

११८३. पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः। परि गव्यान्यव्यत ।।६।।[2]

अगले मन्त्र में जीवात्मा का विषय वर्णित है।

पदार्थ– अरुषः आरोचमान अर्थात् तेजस्वी **हरिः** जीवात्मा **कलशेषु** देहरूप कलशों में **आ** आकर **पुनानः** मन आदि को पवित्र करता हुआ **गव्यानि** सूर्य के समान उज्ज्वल **वस्त्राणि** गुण-कर्म-स्वभाव रूप वस्त्रों को **परि अव्यत** धारण करता है ।।६।।

भावार्थ– तभी देहधारी का जन्म सफल होता है जब वह व्यवहार में अत्यन्त उज्ज्वल गुण, कर्म और स्वभाव को प्रकट करता है ।।६।।

११८४. मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः। इन्दो सखायमा विश ।।७।।[3]

अब परमात्मा को सम्बोधन करते हैं।

पदार्थ– हे **इन्दो** तेजस्वी वा आनन्दरस से भिगोने वाले परमात्मन्! आप **मघोनः** दानी **नः** हम लोगों के पास **आ पवस्व** आओ, **विश्वाः** सब **द्विषः** द्वेष-वृत्तियों को **अप जहि** मार भगाओ । **सखायम्** अपने सखा जीवात्मा में **आ विश** प्रविष्ट होवो ।।७।।

भावार्थ– तभी परमेश्वर की पूजा सफल है यदि उपासक सब द्वेषभावों को अपने अन्दर से निकालकर सबके साथ मित्र के समान व्यवहार करे ।।७।।

---

१. ऋ० ९।८।५
२. ऋ० ९।८।६
३. ऋ० ९।८।७

३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
११८५. नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम्। भक्षीमहि प्रजामिषम् ।।८।।[१]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे सोम अर्थात् जगत् को पैदा करने वाले, रस के भण्डार परमात्मन्! **नृचक्षसम्** मनुष्यों के द्रष्टा, **इन्द्रपीतम्** उपासक जीवात्माओं से तन्मय होकर पिये गये, **स्वर्विदम्** दिव्य प्रकाश वा मोक्षसुख प्राप्त कराने वाले **त्वा** आपको **वयम्** हम आपके उपासक, पुकार रहे हैं। हम आपसे **प्रजाम्** सद्गुण रूप सन्तान और **इषम्** अभीष्ट आनन्द-रस की धारा **भक्षीमहि** प्राप्त करें ।।८।।

भावार्थ– परमेश्वर का बार बार ध्यान करके उपासक दिव्य आनन्द-रस को और मोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।।८।।

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र १ २ ३ १ २
११८६. वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि। सहो नः सोम पृत्सु धाः ।।१।।[२]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– हे **सोम** सब सुखों के प्रेरक परमात्मन्! आप **दिवः** दिव्य आनन्दमय कोश से **वृष्टिम्** आनन्द की वर्षा **परिस्रव** बरसाओ, **पृथिव्याः अधि** पृथिवी पर **द्युम्नम्** यश और तेज **परिस्रव** बहाओ । **नः** हमारी **पृत्सु** सेनाओं में **सहः** साहस और बल **धाः** धारण कराओ ।।९।।

भावार्थ– जगदीश्वर जैसे अन्तरिक्ष से जल धाराएं बरसाता है वैसे ही अपने आनन्द के कोश से आनन्द की धाराएं बरसाए । जैसे वह पृथिवी में स्वर्ण आदि धन स्थापित करता है, वैसे ही राष्ट्र में कीर्ति और तेजस्विता स्थापित करे । जैसे वह राष्ट्र की सेनाओं में साहस प्रेरित करता है, वैसे ही हमारी सत्य, अहिंसा आदि की दिव्य सेनाओं में बल और वेग धारण करायें ।।९।।

इस खण्ड में परमात्मा के आविर्भाव, उसके गुण-कर्मों, ब्रह्मानन्द-रस तथा जीवात्मा का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

नवम अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।।

१ २ ३ १ २ ३१२ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
११८७. सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः। वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ।।१।।[३]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का वर्णन किया गया है ।

पदार्थ– पुनानः पवित्र करता हुआ, **सहस्रधारः** अनन्त आनन्द-धाराओं वाला, **सोमः** रस का भण्डार परमेश्वर **अत्यविः** पृथिवी को अर्थात् पार्थिवतत्त्वप्रधान अन्नमय कोश को अतिक्रान्त करके **वायोः** प्राण के या गतिशील मन के और **इन्द्रस्य** बुद्धि वा जीवात्मा के **निष्कृतम्** घर में, अर्थात् प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश में **अर्षति** पहुंचता है ।।१।।

भावार्थ– उपासक जब स्थूल शरीर से मन को हटाकर प्राण, मन, बुद्धि और जीवात्मा में परमात्मा को प्रतिष्ठापित कर लेता है तब उसके आनन्दरस की धार में मग्न हुआ वह परमानन्द का अनुभव करता है ।।१।।

---

१. ऋ० ९।८।९

२. ऋ० ९।८।८

३. ऋ० ९।१३।१

११८८. पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत। सुष्वाणं देववीतये ॥२॥[1]

पदार्थ– हे **अवस्यवः** रक्षा चाहने वाले मनुष्यो ! तुम **देववीतये** दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए **पवमानम्** पवित्र करने वाले, **विप्रम्** विशेष रूप से तृप्ति देने वाले वा पूर्ण करने वाले, **सुष्वाणम्** आनन्द-रस को अभिषुत करने वाले परमात्मा को **अभि** लक्ष्य करके **प्र गायत** उत्कृष्ट गान गाओ ॥२॥

भावार्थ– परमात्मा का गुणगान करने और ध्यान करने से उपासक लोग रक्षा, पवित्रता, तृप्ति, पूर्णता और आनन्द प्राप्त करते हैं॥२॥

११८९. पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः। गृणाना देववीतये ॥३॥[2]

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रसों का वर्णन है।

पदार्थ– **सहस्रपाजसः** सहस्रों बलों वाले **सोमाः** परमानन्द-रस **गृणानाः** स्तुति किये जाते हुए **वाजसातये** बल देने के लिए, और **देववीतये** दिव्यगुण उत्पन्न करने के लिए **पवन्ते** प्रवाहित हो रहे हैं।

भावार्थ– परब्रह्म के पास से परमानन्द प्राप्त करके उपासक जन ब्रह्मबल से युक्त और दिव्य गुणों वाले हो जाते हैं॥३॥

११९०. उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः। द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥४॥[3]

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

पदार्थ– **उत** अब, हे **इन्दो** रस से भिगोने वाले परमेश्वर! आप **वाजसातये** आत्मबल तथा मनोबल के प्रदानार्थ **नः** हमारे लिए **बृहतीः** महान् **इषः** अभीष्ट आनन्दरस की धाराओं को, तथा **द्युमत्** तेज से युक्त और **सुवीर्यम्** श्रेष्ठ वीर्य से युक्त ऐश्वर्य को **पवस्व** प्रवाहित करो ॥४॥

भावार्थ– जगदीश्वर ही आत्मबल, आनन्द, तेज और शक्ति का दिव्य स्रोत है ॥४॥

११९१. अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥५॥[4]

अब आनन्द-रसों का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– **वाजसातये** संग्राम के लिए **हेतृभिः** प्रेरक योद्धाओं से **हियानाः** प्रेरित किये जाते हुए **अत्याः न** घोड़ों के समान **हेतृभिः** प्रेरक योगाभ्यासों से **हियानाः** प्रेरित किये जाते हुए **आशवः** वेगगामी सोम अर्थात् परमानन्दरस **वाजसातये** बल देने के लिए **वारम्** दोषनिवारक, **अव्यम्** अविनश्वर जीवात्मा के प्रति **वि असृग्रम्** छोड़े जा रहे हैं॥५॥

---

१. ऋ० ९।१३।२

२. ऋ०९।१३।३

३. ऋ० ९।१३।४

४. ऋ० ९।१३।६

यहां श्लिष्टोपमा अलंकार है ।।५।।

भावार्थ– शीघ्रगामी बलवान् घोड़े जैसे युद्ध में विजय के साधन बनते हैं, वैसे ही योगाभ्यास से उत्पन्न किये गये परम आनन्द बल-प्रदान में कारण बनते हैं।।५।।

११९२. ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ।।६।।[1]

आनन्दरस क्या करें यह अगले मन्त्र में कहा गया है ।

पदार्थ– **ते** वे पूर्वोक्त **स्वानाः** अभिषुत किये जाते हुए, **देवासः** स्वयं तेजस्वी तथा दूसरों को तेजस्वी बनाने वाले, **इन्दवः** रस से भिगोने वाले सोम अर्थात् परमानन्द-रस **नः** हमारे लिए **सहस्रिणम्** सहस्रसंख्यक, **सुवीर्यम्** सुवीर्ययुक्त **रयिम्** अहिंसा, सत्य, भूतदया, माधुर्य, न्याय, उदारता आदि धन को **आ पवन्ताम्** लायें।।६।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से मिले हुए परमानन्द अनन्त दिव्यगुणसम्पदा को प्राप्त कराते हैं।।६।।

११९३. वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः दधन्विरे गभस्त्योः ।।७।।[2]

अगले मन्त्र में परमानन्द की प्राप्ति का वर्णन है ।।

पदार्थ– **वाश्राः** रंभाती हुई **मातरः** गायें **वत्सं न** जैसे बछड़े की ओर जाती हैं, वैसे ही **वाश्राः** उपदेश देते हुए **इन्दवः** रस से भिगोने वाले ब्रह्मानन्द-रस **वत्सम् अभि** प्रिय उपासक की ओर **अर्षन्ति** जाते हैं, और **गभस्त्योः** बाहुओं में **दधन्विरे** धारण किये जाते है- अर्थात् ब्रह्मानन्द-रसों की प्राप्ति होने पर उपासक भुजाओं से कर्म करने में संलग्न हो जाता है ।।७।।

यहां श्लिष्टोपमालंकार है ।।७।।

भावार्थ– ब्रह्मानन्द भी सत्कर्मों के बिना शोभा नहीं पाते ।।७।।

११९४. जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ।।८।।[3]

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे सोम अर्थात् प्रेरक परमात्मन्! **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए **जुष्टः** प्रिय, **मत्सरः** आनन्दजनक, **पवमानः** पवित्रता देते हुए, **कनिक्रदत्** उपदेश करते हुए आप **विश्वाः द्विषः** सब द्वेषवृतियों को वा द्वेष करने वाली काम, क्रोध आदि की सेनाओं को **अप जहि** विनष्ट कर दो ।।८।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से अन्तरात्मा में पवित्रता और आनन्द उत्पन्न होते हैं तथा द्वेषवृत्तियां अपने आप नष्ट हो जाती हैं।।८।।

११९५. अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ।।९।।[4]

---

१. ऋ० ९।१३।५, 'सुवाना' इति पाठः ।
२. ऋ० ९।१३।७, 'मातरः' इत्यत्र 'धेनवः' ।
३. ऋ० ९।१३।८ 'पवमान' इति भेदः ।
४. ऋ० ९।१३।९

अब ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का फल वर्णित करते हैं।

पदार्थ– हे परमानन्द-रसो! **अराव्णः** अदान के भावों को **अपघ्नन्तः** विनष्ट करते हुए, **पवमानाः** पवित्रता देते हुए, **स्वर्दृशः** अन्तः प्रकाश को दिखाने वाले तुम **ऋतस्य योनौ** सत्य के मन्दिर जीवात्मा में **सीदत** बैठो ।।९।।

भावार्थ– ब्रह्मानन्द जब अन्तरात्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है तब सब स्वार्थवृत्तियां नष्ट हो जाती हैं, परार्थ-भावना उत्पन्न होती है और पवित्रता तथा अन्तःप्रकाश चारों ओर स्फुरित होने लगते हैं।।९।।

इस खण्ड में परमात्मा और ब्रह्मानन्द का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है।।

नवम अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त

अथ 'सोमा असृग्र०' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य नवर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** असितः काश्यपो देवलो वा। **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्रीः । **स्वरः** षड्जः ।।

११९६. सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया । इन्द्राय मधुमत्तमाः ।।१।।[1]

प्रारम्भ में ब्रह्मानन्द-रसों का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– **सुताः** रिसाये हुए, **इन्दवः** भिगोने वाले, **मधुमत्तमाः** अतिशय मधुर **सोमाः** परमानन्द-रस **ऋतस्य** सत्य की **धारया** धारा के साथ **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए **असृग्रम्** छोड़े जा रहे हैं।।१।।

भावार्थ– ब्रह्मानन्द में डूबा हुआ ही मनुष्य उसकी मधुरता को अनुभव कर सकता है ।।१।।

११९७. अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि स्तोता लोग किस प्रकार क्या करते हैं।

पदार्थ– **विप्राः** बुद्धिमान् स्तोताजन **सोमस्य** ब्रह्मानन्द-रस के **पीतये** पान के लिए **इन्द्रम्** जीवात्मा को **अभि अनूषत** बुलाते हैं, **धेनवः** तृप्ति प्रदान करने वाली **गावः** गौएं, अपना दूध पिलाने के लिए **वत्सं न** जैसे बछड़े को बुलाती हैं।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे बछड़ा अपनी माता गाय का दूध पीकर तृप्त हो जाता है वैसे ही उपासक लोग परमात्मा के आनन्द-रस को पीकर परम तृप्ति पाते हैं।।२।।

---

१. ऋ० ९।१२।१, 'धारया' इत्यत्र 'सादने' ।

२. ऋ० ९।१२।२, 'धेनवः' इत्यत्र 'मातरः' ।

११९८. मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३॥[1]

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कौन कहां निवास करता है ।

पदार्थ– **मदच्युत्** आनन्द को परिस्रुत करने वाला परमेश्वर **सादने** जीवात्मा-रूप सदन में **क्षेति** निवास करता है । **विपश्चित्** और बुद्धिमान् जीवात्मा **सिन्धोः** रसागार परमेश्वर रूप सिन्धु की **ऊर्मौ** आनन्द की लहर में **क्षेति** निवास करता है अर्थात् उसमें झूला झूलने का आनन्द लेता है । **सोमः** वह रसागार परमात्मा **गौरीं** शुभ्र वेदवाणी में **अधि श्रितः** स्थित है, वर्णित है ॥३॥

भावार्थ– वेद जिसकी महिमा को गाते-गाते नहीं थकते उस आनन्द-सागर परमेश्वर की तरंगों में झूला झूलता हुआ जीव कृतकृत्य हो जाता है ॥३॥

११९९. दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥[2]

अब परमात्मा की महिमा का वर्णन है ।

पदार्थ– **विचक्षणः** सर्वद्रष्टा **सोमः** परमेश्वर, **यः** जो **सुक्रतुः** शुभकर्म करने वाला, और **कविः** जगत्रूप दृश्य काव्य का तथा वेदरूप श्रव्य काव्य का कवि है, वह **दिवः** तेजस्वी जीवात्मा के **नाभा** केन्द्र भूत प्राण में और **अव्याः वारे** प्रकृति के बाल के समान विद्यमान अर्थात् प्रकृति से निकले हुए व्यक्त जगत् में **महीयते** महिमा प्राप्त करता है ॥

अथर्व० १०।८।३१ में कहा गया है कि "अवि नाम की एक देवता है जो ऋत से परिवृत है, उसी के रूप से ये वृक्ष हरे और हरित माला को धारण करने वाले बने हुए हैं"। इस प्रमाण से अवि शब्द प्रकृतिवाचक होता है ॥४॥

भावार्थ– जड़चेतनरूप सब जगत् में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान, सर्वज्ञ सब कर्मों को करने वाला जगदीश्वर सर्वत्र कीर्ति प्राप्त किये हुए है ॥४॥

१२००. यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५॥[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा के मिलन का वर्णन है ।

पदार्थ– **यः सोमः** जो जगत् को रचने वाला, सर्वान्तर्यामी, रस का भण्डार, परम आह्लादक परमेश्वर **कलशेषु** बहुत सी कलाओं से युक्त शरीरों में **आ** निहित है, और **अन्तः पवित्रे** पवित्र हृदय के अन्दर भी **आहितः** विद्यमान है **तम्** उस परमेश्वर को **इन्दुः** तेजस्वी जीवात्मा **परिषस्वजे** आलिंगन करता है ॥५॥

भावार्थ– परमात्मा की शरण का सहारा लेना जीवात्मा को परमानन्दायक होता है ॥५॥

---

१. ऋ० ९।१२।३

२. ऋ० ९।१२।४, 'विचक्षणोऽव्यो वारे' इति पाठः ।

३. ऋ० ९।१२।५, 'कलशेष्वाँ' इति पाठः।

१२०१. प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥६॥[1]

अब परमात्मा की कृपा का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– **इन्दुः** रस का भण्डार परमात्मा अपने **मधुश्चुतम्** मधुस्रावी **कोशम्** आनन्द-रस के कोश को **समुद्रस्य** जीवात्मा रूप समुद्र के **विष्टपि अधि** धरातल पर **जिन्वन्** प्रेरित करता हुआ **वाचम्** उपदेश रूप वाणी को **प्र इष्यति** देता है ॥६॥

यहां शब्दशक्तिमूलक ध्वनि से यह ध्वनित होता है कि जैसे चन्द्रमा **इन्दु** समुद्र के धरातल पर अपने चांदनीरूप मधुस्रावी कोश को प्रेरित करता है॥६॥

भावार्थ– उपासकों को जगदीश्वर निरन्तर आनन्द-रस की धाराओं से सींचता रहता है और उन्हें दिव्य सन्देश देता रहता है ॥६॥

१२०२. नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुधाम् । हिन्वानो मानुषा युजा ॥७॥[2]

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मा स्तोता का कैसे उपकार करता है ।

पदार्थ– **नित्यस्तोत्रः** सन्ध्योपासना रूप नित्यकर्म द्वारा स्तुति करने योग्य, **वनस्पतिः** तेजों का अधिपति सोम परमात्मा । **मानुषा युजा** मनुष्य स्त्री-पुरुषों के **अन्तः** अन्तःकरण में **सबर्दुधारम्** आनन्द-रस को दुहने वाली **धेनाम्** दिव्यवाणी को **हिन्वानः** प्रेरित करता रहता है ॥७॥

यहां 'दुधाम्' कहने से धेना **वाणी** में गोत्व का आरोप व्यङ्ग्य है ॥७॥

भावार्थ– परमेश्वर की उपासना का यही लाभ है कि दिव्य आनन्द और शुभकर्मों में उत्साह प्राप्त होता है ॥७॥

१२०३. आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥८॥[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रता देने वाले **इन्दो** रस से भिगोने वाले परमात्मन् ! आप **अस्मे** हम में **सहस्र- वर्चसम्** अनन्त ब्रह्मवर्चस से युक्त, **स्वाभुवम्** अतिशय व्यापक **रयिम्** दिव्य आनन्द रूप धन को **धारय** स्थापित करो ।

---

१. ऋ० ९।१२।६

२. ऋ० ९।१२।७, 'धीनामन्तः सबर्दुघः। हिन्वानो मानुषा युगा' इति पाठः ।

३. ऋ० ९।१२।९, 'धारय' इति पाठः ।

भावार्थ– परमेश्वर के उपासक आयुष्मान्, तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी, दिव्य आनन्द से युक्त विद्वान् और श्रीमान् बनते हैं ।।८।।

१२०४. अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः। सोमो हिन्वे परावति ।।९।।[1]

अब परमात्मा से होने वाली आनन्द-वर्षा का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– **दिवः** तेजस्वी जीवात्मा के **प्रिया** प्रिय धाम अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोशों को **अभि** अभिलक्षित करके **धारया** धारारूप से **सुतः** अभिषुत किया गया **कविः** क्रान्तद्रष्टा, **विप्रः** विशेष रूप से पूर्णता देनेवाला **स सोमः** वह रसागार परमेश्वर क्रमशः **परावति** सबसे परे स्थित आनन्दमय कोश में **हिन्वे** पहुंचता है ।।९।।

भावार्थ– रस के भण्डार परमेश्वर में से अभिषुत की गयी आनन्द-रस की धाराएं जीवात्मा को पूर्णरूप से आप्लावित कर देती हैं।।९।।

इस खण्ड में परमात्मा की महिमा, परमात्मा और जीवात्मा के मिलन तथा ब्रह्मानन्द-रस का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है।।

नवम अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त !

अथ 'उत्ते शुष्मास' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य पञ्चर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** उचथ्य आङ्गिरसः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

१२०५. उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः। वाणस्य चोदया पविम् ।।१।।[2]

प्रारंभ में उपासक की स्तोत्रगान की पद्धति का वर्णन है।

पदार्थ– हे भक्ति को सिद्ध करने वाले उपासक ! **ते** तेरे **शुष्मासः** बलवान् स्तोत्रसमूह **उदीरते** उठ रहे हैं। उनकी **सिन्धोः ऊर्मेः इव** समुद्र की लहर जैसी **स्वनः** गीत की ध्वनि है। तू **वाणस्य** वीणादण्ड की **पवित्रम्** तन्त्री को **चोदय** प्रेरित कर, अर्थात् वीणा-वादन के साथ प्रभु भक्ति के स्तोत्र तरंगित कर ।।१।।

भावार्थ– मधुर गीतों के साथ जब सितार, मंजीरे आदि बाजे ताल-मेल पूर्वक बजाये जाते है तब अपूर्व भक्ति का प्रवाह उत्तरंगित होता है ।।१।।

१२०६. प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः। यदव्य एषि सानवि ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ९।१२।८, अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति। विप्रस्य धारया कविः ।। इति पाठः।

२. ऋ० ९।५०।१।

३. ऋ० ९।५०।२।

अगले मन्त्र में परमात्मा के आविर्भाव का वर्णन है ।

पदार्थ– हे सोम अर्थात् रस के भंडार परमात्मन् ! **ते प्रसवे** ध्यान द्वारा आपका आविर्भाव होने पर **मखस्युवः** उपासना-यज्ञ की पूर्ति चाहने वाले उपासक लोग **तिस्रः वाचः** ऋग्, यजुः, साम रूप तीनों वाणियों को **उदीरते** उच्चारित करते हैं, **यत्** जबकि, आप **अव्ये सानवि** जीवात्मा के उन्नत धाम में **एषि** पहुंचते हो।।२।।

भावार्थ– सबके अन्तरात्मा में पहले से ही विद्यमान परमात्मा को ध्यान द्वारा और वेदमन्त्रों के गान द्वारा प्रकट करना चाहिए ।।२।।

अथ कीदृशः परमेश्वरः कथं साक्षात्करणीय इत्याह ।

१२०७. अव्या वारै परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में यह कथन है कि कैसे परमेश्वर का किस प्रकार साक्षात्कार करना चाहिए ।

पदार्थ– प्रियम् उपासकों के प्यारे, **हरिम्** दुःखों को हरने वाले, **पवमानम्** हृदय को पवित्र करने वाले, **मधुश्चुतम्** आनन्द को परिस्रुत करने वाले सोम परमात्मा को, उपासक जन **अव्याः वारैः** चित्तभूमि के विक्षेप का निवारण करने वाले उपायों से, और **अद्रिभिः** ध्यान रूप सिल बट्टों से **परिहिन्वन्ति** अपने आत्मा में प्रेषित करते हैं अर्थात् उसका साक्षात्कार करते हैं।।३।।

भावार्थ– योग के विघ्नरूप व्याधि, स्त्यान, संशय आदि तथा दुःख, दौर्मनस्य आदि का निवारण करके ध्यान द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करके सबको आनन्द-रस की धारा में स्नान करना चाहिए ।।३।।

१२०८. आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ।।४।।[2]

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे **मदिन्तम** सबसे अधिक आनन्ददायक, **कवे** क्रान्तद्रष्टा सोम अर्थात् रसागार परमात्मन्! आप **अर्कस्य** अर्चना करने वाले जीवात्मा के **योनिम्** घर अर्थात् आनन्दमय कोश में **आसदम्** आसन जमाने के लिए, **पवित्रम्** पवित्र रूप में **धारया** आनन्द-धारा के साथ **पवस्व** प्रवाहित होवो ।।४।।

भावार्थ– परमात्मा से निकलकर बहती हुई आनन्द-धारा को प्राप्त करके जीवात्मा कृतार्थ हो जाता है।।४।।

१२०९. स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । एन्द्रस्य जठरं विश ।।५।।[3]

---

१. ऋ० ९।५०।३, 'अव्या वारैः' इत्यत्र 'अव्यो वारे' इति पाठः।

२. ऋ० ९।२५।६; ५०।४

३. ऋ० ९.५०.५, "इन्दविन्द्राय पीतये इति तृतीय पादः।

अगले मन्त्र में फिर परमेश्वर से प्रार्थना है ।

पदार्थ– हे **मदिन्तम** सबसे बढ़कर आनन्ददाता जगदीश्वर! आप **अक्तुभिः** प्रकाशक **गोभिः** अध्यात्मप्रकाश की किरणों से **अञ्जानः** प्रकाश देते हुए **आ पवस्व** आओ । **इन्द्रस्य** जीवात्मा के **जठरम्** अन्दर **आ विश** प्रविष्ट हो जाओ ।।५।।

भावार्थ– परमात्मा को प्राप्त करके जीवात्मा प्रकाशमय हो जाता है ।।५।।

इस खण्ड में स्तोत्रगान के द्वारा परमेश्वर का साक्षात्कार करने तथा परमेश्वर से प्रार्थना का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

नवम अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

१२१०. अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४९५ क्रमांक पर परमात्मा को संबोधन करके व्याख्या की गयी थी । यहां वीर मनुष्य को संबोधन है ।

पदार्थ– हे **इन्दो** तेज से प्रदीप्त वीर! तू **अया वीती** इस रीति से **परि स्रव** व्यवहार कर कि **यः** जो मनुष्य **ते मदेषु आ** तेरे वीरताजनित उत्साहों के सम्पर्क में आए, वह **नवनवतीः** नब्बे-नब्बे शत्रु योद्धाओं के नौ व्यूहों को **अवाहन्** मार गिराए ।।१।।

भावार्थ– वीर सेनापति अपनी सेना के योद्धाओं को इस प्रकार उत्साहित करे कि वे शत्रु योद्धाओं के सैंकड़ों भी व्यूहों को क्षण भर में छिन्न-भिन्न कर दें । आन्तरिक देवासुरसंग्राम का सेनापति जीवात्मा भी आन्तरिक शत्रुओं को नष्ट करने के लिए ऐसा ही करे ।।१।।

१२११. पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना तथा वीर मनुष्य को उद्बोधन है ।

पदार्थ– हे इन्दु अर्थात् तेज से प्रदीप्त परमात्मन् वा वीरजन! तुम **इत्थाधिये** सत्यकर्मों वाले, **दिवोदासाय** विद्या और धर्म के प्रकाश के दाता मनुष्य के हितार्थ **सद्यः** शीघ्र ही **शंबरम्** शान्ति में विघ्न डालने वाले शत्रु को, **अध** और **त्यम्** उस **तुर्वशम्** हिंसा करने के इच्छुक शत्रु को, तथा **यदुम्** धर्म के फैलने में रुकावट डाल़ने वाले शत्रु को, और **पुरः** उनकी नगरियों को **अवाहन्** नष्ट-भ्रष्ट कर दो [यहां 'अवाहन' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है।] ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा की कृपा से और वीरों के शौर्यकर्म से सुख, शान्ति, धर्म-कर्म आदि में रुकावट डालने वाले शत्रुओं की सदा ही पराजय और धार्मिक जनों का उत्कर्ष करना चाहिए ।।२।।

---

१. ऋ० ९।६१।१, साम० ४९५ ।

२. ऋ० ९।६१।२ ।

यहां सायणाचार्य के मत में दिवोदास नाम का कोई राजा था और यदु, तुर्वश तथा शम्बर उसके विरोधी राजा थे, जिन्हें सोमरस पीकर मस्त हुए इन्द्र ने दिवोदास के हित के लिए वश में कर लिया था। किन्तु यह संगत नहीं है, क्योंकि सृष्टि के आदि में प्रकट हुए वेद में परवर्ती राजाओं आदि का इतिहास नहीं हो सकता, यह सुधी जनों को निश्चय मानना चाहिए ।।

१२१२. परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत्। क्षरा सहस्रिणीरिषः ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमेश्वर तथा वीर मनुष्य को सम्बोधन है ।

पदार्थ– हे **इन्दो** सम्पत्ति की वर्षा करने वाले परमात्मन् वा वीर मनुष्य । **अश्ववित्** प्राणबल वा अश्व प्राप्त कराने वाले आप **नः** हमारे लिए **अश्वम्** प्राणबल वा अश्वसमूह **परिक्षर** चारों ओर से बरसाओ । **गोमद्** वाणी के बल से युक्त वा धेनुओं से युक्त तथा **हिरण्यवत्** ज्योति से युक्त वा सुवर्ण से युक्त **सहस्रिणीः** सहस्र संख्या वाली **इषः** अभीष्ट सम्पदाएं **परिक्षर** चारों ओर से बरसाओ ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर की कृपा से सब दिव्य तथा भौतिक सम्पदाएं प्राप्त की जा सकती हैं। साथ ही जो वीर होते हैं उन्हें ही सम्पदाएं हस्तगत होती है और वे अन्यों को भी उन्हें प्रदान करते हैं।।३।।

।।७।। अथ 'अपघ्नन्' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अमहीयुराङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२१३. अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः। गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५१० क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में की जा चुकी है । यहां वीररस का विषय दर्शाते हैं।

पदार्थ– सोमः जगाया हुआ वीर रस **इन्द्रस्य** जीवात्मा के **निष्कृतम्** संस्कृत किये हुए मनरूप घर में **गच्छन्** जाता हुआ, **मृधः** संग्रामकारियों को **अपघ्नन्** हिंसित करता हुआ, और **अराव्णः** अदानशील कृपण शत्रुओं को **अप** विनष्ट करता हुआ **पवते** प्रवाहित होता है ।।१।।

भावार्थ– वीर रस में डूबा हुआ मानव सब आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को विनष्ट कर सकता है।।१।।

१२१४. महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः। रास्वेन्दो वीरवद्यशः ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ६।६१।३ ।

२. ऋ० ९।६१।२५, साम० ५१० ।

३. ऋ० ९।६१।२६

अगले मन्त्र में परमात्मा तथा वीर मनुष्य से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **पवमान** क्रियाशील परमात्मन् वा वीर मनुष्य! आप **नः** हमारे लिए **महः रायः** महान् धनों को **आ भर** लाओ, **मृधः** हिंसक शत्रुओं को **जहि** विनष्ट करो । हे **इन्दो** तेज से प्रदीप्त परमात्मन् वा वीर मनुष्य! आप **वीरवत् यशः** वीरों जैसा यश **रास्व** हमें प्रदान करो ।।२।।

भावार्थ– संसार में परमात्मा की कृपा को प्राप्त वीर मनुष्य ही धन, धान्य और कीर्ति के सुखों को भोगने तथा भुगाने में और शत्रुओं को जीतने में समर्थ होते हैं।।२।।

१२१५. न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे।।३।।[1]

अगले मन्त्र में दानवीर परमात्मा तथा दानी मनुष्य को सम्बोधन है ।

पदार्थ– हे दानवीर परमात्मन् वा दानी मनुष्य ! **यत्** जब **पुनानः** हमें पवित्र करते हुए आप **मखस्यसे** दानयज्ञ करने का संकल्प करते हो, तब **राधः** धन **दित्सन्तम्** दान करना चाहते हुए **त्वा** आपको **शतं च न** सौ भी **ह्रुतः** हमारे कुटिल भाव वा कुटिल जन **न आमिनन्** दान के मार्ग से विचलित नहीं कर सकते ।।३।।

भावार्थ– जगदीश्वर उन्हीं को अपने दान का पात्र बनाता है जो कुटिल नहीं हैं। दानवीर लोगों को चाहिए कि वे बाधक विघ्नों के बार-बार प्रहार होने पर भी अपने दान के व्रत को न छोडें ।।३।।

।।८।। अथ 'अया पवस्व' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** निध्रुविः काश्यपः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२१६. अया पवस्व धारया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४९३ क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात की गयी थी । यहां भी वही विषय है ।

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रतादायक जगद्रचयिता परमात्मन्! आप **अया** इस **धारया** प्रकाश की धारा से, हमें **पवस्व** पवित्र कीजिए, **यया** जिस प्रकाश-धारा से, आपने **सूर्यम्** सूर्य को **अरोचयः** चमकाया है । आप ही **मानुषीः अपः** मनुष्यों से प्राप्त करने योग्य आनन्द-रसों को **हिन्वानः** प्रेरित करो ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर की कृपा से हम सूर्य के समान तेजस्वी और पवित्र होकर ब्रह्मानन्द के भागी बनें ।।१।।

१२१७. अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा के कर्तृत्व का वर्णन है ।

पदार्थ– **सूरः** प्रेरक **पवमानः** क्रियाशील सोम परमेश्वर ने **अन्तरिक्षेण** आकाशमार्ग से **यातवे** यात्रा करने के लिए **मनौ अधि** मनुष्य के अन्दर **एतशम्** प्राण रूप अश्व को **अयुक्त** नियुक्त किया हुआ है ।।२।।

१. ऋ० ९।६१।२७
२. ऋ० ९।६३।७, साम० ४९३ ।
३. ऋ० ९।६३।८

भावार्थ– परमात्मा के साथ योग करके और प्राणसिद्धि प्राप्त करके मनुष्य आकाशमार्ग से जाना-आना कर सकते हैं ।।२।।

१२१८. उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ।।३।।[1]

आगे फिर परमेश्वर का कर्तृत्व वर्णित है ।

पदार्थ– **उत** और हे मनुष्य ! तू **इन्दुः** तेज से प्रदीप्त है, **इन्द्रः** शत्रुविदारक है **इति ब्रुवन्** यह कहते हुए **सूरः** प्रेरक परमेश्वर ने **यातवे** व्यवहार करने के लिए **रथे** शरीररूप रथ में **त्याः** उन परम उपयोगी **हरितः** मन, बुद्धि, प्राण सहित ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ियों को **अयुक्त** नियुक्त किया हुआ है ।।३।।

भावार्थ– मनुष्य का शरीर-रूप रथ परमेश्वर की महान् निर्माण-कला को सूचित करता है ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा तथा वीरों के उद्बोधन विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

नवम अध्याय का पञ्चम खण्ड समाप्त ।

।।९।। अथ 'अग्निं वो' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१२१९. अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ।।१।।[2]

प्रारंभ में पुरोहित के गुणों का वर्णन करते हैं ।।

पदार्थ– हे मनुष्यो! जो **अग्निभिः सजोषाः** गार्हपत्य, आहवनीय आदि अग्नियों से प्रीति रखने वाला अर्थात् उनका ज्ञानी हो, उस **यजिष्ठम्** यज्ञ के अतिशय साधक, **अग्निम्** अग्रगण्य **देवम्** विद्वान् को **वः** तुम लोग **अध्वरे** यज्ञ में **दूतम्** दूत के समान माध्यम अर्थात् पुरोहित **कृणुध्वम्** बनाओ, **यः** जो विद्वान् **मर्त्येषु** मनुष्यों में **निध्रुविः** अत्यन्त स्थिर मति वाला, **ऋतावा** सत्यनिष्ठ, **तपुर्मूर्धा** परिपक्व मस्तिष्क वाला **घृतान्नः** घी-दूध आदि सात्त्विक पौष्टिक पदार्थ खाने वाला और **पावकः** पवित्रकर्ता हो ।।१।।

भावार्थ– सुयोग्य ही किसी मनुष्य को अध्यात्म यज्ञ तथा बाह्य यज्ञ में पुरोहित रूप से करना चाहिए।।१।।

१२२०. प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ९।६३।९ 'रथे' इत्यत्र 'दश' इति पाठः ।
२. ऋ० ७।३।१ ।
३. ऋ० ७।३।२ ।

अगले मन्त्र में विद्वान् का विषय है ।

पदार्थ– अश्वः न घोड़ा जैसे **यदा** जब **महः संवरणात्** विशाल घुड़साल से **व्यस्थात्** छूटता है, तब **अविष्यन्** खाना चाहता हुआ **यवसे** घास पाने के हेतु **प्रोथत्** हिनहिनाता है, वैसे ही जो अग्नि अर्थात् विद्वान् स्नातक **यदा** जब **संवरणात्** गुरुकुल के नियन्त्रण से **व्यस्थात्** छूटता है तब **यवसे** मानव-समाज में **प्रोथत्** पूर्णता लाता है! **आत्** उसके अनन्तर **वातः** समाज का वातावरण **अस्य** इस विद्वान् स्नातक की **शोचिः** दीप्ति के अर्थात् प्रभाव के **अनु वाति** पीछे-पीछे चलता है । आगे प्रत्यक्ष रूप में कहते हैं– **अध** उसके बाद, हे विद्वान् स्नातक! **ते** तेरा **व्रजनम्** चलना-फिरना आदि व्यापार **कृष्णम् अस्ति** आकर्षक हो जाता है ।।२।।

यहां श्लिष्टोपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जिसका समावर्तन संस्कार हो चुका है ऐसा विद्वान् स्नातक गुरुकुल से बाहर आकर समाज में विद्या और सच्चरित्र का प्रसार करे ।।२।।

१२२१. उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में फिर विद्वान् का ही विषय है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक विद्वन्! **यस्य** जिस **नवजातस्य** नवस्नातक, **वृष्णः** विद्या, सुख आदि की वर्षा करने वाले **ते** आपकी **अजराः** नष्ट न होने वाली, **इधानाः** जाज्वल्यमान दीप्तियां **उत् चरन्ति** उठती हैं **सः** वह **अरुषः** तेजस्वी **धूमः** अविद्या, भ्रष्टाचार दुःख आदि को कंपा देने वाले आप **द्याम् अच्छ** विद्या आदि के प्रकाश को लक्ष्य करके **एषि** कर्म करते हो । हे **अग्ने** विद्वन्! **दूतः** दूत के समान आचरण करने वाले आप **देवान्** प्रजाजनों से **सम् ईयसे हि** मिलते- जुलते हो ।।३।।

भावार्थ– नवस्नातक गुरुकुल से बाहर जाकर अपने तेज के प्रभाव को फैलाकर, अज्ञान, दुराचार आदि को कंपा कर जन-समाज को उन्नत करे ।।३।।

।।१०।। अथ 'तमिन्द्रं' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सुकक्ष आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२२२. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ११९ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की जा चुकी है । यहां जीवात्मा का विषय कहते हैं ।

---

१. ऋ० ७।३।३, 'एषि' इत्यत्र 'एति' ।

२. ऋ० ८।९३।७, अथ० २०।४७।१, १३७।१२ । साम० ११९, ऋषिः श्रुतकक्षः ।

पदार्थ— महे बड़े **वृत्राय** विघ्न, विद्रोह, उपद्रव, पाप आदि रूप शत्रु का **हन्तवे** वध करने के लिए **तम्** अपने शरीर में अधिष्ठाता रूप से विद्यमान उस **इन्द्रम्** शत्रुविदारक जीवात्मा को, हम **वाजयामसि** बलवान् करते हैं। **वृषा** बलवान् **सः** वह जीवात्मा **वृषभः** सुख-सम्पदा की वर्षा करने वाला **भुवत्** होवे ॥१॥

भावार्थ—अपने अन्तरात्मा को उत्साहित करके सभी बाह्य और आन्तरिक शत्रु जीते जा सकते हैं॥१॥

१२२३. इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः॥२॥[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा, जीवात्मा और राजा का विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ—सः इन्द्रः वह परमेश्वर, जीवात्मा वा राजा **दामने** दान के लिए **कृतः** प्रेरित हो। **ओजिष्ठः** अत्यधिक ओजस्वी **सः** वह **बले** बल प्राप्ति के निमित्त **हितः** हमारा हितकारी हो। **सः** वह **द्युम्नी** तेजस्वी, **श्लोकी** यशस्वी, और **सोम्यः** शान्तिसम्पादक हो ॥२॥

भावार्थ— परमेश्वर से प्रार्थना करके, जीवात्मा को उत्साहित करके और राजा को उद्बोधन देकर हम प्राप्त दान वाले, बली, तेजस्वी, यशस्वी तथा शान्तिमान् होवें ॥२॥

१२२४. गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥३॥[2]

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय में कहा गया है।

पदार्थ— गिरा निर्घोष से **वज्रः न** जैसे विद्युद्वज्र संयुक्त होता है, वैसे ही **गिरा** वेदवाणी वा प्रभावशालिनी वाणी से **सम्भृतः** संयुक्त, **सबलः** बलवान् **अनपच्युतः** अविचलित, **उग्रः** प्रचण्ड, **अस्तृतः** अहिंसित इन्द्र अर्थात् परमेश्वर, जीवात्मा वा राजा **ववक्षे** जगत् के भार को, शरीर के भार को वा राष्ट्र के भार को वहन करता है ॥३॥

यहां उपमालंकार है ॥३॥

भावार्थ— जिसकी वाणियों का प्रभाव वज्रनिर्घोष के समान होता है वह बलियों में बली, दुष्टों के प्रति प्रचण्ड, किसी से जीता न जा सकने वाला, शत्रुओं को जीतने वाला जो परमेश्वर, जीवात्मा और राजा है उसे सहायक पाकर सब लोग जीवन-संग्राम में विजयी होवें ॥३॥

इस खण्ड में पुरोहित, विद्वान् स्नातक तथा परमात्मा, जीवात्मा और राजा का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ॥

नवम अध्याय में षष्ठ खण्ड समाप्त ॥

---

१. ऋ० ८।९३।८, अथ० २०।४७।२, १३७।१३। सर्वत्र 'बले' इत्यत्र मदे' इति पाठः ॥
२. ऋ० ८।९३।९, अथ० २०।४७।३, १३७, १४, सर्वत्र 'उग्रो' इत्यत्र 'ऋष्वो' इति पाठः।

।।११।। अथ 'अध्वर्यो' इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** उचथ्य आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२२५. अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय। पुनाहीन्द्राय पातवे ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४९९ क्रमांक पर ज्ञान-यज्ञ के विषय में की गयी थी । यहां उपासना-यज्ञ का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– हे **अध्वर्यो** उपासना-यज्ञ के सञ्चालक उपासक! तू **अद्रिभिः** ध्यानरूप सिलबट्टों से **सुतम्** अभिषुत किये गये **सोमम्** भक्तिरस को **पवित्रे** हृदय में **आनय** ला, और **इन्द्राय पातवे** परमात्मा के पान के लिए, उसे **पुनीहि** पवित्र कर ।।१।।

भावार्थ– छल, छिद्र, आडम्बर आदि से रहित पवित्र भक्तिरस से ही परमेश्वर तृप्त होता है ।।१।।

१२२६. तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत। पवमानस्य मरुतः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में आनन्द-रस का विषय है ।

पदार्थ– हे **इन्दो** आनन्द-रस से भिगोने वाले परमात्मन्! **तव** आपके **मधोः** मधुर, **पवमानस्य** पवित्र करने वाले **अन्धसः** आनन्द-रस का **त्ये** वे **मरुतः** प्रशस्त प्राण वाले **देवाः** दिव्यगुणी विद्वान् लोग **व्याशत** उपभोग करते हैं।।२।।

भावार्थ– प्राणायाम आदि योगाभ्यास से जिन्होंने अपने सब दोषों को जला डाला है ऐसे विद्वान् जन ही ब्रह्मानन्द-रस के अधिकारी होते हैं।।२।।

१२२७. दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे। सुनोता मधुमत्तमम् ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्द-रस का विषय है ।

पदार्थ– हे उपासको! तुम **दिवः** प्रकाशमान परमात्मा के पास से **पीयूषम्** अमृतरूप, **उत्तमम्** सर्वोत्कृष्ट, **मधुमत्तमम्** अतिशय मधुर **सोमम्** आनन्द-रस को **वज्रिणे इन्द्राय** वीर जीवात्मा के लिए **सुनोत** अभिषुत करो ।।३।।

भावार्थ– अमृतरूप, अत्यन्त मधुर ब्रह्मानन्द की महिमा जानकर भला कौन उसकी आकांक्षा नहीं करेगा ।।३।।

।।१२।। अथ 'धर्ता दिवः' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कविर्भार्गवः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।।

---

१. ऋ० ९।५१।१, 'आ सृज । पुनीहीन्द्राय' इति पाठः । य० २०।३१। आ नय । पुनीहीन्द्राय' इति पाठः। साम० ४९९

२. ऋ० ९।५१।३, 'मधोर्व्यश्नते' इति पाठः ।

३. ऋ० ९।५१।२

१२२८. धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५५८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां पुनः उसी विषय को दर्शाते हैं ॥

पदार्थ– **दिवः** कर्तव्य-अकर्तव्य के प्रकाश का **धर्ता** दाता, **कृत्व्यः** कर्मपरायण, **रसः** रसीला, **देवानाम्** प्रकाशक सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत्, नक्षत्र आदियों को **दक्षः** बल देने वाला, **नृभिः** मनुष्यों से **अनुमाद्यः** आराधनीय सोम परमेश्वर पवते सब जड़ चेतन रूप जगत् को पवित्र करता है । आगे प्रत्यक्षवत् वर्णन है- **हरिः** समुद्र में स्थित जलों को सूर्यकिरणों द्वारा हरकर आकाश में ले जाने वाले आप, हे परमात्मन्! **सत्वभिः** अपने बलों से **सृजानः** बादलों से वर्षा करते हुए **नदीषु** नदियों में **वृथा** अनायास ही **पाजांसि** वेगों को **कृणुषे** उत्पन्न करते हो, **सृजानः अत्यः न** जैसे जोड़ा जाता हुआ घोड़ा रथ आदि में वेगों को उत्पन्न करता है ॥१॥

यहां श्लिष्टोपमा अलंकार है ॥१॥

भावार्थ– जड़ चेतन रूप जगत् में जो कुछ भी बल, वेग, विवेक, प्रकाश आदि है वह सब परमात्मा से ही उत्पन्न हुआ है ॥१॥

१२२९. शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वा३ः सिषासन् रथिरा गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा के कृत्य वर्णित हैं ।

पदार्थ– वह सोम परमेश्वर **गभस्त्योः** आकाश व भूमि रूप हाथों में **आयुधा** जलों को **धत्ते** धारण करता है, **शूरः न** जैसे शूरवीर मनुष्य **गभस्त्योः** हाथों में **आयुधा** शस्त्रास्त्रों को **धत्ते** धारण करता है । **रथिरः** रथारोही सेनापति के समान **गविष्टिषु** देवासुरसंग्रामों में **स्वः** विजय-सुख को **सिषासन्** देना चाहता हुआ, **इन्द्रस्य** जीवात्मा के **शुष्मम्** बल को **ईरयन्** उन्नत करता हुआ, **हिन्वानः** वृद्धि प्रदान करता हुआ **इन्दुः** तेजस्वी परमेश्वर **अपस्युभिः** कर्मप्रिय, **मनीषिभिः** बुद्धिमान् स्तोताओं द्वारा **अज्यते** अन्तरात्मा में प्रकट किया जाता है॥२॥

यहां श्लिष्टोपमा अलंकार है, 'रथिरः' में लुप्तोपमा है ॥२॥

भावार्थ– प्रकाशप्रदाता, वृष्टिप्रदाता, विजयप्रदाता, बलप्रदाता और वृद्धिप्रदाता परमेश्वर भला किसका वन्दनीय नहीं है ॥२॥

---

१. ऋ० ९।७६।१, 'कृणुषे' इत्यत्र 'कृणुते' । साम० ५५८ ।

२. ऋ० ९।७६।२

१२३०. इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वतः ।।३।।[1]

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे **सोम** रस के भण्डार परमात्मन्! **ऊर्मिणा** आनन्द-तरंग के साथ **पवमानः** प्रवाहित होते हुए, **तविष्यमाणः** वृद्धि करना चाहते हुए, आप **इन्द्रस्य** जीवात्मा के **जठरेषु** अन्दर **आविश** प्रवेश करो । आप **नः** हमारे लिए **रोदसी** द्यावापृथिवी के तुल्य वाणी और बुद्धि को **प्रपिन्व** दुहो, अर्थात् उनसे होने वाले लाभ प्राप्त कराओ, **विद्युत् अभ्रा इव** बिजली जैसे बादलों को दुहती है । **धिया** बुद्धि और कर्म से **नः** हमारे लिए **शश्वतः** बहुत से **वाजान्** बल, विज्ञान, ऐश्वर्य आदि का **उपमाहि** उपहार दो ।।३।।

भावार्थ– उपासना रूप कर्तव्यपालन से प्रसन्न हुआ परमेश्वर जीवात्मा को आनन्द की तरंगों में स्नान कराकर कृतार्थ करता है और सब प्रकार की सम्पदा उपहार में देता है ।।३।।

।।१३।। अथ 'यदिन्द्र' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** देवातिथिः काण्वः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१२३१. यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवे ऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २७९ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां परमात्मा वा राजा दोनों का विषय कहा जा रहा है।

पदार्थ– यत् क्योंकि, हे **इन्द्र** परमैश्वर्यवन् शत्रुविदारक परमात्मन वा राजन् । आप **प्राक्** पूर्व दिशा में, **अपाक्** पश्चिम दिशा में **उदक्** उत्तर दिशा में, **न्यक् वा** और दक्षिण दिशा में **नृभिः** पुरुषार्थी जनों से **हूयसे** भक्ति-प्रदान द्वारा वा करादि-प्रदान द्वारा सत्कार किये जाते हो, इसलिए **नृषूतः** उपासक जनों से वा प्रजाजनों से प्रेरित आप **सिमा** सर्वत्र **पुरु** बहुत अधिक **आनवे** मानव-समाज में **असि** उपकारक होते हो । हे **प्रशर्ध** प्रकृष्ट रूप से शत्रुओं का धर्षण करने वाले परमात्मन् वा राजन्! आप **तुर्वशे** हिंसकों को वश में करने वाले वीर मनुष्य के **असि** सहायक होते हो ।।१।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर सब धार्मिक जनों का सहायक और रक्षक होता है, वैसे ही राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह सब राज्याधिकारियों का तथा प्रजाजनों का सहायक और रक्षक होवे ।।१।।

---

१. ऋ० ९।७६।३, 'नः' इत्यत्र 'नः' । 'धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः' इति च तुरीयः पादः।

२. ऋ० ८।४।१, अथ० २०।१२०।१, साम० २७९ ।

सायणाचार्य ने इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है कि अनु नाम का एक राजा था, जिसका राजर्षि पुत्र आनव है और तुर्वश भी एक राजा का नाम है। यह उसकी व्याख्या काल्पनिक होने से तथा योगार्थशैली के विरुद्ध होने के कारण संगत नहीं है॥

१२३२. यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा का विषय कहा गया है।

पदार्थ– **यद् वा** और, हे **इन्द्र** परमैश्वर्यशाली परमात्मन् वा वीर राजन्! आप **रुमे** स्तोता वा उपदेशक को, **रुशमे** हिंसको के हिंसक को, **श्यावके** कर्मयोगी को, और **कृपे** दीनों पर दयालु वा समर्थ मनुष्य को **सचा** एक साथ ही **मादयसे** तृप्ति प्रदान करते हो। हे **इन्द्र** परमात्मन् वा राजन्! **ब्रह्मवाहसः** स्तुति करने वाले वा ज्ञान देने वाले **कण्वासः** मेधावी जन **स्तोमेभिः** स्तोत्रों से वा उद्बोधन-गीतों से **त्वा** आपको **आ यच्छन्ति** वश में कर लेते हैं। आप **आगहि** हमारे पास आओ॥२॥

भावार्थ– परमेश्वर और राजा उन्हीं के सहायक होते हैं जो योगाभ्यासी, दूसरों को उपदेश देने वाले, कर्मशूर, दीनों पर दयालु और शक्तिशाली होते हैं॥२॥

सायणाचार्य ने इस मन्त्र की व्याख्या में रुम, रुशम, श्यावक और कृप नामक चार राजा स्वीकार किये हैं और 'कण्वासः' से कण्वगोत्री ऋषि लिए हैं। वह असंगत है, क्योंकि सृष्टि के आदि में प्रकट हुए वेदों में परवर्ती ऐतिहासिक पुरुषों का उल्लेख नहीं हो सकता॥

॥१४॥ अथ 'उभयंशृणवच्च' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भर्गः प्रागाथः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः॥

१२३३. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २९० क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी। यहां आचार्य का विषय कहा गया है।

१. ऋ० ८।४।२, अथ० २०।१२०।२, उभयत्र 'कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस' इति तृतीयः पादः।

२. ऋ० ८।६१।१, अथ० २०।११३।१, उभयत्र 'मघवा सोमपीतये' इति पाठः। साम० २९०।

पदार्थ— **इन्द्रः** विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य **नः अर्वाक्** हमारे अभिमुख होकर **इदम्** इस हम से सुनाए जाते हुए **उभयं वचः** पद्यात्मक और गद्यात्मक दोनों प्रकार के पढ़ाए हुए शास्त्र-वचनों को **शृणवत्** सुने। **मघवान्** विद्यादान देने वाला, **शविष्ठः** विद्या और चरित्र से बलवान् वह आचार्य **सत्राच्या** सत्य का अनुसरण करने वाली **धिया** बुद्धि वा क्रिया से **सोमपीतये** हमें ज्ञानरस वा ब्रह्मानन्दरस पिलाने के लिए **आगमत्** हमारे पास आये ।।१।।

भावार्थ— गुरुओं को चाहिए कि प्रेम से छात्रों को पढ़ायें और प्रतिदिन पढ़ाये हुए पाठ को अगले दिन सुनें, जिससे इसकी परीक्षा हो सके कि छात्रों ने वह पाठ याद कर लिया या नहीं । सिखाये हुए योगाङ्गों की भी समय-समय पर परीक्षा लें, जिससे छात्र समाधि में ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के योग्य हो सकें ।।१।।

१२३४. तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में पुनः आचार्य का विषय है ।

पदार्थ— **तं हि स्वराजम्** विद्या के सूर्य उस आचार्य को, **तं वृषभम्** विद्या के वर्षक उस आचार्य को **धिषणे** विद्या तथा वाणी ने **निष्टतक्षतुः** संस्कृत किया हुआ है । अब प्रत्यक्ष रूप में कहते हैं— **उत** और , हे आचार्यवर! आप **उपमानाम्** उपमानों के मध्य **प्रथमः** श्रेष्ठः होकर **निषीदसि** स्थित हो । **ते मनः** आपका मन **सोमकामं हि** ज्ञानरस के प्रदान का इच्छुक है ।।२।।

भावार्थ— वही आचार्य श्रेष्ठ है, जिसका विद्या-वैभव और वाणी-वैभव दोनों ही उत्कृष्ट हों ।।२।।

इस खण्ड में परमात्मा, आचार्य, उपासनायज्ञ, आनन्दरस और प्रसंगतः राजा का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

नवम अध्याय में सप्तम खण्ड समाप्त

।।१५।। अथ 'पवस्व देव' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** निध्रुविः काश्यपः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२३५. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४८३ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात की गयी थी । यहां भी प्रकारान्तर से उसी विषय का निरूपण किया जा रहा है ।

पदार्थ— हे सोम ! हे रसमय परमात्मन्! **देवः** आनन्ददायक आप **आयुषक्** आयु भर **पवस्व** आनन्द-रस को प्रवाहित करते रहो । **ते** आपका **मदः** आनन्द **इन्द्रम्** जीवात्मा को **गच्छतु** प्राप्त हो । आप **धर्मणा** अपने गुण-कर्म-स्वभाव के साथ **वायुम्** हमारे गतिशील मन पर **आरोह** सवार हो जाओ, अभिप्राय यह है कि मन को अपने प्रभाव से प्रभावित करो ।।१।।

---

१. ऋ० ८।६१।२, अथ० २०।११३।२, उभयत्र 'तमोर्जसे' इति भेदः ।
२. ऋ० ९।६३।२२ 'देवायुषगिन्द्रं' इति पाठः । साम० ४८३ ।

भावार्थ– परमेश्वर के उपासकों के आत्मा, मन, बुद्धि आदि परम आनन्द के प्रवाह से परिप्लुत हो जाते हैं ।।१।।

१२३६. पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । इन्दो समुद्रमा विश ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है ।

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रतादायक **सोम** रसागार परमात्मन्! आप **श्रवाय्यम्** कीर्ति उत्पन्न करने वाले **रयिम्** आध्यात्मिक तथा भौतिक ऐश्वर्य को **नितोशसे** देते हो । हे **इन्दो** उपासकों को चन्द्रमा के समान आह्लाद देने वाले परमेश! आप **समुद्रम्** जीवात्मा-रूप समुद्र में **आविश** प्रवेश करो ।।२।।

भावार्थ– जैसे चन्द्रमा अपने आकर्षण से समद्र के जल को ऊपर उठाता है, वैसे परमेश्वर अपने चुम्बकीय आकर्षण से जीवात्मा को उन्नत करता है ।।२।।

१२३७. अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ।।३।।[2]

तृतीय ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४९२ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां एक साथ परमात्मा और आचार्य दोनों का विषय वर्णित करते हैं ।

पदार्थ– हे **सोम** आनन्दरस के भण्डार परमात्मन् वा विद्यारस के भण्डार आचार्य! **क्रतुवित्** विज्ञानों और कर्मों को प्राप्त कराने वाले, **मत्सरः** आनन्ददाता आप **मृधः** हिंसावृत्तियों को **अपघ्नन्** विनष्ट करते हुए **पवसे** मनुष्यों वा विद्यार्थियों के अन्तःकरण को पवित्र करते हो । आप **अदेवयुम्** दिव्यगुणों को प्राप्त न करना चाहने वाले **जनम्** मनुष्य को वा विद्यार्थी को **नुदस्व** उनकी प्राप्ति के लिए प्रेरित करो ।।३।।

भावार्थ– जैसे परमेश्वर वेद द्वारा दिव्य गुणों की प्राप्ति का सन्देश देकर, योगाभ्यासियों को ब्रह्मानन्द प्रदान करके कृतार्थ करता है वैसे ही आचार्य छात्रों को क्रियात्मक ज्ञान सहित आध्यात्मिक एवं भौतिक विविध विद्याएं सिखाकर, उनमें दिव्य गुण उत्पन्न करके उन्हें सुयोग्य बनाए ।।३।।

।।१६।। अथ 'अभी नो' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

१२३८. अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ।।१।।[3]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५४९ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधित की गयी थी । यहां पर परमात्मा, राजा और आचार्य से प्रार्थना है ।

---

१. ९।६३।२३, 'इन्दो' इत्यत्र 'प्रियः' इति पाठः ।

२. ऋ० ९।६३।२४, साम० ४९२ ।

३. ऋ० ९।९८।१, 'अभी, शतस्पृहम्, विभासहम्' इत्यत्र क्रमेण 'अभि, पुरुस्पृहम्, विभ्वासहम्' इति पाठः । साम० ५४९ ।

पदार्थ– हे **इन्दो** आनन्दरस तथा विद्यारस से भिगोने वाले तेजस्वी परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! आप **वाजसातमम्** अतिशय बल के प्रदाता, **शतस्पृहम्** सैंकड़ों मनुष्यों से चाहने योग्य, **सहस्रभर्णसम्** सहस्रों गुणों को धारण कराने वाले अथवा सहस्रों जनों के पोषक, **तुविद्युम्नम्** बहुत यश देने वाले, **विभासहम्** शत्रुओं के तेज को अभिभूत करने वाले **रयिम्** आध्यात्मिक धन को, सुवर्ण आदि धन को वा विद्याधन को **नः** हम उपासकों, प्रजाजनों वा छात्रों को **अभि अर्ष** प्राप्त कराओ ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर से ब्रह्मानन्द का धन, राजा से सुवर्ण आदि धन और आचार्य से विद्याधन प्राप्त करके ही उपासक, प्रजाजन और विद्यार्थी कृतकृत्य होते हैं ।।१।।

१२३९. वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

पदार्थ– हे **वसो** निवास देने वाले परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! **वयम्** हम प्रार्थी लोग **ते** आपके **अस्य** इस **वसोः** निवासक, **पुरुस्पृहः** अतिशय चाहने योग्य, **इषः** अभीष्ट **राधसः** आध्यात्मिक ऐश्वर्य, सुवर्ण आदि ऐश्वर्य का विद्याधन के **नि** अत्यधिक **नेदिष्ठतमाः** निकटतम **स्याम** होवें । और, हे **अध्रिगो** बेरोक गति वाले परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! हम **ते** आपके अर्थात् आपसे दिये हुए **सुम्ने** सुख से **स्याम** होवें ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा से आध्यात्मिक धन, राजा से भौतिक धन और आचार्य से विद्या-धन पाकर सब लोगों को सुखी होना योग्य है ।।२।।

१२४०. परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रस वा ज्ञान-रस का विषय है ।

पदार्थ– **स्यः** वह **स्वानः** अभिषुत किया जाता हुआ, **मदच्युतः** उत्साह देने के लिए निकला हुआ **इन्दुः** भिगोने वाला आनन्द-रस वा ज्ञानरस **अव्ये** अव्यय अर्थात् अविनश्वर जीवात्मा में **परि अक्षरत्** परमात्मा के पास से वा अचार्य के पास से क्षरित हुआ है, **यः** जो **ऊर्ध्वः** उत्कृष्ट आनन्द-रस वा ज्ञान-रस **गव्ययुः** प्रकाश देने का इच्छुक होकर **अध्वरे** उपासना-यज्ञ वा विद्या-यज्ञ में **भ्राजा धारा न** मानो प्रदीप्त धारा के साथ **याति** प्रवाहित हो रहा है ।।३।।

यहां उत्प्रेक्षा अलंकार है ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वरोपासना-यज्ञ से परमानन्द-रस को और विद्या-यज्ञ से ज्ञान-रस को प्राप्त करके लोग दिव्य प्रकाश पाकर कृतार्थ होवें ।।३।।

---

१. ऋ० ९।९८।५ 'वयं ते अस्य वृत्रहन् वसो वस्वः पुरुस्पृहः । नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ।। इति पाठः ।

२. ऋ० ९।९८।३ 'परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः' इति पूर्वार्द्धः । उत्तरार्द्धे 'न याति' इत्यत्र 'नैति' ।

।।१७।। अथ 'पवस्व' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** द्विपदा विराट् पङ्क्तिः । **स्वरः** पञ्चमः ।।

१२४१. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४२९ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां पर फिर परमात्मा का विषय कहते हैं ।

पदार्थ– हे **सोम** आनन्दरस के भण्डार परमात्मन्! आप **महान् समुद्रः** विशाल बादल हो, **देवानाम्** दिव्यगुणों के **पिता** उत्पादक और पालक हो । आप **विश्वा धाम अभि** सब हृदय-धामों को लक्ष्य करके **पवस्व** बरसो ।।१।।

यहां सोम परमात्मा में मेघत्व **समुद्रत्व** का आरोप होने से रूपक अलंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे बादल भूमि पर बरस कर वनस्पति आदि को उत्पन्न करता है वैसे ही परमेश्वर आनन्दवर्षा करके दिव्यगुणों को सृजता है ।।१।।

१२४२. शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ।।२।।[2]

अब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे **सोम** जगत्स्रष्टा परमात्मन्! **शुक्रः** तेजस्वी और पवित्र आप **देवेभ्यः** दिव्य गुणों से युक्त जनों के लिए **पवस्व** तेज और पवित्रता को प्रवाहित करो । **दिवे** सूर्य के लिए, **पृथिव्यै** भूलोक के लिए, और **प्रजाभ्यः** प्रजाजनों के लिए **शम्** कल्याणकारी होवो ।।२।।

भावार्थ– यथाशक्ति परमात्मा के गुणों को अपने आत्मा में धारण करके हम तेज, पवित्रता और शान्ति प्राप्त कर सकते हैं ।।२।।

१२४३. दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा का विषय है ।

पदार्थ– हे सोम अर्थात् जगत् के स्रष्टा परमात्मन् ! आप **दिवः** खगोल में विद्यमान लोकलोकान्तरों के **धर्ता** धारण करने वाले, **शुक्रः** तेजस्वी एवं पवित्र और **पीयूषः** आनन्दरसमय **असि** हो। **वाजी** बलवान् आप **विधर्मन्** विशेष धर्मों से युक्त **सत्ये** मुझ सत्य चरित्र वाले उपासक के अन्दर **पवस्व** बहो ।।३।।

भावार्थ– तेजस्वी, पवित्र और आनन्दवान् परमेश्वर अपने उपासकों को भी तेजस्वी, पवित्र और आनन्दयुक्त कर देता है ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, राजा, आचार्य, ज्ञानरस और आनन्दरस का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

नवम अध्याय में अष्टम खण्ड समाप्त

१. ऋ० ९।१०९।४, साम० ४२९ ।
२. ऋ० ९।१०९।५, 'प्रजाभ्यः' इत्यत्र 'प्रजायै' इति पाठः ।
३. ऋ० ९।१०९।६

।।१८।। अथ 'प्रेष्ठं वो' इत्यादिकस्याष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** उशना काव्यः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२४४. प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में की जा चुकी है । यहां परमात्मा और राजा दोनों का विषय दर्शाते हैं ।

पदार्थ– हे **अग्ने** जग के नेता परमात्मन् वा राष्ट्र के नेता राजन्! **प्रेष्ठम्** अतिशय प्रिय, **अतिथिम्** अतिथि के समान सत्कार-योग्य, **मित्रम् इव** मित्र के समान **प्रियम्** तृप्ति प्रदाता और **रथं न** रथ के समान **वेद्यम्** प्राप्तव्य **वः** आपकी, मैं **स्तुषे** स्तुति करता हूं अर्थात् आपके गुणों का वर्णन करता हूं ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे लोग परमात्मा की पूजा करें वैसे ही राजा का भी सत्कार करें और जैसे परमात्मा लोगों को तृप्ति देता है वैसे ही राजा भी प्रजाओं को तृप्त करे ।।१।।

१२४५. कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में । **कविम् इव** कवि के समान **प्रशंस्यम्** प्रशंसनीय **यम्** जिस अग्नि अर्थात् अग्रनायक परमात्मा को **देवासः इति** दिव्य गुणों वाले योग-प्रशिक्षक वा योगी लोग **द्विता** पालनार्थ तथा शत्रुओं से रक्षार्थ इन दो प्रयोजनों के लिए **मर्त्येषु** योगाभ्यासी मनुष्यों में **नि आदधुः** योगविधि से अनुभव कराते हैं, उसकी मैं **स्तुषे** स्तुति करता हूं। [यहां 'स्तुषे' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है।]

द्वितीयः राजा के पक्ष में । **कविम् इव** कवि के समान **प्रशंस्यम्** प्रशंसनीय **यम्** जिस अग्नि अर्थात् अग्रनायक राजा को **देवासः इति** दिव्य गुणों वाले पुरोहित लोग **द्विता** प्रजा के पालनार्थ तथा शत्रुओं से रक्षार्थ दोनों कर्मों के लिए **मर्त्येषु** प्रजाजनों के बीच **नि आदधुः** राजगद्दी पर स्थित करते है- उसकी मैं **स्तुषे** गुण-वर्णन-रूप स्तुति करता हूं ।।२।।

भावार्थ– जैसे ब्रह्माण्ड का सम्राट् परमेश्वर लोगों को पालता और उनके शत्रुओं को पराजित करता है वैसे ही वही राष्ट्र में राजा होने योग्य है जो प्रजाओं की पालना तथा शत्रुओं का पराजय कर सकता हो ।।२।।

१२४६. त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुही गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है ।

---

१. ऋ० ८।८४।१, 'अग्ने' इत्यत्र 'अ॒ग्निं' इति । साम० ५

२. ऋ० ८।८४।२, 'क॒विमि॑व॒ प्रचे॑तसं॒ यं दे॒वासो॒ अध॑ द्वि॒ता' इति पाठः ।

३. ऋ० ८।८४।३, य० १३।५२, १८।७७, सर्वत्र 'शृणुधी' इति पाठः ।

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में । हे **यविष्ठ** सबसे अधिक युवा अर्थात् युवा के समान शक्तिसम्पन्न परमात्मन्! **त्वम्** आप **दाशुषः** आत्मसमर्पण करने वाले **नॄन्** उपासक जनों की **पाहि** पालना कीजिए, उनकी **गिरः** स्तुति-वाणियों को **शृणुहि** सुनिए, **उत** और **त्मना** अपने आप **तोकम्** उनकी सद्विचार-रूप सन्तान की **रक्ष** रक्षा कीजिए ।।

द्वितीय राजा के पक्ष में । हे **यविष्ठ** अतिशय युवक राजन्! **त्वम्** आप **दाशुषः** विद्या के दाता वा धन के दाता **नॄन्** पुरुषों की **पाहि** रक्षा कीजिए । **उत** और **त्मना** स्वयम् **तोकम्** युद्ध में मृत सैनिकों की सन्तान की **रक्ष** पालना कीजिए ।।३।।[1]

भावार्थ– जगदीश्वर अपने उपासकों को पालता है और उनकी रक्षा करता है । उसी प्रकार राजा को दो कर्म अवश्य करने चाहिए– एक विद्वानों का पालन और उनका उपदेश सुनना और दूसरा युद्ध में मारे गये सैनिकों के सन्तान, पत्नी आदि का पालन ।।३।।

।।१९।। अथ 'एन्द्र' इत्यादिकस्यैकोनविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नृमेध आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ।।

१२४७. एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य । गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३९३ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां फिर उसी विषय का वर्णन करते हैं ।

पदार्थ– हे **प्रिय** तृप्तिप्रदाता, **सत्राजित्** एक-साथ सब शत्रुओं को जीत लेने वाले, **अगोह्य** न छिपाये जा सकने योग्य अर्थात् सर्वत्र प्रकाशमान **इन्द्र** परमात्मन्! आप **गिरिः न** बादल के समान **सर्वतः** सब ओर **पृथुः** प्रख्यात् और **दिवः पतिः** तेजस्वी सूर्य के वा जीवात्मा के स्वामी हो ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– यद्यपि परमेश्वर चर्मचक्षु से दिखाई नहीं देता तो भी वह सूर्य के समान सर्वत्र प्रकाशित, तृप्तिप्रदायक, सर्वविजेता, सुख आदि की वर्षा करने के कारण बादल के समान प्रसिद्धि-प्राप्त और सब जड़-चेतन जगत् का अधिपति है ।।१।।

१२४८. अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है ।

---

१. यह राजापरक व्याख्या य० १८।७७ के दयानन्दभाष्य के अनुसार है ।

२. ऋ० ८।९८।४, अथ० २०।६४।१, उभयत्र 'प्रियः सत्राजिद गोह्यः' इति पाठः । साम० ३९३ ।

३. ऋ० ८।९८।५, अथ० २०।६४।२ ।

पदार्थ– हे **सत्य** सत्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले, **सोमपाः** शान्ति के रक्षक जगदीश्वर! आपने **हि** निश्चय ही **उभे रोदसी** द्यावापृथिवी दोनों को **अभिबभूथ** तिरस्कृत किया हुआ है । हे **इन्द्र** सर्वान्तर्यामिन्! आप **सुन्वतः** शान्ति-स्थापना का यज्ञ करने वाले को **वृधः** बढ़ाने वाले और **दिवः पतिः** तेजस्वी जन के रक्षक **असि** हो ।।२।।

भावार्थ–संसार में जो शान्ति की स्थापना के लिए यत्न करते हैं उन्हीं का परमेश्वर सखा होता है।।२।।

१२४९. त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि। हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमेश्वर और राजा के वीरकर्मों का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– हे **इन्द्र** परमवीर जगदीश्वर वा राजन् ! **त्वं हि** आप निश्चय ही **शश्वतीनाम्** बहुत सी **पुराम्** शत्रु-नगरियों के **दर्ता** भेदन करने वाले, **दस्योः** हिंसक शत्रु के **हन्ता** विनाशक, **मनोः** मननशील शान्तिप्रिय मनुष्य के **वृधः** बढ़ाने वाले और **दिवः** तेजस्वी जन के **पतिः** रक्षक **असि** हो ।।३।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर दुष्टों का भञ्जक और सज्जनों का रक्षक होता है वैसे ही राजा को भी होना चाहिए ।।३।।

।।२०।। अथ 'पुरां भिन्दुर्' इत्यादिकस्य विंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** जेता माधुच्छन्दसः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

१२५०. पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३५९ क्रमांक पर परमेश्वर, राजा, सेनापति और सूर्य के विषय में की जा चुकी है । यहां जीवात्मा का विषय कहते हैं।।

पदार्थ– **इन्द्रः** यह देहधारी जीवात्मा **पुराम्** शत्रु-नगरियों का **भिन्दुः** भेदन करने वाला, **युवा** यौवन-सम्पन्न, **कविः** क्रान्तदर्शी, **अमितौजाः** अपरिमित बल वाला, **विश्वस्य** सब **कर्मणः** क्रियाकाण्ड का **धर्ता** धारण करने वाला, **वज्री** शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाला, और **पुरुष्टुतः** बहु-स्तुत **अजायत** हुआ है ।।१।।

भावार्थ– जीवात्मा में अपूर्व शक्ति निहित है । अपनी शक्ति को पहचानकर वह महान् से महान् कर्मों को कर सकता है ।।१।।

१२५१. त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में परमेश्वर और जीवात्मा को सम्बोधन है ।

---

१. ऋ० ८।९८।५, अथ० २०।६४।२ ।

२. ऋ० १।११।४, साम० ३५९ ।

३. ऋ० १।११।५

पदार्थ– हे **अद्रिवः** अविनश्वर परमेश्वर वा जीवात्मन् ! **त्वम्** तुम **गोमतः** जिसने सत्त्वगुण के प्रकाश को बन्द कर रखा है ऐसे **वलस्य** आच्छादक तमोगुण की **बिलम्** गुफा को **अपावः** तोड़कर खोल देते हो । **तुज्यमानासः** हिंसा किये जाते हुए **देवाः** प्रकाशक मन, बुद्धि सहित ज्ञानेन्द्रियां वा विद्वान् लोग **अबिभ्युषः** भयभीत न होते हुए **त्वाम्** तुझ परमात्मा वा जीवात्मा की **आविषुः** शरण में जाते हैं ।।२।।

भावार्थ– मन में तमोगुण की अधिकता हो जाने से जब सत्त्वगुण निर्बल हो जाता है तब तमोगुण प्रकाश को रोक लेता है । वह आवरण परमात्मा की प्रेरणा से और जीवात्मा के पुरुषार्थ से तोड़ा जा सकता है।।२।।

१२५२. इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ।।३।।[1]

आगे फिर परमात्मा और जीवात्मा का विषय है ।

पदार्थ– **ओजसा** बल वा प्रताप से **ईशानम्** जगत् के वा शरीर के शासक **इन्द्रम्** परमेश्वर वा जीवात्मा की, सब लोग **स्तोमैः** उनके गुणवर्णन करने वाले स्तोत्रों **से अभि अनूषत** स्तुति करते हैं **, यस्य** जिस परमेश्वर वा जीवात्मा के **सहस्रम्** हजार **उत वा** अथवा **भूयसीः** उससे भी अधिक **रातयः** दान **सन्ति** हैं ।।३।।

भावार्थ– सबको योग्य है कि परमेश्वर की उपासना करके और जीवात्मा को उद्बोधन देकर उनके दानों को प्राप्त करें ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, जीवात्मा और राजा का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है।।

नवम अध्याय में नवम खण्ड समाप्त ।

नवम अध्याय समाप्त ।।

पञ्चम प्रपाठक में प्रथम अर्ध समाप्त ।।

अथ दशमोऽध्यायः पञ्चमे प्रपाठके द्वितीयोऽर्धश्च

।।१।। अथ 'अक्रान्त्समुद्रः' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** पराशरः शाक्त्यः **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।

१२५३. अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ।।१।।[2]

---

१. ऋ० १।९१।८, 'स्तोमा' अनूषत इति पाठः ।

२. ऋ० २।९७।४०, 'गोपाः' इत्यत्र 'राजा' 'स्वानो अद्रिः' इत्यत्र 'सुवान इन्दुः' । साम ५२९ ।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५२९ क्रमांक पर परमात्मा और मेघ के विषय में की जा चुकी है। यहां फिर परमात्मा का ही विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ– इसी सोम परमात्मा के शासन में **समुद्रः** सूर्य **परमे** उच्च, **विधर्मणि** विशेष धारणकर्ता द्युलोक में **अक्रान्** अपनी धुरी पर घूमता है, जो सूर्य **प्रजाः जनयन्** प्रजाओं को उत्पन्न करता हुआ **भुवनस्य** सौरमण्डल का **गोपाः** रक्षक है। **पवित्रे** अन्तरिक्ष में और **अव्ये सानौ अधि** पृथिवी के उन्नत प्रदेश में **वृषा** वर्षा करने वाला, **स्वानः** भूमि आदि लोकों को उनकी अपनी-अपनी कक्षा में सूर्य के चारों ओर प्रेरित करता हुआ **अद्रिः** अविनश्वर **सोमः** जगत्स्रष्टा परमात्मा **बृहत्** बहुत अधिक **वावृधे** महिमा को प्राप्त हुआ है ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर ही अपनी महिमा से सूर्य को और उसके चारों ओर भूमि, चन्द्रमा आदि ग्रह-उपग्रहों को घुमा रहा है ।।१।।

१२५४. मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा का कर्म वर्णित है।

पदार्थ– हे **देव** आनन्ददायक, **सोम** संसार के रचयिता परमात्मन्! आप **नः** हमारी **इष्टये** अभीष्ट-सिद्धि के लिए, और **राधसे** ऐश्वर्य के लिए **वायुम्** पवन को **मत्सि** हर्षित करते हो, **पूयमानः** प्राप्त किये जाते हुए आप **मित्रावरुणा** प्राण-अपान को **मत्सि** हर्षित करते हो, **मारुतं शर्धः** सैनिकों के बल को **मत्सि** हर्षित करते हो, **देवान्** विद्वान् जनों को **मत्सि** हर्षित करते हो, **द्यावापृथिवी** आकाश और भूमि को **मत्सि** हर्षित करते हो ।।२।।

भावार्थ– जो यह प्रकृति में सूर्य चन्द्र, पवन, भूमि आदियों में, समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदियों में और शरीर में जीवात्मा, मन, बुद्धि, प्राण आदियों में हर्ष, स्फूर्ति और कर्मनिष्ठा दिखायी देते हैं वह सब परमात्मा द्वारा ही की हुई है ।।२।।

१२५५. महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ।।३।।[2]

तृतीय ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५४२ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहां भी उसी विषय का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– महिषः महान् **सोमः** जगत् का रचयिता परमेश्वर **तत्** उस आगे वर्णित किये गये **महत्** महत्त्वपूर्ण कर्म को **चकार** करता है **यत्** कि **अपाम्** जल आदि पदार्थों में भी **गर्भः** गर्भरूप से विद्यमान वह **देवान्** सूर्य, चन्द्र, वायु, विद्युत् आदियों को वा प्राण, मन, चक्षु, श्रोत आदियों को **अवृणीत** रक्षणीय रूप में वरता है। **पवमानः** उस कर्मशूर ने **इन्द्रे** प्राण, पवन वा मन में **ओजः** बल **अदधात्** स्थापित किया है, **इन्दुः** उस ज्योतिष्मान् ने **सूर्ये** सूर्य में **ज्योतिः** ज्योति को **अजनयत्** उत्पन्न किया है ।।३।।

---

१. ऋ० ९।९७।४२
२. ऋ० ९।९७।४१, साम० ५४२।

भावार्थ— परमात्मा के महान् कर्म बड़े ही आश्चर्यजनक हैं। प्राण में सांस की शक्ति, पवन में गति, मन में संकल्प, सूर्य में दीप्ति, चांद में चांदनी, नदियों में प्रवाह, पहाड़ों में दृढ़ता वही स्थापित करता है ॥३॥

॥२॥ अथ 'एष देवो' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य दशर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शुनःशेप आजीगर्तिः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ॥

१२५६. एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम् ॥१॥[1]

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा की गति वर्णित है ।

पदार्थ— **एषः** यह **अमर्त्यः** अमर, **देवः** कर्मफलों को भोगने वाला जीवात्मा रूप सोम, कर्मों के अनुसार **द्रोणानि** देहरूप द्रोणकलशों में **अभि आसदम्** बैठने के लिए **पर्णवीः इव** पक्षी के समान **दीयते** उड़कर जाता है॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ— पक्षी जैसे उड़ता हुआ एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाता है, वैसी ही यह जीवात्मा पहले शरीर को छोड़कर कर्मफल भोगने के लिए माता के गर्भ में दूसरे शरीर को प्राप्त करता है ॥१॥

१२५७. एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा द्वारा कर्मफल दिये जाने का वर्णन है ।

पदार्थ— **विप्रैः** विद्वान् उपासकों से **अभिष्टुतः** अभिमुख होकर स्तुति किया गया **एषः** यह **देवः** कर्मफलप्रदाता परमेश्वर **अपः** मनुष्यों से किये गये कर्मों का **विगाहते** आलोडन अर्थात् निरीक्षण करता है, और **दाशुषे** आत्मसमर्पणकर्ता शुभकर्मकारी मनुष्य को **रत्नानि** रमणीय फल **दधत्** प्रदान करता है ॥२॥

भावार्थ— न्यायकारी परमेश्वर शुभकर्मों का शुभ फल और अशुभ कर्मों का अशुभ फल कर्म करने वाले को देता है ॥२॥

१२५८. एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥३॥[3]

अगले मन्त्र में जीवात्मा का विषय है ।

पदार्थ— **पवमानः** अपने को पवित्र करता हुआ **एषः** यह जीवात्मा **सत्वभिः** अपने पुरुषार्थों से **विश्वानि** सब **वार्या** वरणीय वस्तुओं को **सिषासति** प्राप्त करना चाहता है, **यन् इव** जैसे चलता हुआ **शूरः** कोई शूरवीर **विश्वानि वार्या** सब प्राप्तव्य स्थानों को प्राप्त कर लेता है ॥३॥

---

१. ऋ० ९।३।१, 'दीयति' इति पाठः ।

२. ऋ० ९।३।६ ।

३. ऋ० ९।३।४

यहां उपमालंकार है ॥३॥

भावार्थ– मनुष्य अपने पुरुषार्थ से सब अभीष्टों को पा सकता है ॥३॥

१२५९. एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥४॥[1]

आगे फिर जीवात्मा के विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– **एषः** यह **देवः** कर्मफलों का भोक्ता जीव, कर्मफल भोगने के लिए **रथर्यति** शरीररूप रथ की इच्छा करता है। **पवमानः** शरीररूप रथ में जाता हुआ यह **दिशस्यति** मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदियों को दिशा-निर्देश करता है, और **वग्वनुम्** व्यक्त वाणी को **आविष्कृणोति** प्रकट करता अर्थात् उच्चारण करता है॥४॥

भावार्थ– जीवात्मा मानव-देह पाकर ज्ञान का संचय, सत्कर्मों का आचरण और व्यक्त वाणी से दूसरों को उपदेश यदि करता है तो उसका मनुष्य-जन्म पाना सफल हो जाता है ॥४॥

१२६०. एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥५॥[2]

पदार्थ– **एषः** यह **देवः** विजय की इच्छा वाला, **पवमानः** पुरुषार्थी, **हरिः** कर्मफलभोग के लिए एक शरीर से दूसरे शरीर में ले जाया गया जीवात्मा **ऋतायुभिः** सत्य आचरण वाले **विपन्युभिः** परमात्म-स्तोता विद्वानों द्वारा **वाजाय** बल देने के लिए **मृज्यते** शुद्ध किया जाता है ॥५॥

भावार्थ– मानव-शरीर को प्राप्त जीवात्मा सत्याचारी परमात्म-स्तोताओं की संगति करके स्वयं को उन्नत करे ॥५॥

१२६१. एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥६॥[3]

आगे फिर उसी जीवात्मा का विषय है ।

पदार्थ– **एषः** यह **विपा** मेधावी विद्वान् के द्वारा **कृतः** संस्कृत किया हुआ **पवमानः** पुरुषार्थी, अतएव **अदाभ्यः** किसी से पराजित न किया जा सकने वाला **देवः** तेजस्वी जीवात्मा **ह्वरांसि** कुटिल कर्मों को वा कुटिल शत्रुओं को **अति** दूर करके **धावति** आगे बढ़ता है ॥६॥

भावार्थ– विद्वान् आचार्य के द्वारा जब मनुष्य का आत्मा संस्कृत किया जाता है तब मनुष्य बलवान् होकर, सभी बाधाओं को पराजित करके समाज में अग्रगण्य हो जाता है ॥६॥

१२६२. एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥७॥[4]

आगे फिर वही विषय है ।

---

१. ऋ० ९।३।५, 'दशस्यति' इति पाठः ।

२. ऋ० ९।३।३ ।

३. ऋ० ९।३।२

४. ऋ० ९।३।७

पदार्थ– **एषः** यह **पवमानः** पुरुषार्थी जीवात्मा **कनिक्रदत्** स्तोत्रगान को ध्वनित करता हुआ **रजांसि** रजोगुणों को **तिरः** लांघकर **धारया** सत्त्वगुण की धारा से **दिवम्** तेजस्वी परमात्मा के प्रति **वि धावति** वेग से जाता है ।।७।।

भावार्थ– रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण को प्रबल करके ही जीवात्मा परमात्मा को पाता है ।।७।।

१२६३. एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृतः। पवमानः स्वध्वरः ।।८।।[१]

आगे फिर जीवात्मा का विषय है ।

पदार्थ– **एषः** यह **स्वध्वरः** शुभ उपासना-रूप यज्ञ का कर्ता, **अस्तृतः** विघ्नों से अहिंसित **पवमानः** पुरुषार्थी जीवात्मा **रजांसि** रजोगुणों और तमोगुणों को **तिरः** तिरस्कृत करके **दिवम्** तेजस्वी परमात्मा को **व्यासरत्** वेग से प्राप्त कर लेता है ।।८।।

भावार्थ– मनुष्य के विघ्न तभी मार्ग से डिगाते हैं जब वह रजोगुण और तमोगुण से दबा रहता है।।८।।

१२६४. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति ।।९।।[२]

नवमी ऋचा पहले ७५८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां मनुष्य के द्वितीय जन्म का विषय है ।

पदार्थ– **प्रत्नेन जन्मना** आचार्य से प्राप्त श्रेष्ठ जन्म से **देवेभ्यः** दिव्य गुणों के प्रसारार्थ **सुतः** उत्पन्न किया हुआ **एषः** यह **हरिः** दीनों का दुःख हरने वाला मनुष्य **पवित्रे** पवित्र कर्म में **अर्षति** संलग्न होता है ।।

आचार्य जब बालक का उपनयन संस्कार करता है तब उसे अपने गर्भ में धारण करता है । तीन रात्रियों तक उसे गर्भ नें रखे रहता है । जब वह जन्म लेता है अर्थात् स्नातक बनता है तब उसे देखने के लिए चारों ओर से विद्वान् लोग एकत्र होते हैं (अथ० ११।५।३) । आचार्य विद्या से विद्यार्थी को दूसरा जन्म देता है, वही श्रेष्ठ जन्म है, माता-पिता तो शरीर को ही जन्म देते हैं। (आप० १।१।१।१४-१८) । इस द्वितीय जन्म में सावित्री (गायत्री) माता होती है और आचार्य पिता (मनु० २।१७०) । इत्यादि प्रमाणों के आधार पर आचार्य और सावित्री के द्वारा जो द्वितीय जन्म प्राप्त होता है, वही श्रेष्ठ है ।।९।।

भावार्थ– प्रथम जन्म माता-पिता से प्राप्त होता है, वह मुख्य रूप से शरीर का जन्म होता है । दूसरा विद्या और सदाचार का जन्म आचार्य तथा सावित्री से होता है । द्वितीय जन्म प्राप्त करके मनुष्य पवित्र आचरण वाला हो जाता है । द्वितीय जन्म से ही वह द्विज और उस जन्म की प्राप्ति के बिना शूद्र कहलाता है।।९।।

---

१. ऋ० ९।३।८ 'रजांस्यस्पृतः' इति पाठः ।
२. ऋ० ९।३।९, साम० ७५८ ।

१२६५. एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ।।१०।।[1]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– एषः उ यह **स्यः** वह **पुरुव्रतः** ब्रह्मचर्याश्रिम में बहुत व्रत पालन करने वाला, **जज्ञानः** आचार्य से जन्म ग्रहण करता हुआ छात्र **सुतः** उत्पन्न होकर अर्थात् स्नातक बनकर **इषः** प्राप्त विद्याएं **जनयन्** दूसरों को पढ़ाता हुआ **धारया** वाणी से **पवते** उन्हें पवित्र करे ।।१०।।

भावार्थ– आचार्य के मुख से सब विद्याएं पढ़कर छात्र पवित्र आचरण वाला द्विज होकर स्नातक बना हुआ दूसरों को भी सब विद्याएं पढ़ाता हुए उन्हें पवित्र आचरण वाला करे ।।१०।।

इस खण्ड में परमात्मा, जीवात्मा तथा आचार्य से प्राप्त होने वाले द्वितीय जन्म के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

।।३।। अथ 'एष धिया' इत्यादिकस्य तृतीयस्याष्टर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** असितः काश्यपो देवलो वा । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२६६. एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में मुक्ति के विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– इन्द्रस्य परमेश्वर के **निष्कृतम्** परम् धाम को **गच्छन्** जाता हुआ **एषः** यह सोम जीवात्मा **अण्व्या** सूक्ष्म **धिया** ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा **याति** लक्ष्य को पा लेता है, जैसे **शूरः** कोई शूर मनुष्य **आशुभिः** वेगवान् **रथैः** रथों द्वारा लक्ष्य को पाता है ।।१।।

यहां लुप्तोपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– मुक्ति की प्राप्ति में ऋतम्भरा प्रज्ञा परम सहायक होती है ।।१।।

१२६७. एष पुरु धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आशत ।।२।।[3]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– एषः यह सोम जीवात्मा **बृहते** महान् **देवतातये** मोक्ष पद के लाभार्थ **पुरु** बहुत अधिक **धियायते** ऋतम्भरा प्रज्ञा को पाना चाहता है, **यत्र** जिस मोक्षपद में **अमृतासः** पूर्व अमर जीवात्माएं **आशते** विद्यमान हैं ।।२।।

भावार्थ– मोक्ष की प्राप्ति के लिए मोक्ष की अभिलाषा योगाभ्यास तथा सदाचार की अपेक्षा होती है।।२।।

१२६८. एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ।।३।।[4]

---

१. ऋ० ९।३।१० ।
२. ऋ० ९।१५।१
३. ऋ० ९।१५।२, 'आशत' इत्यत्र 'आसते' इति पाठः ।
४. ऋ० ९।१५।७।

आगे मन्त्र में आत्मशुद्धि का विषय है ।

पदार्थ– महीः महान् **इषः** ज्ञान और कर्म की सम्पत्तियों को **प्रचक्राणम्** अधिकाधिक संचित किये हुए **मर्ज्यम्** शुद्ध करने योग्य **एतम्** इस जीवात्मा को **आयवः** मनुष्य **द्रोणेषु** उपासना-रस के कुंडों में **उपमृजन्ति** शोधते हैं ।।३।।

भावार्थ– जीवात्मा जब अविद्या, पाप आदियों से लिप्त हो जाता है तब उसकी शुद्धि के लिए परमेश्वर की उपासना अपेक्षित होती है ।।३।।

अथ पुनस्तमेव विषयमाह ।

१२६९. एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ।।४।।[1]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– यदि यदि **भूर्णयः** ज्ञान आदि से भरे हुए मनुष्य **तुञ्जन्ति** स्वयं को परमेश्वर के लिए समर्पित करते हैं, तो इस **शुन्ध्यावता पथा** शुद्धियुक्त मार्ग से **अन्तः हितः** अन्तर्मुख किया हुआ **एषः** यह सोम जीवात्मा **वि नीयते** विशेषरूप से मोक्ष की ओर ले जाया जाता है।।४।।

भावार्थ– अहंकार का परित्याग करके परमात्मा के प्रति आत्मसमर्पण से मोक्ष का मार्ग सरल हो जाता है ।।४।।

१२७०. एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ।।५।।[2]

अगले मन्त्र में जीवात्मा का वर्णन करते हैं ।

पदार्थ– **वाजी** बलवान् **एषः** यह सोम जीवात्मा **सिन्धूनाम्** शरीरस्थ रक्तवाहिनी नाड़ियों का **पतिः** स्वामी **भवन्** होता हुआ **रुक्मिभिः** तेजस्वी **शुभ्रेभिः** स्वच्छ **अंशुभिः** मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदियों से **ईयते** कार्य करता है ।।५।।

भावार्थ– शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मा को शरीरस्थ मन, बुद्धि, आदि तथा बाह्य साधनों को प्रयुक्त करके सदा ही उन्नति करनी चाहिए ।।५।।

११७१. एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ।।६।।[3]

अगले मन्त्र में सांड का वर्णन करते हुए देहधारी जीवात्मा का वर्णन है ।

---

१. ९।१५।३, 'शुभ्रावता पृथा' इति पाठः ।

२. ऋ० ९।१५।५

३. ऋ० ९।१५।४

पदार्थ— **प्रथम** सांड के पक्ष में । **ओजसा** प्रबलता के साथ **नृम्णा** बलों को **दधानः** धारण करता हुआ **एषः** यह **यूथ्यः** गोओं के समूह में रहने वाला **वृषा** सांड **शृङ्गाणि** सींगों को **दोधुवत्** कंपाता हुआ **शिशीते** पर्वत, खम्भे आदि पर तेज कर रहा है ।।

द्वितीय मनुष्य के पक्ष में । **ओजसा** बल से **नृम्णा** धन को **दधानः** कमाता हुआ **एषः** यह **यूथ्यः** सामाजिक तथा **वृषा** अन्यों पर सुख की वर्षा करने वाला मानव **दोधुवत्** दोषों को कंपाता हुआ **शृङ्गाणि** धर्म, अर्थ, काम मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का **शिशीते** अभ्यास करता है ।।६।।

यहां श्लेष है, प्रथम अर्थ में स्वभावोक्ति अलंकार है ।।६।।

भावार्थ— जैसे बलवान् सांड स्वभाव के अनुसार सिर को कंपाता हुआ अपने सींगों को पर्वत आदि पर तीक्ष्ण करता है, वैसे ही बलवान् मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को तीक्ष्ण करे ।।६।।

१२७२. एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ।।७।।[1]

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कैसा जीवात्मा कहां परमात्मा का अनुभव करता है।

पदार्थ— **पिब्दनः** जो स्वयं उपासना रस का स्वाद लेता हुआ उसे दूसरों को भी देता है ऐसा **एषः** यह जीवात्मा **परुषा** कठोर परिणाम वाले **वसूनि** भौतिक धनों को **अति ययिवान्** छोड़कर **शादेषु** शाद्वलस्थलों में **अवगच्छति** परमात्मा का अनुभव करता है ।।७।।

भावार्थ— घास आदि से हरे-भरे रमणीक प्रदेशों में परमात्मा की विभूति का दर्शन सुगम होता है । कहा भी है- पर्वतों के एकान्त में, नदियों के संगम पर ध्यान द्वारा सर्वज्ञ परमेश्वर प्रकट होता है (साम० १४३)।।७।।

१२७३. एतमु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे । स्वायुधं मदिन्तमम् ।।८।।[2]

अगले मन्त्र में फिर देहधारी जीवात्मा का विषय है ।

पदार्थ— **एतम् उ** इस **त्यम्** उस **स्वायुधम्** उत्तम शस्त्रास्त्रों से युक्त **मदिन्तमम्** अतिशय उत्साहयुक्त **हरिम्** मनुष्य को **दश क्षिपः** दस प्रेरक प्राण वा दस प्रेकर इन्द्रियां **यातवे** गति करने के लिए अर्थात् ज्ञानसम्पादन तथा पुरुषार्थ करने के लिए **हिन्वन्ति** प्रेरित करती हैं।।८।।

भावार्थ— जैसे चाबुकें घोड़े को चलने के लिए प्रेरित करती हैं वैसे ही दस प्राण वा दस इन्द्रियां देहधारी जीवात्मा को कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं।।८।।

इस खण्ड में आत्मशुद्धि, परमात्मानुभव और मोक्ष के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।।

दशम अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

---

१. ऋ० ९।१५।६, 'पिब्दना' इति भेदः ।

२. ऋ० ९।१५।८, 'मृजन्ति सप्त धीतयः' इति द्वितीयः पादः ।

।।४।। अथ 'एष उ' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य षड्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** राहूगण आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

१२७४. एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत । गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा का विषय वर्णित किया गया है ।

पदार्थ– **सहस्रिणम्** सहस्र ऐश्वर्यों से युक्त **वाजम्** बल को **गच्छन्** प्राप्त करता हुआ **एषः उ** यह **स्यः** वह **वृषा** सुखवर्षी **रथः** गतिशील सोम जीवात्मा **अव्याः वारेभिः** रक्षा करने वाली जगन्माता के दोष-निवारक उपायों से **अव्यत** रक्षा किया जाता है ।।१।।

भावार्थ– जगन्माता की उपासना से मनुष्य के दोष दूर होते हैं और उसमें सद्गुण आ जाते हैं।।१।।

१२७५. एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा के दर्शन का विषय है ।

पदार्थ– **त्रितस्य** धारणावती बुद्धि से बहुत अधिक बढ़े हुए उपासक की **योषणः** ध्यानवृत्तियां **एतम्** इस **हरिम्** दोषहर्ता **इन्दुम्** रसनिधि परमेश्वर को **इन्द्राय पीतये** जीवात्मा द्वारा पिये जाने के लिए **अद्रिभिः** प्रणव-जप आदि रूप सिल-बट्टों से **हिन्वन्ति** प्रेरित करती हैं।।२।।

भावार्थ– योगाभ्यास द्वारा मनुष्य परमात्मा का साक्षात्कार करने में समर्थ हो सकता है ।।२।।

१२७६. एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
गच्छञ्जारो न योषितम् ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा की कृपा का वर्णन है ।

पदार्थ– **योषितम्** पत्नी के पास **गच्छन्** प्रेम से जाते हुए **जारः न** पति के समान **गच्छन्** धार्मिक प्रजा के पास प्रेम से जाता हुआ **एषः स्यः** यह वह सोम अर्थात् रसागार परमेश्वर **श्येनः न** सूर्य के समान **मानुषीषु विक्षु** मानवी प्रजाओं में **आसीदति** स्थित है ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थः– पति जैसे पत्नी से स्नेह करता है वैसे ही परमेश्वर धार्मिक प्रजा से स्नेह करता है । जैसे आकाश में स्थित सूर्य सब प्रजाओं को भौतिक प्रकाश देकर अनुगृहीत करता है वैसे ही परमेश्वर दिव्य प्रकाश देकर ।।३।।

---

१. ऋ० ९।३८।१, 'रथोऽव्यो वारेभिरर्षति' इति पाठः ।

२. ऋ० ९।३२।२, साम० ७७१। उभयत्र 'आदीं त्रितस्य' इति भेदः, ऋषिश्च श्यावाश्व आत्रेयः । ऋ० ९।३८।२।

३. ऋ० ९।३८।४।

१२७७. एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः। य इन्दुर्वारमाविशत् ॥४॥[1]

अगले मन्त्र में चन्द्रमा के वर्णन द्वारा जीवात्मा का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– प्रथम चन्द्र के पक्ष में । ग्रहण से मोक्ष के बाद के चन्द्रमा का वर्णन करते है **एषः स्यः** यह वह **मद्यः** मोददायी, **रसः** चांदनी का रस बरसाने वाला, **दिवः शिशुः** आकाश के शिशु के समान विद्यमान चन्द्रमा **अव चष्टे** पूर्णतः प्रकाशित हो गया है, **यः इन्दुः** जो चन्द्रमा पहले **वारम्** सूर्य और चन्द्रमा के मध्य पृथिवी के आ जाने से आवरण में **आविशत्** प्रविष्ट हो गया था ॥

द्वितीय जीवात्मा के पक्ष में । **एषः स्यः** यह वह **मद्यः** आनन्दित करने योग्य, **रसः** रस पीने वाला **दिवः शिशुः** तेजस्वी परमात्मा को पुत्र के समान प्रिय जीवात्मा **अवचष्टे** परमात्मा का दर्शन कर रहा है, **यः इन्दुः** जो जीवात्मा, पहले **वारम्** परमात्मा के दर्शन को रोकने वाले भोग्य जगत् के प्रति **आविशत्** आकृष्ट था॥४॥

यहां श्लेषालंकार है । 'दिवः शिशुः' में लुप्तोपमा है। 'रसः' की रसवर्षक वा रसपायी में लक्षणा है॥४॥

भावार्थ– चन्द्रग्रहण पूर्णमासी को ही होता है । ग्रहणकाल में चन्द्रमा अंशतः या पूर्णतः अन्धकार से ढक जाता है । धीरे-धीरे उसका मोक्ष होता है । पूर्ण मोक्ष के पश्चात् वह पहले के समान पूर्ण चन्द्रमा के रूप में भासित होने लगता है । यह विज्ञानसंमत प्राकृतिक घटना है, पौराणिक राहु-केतु का वृत्तान्त काल्पनिक ही है । वैसे ही जीवात्मा भी भोग्य जगत् के प्रति आकृष्ट होकर उससे ग्रसा जाता है । उससे मोक्ष के अनन्तर ही वह परमात्मा का साक्षात् कर पाता है ॥४॥

१२७८. एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन् योनिमभि प्रियम् ॥५॥[2]

अगले मन्त्र में जीवात्मा काा शरीर में जन्म वर्णित है ।

पदार्थ– एषः स्यः यह वह **धर्णसिः** देह को धारण करने वाला **हरिः** जीवात्मा **पीतये** कर्मफलों का स्वाद लेने के लिए **सुतः** उत्पन्न किया हुआ **क्रन्दन्** क्रन्दन करता हुआ **प्रियं योनिम् अभि** जन्म में कारणभूत प्रिय माता-पिता की ओर **अर्षति** जाता है ॥५॥

भावार्थ– माता के गर्भ में दस महीने तक लेटा रहा शिशु बाहर निकल कर कर्मफलों का भोग करता हुआ और श्रेष्ठ नवीन कर्म करता हुआ उन्नति करे ॥५॥

१२७९. एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥६॥[3]

अब देह में स्थित जीवात्मा के साधनों का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– एतं त्यम् इस उस देहधारी जीवात्मा को **अपस्युवः** ज्ञान और कर्म के उपार्जन की इच्छुक **दश हरितः** दस इन्द्रियां **मर्मृज्यन्ते** अतिशय अलंकृत करली हैं, **याभिः** जिन दस इन्द्रियों से वह **मदाय** सुखभोगार्थ **शुम्भते** शोभित होता है ॥६॥

---

१. ऋ० ९।३८।५ ।
२. ऋ० ९।३८।६ ।
३. ऋ० ९।३८।३।

भावार्थ— यदि शरीर में ज्ञान प्राप्त करने वाला और कर्म करने वाला जीवात्मा मन, बुद्धि एवं प्राणों सहित ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप साधनों को न प्राप्त करे तो कैसे सफल हो सकता है ।।६।।

इस खण्ड में जीवात्मा और परमात्मा के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।

दशम अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

।।५।। अथ 'एष वाजी' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य षड्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रियमेध आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२८०. एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन् मनसस्पतिः। अव्यं वारं वि धावति।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा का विषय वर्णित है ।

पदार्थ— वाजी बलवान्, और **नृभिः हितः** मनुष्यों द्वारा अन्तःकरण में धारण किया गया **विश्ववित्** सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, **मनसः पतिः** मन का अधीश्वर **एषः** यह सोम परमेश्वर **अव्यम्** अविनश्वर, **वारम्** वरणीय जीवात्मा के पास **वि धावति** शीघ्रता से पहुंचता है ।।१।।

भावार्थ— जैसे पिता प्यारे पुत्र के पास पहुंचता है, वैसे ही परमत्मा जीवात्मा के पास प्रेम से पहुंचता है।।१।।

१२८१. एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ।।२।।[2]

आगे ब्रह्मानदरस का विषय वर्णित है ।

पदार्थ— देवभ्यः शरीर में स्थित आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण आदियों के लिए **सुतः** अभिषुत किया गया **एषः सोमः** यह ब्रह्मानन्द-रस **पवित्रे** पवित्र अन्तरात्मा में **अक्षरत्** टपका है, और **विश्वा धामानि** सब अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि कोशों में **आविशन्** व्याप्त हो रहा है ।।२।।

भावार्थ— अन्तरात्मा के पवित्र होने पर ही ब्रह्मानदरस का अनुभव होता है ।।२।।

१२८२. एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में जीवात्मा द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का विषय कहा गया है ।

पदार्थ— अमर्त्यः अमरणशील, **वृत्रहा** विघ्नों का विनाशक, **देववीतमः** दिव्यगुणों को अत्यधिक प्राप्त करने वाला **एष देवः** यह स्तोता जीव **योनौ अधि** परमात्मारूप घर में **शुभायते** शोभित होता है ।।३।।

---

१. ऋ० ९।२८।१, 'अव्यो वारं इति भेदः ।

२. ऋ०९।२८।२ ।

३. ऋ० ९।२८।३।

भावार्थ– जैसे गृहस्वामी की घर से शोभा होती है वैसे ही जीवात्मा की परमात्मा को प्राप्त करने से शोभा होती है ।।३।।

१२८३. एष वृषा कनिक्रदद् दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ।।४।।[1]

अगले मन्त्र में जीवात्मा का कर्तव्य वर्णित है ।

पदार्थ– **वृषा** बलवान् और **दशभिः जामिभिः** दस अंगुलियों से अर्थात् अंगुलियों के समान आपस में सम्बद्ध दस यम-नियमों से **यतः** नियन्त्रित हुआ **एषः** यह सोम जीवात्मा **द्रोणानि अभि** सांसारिक भोगों के प्रति **धावति** दौड़े ।।४।।

भावार्थ– सांसारिक भोगों में अति आसक्ति उचित नहीं है ।।४।।

१२८४. एष सूर्यमरोचयत् पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ।।५।।

अगले मन्त्र में परमात्मा का कर्तृत्त्व और महत्त्व वर्णित किया गया है ।

पदार्थ– **एषः** इस **पवमानः** क्रियाशील सोम परमात्मा ने **द्यवि अधि** द्युलोक में **सूर्यम्** सूर्य को **अरोचयत्** चमकाया है, और **मदः** आनन्दमय यह परमात्मा **पवित्रे** पवित्र अन्तरात्मा में **मत्सरः** आनन्दजनक होता है।।५।।

भावार्थ– बाहरी जगत् में सूर्य, चाँद, तारावलि आदि में और अन्दर के जगत् मन, मस्तिष्क आदि में जो कर्तृत्व और महत्त्व दिखायी देता है वह सब परमात्मा का ही है।।५।।

१२८५. एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता । पतिर्वाचो अदाभ्यः ।।६।।

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– **संवसानः** सब को अपने तेज से आच्छादित करता हुआ **एषः** यह सोम परमेश्वर **विवस्वता** अन्धकार को दूर करने वाले **सूर्येण** सूर्य के साथ **हासते** स्पर्धा करता है । और **अदाभ्यः** जिसे दबाया या पराजित नहीं किया जा सकता ऐसा यह **वाचः पतिः** वाणी का भी स्वामी है ।।६।।

भावार्थ– परमेश्वर सूर्य, बिजली आदि से भी अधिक तेजस्वी और वाचस्पतियों का भी मूर्धन्य है।।६।।

इस खण्ड में परमात्मा और जीवात्मा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

दशम अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

।।६।। अथ 'एष कवि' इत्यादिकस्य षष्ठस्य षड्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नृमेघ आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२८६. एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप द्विषः ।।१।।[2]

---

१. ऋ० ९।२८।४।

२. ऋ० ९।२७।१, 'द्विषः' इत्यत्र 'स्रिधः' इति पाठः ।

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का विषय है ।

पदार्थ— अभिष्टुतः स्तुति किया हुआ **कविः** मेधावी, क्रान्तद्रष्टा **एषः** यह सोम परमेश्वर **पुनानः** अन्तःकरण को पवित्र करता हुआ **द्विषः** द्वेषवृत्तियों को **अपघ्नन्** मार भगाता हुआ **पवित्रे अधि** पवित्र अन्तरात्मा में **तोशते** प्रदीप्त होता है ।।१।।

भावार्थ— मलिन दर्पण में जैसे प्रतिबिम्ब भासित नहीं होता वैसे ही मलिन अन्तरात्मा में परमेश्वर प्रकाशित नहीं होता ।।१।।

१२८७. एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ।।२।।[1]

आगे पुनः वही विषय है ।

पदार्थ— स्वर्जित् परमानन्द का विजेता, **दक्षसाधनः** बलदायक **एषः** यह सोम परमेश्वर **इन्द्राय** मन के हितार्थ और **वायवे** प्राण के हितार्थ **पवित्रे** पवित्र अन्तरात्मा में **परि षिच्यते** चारों और से सींचा जा रहा है।।२।।

भावार्थ— उपासक के अन्तरात्मा में परमात्मा के प्रकट हो जाने पर मन, बुद्धि, प्राण आदि सभी बलवान् हो जाते हैं।।२।।

१२८८. एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ।।३।।[2]

आगे फिर परमात्मा का ही विषय है ।

पदार्थ— दिवः मूर्धा तेज का शिरोमणि, **वृषा** सुख की वर्षा करने वाला, **विश्ववित्** सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, **वनेषु** एकान्त जंगलों में **नृभिः** उपासक मनुष्यों से **सुतः** ध्यान द्वारा प्रकट किया गया **एषः** यह **सोमः** रसमय परमेश्वर, उनके द्वारा **वि नीयते** विशेष रूप से जीवन में लाया जाता है ।।३।।

भावार्थ— उपासक लोग परमात्मा का साक्षात्कार करके उसे अपने जीवन का अंग बना लें ।।३।।

१२८९. एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ।।४।।[3]

आगे फिर पुनः परमात्मा का विषय वर्णित है ।

पदार्थ— एषः यह **गव्युः** उपासकों को वेद-वाणियाँ प्राप्त कराना चाहता हुआ, **हिरण्ययुः** यश और ज्योति प्राप्त कराना चाहता हुआ, **सत्राजित्** एक साथ सब काम, क्रोध आदि शत्रुओं को जीत लेने वाला, **पवमानः** पवित्रताकारक, **इन्दुः** आनन्दरस से भिगोने वाला तेजस्वी परमेश्वर **अचिक्रदत्** हमें अपने समीप बुला रहा है ।।४।।

---

१. ऋ० ९।२७।२।

२. ऋ० ९।२७।३ ।

३. ऋ० ९।२७।४

भावार्थ– परमेश्वर सदा ही उपासकों के साथ मित्रता स्थापित करने के लिए उद्यत रहता है ।।४।।

१२९०. एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ।।५।।[1]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– **एषः** यह **शुष्मी** बलवान्, **वृषा** आनन्दवर्षक, **हरिः** पापों को हरने वाला **इन्दुः** रसमय परमेश्वर **इन्द्रम्** जीवात्मा को **आ पुनानः** चारों ओर से पवित्र करता हुआ **अन्तरिक्षे** मनोमय कोश में **असिष्यदत्** प्रवाहित हो रहा है ।।५।।

भावार्थ– जैसे अन्तरिक्ष में स्थित चन्द्रमा चांदनी के रस को प्रसारित करता है वैसे ही हृदय-प्रदेश में स्थित परमेश्वर आनन्द-रस को प्रवाहित करता है ।।५।।

१२९१. एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ।।६।।[2]

आगे पुनः परमात्मा का वर्णन है ।

पदार्थ– **एषः** यह **शुष्मी** बलवान् **अदाभ्यः** दबाया या हराया न जा सकने वाला, **देवावीः** दिव्यगुणों का रक्षक, **अघशंसहा** पापप्रशंसक भावों को नष्ट करने वाला **सोमः** प्रेरक परमेश्वर **पुनानः** पवित्रता देता हुआ **अर्षति** सक्रिय है ।।६।।

भावार्थ-परमेश्वरात् प्रेरणां प्राप्य सर्वै पवित्रहृदयैर्भाव्यम् ।।६।।

इस खण्ड में परमात्मा का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।

दशम अध्याय में पंचम खण्ड समाप्त ।

।।७।। अथ 'स सुतः' इत्यादिकस्य सप्तमस्य षड्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** राहूगण आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२९२. स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ।।१।।[3]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की उपासना का फल बताया गया है ।

पदार्थ– **पीतये** रसास्वादन करने के लिए **सुतः** उपासना किया गया **सः** वह **वृषा** आनन्द की वर्षा करने वाला **सोमः** रसमय परमेश्वर **पवित्रे** पवित्र अन्तरात्मा में **अर्षति** पहुँच रहा है । **देवयुः** दिव्यगुण प्रदान करना चाहता हुआ वह **रक्षांसि** पापों को **विघ्नन्** विशेष रूप से नष्ट कर रहा है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से अन्तरात्मा में दिव्यगुण आते हैं और दोष नष्ट होते हैं।।१।

१२९३. स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ।।२।।[4]

अब कैसा परमेश्वर क्या करता हुआ कहां जाता है यह कहते हैं ।

---

१. ऋ० ९।२७।६ ।
२. ऋ० ९।२८।६।
३. ऋ० ९।३७।१।
४. ऋ० ९।३७।२।

पदार्थ— **सः** वह **विचक्षणः** विशेष द्रष्टा, **धर्णसिः** दिव्य गुण-कर्म-स्वभावों का धारण करने वाला, **हरिः** पाप हरने वाला परमेश्वर **कनिक्रदत्** उपदेश देता हुआ **योनिम् अभि** अपने निवासगृहभूत जीवात्मा को लक्ष्य करके **पवित्रे** पवित्र हृदय में **अर्षति** पहुंचता है ।।२।।

भावार्थ— पवित्रात्मा लोग ही परमेश्वर की प्राप्ति के अधिकारी होते हैं।।२।।

१२९४. स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमेश्वर किसे शुद्ध करता है ।

पदार्थ— **सः** वह **वाजी** बलवान्, **रक्षोहा** पापनाशक **पवमानः** पवित्रता देने वाला सोम परमेश्वर **दिवः** द्युलोक के **रोचनम्** दीप्त पिण्ड सूर्य को, और **अव्ययम्** अविनश्वर **वारम्** दोषनिवारक जीवात्मा को **विधावति** विविध रूप से शुद्ध करता है ।।३।।

भावार्थ— परमेश्वर यदि शुद्धिकर्ता न हो तो सब जगह मलिनता का साम्राज्य छा जाए ।।३।।

१२९५. स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यं सह ।।४।।[2]

अगले मन्त्र में परमेश्वर का उपकार वर्णित है ।

पदार्थ— **सः** उस **पवमानः** क्रियाशील और पवित्रकर्ता परमेश्वर ने **त्रितस्य** तृतीय लोक द्यौ के **सानवि अधि** शिखर पर **जामिभिः सह** बन्धुभूत नक्षत्रों के साथ **सूर्यम्** सूर्य को **अरोचयत्** चमकाया है ।।४।।

भावार्थ— परमेश्वर द्युलोक में सूर्य और तारावलि को चमकाता है और बिना ही आधार के धारण करता है यह उसका उपकार कौन नहीं मानेगा? ।।४।।

१२९६. स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ।।५।।[3]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा का विषय है ।

पदार्थ— **सः** वह **वृत्रहा** विघ्ननाशक, **वृषा** सुखवर्षी, **वारिवोवित्** एश्वर्य प्राप्त कराने वाला, **अदाभ्यः** अपराजेय, **सुतः** उपासना किया गया **सोमः** रस का खजाना परमेश्वर **असरत्** उपासकों को प्राप्त होता है, **वाजम् इव** जैसे कोई वीर युद्धक्षेत्र को प्राप्त होता है ।।५।।

---

१. ऋ० ९।३७।३, 'रोचुना' इति भेदः ।

२. ऋ० ९।३७।४

३. ऋ० ९।३७।५ ।

यहां उपमालंकार है ।।५।।

भावार्थ– जैसे कोई वीर सेनापति युद्धभूमि में पहुँच कर अपने पक्ष के योद्धाओं को विजय दिलाता है, वैसे ही परमेश्वर उपासकों के पास पहुँचकर उन्हें विजयोपहार देता है ।।५।।

१२९७. स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणनि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में जीवात्मा का विषय है ।

पदार्थ– **कविना** मेधावी गुरु से **इषितः** प्रेरित **सः** वह **देवः** स्तुतिकर्ता **इन्दुः** तेजस्वी जीवात्मा **इन्द्राय** परमात्मा को **मंहयन्** आत्मसमर्पण करता हुआ **द्रोणानि अभि** लक्ष्यों की ओर **विधावति** वेग से दौड़ता है ।।६।।

भावार्थ– परमात्मा के प्रति आत्मसमर्पण करने से जीवात्मा में कोई विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिससे वह सब विघ्नों को दूर फेंकता हुआ लक्ष्य तक जा पहुँचता है ।।६।।

इस खण्ड में परमात्मा और जीवात्मा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

दशम अध्याय में षष्ठ खण्ड समाप्त ।

।।८।। अथ 'यः पावमानी' इत्यादिकस्याष्टमस्य षड्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** पवित्र आङ्गिरसो वसिष्ठो मैत्रावरुणिर्वा उभौ वा । **देवता** पवमानाध्येतृस्तुतिः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

१२९८. यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में वेद के अध्ययन का फल वर्णित है ।

पदार्थ– **यः** जो मनुष्य **ऋषिभिः संभृतं रसम्** वेद के रहस्य को जानने वाले ऋषियों ने जिनके रस का आस्वादन किया है ऐसी **पावमानीः** पवमान देवता वाली ऋचाओं का **अध्येति** अर्थज्ञानपूर्वक अध्ययन करता है **सः** वह **मातरिश्वना** वायु से **स्वदितम्** स्वादु बनाये गये **सर्वम्** सब **पूतम्** पवित्र भोज्य पदार्थ को **अश्नाति** खाता है ।।१।।

यहां पावमानी ऋचाओं का अध्ययन सब पवित्र भोज्य पदार्थों के आस्वादन के समान तृप्तिकारी होता है इस प्रकार उपमा में पर्यवसान होने के कारण निदर्शना अलंकार है ।।१।।

---

१. ऋ० ९।३७।६, 'मंहयन्' इत्यत्र 'मंहना' ।

२. ऋ० ९।६७।३१।

भावार्थ— वैदिक ऋचाओं के अर्थज्ञानपूर्वक अध्ययन से और उसके अनुकूल आचरण से अध्ययन करने वालों का महान् कल्याण होता है ।।१।।

१२९९. पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में फिर वेदाध्ययन का फल कहा गया है ।

पदार्थ— यः जो मनुष्य **ऋषिभिः संभृतं रसम्** वेद के रहस्य जानने वाले ऋषियों ने जिनके रस का आस्वादन किया है ऐसी **पावमानीः** पवमान देवता वाली ऋचाओं का **अध्येति** अर्थज्ञानपूर्वक अध्ययन करता है **तस्मै** उस मनुष्य के लिए **सरस्वती** वेदमाता **क्षीरम्** दूध, **सर्पिः** घी, **मधु** शहद और **उदकम्** स्वच्छ जल **दुहे** स्वयं दुह देती है ।।

वेद में अन्यत्र भी कहा गया है —मैने वरदात्री वेदमाता की स्तुति की है, आप लोग भी उसका अध्ययन-स्तवन करो, क्योंकि वह द्विजों को पवित्र करने वाली है । वह मुझ वेदाध्येता को आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मवर्चस् देकर मेरे आत्मलोक ब्रह्मलोक में निवास करने लगी है। (अथ०१९।७१।१) ।।२।।

भावार्थ— वेद का अध्ययन करके और उसके अनुकूल आचरण करके जो पुरुषार्थी होता है वह सब सम्पदाओं को प्राप्त कर सकता है ।।२।।

१३००. पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ।।३।।

आगे फिर वेद के अध्ययन का ही फल वर्णित है।

पदार्थ— पावमानीः पवमान देवतावाली ऋचाएं **हि** निश्चय ही **स्वस्त्ययनीः** कल्याण प्राप्त कराने वाली, **सुदुघाः** मधुर दूध देने वाली, और **घृतश्चुतः** घी चुआने वाली होती हैं। इनके अध्ययन से **ऋषिभिः** वेदरहस्यवेत्ता ऋषिजन **रसः** आनन्द-रस को **संभृतः** आस्वादन करते हैं, और **ब्राह्मणेषु** वेदपाठी ब्राह्मणों को **अमृतम्** दुःखमोक्षरूप अमृतत्व **हितम्** प्राप्त होता है ।।३।।

यहां 'सुदुघाः' और 'घृतश्चुतः' इन शब्दों के अर्थ से पावमानी ऋचाएं दुधारू गायें हैं यह व्यङ्ग्यार्थ निकलता है ।।३।।

भावार्थ— वेदों के अध्ययन से कर्मयोगी होकर लोग सब लौकिक और आध्यात्मिक सम्पदा प्राप्त कर लेते हैं ।।३।।

---

१. ऋ० ९।६७।३२।

१३०१. पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम्।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥४॥

अगले मन्त्र में वेदाध्ययन से हमें क्या प्राप्त हो यह आकांक्षा व्यक्त की गयी है।

पदार्थ— पावमानीः पवमान देवता वाली ऋचाएं **नः** हमारे **इमं लोकम्** इहलोक को **अथ उ** और **अमुम्** परलोक को **दधन्तु** सहारा लगायें। **देवैः** वेदवेत्ता विद्वानों द्वारा **समाहृताः** पढ़ायी गयी वे **देवीः** अर्थप्रकाशक ऋचाएं **नः** हमारे **कामान्** मनोरथों को **समर्द्धयन्तु** पूर्ण करें ॥४॥

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिए कि वे वेदों के अध्ययन से स्फूर्ति और सत्प्रेरणा प्राप्त कर इस लोक को, परलोक को और सब मनोरथों को समृद्ध करें ॥४॥

१३०२. येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥५॥

अगले मन्त्र में फिर वेदाध्ययन हमें क्या प्राप्त कराये यह कहा गया है।

पदार्थ— देवाः दिव्यगुणों से युक्त विद्वान् लोग **येन पवित्रेण** जिस पवित्र ब्रह्मानन्द से **आत्मानम्** अपने आत्मा को **सदा** हमेशा **पुनते** पवित्र करते हैं, **तेन सहस्रधारेण** उस हजार धाराओं से बहने वाले दिव्य आनन्द से **पावमानीः** पवमान देवता वाली ऋचाएं **नः** हमें **पुनन्तु** पवित्र करें ॥५॥

भावार्थ— पावमानी ऋचाओं के गान से और उनमें वर्णित रसमय परमात्मा में ध्यान लगाने से कोई अद्वितीय दिव्य आनन्दरस का प्रवाह बहता हुआ उपासकों के चित्तों को पवित्र कर जाता है ॥५॥

१३०३. पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥६॥

आगे वेदाध्ययन का फल वर्णित करते हैं।

पदार्थ— पावमानीः पवमान देवता वाली ऋचाएं **स्वस्त्ययनीः** कल्याण करने वाली हैं। **ताभिः** उन ऋचाओं से वेदों का अध्ययन करने वाला **नान्दनम्** आनन्द के धाम मोक्ष को **गच्छति** पा लेता है, **पुण्यान् च** और पुण्यों से प्राप्त **भक्षान्** भोगों को **भक्षयति** भोगता है, **अमृतत्वं च** और अमृतस्वरूप को **गच्छति** प्राप्त कर लेता है ॥

मोक्षधाम का वर्णन वेद में इस प्रकार से किया गया है– "जहां आनन्द हैं, मोद हैं, तृप्तियां हैं, प्रमोद हैं, जहां मनोरथ करने वाले के मनोरथ पूर्ण होते हैं, उस मोक्षधाम में ले जाकर मुझे अमर कर दो। हे इन्दु! हे रसागार सोम परमात्मन्! मुझ आत्मा के लिए तुम आनन्द को चुआओ" (ऋ० ९।११३।११) ॥६॥

भावार्थ– पावमानी ऋचाओं के अर्थज्ञानपूर्वक गान से और तदनुकूल आचरण करने से अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति होती है ॥६॥

इस खण्ड में पावमानी ऋचाओं के अध्ययन का फल अमृतत्व आदि वर्णित होने से और पूर्व खण्ड में परमात्मा-जीवात्मा का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

दशम अध्याय में सप्तम खण्ड समाप्त ।

॥९॥ अथ 'अगन्म' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ॥

१ २   ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१३०४. अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥१॥[1]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की प्राप्ति का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– यः जो अग्रनेता परमेश्वर **स्वे** अपने **दुरोणे** ब्रह्माण्डरूप और जीवात्मारूप घर में **समिद्धः** प्रदीप्त हुआ **दीदाय** भासित होता है, उस **यविष्ठम्** सर्वाधिक युवा, **चित्रभानुम्** अद्भुत प्रकाश वाले, **उर्वी रोदसी** विस्तीर्ण द्यावापृथिवी के **अन्तः** अन्दर **स्वाहुतम्** जिसने अपनी आहुति दी हुई है ऐसे, **विश्वतः प्रत्यञ्चम्** सब जगह व्याप्त परमेश्वर को **महा नमसा** महान् नमस्कार के साथ, हम **अगन्म** प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ– जो सूक्ष्मदर्शी लोग हैं वे आकाश-पृथिवी में सर्वत्र परमात्मा की ही विभूति को देखते हैं ॥१॥

२ ३ १र   २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१३०५. स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्नि ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
१ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान् गृणत उत नो मघोनः ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमेश्वर हमें किस तरह उपकृत करे ।

---

१. ऋ० ७।१२।१।

२. ऋ० ७।१२।२, 'नुग्निः ष्टवे' इत सविसर्गः पाठः ।

पदार्थ– **मह्ना** महिमा से **विश्वा** सब **दुरितानि** पाप, दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदियों को **साह्वान्** नष्ट कर देने वाला, **जातवेदाः** सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी **अग्निः** अग्रनायक परमेश्वर **दमे** अन्तरात्मा-रूप घर में **आ स्तवे** प्रतिष्ठा पाता है । **सः** वह परमेश्वर **नः** हमें **अवद्यात्** निन्दनीय **दुरितात्** पाप से **रक्षिषत्** बचाये। **गृणतः** अर्चना करने वाले **अस्मान्** हम स्तोताओं को **उत्** और **नः** हमारे **मघोनः** धनिक पुत्र, पौत्र, पत्नी आदि की **रक्षिषत्** रक्षा करे ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा को ध्या कर, उससे शुभ प्रेरणा पाकर हम और हमारे सम्बन्धी जन सब दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख आदि को दूर कर देवें ।।२।।

१३०६. त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति करते हुए उससे प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक परमात्मन्! **त्वम्** आप **वरुणः** पापों के निवारक **उत** और **मित्रः** विपत्ति से बचाने वाले मित्र हो । **वसिष्ठाः** अतिशय विद्या के ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् उपासक लोग **मतिभिः** स्तुतियों से **त्वाम्** आपको **वर्धन्ति** बढ़ाते हैं, अर्थात् जन-जन में प्रसारित करते हैं। **त्वे** आपमें विद्यमान **वसु** ऐश्वर्य **सुषणनानि** सुप्राप्य **सन्तु** होवें । **यूयम्** आप **स्वस्तिभिः** योग-क्षेमों द्वारा **सदा** हमेशा **नः** हमारी **पात** रक्षा करते रहो ।।३।।

भावार्थ– जो कुछ भी ऐश्वर्य हमारे हाथ में है वह सब परमात्मा द्वारा प्रदत्त ही है ।।३।।

।।१०।। अथ 'महाँ इन्द्रो' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वत्सः काण्वः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

तत्रादौ परमात्मविषयमाह ।

१३०७. महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– **यः इन्द्रः** जो परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर **वृष्टिमान् पर्जन्यः इव** वृष्टिजल से परिपूर्ण मेघ के समान **ओजसा** बल से **महान्** महान् है, वह **वत्सस्य** अपने पुत्र मानव की **स्तोमैः** प्रशस्तियों से **वावृधे** बढ़ता है।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

---

१. ऋ० ७।१२।३।

२. ऋ० ८।६।१, अथ० २०।१३८।१ ।

भावार्थ– जैसे पुत्र की प्रशस्तियों से पिता प्रशस्त होता है, वैसे ही पहले से ही बादल के समान महान भी परमेश्वर मानव की प्रशस्तियों से और अधिक महान् हो जाता है॥१॥

२ ३ २ ३ १२ २र३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१३०८. कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधा ॥२॥[1]

आगे पुनः उसी विषय को कहते हैं

पदार्थ– यत् जब **कण्वाः** मेधावी स्तोता लोग **इन्द्रम्** विघ्ननाशक, परमैश्वर्यवान् परमात्मा को **स्तोमैः** स्तोत्रों से **यज्ञस्य** अपने १०० वर्ष चलने वाले जीवन-यज्ञ का **साधनम्** साधक **अक्रत** बना लेते हैं, तब वे **आयुधा** रक्षा के साधनभूत शस्त्रास्त्रों को **जामि** अनावश्यक **ब्रुवते** कहने लगते हैं अर्थात् जीवन-यज्ञ को तो परमात्मा ने ही सिद्ध कर दिया, इन संगृहीत किये हुए शस्त्रास्त्रों से क्या लाभ? इस प्रकार हथियारों को व्यर्थ बताने लगते हैं॥२॥

भावार्थ– परमात्मा के प्रति आत्म-समर्पण करके उसका रक्षण सबको प्राप्त करना चाहिए॥२॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
१३०९. प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥३॥[2]

अगले मन्त्र में सत्य का विषय है।

पदार्थ– यत् जब **वह्नयः** ब्रह्मयज्ञ को वहन करने वाले उपासक लोग **पिप्रतः** पालनकर्ता, **ऋतस्य** सत्य के **प्रजाम्** उत्पादक परमेश्वर को **प्रभरन्त** अन्तरात्मा में धारण कर लेते हैं, तब वे **विप्राः** विद्वान् जन **ऋतस्य** सत्य के **वाहसा** प्रचारक हो जाते हैं॥३॥

भावार्थ– सत्यज्ञान और सत्यकर्म के आदर्श रूप परमात्मा का अनुभव करके और अपने जीवन में सत्य को लाकर ही सत्य का प्रचार आसानी से हो सकता है॥३॥

इस खण्ड में परमात्मा का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है यह जानना चाहिए॥

दशम अध्याय में अष्टम खण्ड समाप्त।

॥११॥ अथ 'पवमानस्य' इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** शतं वैखानसाः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः॥

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २
१३१०. पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत। जीरा अजिरशोचिषः ॥१॥[3]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की धाराओं का वर्णन है।

पदार्थ– पवमानस्य अन्तरात्मा को पवित्र करने वाले, **जिघ्नतः** दोषों को विनष्ट करने वाले, **हरेः** चित्ताकर्षक परमात्मा की **चन्द्राः** आनन्ददायिनी **अजिरशोचिषः** अक्षय प्रकाश वाली **जीराः** शीघ्रग्रामिनी आनन्द-धाराएं **असृक्षत** छूट रही हैं॥१॥

---

१. ऋ० ८।६।३, अथ० २०।१०३।३, उभयत्र 'आयु धम्' इति पाठः।
२. ऋ० ८।६।२, अथ० २०।१३८।२।
३. ऋ० ९।६६।२५, 'जिघ्नतो' इत्यत्र जङ्घ्नतो'।

भावार्थ– परमात्मा की आनन्द-धाराओं में डुबकी लगाकर स्तोता जन निर्मल अन्तःकरण वाले होकर कृतकृत्य हो जाते हैं ।।१।।

१३११. पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुणों का वर्णन है ।

पदार्थ– **पवमानः** पवित्रकर्ता जगत्स्रष्टा परमेश्वर **रथीतमः** रथियों में श्रेष्ठ, **शुभ्रेभिः** शुभ्र गुण-कर्मों से **शुभ्रशस्तमः** अतिशय निर्मल यश वाला, **हरिश्चन्द्रः** मनोहर आह्लाद देने वाला, और **मरुद्गणः** प्राण-रूप या पवन-रूप गणों वाला है ।।२।।

भावार्थ– सूर्य, चांद, पवन, बिजली आदि और मानवशरीर जिसके बनाये हुए रथ है, ऐसे अत्यन्त यशस्वी, परमानन्ददायक, प्राण आदि को चलाने वाले परमेश्वर का ज्ञान सबको पाना चाहिए ।।२।।

१३१२. पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रकर्ता सोम परमात्मन् ! **वाजसातमः** अत्यधिक बल को देनेवाले आप **स्तोत्रे** मुझ उपासक को **सुवीर्यम्** सुवीर्य से युक्त गुण-समूह **दधत्** प्रदान करते हुए **रश्मिभिः** तेज की किरणों के साथ **व्यश्नुहि** प्राप्त होवो ।।३।।

भावार्थ– जगदीश्वर का स्तोता उससे तेज, बल, वीर्य, सत्य, अहिंसा, न्याय, दया, उदारता आदि प्राप्त करके अतिशय कीर्तिशाली हो जाता है ।।३।।

।।१२।। अथ 'परीतो' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः)। **देवता-** पवमानः सोमः । **छन्दः–** १,२ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती), ३ द्विपदा विराट् पक्तिः । **स्वरः** १ मध्यमः, २-३ पञ्चमः ।।

१३१३. परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३ऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ।।१।।[3]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५१२ क्रमांक पर सोमरस के पक्ष में और भक्तिरस के विषय में की जा चुकी है । यहां ब्रह्मानन्द-रस का विषय वर्णित करते हैं ।।

---

१. ऋ० ९।६६।२६ ।

२. ऋ० ९।६६।२७, 'पवमानो व्यश्नवद्' इति प्रथमः पादः ।

३. ऋ० ९।१०७।१, यजु० १९।२, साम० ५१२।

पदार्थ— हे मनुष्यो ! तुम **इतः** इस रसमय परमात्मा-रूप सोम में से **सुतम्** निकले हुए आनन्द-रस को **परि सिञ्चत** चारों ओर बरसाओ, **यः सोमः** जो रस का भंडार परमात्मा **उत्तमं हविः** सबसे अधिक उत्कृष्ट ग्राह्य वस्तु है, **नर्यः** मनुष्यों का हित करने वाला **यः** जो सोम परमात्मा **दधन्वान्** उपासकों को सहारा देने वाला होता है, और जिस **सोमम्** रसनिधि परमात्मा को, उपासक **अद्रिभिः** ध्यानरूप सिलबट्टों से **अप्सुअन्तः** प्राणों के अन्दर **आ सुषाव** अभिषुत करता है ।।१।।

भावार्थ— उपासकों को चाहिए कि परब्रह्म के पास से परमानन्द प्राप्त करके उसे दूसरों के लिए भी बरसायें ।।१।।

१३१४. नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः ।
सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ।।२।। [1]

अगले मन्त्र में परमात्मा को सम्बोधन किया गया है ।

पदार्थ— हे सोम! हे रसनिधि परमात्मन्! **नूनम्** निश्चय ही **अविभिः** अपनी रक्षाओं से **पुनानः** हमें पवित्र करते हुए, **अदब्धः** किसी से न हराये जा सकने वाले, **सुरभिंतरः** अतिशय सौरभमय आप **परि स्रव** आनन्द-रस को प्रवाहित करो । **अन्धसा** आनन्द-रस के साथ **अप्सु** हमारे कर्मों में **सुते चित्** आपके परिस्रुत होने पर **उत्तरम्** अत्यन्त उत्कृष्ट **त्वा** आपको **गोभिः** आत्मा, मन, एवं बुद्धि से **श्रीणन्तः** पकाते हुए अर्थात् ध्याते हुए, हम **मदामः** मुदित होते हैं।।२।।

भावार्थ— परमात्मा में ध्यान से रक्षा, पवित्रता, सद्गुणों की सुगन्ध और परमानन्द प्राप्त होते हैं।।२।।

१३१५. परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ।।३।। [2]

अगले मन्त्र में परमात्मा के ध्यान का विषय है ।

पदार्थ— देवमादनः विद्वानों को आनन्दित करने वाला, **क्रतुः** कर्ममय अर्थात् जगद्धारण के कर्मों का कर्ता, **विचक्षणः** विशेष रूप से सबका द्रष्टा, **इन्दुः** तेजस्वी और रस से भिगोने वाला परमेश्वर **चक्षसे** दर्शनार्थ, अर्थात् साक्षात्कार के लिए **परि स्वानः** हमसे ध्यान किया जाता है ।।३।।

भावार्थ— परमात्मा का साक्षात्कार करके हम भी उसके समान दूसरों को आनन्दित करने वाले, कर्मयोगी, विवेकदृष्टि से सम्पन्न, तेजस्वी और परोपकारी बनें ।।३।।

।।१३।। अथ 'असावि सोमो' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसुर्भारद्वाजः। **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।।

१३१६. असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ।।१।। [3]

---

१. ऋ० ९।१०७।२, 'चित्त्वा' इति द्वितकारः पाठः ।
२. ऋ० ९।१०७।३ 'सुवानश्चक्षसे' इति पाठः ।
३. ऋ० ९।८२।१, 'पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम्' इत्युत्तरार्धः । साम० ५६२ ।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां सोम ओषधि का विषय और जीवात्मा का विषय वर्णित किया जा रहा है ।

पदार्थ– प्रथम सोमौषधि के पक्ष में । **अरुषः** चमकीले, **वृषा** रसवर्षक, **हरिः** हरे रंग के **सोमः** ओषधिराज सोम में से **असावि** मैंने रस निकाला है । **दस्मः** दर्शनीय यह, मानो **गाः अभि** गाय के दूध में मिलने के लिए **अचिक्रदत्** बोल रहा है, **राजा इव** जैसे कोई राजा **दस्मः** शत्रुओं का विनाशक होता हुआ **गाः अभि** शत्रुओं की भूमियों पर आक्रमण करके **अचिक्रदत्** जयघोष करता है । हे ओषधिराज सोम! **पुनानः** शुद्ध किये-जाते हुए तुम **अव्ययं वारम् अत्येषि** भेड़ के बालों से बनी हुई दशापवित्र नामक छन्नी में से छनकर पार होते हो । देखो, यह ओषधिराज सोम **घृतवन्तम्** घृतयुक्त **योनिम्** यज्ञगृह में **आसदत्** आया है, **श्येनः न** जैसे वायु **घृतवन्तम्** जल-कणों से युक्त **योनिम्** अन्तरिक्ष में **आसदत्** आता है ।।

द्वितीय जीवात्मा के पक्ष में । **सोम** प्रेरक जीवात्मा **असावि** ऐश्वर्यवान् किया गया है । **अरुषः** ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशमान, **वृषा** ज्ञानवर्षक, **हरिः** देहरूप रथ को चलाने वाला, **दस्मः** शत्रुओं का विनाशक यह आत्मा **गाः अभि** इन्द्रियों को लक्ष्य करके **अचिक्रदत्** कर्तव्य-अकर्तव्य का उपदेश करे, **राजा इव** जैसे कोई राजा **गाः अभि** प्रजाओं को लक्ष्य करके **अचिक्रदत्** राजनियमों की घोषणा करता है । हे जीवात्मन्! तू **पुनानः** स्वयं को पवित्र करता हुआ **वारम् अति** रुकावट डालने वाले विघ्नों को पार करके **अव्ययम्** अविनश्वर परमात्मा को **एषि** प्राप्त कर। **श्येनः न योनिम्** बाज पक्षी जैसे उड़ान भरने के लिए अन्तरिक्ष को प्राप्त करता है, वैसे ही यह आत्मा **घृतवन्तम्** तेजस्वी **योनिम्** जगत् के कारण परमात्मा को **आसदत्** प्राप्त करे।।१।।

यहां श्लेष और श्लिष्टोपमा अलंकार हैं। प्रथम व्याख्या में 'अभि गा अचिक्रदत्' में व्यङ्ग्योत्प्रेक्षा है।।१।।

भावार्थ– जैसे पक्षी उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंच जाते हैं वैसे ही मनुष्य उन्नति करके-परमात्मा को प्राप्त करें ।।१।।

१३१७. पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में पुनः सोम नाम से सोम ओषधि और जीवात्मा का वर्णन है ।

पदार्थ– प्रथम सोम ओषधि के पक्ष में । **महिषस्य** महान्, **पर्णिनः** पत्तों या डंठलों वाले इस ओषधिराज सोम का **पर्जन्यः** बादल **पिता** पिता है । यह सोम **पृथिव्याः नाभा** भूमि के केन्द्रस्थलों में और **गिरिषु** पर्वतों पर **क्षयम्** निवास को **दधे** धारण करता है । बादल से **स्वसारः आपः** बहिनों के समान साथ-साथ चलने वाली जल-धाराएं **गाः अभि** भूमि-प्रदेशों की ओर **उद् आ सरन्** ऊपर से आती हैं। इस प्रकार **अध्वरे** वर्षारूप यज्ञ के **वीते** प्रवृत्त होने पर वे जल **गाः** भूमियों को **ग्रावभिः** प्राणों से **सं वसत** आच्छादित कर देते हैं ।।

अथर्ववेद में भी कहा गया है कि वर्षा के साथ भूमि पर प्राण बरसता है– प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् (अथ० ११।४।५) ।।२।।

---

१. ऋ० ९।८२।३, 'उदासरन्' इत्यत्र 'उतासरन्' 'वसते' इत्यत्र 'नसते' इति भेदः ।

द्वितीय जीवात्मा के पक्ष में । **महिषस्य** महत्त्वशाली, **पार्णिनः** ज्ञान-कर्म रूप पंखों वाले इस सोम नामक जीवात्मा का **पिता** देह में जन्मदाता और पालनकर्ता **पर्जन्यः** मेघवत् सुखवर्षक परमात्मा है । यह आत्मा **पृथिव्याः** पार्थिव शरीर के **नाभा** केन्द्रभूत हृदय में, और **गिरिषु** पर्वत के समान उन्नत मस्तिष्क-प्रकोष्ठों में **क्षयं** निवास को **दधे** धारण करता है । **स्वसारः** शरीर में रखी हुई **आपः** ज्ञानवाहक तन्तु-नाड़ियाँ **गाः अभि** ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की ओर **उदासरन्** ऊपर से आती हैं, और **अध्वरे** ज्ञान-यज्ञ तथा कर्म-यज्ञ के **वीते** प्रवृत्त होने पर **ग्रावभिः** ग्राह्य विषयों के साथ **संवसते** मिलती हैं, जिससे मन सहित ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान का ग्रहण और मनसहित कर्मेन्द्रियों से कर्म संपन्न होता है ।।२।।

यहां श्लेषालंकार है ।।२।।

भावार्थ– वर्षा से जो भूमि पर सोम आदि ओषधियां उत्पन्न होती हैं और प्राण बरसता है तथा शरीर में जो जीवात्मा मनसहित ज्ञानेन्द्रियों वा कर्मेन्द्रियों से ज्ञान ग्रहण करता वा कर्म करता है वह सब जगदीश्वर के ही कर्तृत्व को प्रकट करता है ।

१३१८. कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में जीवात्मा को उद्बोधन दिया गया है ।

पदार्थ– हे सोम! हे शान्तिप्रिय जीवात्मन्! **कविः** मेधावी तू **वेधस्या** महान् कार्य को करने की इच्छा से **माहिनम्** महान् परमात्मा की **पर्येषि** उपासना कर । **मृष्टः** ब्रुश से रगड़कर साफ किये गये **अत्यः न** घोड़े के समान **मृष्टः** यम, नियम आदि से शोधित तू , विजयप्राप्ति के लिए **वाजम् अभि** देवासुरसंग्राम में **अर्षसि** जा । हे **सोम** जीवात्मन्! **दुरिता** दुर्गुण, दुर्व्यसन आदियों को **अपसेधन्** दूर करता हुआ तू **नः** हमें **मृड** सुखी कर, और **घृता** तेजों को **वसानः** धारण करता हुआ तू **निर्णिजम्** शुद्ध रूप को **परियासि** प्राप्त कर सोम ओषधि के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए। सोम ओषधि का रस **माहिनम्** महान् द्रोणकलश में जाता है, शुद्ध किया जाकर **वाजम्** यज्ञ में ले जाया जाता है, पान करने पर **दुरितानि** दुर्विचारों को दूर करके सद्विचारों को उत्तेजित करता है और **घृता** जलों के साथ मिलता है ।।३।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा की उपासना, देवासुरसंग्राम में विजय, दुरितों के ध्वंस, पुण्यकर्मों की समृद्धि और तेज को धारण करके योग-क्षेम को सिद्ध करें ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा के ध्यान से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का, जीवात्मा के उद्बोधन का और प्रसंगतः सोम ओषधि के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

दशम अध्याय में नवम खण्ड समाप्त

---

१. ऋ० ९।८२।२ 'नो मृड' इत्यत्र 'मृळय' 'घृता' इत्यत्र 'घृतं' इति भेदः ।

॥१४॥ अथ 'श्रायन्त' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नृमेध आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ॥

१३१९. श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २६७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की गयी थी । यहां भी वही विषय वर्णित है ।

पदार्थ– **श्रायन्तः इव** भोजन आदि को पकाते हुए मनुष्य जैसे **सूर्यम्** सूर्य का उपयोग करते हैं, अर्थात् सौर चूल्हा बनाकर उस पर भोजन पकाते हैं, वैसे ही तुम **इन्द्रस्य** ऐश्वर्यशाली परमात्मा के, अर्थात् परमात्मा से उत्पन्न किये हुए **विश्वा इत् वसूनि** जल, अग्नि, बिजली, वायु, ओषधी आदि सभी धनों को **भक्षत** यथायोग्य सेवन करो । **जातः** वह प्रसिद्ध परमात्मा **ओजसा** अपने प्रताप से **जनिमानि** सभी उत्पन्न वस्तुओं को धारण करता है । हम उसका **प्रति दीधिमः** ध्यान करते हैं, **भागं न** जैसे कोई अपने प्राप्तव्य दायभाग का ध्यान करता है ॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ– जैसे सूर्य हमारे लिए प्राणों का स्रोत है वैसे ही परमेश्वर से रचे हुए सभी पदार्थ अत्यधिक हितकर हैं। उनका यथायोग्य उपयोग सबको करना चाहिए ॥१॥

१३२०. अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में मनुष्य को परमात्मोपासना की प्रेरणा दी गयी है ॥

पदार्थ– हे मानव! तू **अलर्षिरातिम्** शोभास्पद दान वाले, **वसुदाम्** धन के दाता इन्द्रनामक परमैश्वर्यवान् परमात्मा की **उप स्तुहि** समीपता से स्तुति कर । **इन्द्रस्य** परमैश्वर्यशाली परमात्मा की **रातयः** **दान-परम्पराएं** **भद्राः** कल्याण करने वाली होती हैं। **मनः** अपने मन को **दानाय** देने के लिए **चोदयन्** प्रेरित करता हुआ **सः** वह इन्द्र परमात्मा **विधतः** पूजा करने वाले **अस्य** इस उपासक के **कामम्** मनोरथ को **न रोषति** असफल नहीं करता अर्थात् उसका अभीष्ट उसे देता ही है ॥२॥

---

१. ऋ० ८।९९।३, य० ३३।४१, अथ० २०।५८।१, सर्वत्र 'वसूनि जाते जनमान् ओजसा प्रति भागं न दीधिमः' इति पाठः । साम० २६७ ।

२. ऋ० ८।९९।४, अथ० २०।५८।२, उभयत्र 'अनर्शरातिं', 'सोअस्य' इति पाठः।

भावार्थ– जो जिसके हित के लिए होता है वह उसे जगदीश्वर देता है ।।२।।

।।१५।। अथ 'यत इन्द्र' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य द्वयृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भर्गः प्रगाथः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रागाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१३२१. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्व ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक २७४ क्रमांक पर परमात्मा और राजा को सम्बोधित की गयी थी । यहां जगदीश्वर और आचार्य से प्रार्थना है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर वा विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्यवर! हम **यतः** जिस अज्ञान, पाप, दुर्व्यसन, चोर, बाघ आदि से **भयामहे** डरते हैं **ततः** उससे **नः** हमें **अभयम्** निर्भयता **कृधि** प्रदान करो । हे **मघवन्** निर्भयतारूप धन के धनी ! **शग्धि** हमें शक्ति दो । **तव** आपका **तत्** वह अभयदान **नः** हमारी **ऊतये** रक्षा के लिए होवे । आप **द्विषः** द्वेषवृत्तियों को **वि** विनष्ट कर दो, **मृधः** हिंसावृत्तियों को वा काम, क्रोध आदियों को **वि जहि** विनष्ट कर दो ।।१।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर अपने उपासकों को निर्भय करता है, वैसे ही आचार्य को भी चाहिए कि वह विद्या पढ़ाने के साथ-साथ निर्भयता आदि गुण भी विद्यार्थियों के अन्दर उत्पन्न करे ।।१।।

१३२२. त्वं हि राधसस्पते राधसो मह : क्षयस्यासि विधर्ता।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में फिर जगदीश्वर और आचार्य को सम्बोधन है ।

पदार्थ– हे **राधसः पते** सकल ऋद्धि-सिद्धियों के अधीश्वर जगदीश वा आचार्यवर! **त्वं हि** आप **महतः** महान्, **क्षयस्य** निवासक, **राधसः** विद्या, तप, तेजस्विता आदि रूप धन के **विधर्ता** विशेष रूप से धारण करने वाले **असि** हो । हे **मघवन्** विद्या आदि के दानी, **गिर्वणः** वाचस्पति **इन्द्र** अविद्या आदि के विदारक जगदीश्वर वा आचार्य **सुतावन्तः** श्रद्धारस का उपहार लिये हुए **वयम्** हम उपासक वा विद्यार्थी **त्वा** आपको **हवामहे** पुकार रहे हैं।।२।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर सब गुणों का अधिपति है, वैसे ही आचार्य वही हो सकता है जो विद्वान्, वाणी पर अधिकार रखने वाला, तपस्वी, जितेन्द्रिय और शिक्षणकला में कुशल हो ।।२।।

इस खण्ड में जगदीश्वर और आचार्य के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

दशम अध्याय में दशम खण्ड समाप्त ।

---

१. ऋ० ८।६१।१३, 'तन्न ऊतिभिर्' इति भेदः। अथ० १९।१५।१, 'त्वं न ऊतिभिर्' इति भेदः। साम० २७४।
२. ऋ० ८।६१।१४ 'राधसस्पते', 'विधर्ता' इत्यत्र क्रमेण 'राधस्पते', 'विध्रतः' इति पाठः ।

॥१६॥ अथ 'त्वं सोमासि' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ॥

१३२३. त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे। पवस्व मंहयद्रयिः ॥१॥[1]

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर के गुणों का वर्णन करके उससे प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **सोम** जगत् के रचयिता रसनिधि परमात्मन्! **त्वम्** आप **धारयुः** आनन्द-धाराओं को देने के इच्छुक, **मन्द्रः** तृप्त करने वाले, और **ओजिष्ठः** सबसे अधिक ओजस्वी **असि** हो । **मंहयद्रयिः** जिनका धन वृद्धि प्रदान करने वाला वा कीर्ति देने वाला है ऐसे आप **अध्वरे** जीवन-यज्ञ में **पवस्व** हमें पवित्र करते रहो ॥१॥

भावार्थ– सब मनुष्य परमात्मा की आराधना करके पुण्य, धन, आनन्द और सन्तुष्टि को अपने जीवन में प्राप्त करें॥१॥

१३२४. त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः। इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि आराधना किया गया परमेश्वर क्या करता है ।

पदार्थ– हे परमात्मन्! **इन्दुः** तेजस्वी **त्वम्** आप **सुतः** आराधना किये हुए **मदिन्तमः** अतिशय प्रसन्न, **दधन्वान्** धारणकर्ता, **मत्सरिन्तमः** अत्यन्त आनन्द देने वाले, **सत्राजित्** एक साथ उपासक के सब काम, क्रोध आदि रिपुओं को जीत लेने वाले और **अस्तृतः** स्वयं सदा अहिंसित होते हो ॥२॥

भावार्थ– सच्चे हृदय से की गयी परमेश्वर की उपासना बहुत से फलों को देने वाली होती है ॥२॥

१३२५. त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत्। द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥३॥[3]

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे पवित्र करने वाले, रस के भण्डार परमेश्वर! **अद्रिभिः** प्रणव-जप रूप सिलबट्टों से **सुष्वाणः** अभिषुत किये जाते हुए **त्वम्** आप **कनिक्रदत्** पुनः-पुनः उपदेश करते हुए **अभ्यर्ष** हमें प्राप्त होवो, और **द्युमन्तम्** तेज से युक्त **शुष्मम्** आत्म-बल **आ भर** प्रदान करो ॥३॥

भावार्थ– उपासक यदि परमात्मा के पास से कर्तव्य-अकर्तव्य का उपदेश, तेजस्विता और आत्मबल नहीं प्राप्त कर पाता तो उसकी उपासना में कोई त्रुटि है ऐसा समझना चाहिए ॥३॥

॥१७॥ अथ 'पवस्व' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मनुराप्सवः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ॥

१३२६. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥१॥[4]

---

१. ऋ० ९।६७।१ ।
२. ऋ० ९।६७।२ 'मदिन्तमो' इत्यत्र नृमादनो' इति पाठः, 'इन्द्राय सूरिरन्धसा' इतिच तृतीयः पादः ।
३. ऋ० ९।६७।३ 'शुष्ममुत्तमम्' इति भेदः।
४. ऋ० ९।१०६।७, साम० ५७१ ।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५७१ क्रमांक पर ब्रह्मानन्द-रस के विषय में की गयी थी। यहां भी उसी विषय का वर्णन करते हैं।

पदार्थ— हे **इन्दो** रस के भिगोने वाले परमेश्वर! **देववीतये** दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए **धाराभिः** आनन्द की धाराओं के साथ **ओजसा** वेगपूर्वक **पवस्व** हमारे अन्तःकरण में बहो। हे **सोम** रस के भण्डार! **मधुमान्** मधुर आप **नः** हमारे **कलशम्** जीवात्मारूप कलश में **आ सदः** आकर स्थित होवो ।।१।।

भावार्थ— परमात्मा के ध्यान में मग्न योगी लोग परमात्मा के पास से अपनी मनोभूमि में झरते हुए आनन्द-रस के झरने का साक्षात् अनुभव करते हैं।।१।।

१३२७. तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः।
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा के आनन्दरसों का वर्णन है।

पदार्थ— हे सोम! हे रसागार परमेश्वर! **तव** आपके **द्रप्साः** वेग से बहने वाले आनन्द-रस **उदप्रुतः** अन्तःकरण में तरंगें उठाने वाले होते हैं। वे **इन्द्रम्** जीवात्मा को **मदाय** तृप्तिलाभ के लिए **वावृधुः** बढ़ाते हैं। **देवासः** विद्वान् लोग **कम्** सुन्दर, सर्वोपरि विराजमान, सुखस्वरूप **त्वाम्** आपको **अमृताय** अमर पद की प्राप्ति के लिए **पपुः** पान करते हैं।।२।।

भावार्थ— परमेश्वररूप हिमालय से निकली हुई आनन्द-रस की नदी में ही स्नान करके योगी लोग मोक्ष-पद के अधिकारी होते हैं, भौतिक गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों में स्नान करके नहीं ।।२।।

१३२८. आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय का वर्णन है।

पदार्थ— हे **सुतासः** अभिषुत किये हुए **इन्दवः** ब्रह्मानन्द-रसो! **पुनानाः** पवित्र करते हुए तुम **नः** हमें **रयिम्** सद्गुणों का ऐश्वर्य **आ धावत** प्राप्त कराओ। हे **रीत्यापः** वेग से प्रवाहित होने वाले ब्रह्मानन्दो! तुम **वृष्टिद्यावः** मस्तिष्क से विज्ञान की वृष्टि करने वाले, और **स्वर्विदः** दिव्य प्रकाश प्राप्त कराने वाले हो ।।३।।

भावार्थ— ब्रह्मानन्द द्वारा अन्तरात्मा के प्रकाशित और पवित्र हो जाने पर मस्तिष्क-भूमि भी उपजाऊ होकर विविध ज्ञान-विज्ञान आदि को उत्पन्न करती हुई योगी को उपकृत करती है ।।३।।

।।१८।। अथ 'परि त्यं' इत्यादिकस्याष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अम्बरीषो वार्षागिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** अनुष्टुप्। **स्वरः** गान्धारः ।।

१३२९. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ९।१०६।८।

२. ऋ० ९।१०६।९।

३. ऋ० ९।९८।७, साम ५५२, १६८१।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५५२ क्रमांक पर जीवात्मा की शुद्धि के विषय में की गयी थी। यहां गुरु-शिष्य का विषय कहते है।

पदार्थ– हर्यतम् प्रिय, **हरिम्** विद्या ग्रहण करने के शील वाले, **बभ्रुम्** अज्ञान आदि दोषों से धूसर आत्मा वाले **त्यम्** उस विद्यार्थी को, गुरुजन **वारेण** दोष-निवारक यम, नियम आदि से **परि पुनन्ति** परिशुद्ध करते हैं, **यः** जो विद्यार्थी **मदेन सह** उत्साह के साथ **विश्वान् इत् देवान्** सभी विद्वान् गुरुजनों के पास **परिगच्छति** पहुंचता है ।।१।।

भावार्थ– गुरुओं का यह कर्तव्य है कि वे प्यारे विद्यार्थियों के दोषों को निवारण करके उन्हें विद्वान् और प्रशस्त चरित्र वाला बनायें ।।१।।

१३३०. द्विर्यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम्।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में फिर गुरु-शिष्य का विषय है।

पदार्थ– स्वयशसम् अपनी कीर्ति से युक्त, **अद्रिसंहतम्** पर्वत के समान दृढ अङ्गों वाले, **इन्द्रस्य प्रियम्** कुलपति आचार्य के प्रिय, **काम्यम्** अन्यों से भी चाहे जाने वाले **यम्** जिस विद्यार्थी को **द्विः पञ्च** दो पंजे अर्थात् दस **सखायः** सहयोगी विद्वान् गुरु लोग **ऊर्मयः** जल की तरंगों के समान होकर **प्र स्नापयन्ते** ज्ञान-नदी में स्नान कराते हैं, वह प्रशस्त होता है ।।२।।

यहां 'ऊर्मयः' में लुप्तोपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– चार वेद और छह वेदांग ये दस विद्याएं हैं। प्रत्येक विद्या के लिए एक-एक गुरु हो तो दस गुरु हो जाते हैं। वेदांगों में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष से छह विद्यायें ग्रहण करनी चाहिएं, उनके प्रतिपादक वर्तमान ग्रन्थ नहीं, क्योंकि मनुष्यप्रणीत उन उत्तरवर्ती ग्रन्थों का संकेत वेदों में नहीं हो सकता ।।२।।

१३३१. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ।।५।।[2]

अगले मन्त्र में गुरुजन कह रहे हैं।

पदार्थ– हे **सोम** ज्ञानरस! तू **वृत्रघ्ने** व्रतपालन द्वारा दोषों को विनष्ट करने वाले, **नरे** पुरुषार्थी, **दक्षिणावते** गुरुदक्षिणा देने वाले, **वीराय** शूरवीर, **सदनासदे** गुरुकुलरूप सदन में निवास करने वाले **इन्द्राय** बिजली के समान तीव्र बुद्धि वाले विद्यार्थी के **पातवे** पान के लिए **परिषिच्यसे** प्रवाहित किया जा रहा है ।।३।।

भावार्थ– विद्यार्थियों को चाहिए कि वे स्वेच्छा से व्रतपालक, तपस्वी, शूर, आश्रम-पद्धति, से गुरुकुल में ही निवास करने वाले और समावर्तन के समय गुरु दक्षिणा देने वाले हों ।।३।।

---

१. ऋ० ९।९८।६, 'सखायो' इत्यत्र 'स्वसारो' इति पाठः। 'प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम्' इति च चतुर्थः पादः।
२. ऋ० ९।९८।१०, 'वीराय' इत्यत्र 'देवाय'। साम० १६७९।

।।१९।। अथ 'पवस्व सोम' इत्यादिकस्यैकोनविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** द्विपदा विराट् पङ्क्तिः । **स्वरः** पञ्चमः।।

१३३२. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४३० क्रमांक पर परमेश्वर और राजा के विषय में की जा चुकी है। यहां गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– हे **सोम** विद्यारस के भण्डार आचार्य ! आप शिष्य के **महे दक्षाय** महान् उत्साह के लिए **पवस्व** ज्ञानधारा को प्रवाहित करो, जिससे वह आपका शिष्य **अश्वः न** सूर्य के समान **निक्तः** शुद्ध, और **वाजी** विद्यावान्, वेगवान् तथा कर्मनिष्ठ होकर **धनाय** धन उपार्जन करने के योग्य हो सके ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– शिक्षा का एक यह भी प्रयोजन है कि शिष्य विद्वान्, बलवान्, वर्चस्वी और शुद्ध हृदय वाला होकर धन कमाने में समर्थ हो सके ।।१।।

१३३३. प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ।।२।।[2]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– हे विद्यार्थी ! **सोतारः** द्वितीय जन्म देने वाले गुरु लोग **सोमं रसम्** ज्ञान-रस को **ते** तेरे **मदाय** आनन्द के लिए और **महे द्युम्नाय** महान् यश के लिए **प्र पुनन्ति** भली-भांति पवित्र कर रहे हैं।।२।।

भावार्थ– परोपकारक, पवित्र, निर्दोष विद्या से ही मनुष्य आनन्दवान् और यशस्वी होता है ।।२।।

१३३४. शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में समावर्तन संस्कार का वर्णन है ।

पदार्थ– **शिशुं जज्ञानम्** नवस्नातक के रूप में आचार्य के गर्भ से द्वितीय जन्म प्राप्त करते हुए, **हरिम्** जिसके दोष हर लिए गये हैं ऐसे **इन्दुम्** तेजस्वी **सोमम्** समावर्तन संस्कार के लिए स्नान किये हुए, विद्या पढ़े हुए ब्रह्मचारी को **पवित्रे** कुशों के आसन पर बैठाकर **देवेभ्यः** माता, पिता आदि को सौंपने के लिए **मृजन्ति** अलंकार धारण कराते हैं।।

समावर्तन संस्कार के समय ब्रह्मचारी के अलंकार-धारण के विषय में पारस्करगृह्यसूत्र २।६। २४-२६ और महर्षिदयानन्दप्रणीत संस्कारविधि ग्रन्थ देखना चाहिए । उनके अनुसार उस समय ब्रह्मचारी नये वस्त्र, उपवस्त्र, फूलमाला, आभूषण आदि धारण करता है ।।३।।

---

१. ऋ० ९।१०९।१०, 'महे' इत्यत्र 'क्रत्वे' । साम० ४३० ।

२. ऋ० ९।१०९।११, 'प्र ते' इत्यत्र 'तं ते' इति भेदः ।

३. ऋ० ९।१०९।१२ ।

भावार्थ— व्रताचारी, विद्यालंकार, वेदालंकार, आयुर्वेदालंकार आदि बने हुए ब्रह्मचारी को आचार्य फूलमाला, आभूषण आदि से अलंकृत करके समावर्तन संस्कार करके द्विज बनाकर माता-पिता को लौटा देवे।।३।।

।।२०।। अथ 'उपो षु' इत्यादिकस्य विंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अमहीयुराङ्गिरसः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र १ २ ३ १ २
१३३५. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भंगं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४८७ क्रमांक पर परमात्मा की प्राप्ति के विषय में और उत्तरार्चिक में ७६२ क्रमांक पर जीवात्मा तथा राजा के विषय में की जा चुकी है। यहां परमात्मा और चन्द्रमा का विषय वर्णित करते हैं।।

पदार्थ— प्रथम परमात्मा के पक्ष में । **सुजातम्** सुप्रसिद्ध, **अप्तुरम्** व्यापक चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि लोकों को वेग से चलाने वाले, **गोभिः** वेद-वाणियों से **भङ्गम्** काम, क्रोध आदि रिपुओं के भंजक, **परिष्कृतम्** गुणों से अलंकृत, **इन्दुम्** तेज से दीप्त वा आनन्द-रसों से भिगोने वाले परमात्मा को **देवाः** विद्वान् लोग वा आत्मा, मन बुद्धि प्राण आदि, बल की प्राप्ति के लिए **उप उ अयासिषुः** प्राप्त करते हैं।।

द्वितीय चन्द्रमा के पक्ष में । **सुजातम्** पृथिवी के सुपुत्र, **अप्तुरम्** अन्तरिक्ष में पृथिवी और सूर्य के चारों ओर दौड़ने वाले, **गोभिः भङ्गम्** कहीं भूमियों में दरार पड़े हुए, और कहीं **परिष्कृतम्** परिष्कृत अर्थात् समतल **इन्दुम्** चन्द्रमा को **देवाः** सूर्य-किरणे **अयासिषुः** प्रकाशित करने के लिए प्राप्त करती हैं।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है ।।१।।

भावार्थ— जैसे सब जड़ पदार्थ और चेतन प्राणी जगदीश्वर के आश्रय से रहते हैं, वैसे ही हमारे सौर लोक के मंगल, बुध, पृथिवी, चन्द्रमा आदि ग्रह-उपग्रह सूर्य के आश्रय से रहते हैं, और सूर्य भी जगदीश्वर के अधीन है।।१।।

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १र २र ३ १ २
१३३६. तमिद् वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदंसनिः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा का विषय है ।

पदार्थ— तम् इत् उस सोम अर्थात् शान्तिदायक परमात्मा को **नः गिरः** हमारी वाणियां **सं वर्धन्तु** बढायें, प्रचारित करें । **शिश्वरीः** समृद्ध दूध वाली दुधारु गायें **वत्सम् इव** जैसे अपने बछड़े को दूध से बढ़ाती हैं। कैसे परमात्मा को ? **यः** जो सोम परमात्मा **इन्द्रस्य** जीवात्मा के **हृदंसनिः** हृदय में रहने वाला है ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ— विद्वान् धार्मिक जनों को चाहिए कि वे अपने उपदेशों से जनता में परमेश्वर के प्रति विश्वास उत्पन्न करें, जिससे सर्वत्र आस्तिकता और धार्मिकता का वातावरण उत्पन्न हो ।।२।।

---

१. ऋ० ९।६१।१३, साम० ४८७, ७६२।
२. ऋ० ९।६१।१४ ।

१३३७. अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३॥[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे **सोम** जगत् के रचयिता शान्तिप्रिय परमात्मन् ! आप **नः** हमारी **गवे** सारी धरती को **शम्** सुख-शान्ति **अर्ष** प्राप्त कराओ, हमें **पिप्युषीम्** समृद्ध **इषम्** अभीष्ट सम्पदा **धुक्ष्व** प्रदान करो । हे **उक्थ्य** स्तुतियोग्य ! **समुद्रम्** सद्गुणों के समुद्र जीवात्मा को अथवा उसमें विद्यमान आनन्द के समुद्र को **वर्ध** बढ़ाओ । जैसे सोम चन्द्रमा जलों के पारावार समुद्र को बढ़ाता है, यह यहां ध्वनित होता है ॥३॥

भावार्थ– परामात्मा की कृपा से और मनुष्यों के प्रयत्न से सारी धरती सुख, शान्ति तथा प्रचुर संपदा प्राप्त करे और उसके निवासी आपस में प्रेम का व्यहार करें ॥३॥

इस खण्ड में परमात्मा, ब्रह्मानन्द और गुरु- शिष्य के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

दशम अध्याय में एकादश खण्ड समाप्त ।

॥२१॥ अथ 'आ घा' इत्यादिकस्यैकविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** त्रिशोकः काण्वः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ॥

१३३८. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १३३ क्रमांक पर अध्यात्म पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है । यहां अध्यात्म विषय और राष्ट्र का विषय वर्णित करते हैं ॥

पदार्थ– **येषाम्** जिन उपासकों का वा प्रजाजनों का **युवा** युवक **इन्द्रः** वीर परमेश्वर वा वीर राजा **सखा** सहायक हो जाता है, और **ये घ** जो **अग्निम्** ईश्वर-भक्ति वा राष्ट्र-भक्ति की अग्नि को **आ इन्धते** अपने अन्तःकरण में प्रदीप्त कर लेते हैं, वे **आनुषक्** निरन्तर **बर्हिः** ब्रह्मयज्ञ वा राष्ट्र यज्ञ को **स्तृणन्ति** फैलाते हैं॥१॥

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर को ही उपास्य रूप में वरण करें । प्रजाजनों को चाहिए कि युवा तथा राष्ट्र की रक्षा में समर्थ मनुष्य को ही राजा रूप में स्वीकार करें और स्वयं राष्ट्रभक्त हों ॥१॥

१३३९. बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२॥[3]

---

१. ऋ० ९।६१।१५, 'समुद्रमुक्थ्यम्' इति भेदः ।

२. ऋ० ८।४५।१, साम० १३३।

३. ऋ० ८।४५।२, 'शस्त्रं' इत्यत्र 'शस्तं' इति पाठः।

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ—येषाम् जिन मनुष्यों का **युवा** युवा **इन्द्रः** वीर परमेश्वर वा वीर राजा **सखा** सहायक हो जाता है, **एषाम्** उनका **बृहन् इत्** महान् ही **इध्मः** प्रताप, **भूरि** बहुत **शस्त्रम्** स्तोत्र वा शस्त्रास्त्र, और **पृथुः** विशाल **स्वरुः** यज्ञ होता है ।।२।।

भावार्थः— परमेश्वर के उपासक तथा श्रेष्ठ राजा को राजसिंहासन पर बैठाने वाले लोग यशस्वी, विजयी यज्ञपरायण बन जाते हैं।।२।।

१३४०. अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में भी उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ— येषाम् जिन लोगों का **युवा** युवा **इन्द्रः** वीर परमेश्वर वा वीर राजा **सखा** सहायक हो जाता है, उनका **शूरः** शूर जीवात्मा वा शूर सेनापति **अयुद्धः इत्** स्वयं दूसरों से युद्ध न किये जा सकने वाला होकर **युधा** देवासुरसंग्राम से **वृतम्** घिरे हुए काम-क्रोध आदि षड्रिपुवर्ग को वा मानव शत्रुदल को **सत्वभिः** अपने पराक्रमों से **आ अजति** मार कर दूर फेंक देता है ।।३।।

भावार्थ— जैसे जगदीश्वर को सखा वरण करके योगसाधक लोग योगमार्ग में आये हुए सब विघ्नों का निवारण कर देते हैं, वैसे ही वीर मनुष्य को राजा वा सेनापति के पद पर अभिषिक्त करके प्रजाजन सब शत्रुओं को विनष्ट कर देते हैं।।३।।

।।२२।। अथ 'य एक' इत्यादिकस्य द्वाविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः । **देवता** इन्द्रः **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ।।

१३४१. य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३८९ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में की गयी थी । यहां परमात्मा और राजा का विषय वर्णित करते हैं।।२।।

पदार्थ— प्रथम परमात्मा के पक्ष में । **यः एक इत्** जो एक ही है, और **दाशुषे** आत्मसमर्पण करने वाले **मर्ताय** मनुष्य को **वसु** श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव रूप ऐश्वर्य **विदयते** विशेष रूप से देता है, **अङ्ग** हे भाई ! वह **ईशानः** सबका शासक **अप्रतिष्कुतः** किसी से प्रतीकार न किया गया **इन्द्रः** इन्द्र नामक परमेश्वर है ।।

द्वितीय राजा के पक्ष में । **यः एकः इत्** जो अकेला ही, सब शत्रुओं को **विदयते** विनष्ट कर सके, और **दाशुषे** कर देने वाले **मर्ताय** प्रजाजन को **वसु** ऐश्वर्य **विदयते** प्रदान करे, और जो **ईशानः** शासन में समर्थ, तथा **अप्रतिष्कुतः** न लड़खड़ाने वाला हो, **अङ्ग** हे भाई ! वही **इन्द्रः** राजा बनाया जाना चाहिए ।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है ।।१।।

---

१. ऋ० ८।४५।३ ।

२. ऋ० १।८४।७, अथ० २०।६३।४, साम० ३८९।

भावार्थ– पाषाण आदि की मूर्ति परमेश्वर नहीं है, प्रत्युत जो एक, निराकार, स्तोताओं को ऐश्वर्य देने वाला सर्वाधीश्वर है वही परमेश्वर नाम से कहा जाता है। इसी प्रकार प्रजाओं द्वारा वही नर राजा रूप में चुना जाना चाहिए जो अकेला भी अनेकों शत्रुओं को हरा सके और अपनी प्रजाओं का रञ्जन करे ॥१॥

१३४२. यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥२॥[1]

आगे फिर वही विषय वर्णित है।

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में। हे परमात्मन्! **बहुभ्यः आ** बहुतों में से **यः चित् हि** जो **सुतावान्** श्रद्धारस को बहाने वाला होकर **त्वा** आपकी **आ विवासति** पूजा करता है वह **तत्** अद्वितीय **उग्रं शवः** प्रचण्ड आत्मबल **पत्यते** प्राप्त कर लेता है। **अङ्ग** हे परमात्मन् वह आप **इन्द्रः** इन्द्र नाम वाले हो ॥

द्वितीय राजा के पक्ष में। हे राजन्! **यः चित् हि** जो प्रजाजन **बहुभ्यः** बहुतों में से **आ** लाकर, चुनकर **सुतावान्** आपका अभिषेक करके **त्वा** आपको **आ विवासति** सत्कृत करता है, वह **तत्** अद्वितीय, **उग्रं शवः** प्रचण्ड बल **पत्यते** प्राप्त कर लेता है। **अङ्ग** हे राजन्! वह आप **इन्द्रः** इन्द्र नाम से कहे जाते हो ॥२॥

यहां श्लेषालंकार है ॥२॥

भावार्थ– जैसे परमेश्वर अपने स्तोताओं को आत्मबल देता है, वैसे ही राष्ट्र में राजा भी प्रजाजनों में आत्मविश्वास उत्पन्न करे ॥२॥

१३४३. कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥३॥[2]

आगे फिर वही विषय है।

पदार्थ– अङ्ग हे भद्र! **इन्द्रः** वीर परमेश्वर वा वीर राजा आप **कदा** कब **अराधसम्** समाज-सेवा न करने वाले स्वार्थपरायण **मर्तम्** मनुष्य को **पदा** पैर से **क्षुम्पम् इव** खुम्भ के समान **स्फुरत्** विचलित कर दोगे, **कदा** कब **नः** हमें **गिरः** अपनी सन्देश-वाणियां **शुश्रवत्** सुनाओगे! ॥३॥

यहां उपमालंकार है ॥३॥

भावार्थ– परमात्मा के समान राजा भी दुष्टों को दण्डित करे और सज्जनों की वाणियां सुने तथा अपनी रमणीय, उपदेशप्रद वाणियां उन्हें सुनाये ॥३॥

---

१. ऋ० १।८४।९, अथ० २०।६३।६।
२. ऋ० १।८४।८।

।।२३।। अथ 'गायन्ति त्वा' इत्यादिकस्य त्रयोविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

१३४४. गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३४२ क्रमांक पर परमेश्वर की अर्चना के विषय में हो चुकी है । यहां भी उसी विषय का वर्णन करते हैं ।।

पदार्थ– हे **शतक्रतो** असंख्यात कर्मों वा प्रज्ञाओं वाले जगदीश्वर! **त्वा** गाये जाने योग्य आपकी **गायत्रिणः** जिन्होंने वेदों के गायत्री आदि प्रशस्त छन्दों का अध्ययन किया हुआ है ऐसे धार्मिक ईश्वरोपासक लोग **गायन्ति** सामवेद आदि के गान द्वारा प्रशंसा करते हैं। **अर्किणः** वेदमन्त्र जिनके ज्ञान के साधन हैं ऐसे लोग **अर्कम्** सब जनों के पूजनीय आपकी **अर्चन्ति** नित्य पूजा करते हैं। **ब्रह्माणः** वेदार्थों को जानकर तदनुसार कर्म करने वाले विद्वान् लोग **त्वा** जगत् के रचयिता आपको **उद्येमिरे** अपने प्रति उद्यमवान् करते हैं, **वंशम् इव** जैसे उत्कृष्ट गुणों और शिक्षाओं से लोग अपने कुल को **उद् येमिरे** उद्यमी बनाते हैं।।१।।[2]

यहाँ उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– सब मनुष्यों को चाहिए कि वे परमेश्वर का ही गान और पूजन करें, क्योंकि उसके तुल्य या उससे अधिक अन्य कोई नहीं है ।।१।।

१३४५. यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में परमेश्वर के सहायक होने का वर्णन है ।

पदार्थ– मनुष्य **यत्** जब **सानोः सानु** एक शिखर से दूसरे उच्चतर शिखर पर, अर्थात् एक लक्ष्य को पार करके उससे ऊंचे दूसरे लक्ष्य पर **आरुहः** चढ़कर पहुंच जाता है, और **भूरि** बहुत से **कर्त्वम्** करने योग्य कार्य को **अस्पष्ट** करता है, **तत्** तब **इन्द्रः** विघ्नविनाशक परमेश्वर, उसके **अर्थम्** उद्देश्य को **चेतति** जान लेता है, और **वृष्णिः** बल, सुख आदि को बरसाने वाला होता हुआ **यूथेन** गुणसमूह के साथ **एजति** उसे प्राप्त होता है ।।२।।

भावार्थ– प्रगति के पथ पर जाते हुए मनुष्य का जगदीश्वर परम सहायक हो जाता है ।।२।।

१३४६. युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ।।३।।[4]

---

१. ऋ० १।१०।१, साम० ३४२ ।

२. यह पदार्थ ऋ० १।१०।१ के दयानन्दभाष्य के पदार्थ के अनुसार है ।

३. ऋ० १।१०।२ 'यत्सानोः सानुमारुहद्' इति प्रथमः पादः।

४. ऋ० १।१०।३, 'युङ्क्ष्वा' इत्यत्र 'युक्ष्वा' ।

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

पदार्थ– हे **सोमपाः** सौम्य गुणों के रक्षक **इन्द्र** परमात्मन्! जैसे आप **केशिना** सूर्य-किरणों से युक्त, **वृषणा** बलवान्, **कक्ष्यप्रा** अपनी-अपनी भ्रमण-कक्षा में वेग से गति करते हुए **हरी** परस्पर आकर्षण से युक्त चन्द्रमा और भूमण्डल को, आपस में जोड़ते हो, वैसे ही **केशिना** जीवात्मा के प्रकाश से युक्त, **कक्ष्यप्रा** अपने-अपने विषय की कक्षा में चलते हुए **हरी** ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ों को **युङ्क्ष्व** परस्पर सहयोग वाला करो। **अथ** इस प्रकार **नः** हमारी **गिराम्** सब प्रार्थना-वाणियों की **उपश्रुतिम्** सुनवाई **चर** करो ।।३।।

यहां श्लिष्ट वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ।।३।।

भावार्थ– जैसे भूलोक और चन्द्रलोक एक-दूसरे के साथ सामंजस्य से वर्तमान हुए सूर्य का परिभ्रमण करते हैं, वैसे ही ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां आपस के सहयोग से मनुष्य का जीवन संचालित करती हैं।।३।।

इस खण्ड में अध्यात्म और राष्ट्र का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।।

दशम अध्याय में द्वादश खण्ड समाप्त ।

दशम अध्याय समाप्त ।

पंचम प्रपाठक में द्वितीय अर्ध समाप्त ।

।।१।। तत्र 'सुषमिद्धो' इत्यादिकस्य प्रथमस्य चतुर्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः । **देवता** १ इध्मः समिद्धो वाग्निः, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१३४७. सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते। होतः पावक यक्षि च ।।१।।[1]

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक तेजस्वी परमेश्वर! **सुसमिद्धः** अन्तरात्मा में भली भांति प्रदीप्त किये हुए आप **नः** हम उपासकों के लिए, और **हविष्मते** दूसरे आत्मसमर्पणकर्ता के लिए **देवान्** दिव्यगुणों को **आ वह** प्राप्त कराओ । **होतः** हे सुख-प्रदाता! **पावक** हे पवित्रकर्ता! आप **यक्षि च** हमारे साथ संगम भी करो ।।१।।

भावार्थ– अपने अन्तरात्मा में परमात्माग्नि को प्रदीप्त करके सब लोग दिव्यगुणी होवें ।।१।।

१३४८. मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे। अद्या कृणुह्यूतये ।।२।।[2]

आगे तनूनपात् परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

---

१. ऋ० १।१३।१, 'सुसमिद्धो' इति पाठः ।

२. ऋ० १।१३।३, 'अद्या कृणुहि वीतये' इति तृतीयः पादः।

पदार्थ– हे **तनूनपात्** देहधारियों को उठाने वाले, **कवे** दूरदर्शी प्रज्ञा वाले परमात्मन्! आप **अद्य** आज **ऊतये** रक्षा के लिए **नः** हमारे **देवेषु** विद्वानों में **यज्ञम्** त्याग-भावना को **कृणुहि** उत्पन्न करो ।।२।।

भावार्थ– राष्ट्रवासियों का जीवन यदि यज्ञमय वा त्यागपूर्ण हो तो राष्ट्र उन्नति की सबसे ऊंची पैढ़ी पर पहुँच सकता है ।।२।।

१३४९. नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमेश्वर कह रहा है ।

पदार्थ– **मधुजिह्वम्** जिसकी जिह्वा में मधु है ऐसे अर्थात् मधुरभाषी, **हविष्कृतम्** आत्मसमर्पण करने वाले, **इह** यहां **प्रियम्** मेरे प्रिय, **नराशंसम्** मनुष्यों से प्रशंसनीय जीवात्मा को **अस्मिन् यज्ञे** इस पारस्परिक मिलनरूप यज्ञ में, मैं **उपह्वये** अपने समीप बुलाता हूं ।।३।।

भावार्थ– जीवात्मा जब आत्मसमर्पण कर देता है तब परमात्मा स्वयं ही उसे अपने समीप ले आता है।।३।।

१३५०. अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह । असि होता मनुर्हितः ।।४।।[2]

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक परमात्मन् ! **ईडितः** पूजा किये हुए, आप **देवान्** दिव्यगुणयुक्त हम विद्वान् उपासकों को, आगामी जन्म में **सुखतमे** सबसे अधिक सुखदायी **रथे** मानवदेह-रूप रथ में **आ वह** जीवनयात्रा कराओ । आप **होता** कर्मफलों के दाता, और **मनुर्हितः** मनुष्यों के लिए हितकारी **असि** हो ।।४।।

भावार्थ– परमेश्वर की उपासना से श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित हुआ मनुष्य आगामी जन्म में भी कर्मों के अनुसार मानव योनि प्राप्त करता है।।४।।

।।२।। अथ 'यदद्य' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता–** आदित्यः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

१३५१. यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ।।१।।[3]

प्रथम मन्त्र में निष्पाप होने की प्रशंसा की गयी है ।

पदार्थ– **यत्** यदि **अद्य** आज **सूरे उदिते** सूर्य के उदय होने पर, मनुष्य **अनागाः** निष्पाप होता है, तो **मित्रः** सबका मित्र, **अर्यमा** न्यायकारी, न्यायानुसार कर्मफलों का दाता, **भगः** भजनीय **सविता** प्रेरक परमेश्वर, उसे, दिनभर **सुवाति** सुत्कर्मों में प्रेरित करता रहता है ।।१।।

भावार्थ– दिन के आरम्भ में यदि श्रेष्ठ विचार रहते हैं तो ऐसी आशा होती है कि परमेश्वर की कृपा से सारा दिन निर्मल व्यतीत होगा ।।१।।

---

१. ऋ० १।१३।३

२. ऋ० १।१३।४ ।

३. ऋ० ७।६६।४ ।

१३५२. सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ।।२।।[१]

अगले मन्त्र में उपासक विद्वान् जनों को सम्बोधन है ।

पदार्थ– हे **सुदानवः** शुभ दान वाले उपासक विद्वान् जनो ! **ये** जो आप लोग **नः** हमारे **अंहः** पाप वा अपराध को **अतिपिप्रति** दूर करते हो, उन आप लोगों के **यामन्** आगमन होने पर **सः क्षयः** वह हमारा निवासगृह **सुप्रावीः** भली भांति प्रकृष्ट रूप से रक्षित **नु** शीघ्र ही **प्र अस्तु** प्रबल रूप से होवे ।।२।।

भावार्थ– कर्तव्य और अकर्तव्य के उपदेशक उपासक विद्वान् जनों के समागम से लोग किसी भी पापकर्म मे प्रवृत्त न होते हुए पुण्यशाली होते हैं ।।२।।

१३५३. उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ।।३।।[२]

अगले मन्त्र में जगन्माता अदिति और विद्वान् जनों का वर्णन है ।।

पदार्थ– उत और **स्वराजः** स्वराज्यसम्पन्न उपासक विद्वान् जन, तथा **अदितिः** अखण्डनीय जगन्माता, **ये** जो **अदब्धस्य** अटूट **व्रतस्य** संकल्प तथा कर्म के **राजानः** राजा हैं, वे **महः** महान् ऐश्वर्य के **ईशते** स्वामी होते हैं अर्थात् महान् ऐश्वर्य देने की क्षमता रखते हैं ।।३।।

भावार्थ– जो लोग परमात्मा की तथा चरित्रवान् विद्वानों की संगति करते हैं वे परमैश्वर्यवान् हो जाते हैं ।।३।।

।।३।। अथ 'उ त्वा' इत्यादिकस्य तृतीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रगाथः काण्वः। **देवता** इन्द्रः **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१३५४. उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ।।१।।[३]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १९४ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी । यहां जीवात्मा को प्रोद्बोधन है ।।

पदार्थ– हे **अद्रिवः** अविदारणीय बल वाले इन्द्र जीवात्मन् ! **त्वा** तुझे **सोमाः** वीर रस **मदन्तु उ** उत्साहित करें । तू **राधः** दिव्य ऐश्वर्य तथा सफलता को **कृणुष्व** उत्पन्न कर । **ब्रह्मद्विषः** ब्रह्मद्वेषी भावों को **अवजहि** विनष्ट कर दे ।।१।।

भावार्थ– अपने आत्म-बल को पहचान कर मनुष्य को महान् कर्म करने चाहिएं और विघ्नों को पराजित करना चाहिए ।।१।।

---

१. ऋ० ७।६६।५ ।

२. ऋ०७।६६।६ ।

३. ऋ० ८।६४।१, अथ० २०।९३।१, साम० १९४ सर्वत्र 'उत् त्वा' इति पाठः ।

१३५५. पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि । न हि त्वा कश्च न प्रति ।।२।।[1]

आगे फिर जीवात्मा को उद्बोधन है ।

पदार्थ– हे इन्द्र जीवात्मन् ! तू **अराधसः** दूसरों के कार्यों को सिद्ध न करने वाले **पणीन्** स्वार्थभावों को **पदा** जैसे पैर की ठोकर मार कर किसी को दूर फेंक देते हैं, वैसे **नि बाधस्व** दूर फेंक दे, तू **महान्** महान् **असि** है, **त्वा** तुझे **कश्च न** कोई भी **प्रति नहि** प्रतिरुद्ध नहीं कर सकता है, अर्थात् तेरे मार्ग में रुकावट नहीं डाल सकता है ।।२।।

यहां 'पदा' में लुप्तोपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे कोई पैर की ठोकर मार कर मार्ग की रुकावट को दूर फेंक देता है, वैस ही जीवात्मा को चाहिए कि विघ्नरूप आन्तरिक शत्रुओं को दूर कर दे ।।२।।

१३५६. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ।।३।।[2]

अब जीवात्मा परमात्मा की स्तुति करता है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जगत् के रचयिता परमात्मन् ! **त्वम्** आप **सुतानाम्** उत्पन्न प्राणियों और पदार्थों के **ईशिषे** स्वामी हो, **त्वम्** आप ही **असुतानाम्** जो अभी उत्पन्न नहीं हुए, किन्तु भविष्य में उत्पन्न होने वाले हैं, उन प्राणियों और पदार्थों के भी स्वामी हो । **त्वम्** आप ही **जनानाम्** मनुष्यों के **राजा** राजा हो ।।३।।

भावार्थ– जीवात्मा के अन्दर जो महान् शक्ति निहित है वह परमात्मा की ही दी हुई है, इस कारण परमात्मा की स्तुति से यहां जीव अपने अभिमान को दूर कर रहा है ।।३।।

यहां उपास्य-उपासक का सम्बन्ध वर्णित होने से, जीवात्मा को उद्बोधन होने से और विद्वान् उपासकों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

ग्यारहवें अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।

।।४।। 'आ जागृवि' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** पराशरः शाक्त्यः । **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** त्रिष्टुप् । स्वरः धैवतः ।।

१३५७. आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ।।१।।[3]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का विषय है ।

---

१. ऋ० ८।६४।२।, अथ० २०।९३।२, उभयत्र पणीँरराधसो इति पाठः।

२. ऋ०८।६४।३, अथ० २० ।९३।३ ।

३. ऋ० ९।९७।३७, 'ऋतं इत्यत्र 'ऋता' इति पाठः ।

पदार्थ— जागृविः जागरुक, **विप्रः** विशेष रूप से पूर्णता प्रदान करने वाला, **मतीनाम्** बुद्धियों के **ऋतम्** व्यापार को **पुनानः** पवित्र करने वाला, **सोमः** सत्कर्मों की प्रेरणा देने वाला परमेश्वर **चमूषु** आत्मा, मन, प्राण आदि में वा सूर्य, चन्द्र, भूमण्डल आदि लोकों में **आ असदत्** नियामक रूप से स्थित है, **यम्** जिस परमेश्वर को **निकामाः** निरन्तर पाने की लौ लगाये हुए, **रथिरासः** उत्कृष्ट शरीर-रथ वाले, **सुहस्ताः** सिद्धहस्त **अध्वर्यवः** उपासना-यज्ञ के इच्छुक **मिथुनासः** स्त्री-पुरुष **सपन्ति** प्राप्त कर लेते हैं ।।१।।

भावार्थ— शरीर और बाह्य जगत् का संचालन जो करता है उस जगदीश्वर की सबको भली-भांति उपासना करनी चाहिए ।।१।।

१३५८. स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा का वर्णन है ।

पदार्थ— सः वह सोम अर्थात् जगत् का रचयिता परमेश्वर **उभे रोदसी** द्यावापृथिवी दोनों को अर्थात् पृथिवी को और द्युलोकवर्ती अन्य ग्रहोपग्रहों को **पुनानः** पवित्र करता हुआ, तथा **सूरे उप** सूर्य की नियन्त्रण-कक्षा में **दधानः** धारण करता हुआ **आ पप्राः** सूर्य के प्रकाश से आपूर्ण करता है । **सः** वह उन द्यावापृथिवियों को **वि आवः च** विस्पष्ट भी करता है । **सतः** विद्यमान **यस्य** जिस सोम परमेश्वर के रचे हुए **प्रिया** प्रिय लगने वाले, **प्रियसासः** प्रिय अभीष्ट को देने वाले पदार्थ **ऊती** सबकी रक्षार्थ होते हैं, वह हमें **धनम्** धन **प्र यंसत्** प्रदान करे, **कारिणे न** जैसे कर्म करने वाले सेवक को वेतन दिया जाता है।।२।।

यहां उपमालंकार है । 'प्रिया, प्रिय' में छेकानुप्रास है ।।२।।

भावार्थ— इस ब्रह्माण्ड में द्युलोक-पृथिवीलोक के धारण आदि की जो भी व्यवस्था दिखाई देती है वह सब परमात्मा द्वारा ही की गयी है । जैसे सेवक को वेतन दिया जाता है, वैसे ही स्तोता को परमात्मा पुरुषार्थ और ऐश्वर्य देता है ।।२।।

१३५९. स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावित् ।
यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में उपासक अपनी कामना प्रकट कर रहा है ।

पदार्थ— वर्धिता बढ़ाने वाला, **वर्धनः** स्वयं बढ़ा हुआ अर्थात् महिमा को प्राप्त, **पूयमानः** उपासकों से प्राप्त किया जाता हुआ, **मीढ्वान्** सुख सींचने वाला, **सोमः** जगत् का रचयिता परमेश्वर **ज्योतिषा** ज्योति के द्वारा **नः** हमारी **अभि आवीत्** रक्षा करे, **यत्र** जिसके आश्रय में विद्यमान **पदज्ञाः**

---

१. ऋ० ९।९७।३८, 'सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः' इति 'स तू धनं' इति च पाठः ।
२. ऋ० ९।९७।३९, 'ज्योतिषावीत्' , 'येना नः', 'अद्रिमुष्णन्' इति भेदः ।

मोक्षपद के ज्ञाता, **नः** हमारे **पूर्वे पितरः** श्रेष्ठ पितृजन **गाः अभि** दिव्य प्रकाश की किरणों को प्राप्त करने के लिए **अद्रिम्** पर्वत के समान रुकावट डालने वाले तमोजाल को **इष्णन्** दूर कर देते हैं, तथा **स्वर्विदः** मोक्ष के आनन्द को प्राप्त करने वाले हो जाते हैं।।३।।

अगले मन्त्र में उपासक अपनी कामना प्रकट कर रहा है ।

पदार्थ– **वर्धिता** बढ़ाने वाला, **वर्धनः** स्वयं बढ़ा हुआ अर्थात् महिमा को प्राप्त, **पूयमानः** उपासकों से प्राप्त किया जाता हुआ, **मीढ्वान्** सुख सींचने वाला, **सोमः** जगत् का रचयिता परमेश्वर **ज्योतिषा** ज्योति के द्वारा **नः** हमारी **अभि आवीत्** रक्षा करे, **यत्र** जिसके आश्रय में विद्यमान **पदज्ञाः** मोक्षपद के ज्ञाता, **नः** हमारे **पूर्वे पितरः** श्रेष्ठ पितृजन **गाः अभि** दिव्य प्रकाश की किरणों को प्राप्त करने के लिए **अद्रिम्** पर्वत के समान रुकावट डालने वाले तमोजाल को **इष्णन्** दूर कर देते हैं, तथा **स्वर्विदः** मोक्ष के आनन्द को प्राप्त करने वाले हो जाते हैं।।३।।

भावार्थ– ज्योतिर्मय परमात्मा की उपासना से मनुष्य भी ज्योतिष्मान् होकर मोक्ष पा लेते हैं।।३।।

।।५।। अथ 'मा चिदन्यद्' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रगाथो घौरः काण्वः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१३६०. मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २४२ क्रमांक पर परमेश्वर की उपासना के विषय में की जा चुकी है। यहां भी वही विषय वर्णित है ।

पदार्थ– हे **सखाय** साथियो! तुम **अन्यत्** परमेश्वर के अतिरिक्त सूर्य, चांद, वृक्ष, स्थाणु, प्रतिमा आदि को **मा चित्** कभी मत **विशंसत** पूजो, **मा रिषण्यत** अपूज्यों की पूजा से हानिग्रस्त मत होवो । **सुते** श्रद्धारस के अभिषुत होने पर **सचा** साथ मिलकर **वृषणम्** आनन्द की वर्षा करने वाले **इन्द्रम् इत्** परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की ही **स्तोत** स्तुति करो, और **मुहुः मुहुः** बार-बार **उक्था च** स्तोत्रों का **शंसत** कीर्तन करो ।।१।।

भावार्थ– एक सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमेश्वर की ही पूजा सबको करनी चाहिए । वेदों में इन्द्र, मित्र, वरुण, आदि बहुत से नामों से एक ही परमेश्वर का प्रतिपादन हुआ है ।।१।।

१३६१. अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि वह परमेश्वर कैसा है ।

---

१. ऋ० ८।१।१, अथ० २०।८५।१, साम० २४२ ।
२. ऋ०८।१।२, 'यथा जुरं', संवननोभयं करं इति भेदः।

पदार्थ— अवक्रक्षिणम् सूर्य आदि लोकों को आकर्षण द्वारा धारण करने वाले, **वृषभं यथा** वर्षा करने वाले बादल के समान **जुवम्** उपासकों के पास पहुंचने वाले, अर्थात् बादल जैसे वर्षाजल के द्वारा भूमि पर पहुंचता है वैसे ही आनन्द के उपहारों के साथ उपासक के पास पहुंचने वाले, **गां न** बिजली के समान **चर्षणीसहम्** दुर्जनों को तिरस्कृत करने वाले, **विद्वेषणम्** द्वेष से रहित, **संवननम्** स्तोताओं से भजनीय, **उभयङ्करम्** द्युलोक-भूलोक दोनों के रचयिता, **मंहिष्ठम्** सबसे बड़े दानी, **उभयाविनम्** निग्रह और अनुग्रह दोनों गुणों से युक्त इन्द्र परमात्मा की **स्तोत** स्तुति करो। [यहां 'स्तोत' यह पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है] ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ— आकाश में बिना ही आधार के आकर्षण रूप डोर से लोक-लोकान्तरों को धारण करने वाले, सज्जनों को उत्साहित करने वाले, दुर्जनों को दण्डित करने वाले, जगत् के रचयिता, परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर की सबको भली-भांति उपासना करनी चाहिए ।।२।।

।।६।। अथ 'उदु त्ये' इत्यादिकस्य षष्ठस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः २ पञ्चमः ।।

१३६२. उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २५१ क्रमांक पर स्तोत्रों के विषय में की गयी थी। यहां स्तोताओं का विषय वर्णित है ।।

भावार्थ— सत्राजितः सत्य को जीतने वाले, **धनसाः** भौतिक और आध्यात्मिक धन की प्राप्ति तथा दान करने वाले **त्ये** वे **मधुमत्तमाः** अतिशय मधुर व्यवहार वाले, **स्तोमासः** स्तोता **गिरः** विद्वान् लोग **रथाः इव** विमान यानों के समान **उदीरते उ** ऊपर जाते हैं अर्थात् उद्यमी होते हैं।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ— परमात्मा के उपासक मन, वाणी और कर्म से सच्चे, परोपकारी, मधुर, बलवान् और पुरुषार्थी होकर अपनी और दूसरों की उन्नति करते हैं।।१।।

१३६३. कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में स्तोताओं की उपलब्धि वर्णित करते हैं।

---

१. ऋ० ८।३।१५, अथ० २०।१०।१, ५९।१, साम० २५१ ।

२. ऋ० ८।३।१६, अथ० २०।१०।२, ५९।२, सर्वत्र 'माशत' इत्यत्र 'मानशुः' इति पाठः।।

पदार्थ— **प्रियमेधासः** जिन्हें मेधा प्रिय है ऐसे **आयवः** मनुष्य **इन्द्रम्** परमेश्वर की **महयन्तः** पूजा करते हुए **स्तोमेभिः** साम के स्तोत्रों से **अस्वरन्** उसकी स्तुति करते हैं। उसके अनन्तर वे **कण्वाः इव** मेधावी ब्रह्म-वर्चस्वी ब्राह्मणों के समान, और **सूर्याः इव** सूर्यों के समान **भृगवः** तेजस्वी होते हुए **विश्वम् इत** सभी **धीतम्** सोचे हुए अभीष्ट को **आशत** प्राप्त कर लेते हैं।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ— परमात्मा के उपासक लोग तेजस्विता और आत्मविश्वास प्राप्त करके पुरुषार्थ करते हुए सब अभीष्ट को पा लेते हैं।।२।।

।।७।। अथ 'पर्यू षु' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषि** त्र्यरुणत्रसदस्यू त्रैवृष्णपौरुकुत्स्यौ । **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** पिपीलिकामध्या अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः।।

२ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१३६४. पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
३ २ ३१ २ ३ १ २
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४२८ क्रमांक पर अपने अन्तरात्मा और वीर पुरुष के प्रोत्साहन के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां परमात्मा का विषय कहते हैं ।

पदार्थ— हे पवमान सोम अर्थात् पवित्र करने वाले जगत्स्रष्टा परमात्मन्! आप **वाजसातये** बल देने के लिए, हमें **सु** भली-भांति **परि प्र धन्व** चारों और से प्राप्त होवो । **सक्षणिः** विघ्नों के विनाशक आप **वृत्राणि** जीवनमार्ग वा योगमार्ग में आये हुए विघ्नों पर **परि प्र धन्व** चारों ओर से आक्रमण कर दो । **ऋणयाः** हमारे ऋषिऋण-देवऋण-पितृऋण को तथा अन्य ऋणों को चुकवाने वाले आप **द्विषः** द्वेषवृत्तियों को **तरध्यै** परास्त करने के लिए **नः ईरसे** हमें प्राप्त होवो ।।

तैत्तिरीय संहिता में तीन ऋण गिनाते हुए कहा गया है कि उत्पन्न होता हुआ ब्राह्मण तीन ऋणों से ऋणी होता है । ऋषियों के प्रति ब्रह्मचर्य से, देवों के प्रति यज्ञ से और पितृजनों के प्रति प्रजा से । जब वह आचार्याधीन ब्रह्मचर्यवास करता है, यज्ञ करता है, और पुत्रवान् हो जाता है तब क्रमशः इन ऋणों से छूट जाता है (तै० सं० ६।३।१०।५)।।१।।

भावार्थ— मनुष्य दूसरों की सहायता का उपयोग करके उनके प्रति ऋणी हो जाता है । माता-पिता, गुरुजन, समाज, राष्ट्र तथा अन्यों के प्रति उसके जो ऋण होते हैं उन्हें परमेश्वर की प्रेरणा से वह उपकार-स्मरण पूर्वक सधन्यवाद चुका देता है ।।१।।

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १२ ३ २३ १ २ ३ १ २
१३६५. अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
१ २ ३ १२ ३ १२
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति की गयी है ।

---

१. ऋ० ९।११०।१, अथ० ५।६।४, साम० ४२८ ।

२. ऋ० ९।११०।३, य० २२।१८

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रकर्ता, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर! आपने **सूर्यम्** सूर्य को **अजीजनः हि** उत्पन्न किया है, और **शक्मना** अपनी शक्ति से **विधारे** विधारक अन्तरिक्ष में **पयः** मेघ-जल को **अजीजनः** उत्पन्न किया है । आप **गोजीरया** भूमण्डल के जीवन की इच्छा से **पुरन्ध्या** बहुत अधिक प्रज्ञा तथा क्रिया द्वारा **रंहमाणः** शीघ्रकारी होते हो ॥२॥

भावार्थ– ब्रह्माण्ड में स्थित सूर्य, विद्युत्, नक्षत्र, बादल आदि सब विलक्षण वस्तुएं परमात्मा ने ही रची हैं, इनके निर्माण में किसी मनुष्य का सामर्थ्य नहीं है । वह सबकी हितकामना से बुद्धिपूर्वक चेष्टा करता है ॥२॥

१३६६. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥३॥[1]

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ४३२ क्रमांक पर परमात्मा, जीवात्मा और राजा को सम्बोधित की गयी थी। यहां परमात्मा के विषय में व्याख्या की जा रही है ।।

पदार्थ– हे **सोम** ब्रह्माण्ड के सम्राट् जगदीश्वर! **महे** महान्, **समर्यराज्ये** देवासुरसंग्राम से प्राप्त आन्तरिक साम्राज्य में, हम **सुतं त्वा** हृदय में प्रकट हुए आपको **अनु** लक्ष्य करके **मदामसि हि** मुदित होते हैं। हे **पवमान** पवित्र करने वाले परमात्मन्! आप **वाजान्** बलों में **अभि प्र गाहसे** अवगाहन करते हो, अतः हमें बल दो, यह भाव है ॥३॥

भावार्थ– अपने अन्तरात्मा में छिपे हुए परमात्मा को प्रकट करके आत्मबल और परम आनन्द प्राप्त किया जा सकता है ॥३॥

॥८॥ अथ 'परि प्र' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** द्विपदा विराट् पंक्ति। **स्वरः** पञ्चमः ॥

१३६७. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४२७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां ब्रह्मानन्द का विषय कहते हैं ।

पदार्थ– हे **सोम** ब्रह्मानन्द रस! **स्वादुः** मधुर स्वाद वाला तू **मित्राय** मित्र, **पूष्णे** पोषणकर्ता, **भगाय** सेवनीय **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए **परि प्र धन्व** प्रवाहित हो ॥१॥

भावार्थः– परमेश्वर के पास से प्रवाहित हुए परमानन्दरस का पान करके जीवात्मा में एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है ॥१॥

१३६८. एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥२॥[3]

---

१. ऋ० ९।११०।२, साम ४३२ ।
२. ऋ० ९।१०९।१, साम० ४२७ ।
३. ऋ० ९।१०९।३

अगले मन्त्र में पुनः ब्रह्मानन्द का विषय है ।

पदार्थ– हे सोम! हे ब्रह्मानन्द! **सः** वह **शुक्रः** पवित्र, **दिव्यः** अलौकिक, **पीयूषः** पान करने योग्य तू **एव** सचमुच **अमृताय** हमारी अमरपद की प्राप्ति के लिए और **महे** महान् **क्षयाय** निवासक धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति के लिए **अर्ष** प्रवाहित हो ।।२।।

भावार्थः– ब्रह्मानन्द रस के पान से मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध कर सकता है ।।२।।

१३६९. इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ।।३।।[1]

आगे फिर उसी विषय में कहा गया है ।

पदार्थ– हे **सोम** ब्रह्मानन्द रस! **सुतस्य** परमात्मा के पास से प्रवाहित हुए **ते** तुझे **क्रत्वे** कर्म करने के लिए और **बलाय** बल की प्राप्ति के लिए **इन्द्रः** जीवात्मा **पेयात्** पान करे, **विश्वे च देवाः** और अन्य सब प्रकाशक मन, बुद्धि ज्ञानेन्द्रियाँ आदि भी पान करें ।।३।।

भावार्थः– ब्रह्मानन्द-रस के पान से मनुष्य आत्मबली और कर्मयोगी होता है ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा और ब्रह्मानन्द का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

ग्यारहवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

१३७०. सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ।।१।।[2]

प्रारंभ में परमात्मा की उपासना का विषय वर्णित करते हैं ।

पदार्थ– सूर्यस्य सूर्य की **रश्मयः इव** किरणों के समान **द्रावयित्नवः** द्रवित करने वाले, **मत्सरासः** तृप्ति देने वाले, **आशवः** वेगगामी, **प्रसुतः** प्रेरित **सर्गासः** हमारे भक्तिरस-प्रवाह **साकम्** एक साथ **ततम्** सर्वत्र फैले हुए, **तन्तुम्** मणियों में सूत्र के समान व्याप्त इन्द्र परमात्मा को **परि ईरते** चारों ओर से प्राप्त हो रहे हैं, क्योंकि **इन्द्रात् ऋते** परमात्मा के अतिरिक्त **किं चन धाम** कोई भी ज्योति **न पवते** पवित्रता नहीं देती है ।।१।।

यहां उपमा है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा की ही उपासना और कृपा से मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र होता है ।।१।।

१३७१. उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ९।१०९।२, 'पियाः' इति पाठः ।

२. ऋ० ९।६९।६, 'प्रसुतः' इत्यत्र 'प्रसुपः' ।

३. ऋ० ९।६९।२, 'सुन्वतामिव' इत्यत्र प्रघ्नतामिव।

अगले मन्त्र में परमात्मा की उपासना का फल वर्णित है ।

पदार्थ– मतिः बुद्धि **उपपृच्यते उ** प्राप्त हो रही है, **मधु** माधुर्य **सिच्यते** सींचा जा रहा है, **आसनि अन्तः** मुख के अन्दर **मन्द्राजनी** आनन्दजनक शब्दों ओंकार, व्याहृति, गायत्री आदि को प्रेरित करने वाली जिह्वा **चोदते** स्तुति-मन्त्रों को प्रेरित कर रही है । **पवमानः** बहता हुआ अथवा अन्तःकरण को पवित्र करता हुआ **सन्तनिः** भली-भांति फैलने वाला, **मधुमान्** मधुर **द्रप्सः** ब्रह्मानन्द-रस **वारम्** दोष-निवारक अन्तरात्मा को **परि अर्षति** प्राप्त हो रहा है, **सुन्वताम् इव** जैसे यजमानों की **पवमानः** गुरुकुल निवास से स्वयं को पवित्र करती हुई, **मधुमान्** मधुर ज्ञान से वा मधुर व्यवहार से युक्त **सन्तनिः** सन्तान स्नातक होकर **वारम्** जन समाज को **परि अर्षति** प्राप्त करती है ॥२॥

यहां श्लिष्टोपमालंकार है । उत्तरार्धगत कारण से पूर्वार्धगत कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। प्, म्, न्, त्, स् की अलग-अगल आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है। 'च्यते' की आवृत्ति में यमक है। शान्तरस है॥२॥

भावार्थ– उपासक के अन्तरात्मा में ब्रह्मानन्द-रस का धाराप्रवाह होने पर विलक्षण मति और विलक्षण माधुर्य अनुभूत होता है ॥२॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
१३७२. उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥३॥[1]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– उक्षा प्राणरूप बैल **मिमेति** डकरा रहा है, **धेनवः** इन्द्रिरूप गायें **प्रति यन्ति** बाह्य विषयों से लौट रही हैं। **देवीः** दिव्यगुणों वाली मनोवृत्तियां **देवस्य** प्रकाशक जीवात्मा के **निष्कृतम्** आश्रय को **उप यन्ति** प्राप्त कर रही हैं। यह सब क्यों हो रहा है? क्योंकि **सोमः** जीवात्मा ने **अति** विघ्नों का अतिक्रमण करके **अर्जुनम्** श्वेत, निर्मल, **अव्ययम्** अविनश्वर, **वारम्** वरणीय परमात्मा की ओर **अक्रमीत्** पग बढ़ाये हैं, और **निक्तम्** शुद्ध **अत्कं न** कवच के समान, उसे **परि अव्यत** चारों ओर धारण कर लिया है ॥३॥

चतुर्थ चरण में उपमालंकार है, उत्तरार्धगत कारण से पूर्वार्धगत कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास भी है ॥३॥

भावार्थ– परमात्मा के प्राप्त हो जाने पर जीव कवचधारी के समान रक्षित हो जाता है ॥३॥

॥१०॥ अथ 'अग्निं नरो' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** विराडनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ॥

---

१. ऋ० ९।६९।४, 'मिमेति' इत्यत्र 'मिमाति' ।

१३७३. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ७३ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा और बिजली का विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ– प्रथम जीवात्मा के पक्ष में। हे मनुष्यो! **नरः** पौरुषवान् तुम **अरण्योः** क्रियाशील मन और बुद्धि की **दीधितिभिः** क्रियाओं से अर्थात् मन द्वारा कृत संकल्पों से और बुद्धि द्वारा कृत निश्चयों से **अग्निम्** शरीर के नेता जीवात्मा को **हस्तच्युतम्** हाथों से शत्रुओं को पराजित करने वाला, **प्रशस्तम्** प्रशंसा का पात्र, **दूरेदृशम्** दूरदर्शी, **गृहपतिम्** देह सदन का पालनकर्ता, और **अथव्युम्** विचलित न होने वाला **जनयत** करो॥

द्वितीय बिजली के पक्ष में। हे मनुष्यों! **नरः** विद्युत्-विद्या की उन्नति करने वाले तुम **दीधितिभिः** सूर्य-किरणों के द्वारा **अरण्योः** बिजली उत्पन्न करने वाले यन्त्रों के **हस्तच्युतम्** संघर्षण-पूर्वक **प्रशस्तम्** उत्कृष्ट, **दूरेदृशम्** दूर तक प्रकाश करने वाले, **गृहपतिम्** घरों के रक्षक, **अथव्युम्** गतिशील **अग्निम्** बिजली रूप अग्नि को **जनयत** उत्पन्न करो॥१॥

यहां श्लेषालंकार है॥१॥

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि संकल्प के साधन मन को और निश्चय के साधन बुद्धि, को प्रयुक्त कर अपने आत्मा को जगायें और विद्युत्-विद्या के विशेषज्ञ शिल्पियों को चाहिए कि सूर्य-किरणों द्वारा यन्त्रों को चलाकर, बिजली उत्पन्न करके घर आदि में प्रकाश करें, बिजली के तारों द्वारा दूर समाचार भेजें तथा विमान आदि यानों को चलायें॥१॥

१३७४. तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित्।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः॥२॥[2]

अगले मन्त्र में फिर जीवात्मा और बिजली का विषय है।

पदार्थ– प्रथम जीवात्मा के पक्ष में। **वसवः** अपने अन्दर श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभावों को निवास कराने वाले मोक्ष पथ के पथिक लोग **कुतश्चित्** जहाँ कहीं से भी **अवसे** शत्रु से अपनी रक्षा के लिए **तम्** उस **सुप्रतिचक्षम्** श्रेष्ठ द्रष्टा **अग्निम्** जीवात्मा को **अस्ते** मोक्ष-धाम में **न्यृण्वन्** भेजते हैं, **यः** जो **दक्षाय्यः** बल बढ़ाने वाला, **नित्यः** नित्य, अविनाशी जीवात्मा, मुक्ति से पूर्व **दमे** शरीर रूप घर में **आस** था॥

द्वितीय बिजली के पक्ष में। **वसवः** विद्युत्-विद्या में निवास किये हुए शिल्पी लोग **कुतश्चित्** किसी भी भय से **अवसे** रक्षा के लिए **तम्** उस **सुप्रतिचक्षम्** शुभ प्रकाश करने वाले **अग्निम्** बिजलीरूप अग्नि को **अस्ते** प्रत्येक निवासगृह में **न्यृण्वन्** पहुंचाते हैं, **यः** जो **दक्षाय्यः** बलवान्, **नित्यः** नित्य, बिजली रूप अग्नि **दमे** कारखाने में **आस** था॥२॥

यहां श्लेषालंकार है॥२॥

---

१. ऋ० ७।१।१ 'जनयन्त', 'मथ्र्युम्' इति भेदः। साम० ७२

२. ऋ० ७।१।२

भावार्थ— राष्ट्र में जैसे प्रजाजनों को अभ्युदय और निःश्रेयस का पथिक होना चाहिए, वैसे ही शिल्पियों को चाहिए कि बिजली पैदा करके प्रकाश के लिए और यन्त्र आदि को चलाने के लिए तारों द्वारा उसे घर-घर में लगा दें ।।२।।

१३७५. प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

पदार्थ— हे **यविष्ठ** अतिशय यौवनयुक्त **अग्ने** जीवात्मन् वा विद्युत् ! **प्रेद्धः** प्रदीप्त किया गया तू **अजस्रया** अक्षीण **सूर्म्या** तेजस्विता के साथ **नः पुरः** हमारे आगे **दीदिहि** चमक, **त्वाम्** तुझे **शश्वन्तः** बहुत से **वाजाः** बल **उप यन्ति** प्राप्त हैं।।३।।

भावार्थ— जीवात्मा में बिजली के समान बड़ी भारी शक्ति निहित है । उसका उपयोग करके मनुष्य को तेजस्वी, प्रतापी, अग्रगन्ता और महान् होना उचित है ।।३।।

।।११।। अथ 'आयं गौः' इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सार्पराज्ञी । **देवता** सूर्यः (आत्मा वा) । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१३७६. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ६३० क्रमांक पर सूर्य, भूगोल, परमात्मा, जीवात्मा तथा स्तोता इन पांचों पक्षों में की जा चुकी है । यहां चन्द्रमा और सूर्य का सम्बन्ध वर्णन करते हैं ।

पदार्थ— अयम् यह **पृश्निः** रंगीला **गौः** गतिमय चन्द्रलोक **आ अक्रमीत्** उदित हुआ है, जो **पुरः** पश्चिम से पूर्व की ओर **मातरम्** माता पृथिवी के चारों ओर **असदत्** गति करता है और **पितरम्** पितृस्थानीय **स्वः च** सूर्य की भी **प्रयन्** परिक्रमा करता है ।।१।।

भावार्थ— चन्द्रमा पृथिवी से अलग हुआ पिण्ड है ऐसा वैज्ञानिक लोग मानते हैं। इसलिए पृथिवी चन्द्रमा की माता है । सूर्य के प्रभाव से ही वह पिण्ड पृथिवी से अलग हुआ, इस दृष्टि से सूर्य चन्द्रमा का पिता है । चन्द्रमा पृथिवी की परिक्रमा करता-करता पृथिवी के साथ-साथ सूर्य की भी परिक्रमा करता है ऐसा खगोलशास्त्रवेत्ताओं का निरीक्षण है ।।१।।

१३७७. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ।।२।।[3]

द्वितीय ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ६३१ क्रमांक पर सूर्य और परमात्मा के विषय में की जा चुकी है यहां प्राणरूप सूर्य का वर्णन करते हैं ।

१. ऋ० ७।१।३, य० १७।७६ ।

२. ऋ० १०।१८९।१, देवता सार्पराज्ञी सूर्यो वा।य० ३।६, देवता अग्निः । अथ० ६।३११।१, देवता गौः, २०।४८।४, देवता सूर्यः गौः साम० ६३० ।

३. ऋ० १०।१८९।२, देवता सार्पराज्ञी सूर्यो वा आत्मा वा।य० ३।७, देवता अग्निः, अथ० ६।३११।२ देवता गौः, २०।४८।५ देवता सूर्यः, गौः । साम० ६३१ ।

पदार्थ– अस्य इस प्राणरूप सूर्य की **रोचना** दीप्ति अर्थात् प्रभावशक्ति **प्राणाद् अपानती** प्राणन-क्रिया के पश्चात् अपान की क्रिया करती हुई **अन्तः** शरीर के अन्दर **चरति** विचरण करती है । **महिषः** महान् प्राण **दिवम्** शरीर के मूर्धा को भी **व्यख्यत्** प्रकाशित करता है ।।२।।

भावार्थ– जैसे बाह्य सौर जगत् में सूर्य ग्रह-उपग्रहों को धारण करता है । वैसे ही मानव शरीर में जीवात्मासहित प्राण मन, बुद्धि, मस्तिष्क, इन्द्रियों आदि को धारण करता है।।२।।

१३७८. त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ।।३।।[1]

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ६३२ क्रमांक पर सूर्य और परमात्मा के ही विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां प्राण का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– यह प्राण **त्रिंशद् धाम** दिन रात के तीसों मुहूर्तों में **वि राजति** शरीर में विराजमान रहता है अर्थात् जाग्रत् अवस्था, स्वप्न अवस्था और सुषुप्त अवस्था तीनों में सक्रिय रहता है, जैसी कि श्रुति है– 'प्राण अन्य सबके सो जाने पर भी खड़ा जागता रहता है' (अथ० ११।४।२५) । इस **पतङ्गाय** श्वास-उच्छ्वास की गति से पक्षी के समान चेष्टा करने वाले प्राण के लिए, अर्थात् प्राणायाम के काल में **वाक्** वाणी **धीयते** रोक ली जाती है, क्योंकि प्राणायाम करते हुए भाषण संभव नहीं है । **प्रति वस्तोः** प्रतिदिन **अह** निश्चय ही **द्युभिः** दीप्त सूर्य-किरणों से यह प्राण बलवान् होता है ।।३।।

भावार्थ– दिन रात शरीर को धारण करता हुआ यह प्राण प्राणियों का महान् उपकार करता है ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मोपासना, जीवात्मा, प्राण और प्रसंगतः विद्युत् का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

ग्यारहवें अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

षष्ठ प्रपाठक में प्रथम अर्ध समाप्त ।

।।१।। तत्र 'उपप्रयन्तो इत्यादिकस्य प्रथमस्य चतुर्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १, २, ४ गोतमो राहूगणः, ३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१३७९. उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में परमेश्वरोपासना का विषय कहते हैं।

---

१. ऋ० १०।१८९।३ देवता सार्पराज्ञी सूर्यो वा, य० ३।८ देवता अग्निः, अथ० ६।३१।३ देवता गौः, २०।४८।६ देवता सूर्यः, गौः। साम० ६३२

२. ऋ० १।७४।१, य० ३।११

पदार्थ— **अध्वरम्** हिंसारहित ब्रह्मयज्ञ वा देवयज्ञ में **उपप्रयन्तः** जाते हुए हम **आरे** दूर **अस्मे च** और हमारे समीप **शृण्वते** प्रार्थना-वचनों को सुनने वाले **अग्नये** अग्रनायक जगदीश्वर के लिए **मन्त्रम्** वेदमन्त्र को **वोचेम** उच्चारण करें ।।१।।

भावार्थ— ब्रह्मयज्ञ वा देवयज्ञ करते हुए मनुष्य मन्त्रोच्चारणपूर्वक परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का ध्यान किया करें और उससे शिक्षा ग्रहण किया करें ।।१।।

१३८०. यः स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ।।२।।[1]

आगे पुनः उसी विषय का कथन है ।

पदार्थ— **पूर्व्यः** पूर्वजों से साक्षात्कार किया गया **यः** जो अग्रनायक परमेश्वर **स्नीहितीषु** वध करने वाली **कृष्टिषु** शत्रु-प्रजाओं के **संजग्मानासु** मुठभेड़ करने पर **दाशुषे** आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिए **गयम्** आश्रय को **अरक्षत्** सुरक्षित करता है, उस [**अग्नये** अग्रनायक परमेश्वर के लिए, हम **मन्त्रं वोचेम** वेदमन्त्रों का उच्चारण करें]।।२।।[2]

भावार्थ— परमेश्वरोपासक के मार्ग से सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं, परमेश्वर उसे अपना सुरक्षित आश्रय और दिव्य सम्पदाएं प्रदान करता है ।।२।।

१३८१. स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः । उतास्मान् पात्वंहसः ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में उपासक अपनी आकांक्षा प्रकट कर रहा है ।

पदार्थ— **सः** वह **शन्तमः** अतिशय शान्तिदायक **अग्निः** अग्रनायक परमेश्वर **नः** हमारे **अमात्यम्** साथ रहने वाले **वेदः** ज्ञान की वा दिव्य धन की **रक्षतु** रक्षा करे, **उत** और **अंहसः** पाप से **नः** हमें **पातु** बचाये ।।३।।

भावार्थ— परमात्मा में विश्वास से दिव्य गुण रक्षित होते हैं और पाप नष्ट हो जाते हैं ।।३।।

१३८२. उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ।।४।।[4]

अगले मन्त्र में उपासक क्या कहें यह वर्णन है ।

---

१. ऋ० १।७४।२ ।

२. वाक्यपूर्त्ति के लिए कोष्ठान्तर्गत भाग पूर्व मन्त्र से लाया गया है ।

३. ऋ० ७।१५।३, 'शन्तमः' इत्यत्र 'क्षितः' ।

४. ऋ० १।७४।३ ।

पदार्थ– **उत** और **जन्तवः** द्वितीय जन्म ग्रहण किये हुए द्विज उपासक **ब्रुवन्तु** हर्ष के साथ कहें कि यह **वृत्रहा** विघ्नविनाशक **अग्निः** अग्रनायक परमेश्वर **उद् अजनि** हमारे हृदय में प्रादुर्भूत हो गया है, जो **रणे-रणे** प्रत्येक देवासुरसंग्राम में **धनञ्जयः** दिव्य धन प्राप्त कराने वाला है ।।४।।

भावार्थ– आन्तरिक और बाह्य देवासुरसंग्राम में परमेश्वर-विश्वासियों की विजय होती है और विजय से उन्हें दिव्य तथा भौतिक धन प्राप्त होते हैं।।४।।

इस खण्ड में परमेश्वरोपासना का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है यह जानना चाहिए।।

बारहवें अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।

।।२।। अथ 'अग्ने युङ्क्ष्वा' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१३८३. अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २५ क्रमांक पर परमात्मा को संबोधित की गयी है । यहां अपने अन्तरात्मा को संबोधन है ।।

पदार्थ– हे **देव** ज्ञान से प्रकाशमान, **अग्ने** देह के अधिष्ठाता मेरे अन्तरात्मन्! **ये तव** जो तुम्हारे **साधवः** भले **आशवः** शीघ्रगामी **अश्वासः** मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय रूप घोड़े **अरम्** पर्याप्त रूप से **वहन्ति** देह-रथ को चलाते हैं, उन्हें **युङ्क्ष्व** कार्य में तत्पर करो ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य का आत्मा यदि सावधान नहीं है तो उसके मन, इन्द्रिय आदि घोड़े कुमार्गगामी हो जाते हैं।।१।।

१३८४. अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे अग्ने! हे परमात्मन्! आप **नः अच्छ** हमारी ओर **आयाहि** आओ, **वीतये** प्रगति के लिए **प्रयांसि** शान्तरसों को **अभि वह** प्राप्त कराओ, **देवान्** विद्वानों को **सोमपीतये** वीर रस के पान के लिए **आ** प्रेरित करो ।।२।।

भावार्थ– संसार में सब लोग वीर होकर शान्ति का प्रसार करें ।।२।।

१३८५. उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा विभाह्यजर ।।१।।[3]

इस प्रकार परमेश्वर से प्रार्थना करके अब फिर जीवात्मा को उद्बोधन देते हैं ।

---

१. ऋ० ६।१६।४३, य० १३।३६, उभयत्र 'युङ्क्ष्वा', 'वहन्ति मन्यवे' इति पाठः । साम० २५ ।

२. ऋ० ६।१६।४४ ।

३. ऋ० ६।१६।४५

पदार्थ– हे **भारत** शरीर का भरण-पोषण करने वाले, **अजर** अविनाशी **अग्ने** जीवात्मन्! तुम **द्युमत्** शोभनीय रूप से **अजस्रेण** अविच्छिन्न तेज से **दविद्युतत्** अतिशय चमकते हुए **उत् शोच** उत्साहित होवो, **वि भाहि** विशेष यशस्वी होवो ।।३।।

भावार्थ– मनुष्य का आत्मा जागरूक होकर मन, बुद्धि आदि का अधिष्ठातृत्व करता हुआ तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी होता हुआ अपनी कीर्ति फैलाये ।।३।।

।।३।। अथ 'प्रसुन्वाना०' इत्यादिकस्य तृतीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रजापतिः परमेष्ठी । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
१३८६. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५५३ क्रमांक पर और उत्तरार्चिक में ७७४ क्रमांक में व्याख्यात हो चुकी है । यहां उससे भिन्न व्याख्या प्रस्तुत है ।

पदार्थ– **अन्धसः** ब्रह्मानन्द-रूप सोमरस को **सुन्वानाय** अपने आत्मा के अन्दर प्रसुत करने वाले मनुष्य के लिए **प्र** प्रशंसात्मक वचन कहो, **मर्तः** उससे भिन्न साधारण मनुष्य **तत् वचः** उस प्रशंसात्मक वचन का **न वष्ट** अधिकारी नहीं है । हे राज्याधिकारियो! तुम **अराधसम्** परमेश्वर की आराधना न करने वाले, **श्वानम्** श्वान के समान लोभ आदि में आसक्त, केवल पेट भरने में लगे हुए मनुष्य को **अपहत** विनष्ट कर दो, **भृगवः** सूर्य-किरणें **मखं न** जैसे व्याप्त अन्धकार को विनष्ट करती हैं ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– राज्याधिकारियों को चाहिए कि जो न परमेश्वर की आराधना करता है, न दीन जनों की सेवा करता है, केवल स्वार्थ-साधन में लगा हुआ पशुओं से भी अधिक निकृष्ट जीवन बिताता है, उसे यथायोग्य दंडित करें ।।१।।

२ ३ १र २र ३ २उ ३ २ ३क २र
१३८७. आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
१ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ।।२।।[2]

अब उपासक कहता है ।

पदार्थ– **जामिः** हमारा बन्धु परमेश्वर, हमारे द्वारा **अत्के** अन्तरात्मा में **अव्यत** लाया जा रहा है, **न** जैसे **पुत्रः** पुत्र **ओण्योः** माता-पिता की **भुजे** भुजा में लाया जाता है । वह **सरत्** हमारी ओर आ रहा है, **जारः न** जैसे सूर्य **योषणाम्** रात्रि के प्रति **सरत्** आता है, और **वरः न** जैसे वर, कन्या से विवाह करके **योनिम्** घर में **आसदम्** रहने के लिए **सरत्** आता है ।।२।।

---

१. ऋ० ९।१०१।१३, 'प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः' इति पाठः । साम० ५५३, ७७४ ।

२. ऋ० ९।१०१।१४

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– पुत्र के समान, पत्नी के समान और घर के समान प्रिय परमेश्वर का प्रेम और श्रद्धा से ध्यान करके स्तोता-जन परम तृप्ति तथा आनन्द पाते हैं ।।२।।

१३८८. स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमेश्वर का महत्त्व वर्णित है ।

पदार्थ– **सः** वह **वीरः** काम, क्रोध आदि शत्रुओं को कम्पायमान करने वाला वीर सोम परमेश्वर **दक्षसाधनः** बल का साधक है, **यः** जो **रोदसी** द्युलोक और भूलोक को **तस्तम्भ** थामे हुए है । **वेधाः न** सूर्य के समान वह **हरिः** पापहर्ता परमेश्वर **योनिम्** आत्मा-रूप घर में **आसदम्** बैठने के लिए **पवित्रे** पवित्र अन्तःकरण में **अव्यत** आता है ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– जो बलवान् जगदीश्वर सब संसार को धारण करता है उसकी उपासना से सीमित शक्ति वाला भी मनुष्य महान् शक्ति वाला और शत्रुओं को हराने में समर्थ हो जाता है ।।३।।

।।४।। अथ 'अभ्रातृव्यो' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सोभरिः काण्वः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती)। **स्वरः** १ ऋषभः, २ पञ्चमः ।।

१३८९. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि। युधेदापित्वमिच्छसे।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३९९ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां जीवात्मा का विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ– हे जीवात्मन्! **सनात्** सदा **जनुषा** शरीरधारणरूप जन्म से तू **अभ्रातृव्यः** न शत्रुओं वाला, **अना** न नेता वाला और **अनापिः** न किसी का बन्धु **असि** है, **युधा इत्** युद्ध से ही **आपित्वम्** किसी को बन्धु वा किसी को शत्रु **इच्छसे** मानने लगता है ।।१।।

भावार्थ– जब शिशु माता के गर्भ से जन्म लेता है तब न उसका कोई शत्रु, न नेता, न ही बन्धु होता है । बड़ा होकर सांसारिक वासनाओं से वासित वह युद्ध आदि से किसी को शत्रु, किसी को नेता और किसी को बन्धु बना लेता है । युद्ध, विद्वेष आदि छोड़कर उसे सबके साथ मित्रता करके आपस में शान्ति के साथ रहना चाहिए ।।१।।

१३९०. न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ९।१०१।१५
२. ऋ० ८।२१।१३, अथ० २०।११४।१, साम० ३९९।
३. ऋ० ८।२१।१४, अथ० २०।११४।२ ।

अगले मन्त्र में परमात्मा को संबोधन है ।

पदार्थ– हे इन्द्र! हे सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! आप **रेवन्तम्** जिसके पास केवल धन है, दान, परोपकार आदि नहीं है ऐसे मनुष्य को **सख्याय** मित्रता के लिए **न किः** कभी नहीं **विन्दसे** पाते हो । **ते** वे केवल धन वाले लोग **सुराश्वः** मदिरा पान द्वारा प्रमत्त हुओं के समान धन के मद से प्रमत्त हुए **पीयन्ति** हिंसा करते हैं, सताते हैं। **यदा** जब, आप धनवान् को **नदनुम्** स्तोत्र नाद गुंजाने वाला स्तोता **कृणोषि** बनाते हो तब **समूहसि** उसे उत्तम स्थिति प्राप्त करा देते हो, **आत् इत्** उसके अनन्तर उससे आप **पिता इव** पिता के समान **हूयसे** बुलाये जाते हो ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ–धन पाकर जो लोग ऐश्वर्य के मद में मस्त नास्तिक होकर न सत्पात्रों में धन का दान करते है, न धर्माचार का सेवन करते हैं, न परमेश्वर को उपासते हैं, उनका धन धन नहीं, किन्तु उनके लिए मौत ही सिद्ध होता है ।।२।।

।।५।। अथ 'आ त्वा' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषी** मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बृहती । **स्वरः** मध्यमः ।।

१३९१. आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हर इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २४५ क्रमांक पर अध्यात्म और अधिराष्ट्र रूप में की जा चुकी है। यहां सूर्य के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा प्रकाशित करते है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जगदीश्वर! **हिरण्यये** ज्योतिर्मय **रथे** वेगवान् सूर्यमंडल में **युक्ताः** नियुक्त, **ब्रह्मयुजः**- बड़े-बड़े ग्रह-उपग्रहों से जुड़ने वाली, **केशिनः** प्रकाशमान और प्रकाशक **सहस्रम्** हजार **हरयः** किरणें **सोमपीतये**- परमानन्द-रस के पान के लिए **त्वा** तुझ जगदीश्वर को **आवहन्तु** हमारे समीप लायें, **शतं सहस्रम्**- सौ हजार किरणें तुझे आ हमारे समीप लायें– सूर्य और सूर्य की किरणें दर्शकों के सामने परमात्मा की ही महिमा को प्रकाशित करती हैं, इस अभिप्राय से यह कहा गया है ।।१।।

भावार्थ– अग्नि, वायु, सूर्य, तारे, बादल, नदी, समुद्र आदियों में विद्यमान विभूति को देखकर उनके- निर्माता जगदीश्वर में श्रद्धा करके विद्वान् लोग उसकी उपासना से परम आनन्द का अनुभव करते हैं।।१।।

१३९२. आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ।।२।।[2]

---

१. ऋ० ८।१।२४, साम० २४५ ।

२. ऋ० ८।१।२५ ।

अगले मन्त्र में उपासक को सम्बोधन किया गया है ।

पदार्थ– हे उपासक! **हिरण्यये** सुनहरे **रथे** रथ में **मयूरशेप्या** मोर के रंग के अर्थात् हरे-काले रंग के, और **शितिपृष्ठाः** श्वेत पीठ वाले **हरी** उत्कृष्ट घोड़े **त्वा** तुझे **विवक्षणस्य** जगत् के भार को वहन करने वाले जगदीश्वर के **मध्वः** मधुर **अन्धसः** आनन्द-रस के **पीतये** पान के लिए **आ वहताम्** सार्वजनिक उपासना- गृह में पहुंचायें ।।२।।

भावार्थ– उपासक लोग रथ में श्रेष्ठ घोड़ों को जोतकर उपासना-भवन में जाकर परमेश्वर की उपासना करके आनन्द प्राप्त करें ।।२।।

१३९३. पिबा त्वाऽ३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ।।३।।[1]

आगे फिर उपासक को सम्बोधन है ।

पदार्थ– हे **गिर्वणः** वाणियों से परमात्मा का भजन करने वाले उपासक! तू **परिष्कृतस्य** स्वभावतः संस्कृत, **रसिनः** रसीले **अस्य** इस **सुतस्य** अभिषुत किये गए ब्रह्मानन्द-रस का **पिब** पान कर । किस प्रकार? **पूर्वपाः इव** सूर्य से पहले भूमिष्ठ जल को पीने वाले वायु के समान । अर्थात् जैसे वायु नदी, समुद्र आदि के जल को पीता है, वैसे ही तू ब्रह्मानन्द-रस को पी । **इयम्** यह **चारुः** रमणीय **आसुतिः** ब्रह्मानन्द-रस की धारा **मदाय** उत्साह-प्रदान के लिए **पत्यते** समर्थ है ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि उपासना में मग्न होकर ब्रह्मानन्द-रस का पान करें ।।३।।

।।६।। अथ 'आ सोता' इत्यादिकस्य षष्ठस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १ ऋजिश्वा भारद्वाजः, २ ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** काकुभः प्रगाथः (१ विषमा ककुबुष्णिक्, २ समा-सतोबृहती) । **स्वरः** १ ऋषभः, २ पञ्चमः ।।

१३९४. आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५८० क्रमांक पर परमेश्वर की आराधना के विषय में की गयी-थी। यहां ब्रह्मानन्द का विषय वर्णित करते हैं ।।

पदार्थ– हे मनुष्यो! तुम **स्तोमम्** स्तुति करने योग्य, **अप्तुरम्** प्राणों में गति देने वाले, **रजस्तुरम्**- पृथिवी, सूर्य आदि लोकों को गति देने वाले, **वनप्रक्षम्** जंगलों को वर्षा-जल से सींचने वाले, **उदप्रुतम्** जलों को बहानेवाले सोम-नामक परमात्मा को **आ सोत** दुहो अर्थात् उससे आनन्द-रस प्राप्त करो, और उसे **अश्वं-न** बादल के समान **परि सिञ्चत** चारों ओर बरसाओ ।।१।।

---

१. ऋ० ८।१।२६

२. ऋ० ९।१०८।७, 'वनक्रक्ष' इति भेदः । साम० ५८०

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे बादल भूमि को जल से सींचता है वैसे ही उपासकों को चाहिए कि ब्रह्मानन्द से अपने तथा दूसरों के आत्मा को पुनः पुनः से सींचे ।।१।।

१३९५. सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्द का विषय है ।

पदार्थ– **ऋतजातः** सत्य में प्रसिद्ध **यः** जो सोम जगदीश्वर **ऋतेन** सत्य द्वारा **वि वावृधे** विशेष रूप से महिमा में बढ़ रहा है, और जो **राजा** विश्व का सम्राट्, **देवः** प्रकाशक, **ऋतम्** सत्यस्वरूप तथा **बृहत्** महान् है, उस **सहस्रधारम्** सहस्र धाराओं वाले, **वृषभम्** मनोरथ पूर्ण करने वाले, **पयोदुहम्** आनन्दरूप दूध को दुहने वाले **प्रियम्** तृप्तिप्रदाता जगदीश्वर को **देवाय जन्मने** दिव्य जन्म पाने के लिए **आसोत** दुहो अर्थात् उससे आनन्द रस प्राप्त करो और उसे **परिसिञ्चत** चारों ओर सींचो । यहाँ 'आसोत, परिसिञ्चत' पद पूर्वमन्त्र से लाये गये हैं ।।२।।

भावार्थ– आनन्द रस के भण्डार परमात्मा से आनन्द-रस परिस्रुत करके मनुष्यों को अपना आत्मा पवित्र करना चाहिए ।।२।।

इस खण्ड में जीवात्मा, परमात्मा और ब्रह्मानन्द-रस का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है ।।

बारहवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

।।७।। अथ 'अग्निर्वृत्राणि' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१३९६. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की गयी थी । यहां आचार्य का विषय कहते हैं ।

पदार्थ– **विपन्यया** शिष्यों के विनय व्यवहार से **समिद्धः** प्रोत्साहित, **शुक्रः** पवित्र हृदय वाला, **आहुतः** शिष्यों से आत्मसमर्पण किया हुआ **अग्निः** विद्या से प्रकाशित आचार्य **द्रविणस्युः** शिष्यों को विद्याधन देने का इच्छुक होता हुआ, उनके **वृत्राणि** दोषों को **जङ्घनत्** अतिशय रूप से नष्ट करे ।।१।।

---

१. ऋ० ९।१०८।८, 'पयोवृधं' इति भेदः ।

२. ऋ० ६।१६।३४, य० ३३।९, साम० ४।

भावार्थ– गुरुओं का यह कर्तव्य है कि वे विद्या देने के साथ-साथ शिष्यों के दोषों को भी दूर करें ।।१।।

१३९७. गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे। सीदन्नृतस्य योनिमा ।।२।।[1]

आगे फिर आचार्य का विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ– जो **मातुः** माता सावित्री के **गर्भे** गर्भ में स्थित हो चुका है, जो **पितुः** मेरे पिता का भी **पिता** द्वितीय जन्म देने वाला है, जो **अक्षरे** अक्षर परब्रह्म में **विदिद्युतानः** विशेष रूप से प्रकाशमान है, और जो **ऋतस्य** सत्य ज्ञान के **योनिम्** कारणभूत वेद के **आसीदन्** निकट स्थित है, वह **अग्निः** विद्या से प्रकाशित आचार्य, मेरे **वृत्राणि** दोषों को **जङ्घनत्** अतिशय रूप से नष्ट करे। [यहां अग्निः, वृत्राणि, जङ्घनत् पद पूर्वमन्त्र से लाये गये हैं]।।२।।

भावार्थ– जो स्वयं सावित्री और आचार्य के गर्भ में रहकर द्विज हो चुका है वही विद्वान् सच्चरित्र आचार्य शिष्यों को विद्वान् बनाने तथा उनके दोषों को दूर करने में समर्थ होता है।।२।।

१३९८. ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे। अग्ने यद्दीदयद्दिवि ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में भी आचार्य का ही विषय है।

पदार्थ– हे **विचर्षणे** शिष्यों का हित-अहित देखने वाले, **जातवेदः** उत्पन्न पदार्थों वा विद्याओं के ज्ञाता **अग्ने** आचार्यवर! आप, **प्रजावत्** उत्पन्न सृष्टि के विज्ञान से युक्त **ब्रह्म** ब्रह्मज्ञान को **आभर** हमें प्रदान करो, **यत्** जो दिवि हमारे तेजस्वी आत्मा में **दीदयत्** चमके ।।३।।

भावार्थ– गुरु लोग विद्यार्थियों को सृष्टिविज्ञान, पदार्थविज्ञान, भूगोल-खगोल आदि के विज्ञान और शिल्पविज्ञान के साथ ब्रह्मविज्ञान भी सिखायें ।।३।।

।।८।। अथ 'अस्य प्रेषा' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** त्रिष्टुप्। **स्वरः** धैवतः ।।

१३९९. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ।।१।।[3]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५२६ क्रमांक पर जीवात्मा-परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहां सूर्य के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा प्रकाशित करते है।

पदार्थ– अस्य इस पवमान सोम अर्थात् पवित्रतादायक अन्तर्यामी जगदीश्वर की **प्रेषा** प्रेरणा से, और **हेमना** ज्योति से **पूयमानः** पवित्र किया जाता हुआ **देवः** प्रकाशक वा तापमय सूर्य **देवेभिः** प्रकाशक वा संतापक किरणों द्वारा **रसम्** भूमि के जल से **समपृक्त** संपर्क करता है। **सुतः** भाप बनाकर ऊपर प्रेरित किया हुआ तथा मेघ के आकार को प्राप्त हुआ वह जल **रेभन्** विद्युद्गर्जना करता हुआ **पवित्रम्** अन्तरिक्ष में **पर्येति** परिभ्रमण करता है, **इव** जैसे **होता** होता नामक ऋत्विज् **मिता** निर्माण किये हुए **पशुमन्ति** धेनुओं से युक्त **सद्म** गो-सदनों में, गोदुग्ध पाने के लिए **पर्येति** चक्कर काटा करता है ।।१।।

---

१. ऋ० ६।१६।३५।
२. ऋ० ६।१६।३६।
३. ऋ० ९।९७।१, साम० ५२६

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जो यह सूर्य अपने ताप से भूमि पर स्थित जल को भाप बनाकर अन्तरिक्ष में बादलों को रचता और बरसाता है वह सब परमेश्वर की ही महिमा है ।।१।।

१४००. भद्रा वस्त्रा समन्या ३ वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में मानव को उद्‌बोधन दिया गया है ।

पदार्थ– हे मानव! **समन्या** संग्राम के योग्य, **भद्रा** उत्तम **वस्त्र** वस्त्रों को **वसानः** पहनता हुआ, **महान्** महान्, **कविः** विद्वान्, **निवचनानि** स्तोत्रों का **शंसन्** कीर्तन करता हुआ, **चम्वोः** आत्मा और मन में **पूयमानः** पवित्र किया जाता हुआ, **विचक्षणः** दूरद्रष्टा, **देववीतौ** परमात्मा की पूजा में **जागृविः** जागरूक तू **आवच्यस्व** चारों ओर प्रशंसा प्राप्त कर।।२।।

भावार्थ– विघ्नों और विपदाओं से भरे होने के कारण संग्राम-तुल्य जीवन में मनुष्य हृदय में वीर-भाव रखकर, वीरोचित वेशभूषा आदि धारण कर, वीरोचित कार्यों को करता हुआ, जागरूक, पवित्र मन वाला परमेश्वर का पूजक होता हुआ यशस्वी बने ।।२।।

१४०१. समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३।।[2]

अगले मन्त्र में विद्वान् को कहा गया है ।

पदार्थ– हे विद्वन्! **क्षैतः** भूमि के निवासी, **यशसाम्** यशस्वियों के मध्य **यशस्तरः** अत्यधिक यशस्वी, **प्रियः** सबके प्रिय आप **अस्मे** हमारे लिए **अव्ये सानौ** राष्ट्र भूमि के उच्चपद पर **संमृज्यते उ** अलंकृत वा अभिषिक्त किये जा रहे हो । **पूयमानः** पवित्र किये जाते हुए आप **धन्व** अन्तरिक्ष को **अभि स्वर** जयघोषों से गुंजा दो । हे विद्वानो ! **यूयम्** आप लोग **स्वस्तिभिः** कल्याणों से **नः** हम राष्ट्रवासियों की **सदा** हमेशा **पात** रक्षा करते रहो ।।३।।

भावार्थ– राष्ट्र में पवित्र आचरण वाले विद्वानों को ही उच्च पदों पर प्रतिष्ठापित करना चाहिए ।।३।।

।।९।। अथ 'एतो न्विन्द्रं इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** तिरश्चीराङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

---

१. ऋ० ९।९७।२।

२. ऋ० ९।९७।३।

१४०२. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३५० क्रमांक पर अध्यात्म विषय में की गयी थी। यहां परमेश्वर, आचार्य और राजा का विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ– हे साथियो! एत उ आओ, **नु** शीघ्र ही, तुम और हम मिलकर **शुद्धेन साम्ना** शुद्ध स्तोत्र से **शुद्धम्** शुद्ध **इन्द्रम्** परमात्मा, आचार्य वा राजा के **स्तवाम** गुणों का वर्णन करें। **शुद्धैः उक्थैः** शुद्ध स्तोत्रों वा वेदपाठों से **वावृध्वांसम्** वृद्धि को प्राप्त प्रत्येक स्तोता, शिष्य का प्रजाजन को **आशीर्वान्** आशीर्वादों वा गोदुग्धों का अधिपति वह परमात्मा, आचार्य वा राजा **शुद्धैः** शुद्ध आशीर्वादों वा शुद्ध गोदुग्धों से **ममत्तु** आनन्दित करे॥१॥

भावार्थ– स्तुति किये गये परमेश्वर, आचार्य और राजा स्तोताओं को आशीर्वाद देकर और दूध, घी आदि ऐश्वर्य देकर बढ़ाते हैं॥१॥

१४०३. इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धःशुद्धाभिरूतिभिः।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में भी परमेश्वर, आचार्य और राजा का ही विषय है।

पदार्थ– हे **इन्द्र** परमेश्वर, आचार्य वा राजन्! **शुद्धः** शुद्ध आप **नः** हमारे पास **आ गहि** आओ, **शुद्धः** शुद्ध आप **शुद्धाभिः** शुद्ध **ऊतिभिः** रक्षाओं के साथ आओ। **शुद्धः** शुद्ध आप, हमें **रयिम्** आध्यात्मिक वा भौतिक ऐश्वर्य **नि धारय** प्राप्त कराओ। **शुद्धः** शुद्ध आप, हे **सोम्य** सौम्य परमेश्वर, आचार्य वा राजन्! **अस्मान्** हमें **ममद्धि** आनन्दित करो॥२॥

भावार्थ– जो स्वयं ज्ञान, शरीर, मन, वचन और कर्म से शुद्ध है वही दूसरों को शुद्ध कर सकता है॥२॥

१४०४. इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥३॥[3]

आगे फिर वही विषय कहा गया है।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जगदीश्वर, आचार्य वा राजन्! **शुद्धः हि** शुद्ध आप **नः** हमें **रयिम्** विद्या, धन, धान्य आरोग्य आदि का ऐश्वर्य देते हो। **शुद्धः** पवित्र आप **दाशुषे** आत्मसमर्पण करने वाले वा परोपकार करने वाले को **रत्नानि** अहिंसा, सत्य आदि रत्नों को वा भौतिक रत्नों को देते हो। **शुद्धः** शुद्ध आप **वृत्राणि** विघ्न, दोष वा शत्रुओं को **जिघ्नसे** नष्ट करते हो। **शुद्धः** शुद्ध आप **वाजम्** बल **सिषाससि** देना चाहते हो॥३॥

---

१. ऋ० ८।९५।७, 'शुद्ध आशीर्वान्' इति भेदः। साम० ३५०
२. ऋ० ८।९५।८, 'सोम्यः' इति भेदः।
३. ऋ० ८।९५।९।

भावार्थ– परमेश्वर, आचार्य और राजा ज्ञान, कर्म और चरित्र से शुद्ध होते हुए ही विद्या, सत्य, अहिंसा, आरोग्य, धन, बल आदि देने और विघ्न, दोष, शत्रु आदि का विनाश करने में समर्थ होते हैं ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा की महिमा तथा आचार्य और राजा के गुण-कर्मों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

द्वादश अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

।।१०।। अथ 'अग्ने स्तोम' मित्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सुतम्भर आत्रेयः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१४०५. अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की स्तुति का विषय है ।

पदार्थ– **द्रविणस्यवः** धन और बल की कामना वाले हम **अद्य** आज **दिविस्पृशः** तेज में प्रवेश कराने वाले, **देवस्य** तेजस्वी **अग्नेः** अग्रनायक परमात्मा के **सिध्रम्** स्वभाव-सिद्ध **स्तोमम्** गुण-समूह का **मनामहे** बार-बार गान करते हैं ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर की उपासना से और उसके गुणगान से मनुष्य आध्यात्मिक ऐश्वर्य तथा आत्मबल प्राप्त कर लेता है ।।१।।

१४०६. अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद् दैव्यं जनम् ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में यह कथन है कि परमेश्वर हमारे लिए क्या करे ।

पदार्थ– **अग्निः** अग्रनायक परमेश्वर **नः** हमारी **गिरः** स्तुति वा प्रार्थना की वाणियों को **जुषत** स्वीकार करे, **यः** जो परमेश्वर **मानुषेषु** मनुष्यों में **होता** उनके जीवन-यज्ञ का होता बनकर **आ** निवास कर रहा है । **सः** वह **दैव्यम्** दिव्य गुणों में निष्णात **जनम्** विद्वान् जन को **यक्षत्** हमें प्रदान करे ।।२।।

भावार्थ– जिस राष्ट्र में दिव्य गुणों से युक्त विद्वान् मनुष्य होते हैं वह राष्ट्र अत्यन्त उन्नत होता है।।२।।

१४०७. त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति की गयी है ।

---

१. ऋ० ५।१३।२, 'अग्नेः' इति सविसर्गः पाठः ।

२. ऋ० ५।१३।३।

३. ऋ० ५।१३।४ ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक तेजस्वी परमात्मन्! आप **सप्रथाः** यशस्वी, **जुष्टः** प्रिय, **होता** सुखप्रदाता, और **वरेण्यः** सबसे वरण करने योग्य **असि** हो। उपासक लोग **त्वया** आपकी सहायता से **यज्ञम्** जीवन-यज्ञ को **वितन्वते** फैलाते हैं।।३।।

भावार्थ– मनुष्य अपने जीवन रूप यज्ञ को परम यशस्वी परमेश्वर के सहयोग से ही पूर्ण कर सकते हैं।।३।।

।।११।। अथ 'अभि त्रिपृष्ठ' मित्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** त्रिष्टुप्। **स्वरः** धैवतः।।

१४०८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशंत वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५२८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां राजा और जीवात्मा का विषय कहते हैं।।

पदार्थ– **प्रथम** राजा के पक्ष में। **वाणीः** प्रजाओं की वाणियाँ **त्रिपृष्ठम्** प्रजा, सभा-समिति और सेना इन तीन पृष्ठों वाले, **वृषभम्** बलवान् वा सुखवर्षी, **वयोधाम्** अन्न प्रदान करने वाले, **अङ्गोषिणम्** राज्य के सब अंगों में व्याप्त होने वाले राजा को **अभि अवावशन्त** प्रशंसित करती हैं। **वना** जंगलों को **वसानः** आच्छादित करते हुए **वरुणः न** अग्नि के समान **वना** तेजों को **वसानः** धारण करता हुआ वह राजा **सिन्धुः** समुद्र के समान **रत्नधाः** रत्नों को धारण करने वाला होता हुआ **वार्याणि** वरणीय रत्नों अर्थात् रमणीय ऐश्वर्यों को **वि दयते** विशेष रूप से प्रजाओं को प्रदान करता है ।।

द्वितीय जीवात्मा के पक्ष में। **वाणीः** वेदवाणियां **त्रिपृष्ठम्** ज्ञान, कर्म, उपासना रूप तीन पृष्ठों वाले, **वृषणम्** बलवान् वा बल बरसाने वाले, **वयोधाम्** आयु को धारण करने वाले, **अङ्गोषिणम्** ईश-स्तुति करने वाले जीवात्मा की **अभि अवावशन्त** स्तुति करती हैं अर्थात् महत्ता वर्णन करती हैं, "तू विद्वान् है, वर्चस्वी है, शरीर-रक्षक है। श्रेष्ठों से मिल, बराबर वालों से आगे बढ़ (अथ० २।११।४)"। आदि मन्त्रों से आत्मा को उद्‌बोधन देती हैं। **वरुणः न** सूर्य के समान **वना** तेजों को **वसानः** धारण करता हुआ, **सिन्धुः** रत्नों के खजाने समुद्र के समान **रत्नधाः** रमणीय सद्‌गुण रूप रत्नों को धारण करने वाला वह सोम जीवात्मा **वार्याणि** निवारण करने योग्य विघ्न आदियों को **विदयते** विशेष रूप से विनष्ट कर देता है ।।१।।

यहां श्लेष, श्लिष्टोपमा और लुप्तोपमा अलंकार हैं।।१।।

भावार्थ– जो राजा प्रजाओं का अनुरञ्जन करता है प्रजा भी उसके गुण गान करती हैं। वैसे ही जो देहधारी जीवात्मा अपनी शक्ति को पहचानकर अपने तेजों से सब आन्तरिक और बाह्य विघ्नों का उन्मूलन करता है वह सर्वत्र विजयलाभ करता है ।।१।।

१४०९. शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ।।२।।[2]

१. ऋ० ९।९०।२ 'माङ्गूषाणामवावशन्त', 'सिन्धून् वि' इति भेदः। साम० ५२८।

२. ऋ० ९।९०।३

अगले मन्त्र में राजा और जीवात्मा को उद्‌बोधन देते हैं।

पदार्थ– प्रथम राजा के पक्ष में। हे सोम अर्थात् वीर राजन्! **शूरग्रामः** शूर योद्धा-गण वाले, **सर्ववीराः** सब वीर प्रजाओं वाले, **सहावान्** सहनशील, **जेता** विजयशील, **धनानि** ऐश्वर्यों के **सनिता** दाता, **तिग्मायुधः** तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों वाले, **क्षिप्रधन्वा** शीघ्र धनुष वाले, **समत्सु** युद्धों में **अषाढः** परास्त न होने वाले, **पृतनासु** शत्रु-सेनाओं में **शत्रून्** शत्रुओं को **साह्वान्** पराजित करने वाले आप **पवस्व** पराक्रम दिखाओ॥

द्वितीय जीवात्मा के पक्ष में। हे सोम जीवात्मन्! **शूरग्रामः** शूर प्राण-गण वाला, **सर्ववीरः** जिसके मन, बुद्धि आदि सब वीर हैं ऐसा, **सहावान्** उत्साही, **जेता** विजयशील, **धनानि** सद्‌गुणरूप ऐश्वर्यों को **सनिता** प्राप्त करने वाला, **तिग्मायुधः** तीक्ष्ण शत्रुदाहक तेजों वाला, **क्षिप्रधन्वा** वेग से चलने वाले प्रणव-जप रूप धनुष वाला, **समत्सु** आन्तरिक देवासुर संग्रामों में **अषाढः** पराजित न होने वाला, **पृतनासु** काम, क्रोध आदि की सेनाओं में **शत्रून्** शत्रुओं को **साह्वान्** पराजित करने वाला तू **पवस्व** क्रियाशील हो अथवा स्वयं को पवित्र रख॥२॥

यहां श्लेषालंकार है। विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार भी है। ऐसे विलक्षण गुणों से सुशोभित भी तू यदि विक्रम नहीं दिखाता, क्रियाशील नहीं होता अथवा पवित्र आचरण नहीं रखता तो ये गुण भारस्वरूप ही होंगे यह आशय है॥२॥

भावार्थ– देह में मनुष्य का आत्मा और राष्ट्र में राजा यदि शत्रूओं को पराजित करके योगक्षेम करते हैं तो देह और राष्ट्र का स्वराज्य अक्षुण्ण रहता है॥२॥

१४१०. उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी।
अपः सिषासन्नुषसः स्वा३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान्॥३॥[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में। हे सोम अर्थात् सर्वान्तर्यामी परमात्मन्! **उरुगव्यूतिः** विस्तीर्ण मार्ग या कार्यक्षेत्र वाले, सबको **अभयानि** निर्भय **कृण्वन्** करने वाले आप **समीचीने** आपस में संगति रखने वाले **पुरन्धी** द्युलोक तथा भूलोक को और देहपुरी के धारणकर्ता प्राण-अपान को **आ पवस्व** पवित्र करो। **(अपः)** जलों को, **(उषसः)** उषाओं को **(स्वः)** सूर्य को और **गाः** भूमियों को **सिषासन्** देने वाले आप **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **महः वाजान्** महान् अन्न, धन, बल आदि को **सं चिक्रदः** बुलाते हो, प्रदान करते हो॥

---

१. ऋ० ९।९०।४।

द्वितीय राजा के पक्ष में । हे सोम अर्थात् प्रजापालक राजन्! **उरुगव्यूतिः** राष्ट्र में यातायात के लिए चौड़े मार्ग बनवाने वाले, और उन मार्गों पर **अभयानि** निर्भयता **कृण्वन्** करने वाले आप **समीचीने** भली-भाँति कार्य में तत्पर **पुरन्धी** स्त्री-पुरुषों को **आ पवस्व** सहायता के लिए प्राप्त होवो । आप **अपः** नदी, प्रपात आदि के जलों को, **उषसः** बिजलियों को, **स्वः** सूर्य को, और **गाः** भूमियों को **सिषासन्** उपयोग में लाने की योजनायें बनाते हुए **अस्मभ्यम्** हम प्रजाओं के लिए **महः वाजान्** महान्, अन्न, धन आदि **संचिक्रदः** बुलाओ, प्राप्त कराओ ।।३।।

यहां श्लेषालंकार है ।।३।।

भावार्थ— परमेश्वर ने हमारे लिए भूमि, जल, वायु, बिजली, सूर्य-किरणें आदि पदार्थ बिना मूल्य के दिये हुए हैं। राजा का कर्तव्य है कि उनका शिल्पकार्यों में उपयोग करके राष्ट्रवासियों को सुखी करे ।।३।।

।।१२।। अथ 'त्वमिन्द्र' इत्यादिकस्य द्वादशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नृमेधपुरुमेधौ आङ्गिरसौ । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २पञ्चमः।।

१४११. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २४८ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी । यहां एक-साथ परमात्मा, राजा और आचार्य का विषय वर्णित करते हैं ।

पदार्थ-हे **इन्द्र** परमात्मन्, राजन व आचार्य ! **त्वम्** आप यशाः यशस्वी, **ऋजीषी** सरल नीति वाले, और **शवसः पतिः** आत्मबल, देहबल वा विद्याबल के स्वामी **असि** हो । **एकः इत्** अद्वितीय ही **त्वम्** आप **पुरु** बहुत से **अप्रतीनि** अप्रतिद्वन्द्वी अज्ञान, पाप, दुःख, दुर्व्यसन आदि को **हंसि** विनष्ट करते हो । हे परमात्मन्, राजन् वा आचार्य ! आप **अनुत्तः** किसी से प्रेरित किये बिना, स्वतः ही **चर्षणी धृतिः** मनुष्यों को धारण करने वाले होते हो ।।१।।

भावार्थ- जैसे परमेश्वर संसार का उपकार करने वाले अपने कार्यों से यशस्वी होता हुआ सरल नीति से सब दोष, दुःख, दुर्व्यसन आदि को नष्ट करता है वैसे ही राजा और गुरु को करना चाहिए ।।१।।

१४१२. तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ।।२।।[2]

---

१. ऋ० ८।९०।५, 'शवसस्पते', 'इदनुत्ता चर्षणीधृतो' इति भेदः ।

२. ऋ० ८।९०।६ ।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा, राजा और आचार्य को कहते हैं।

पदार्थ– हे **असुर** प्रशस्त प्राणों वाले वा दोषों को दूर करने वाले परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! **प्रचेतसम्** प्रकृष्ट चित्त वाले **तम् उ त्वा** उन प्रसिद्ध आपसे **नूनम्** निश्चय ही, हम **राधः** दिव्य और भौतिक ऐश्वर्य वा विद्या आदि धन **ईमहे** मांगते हैं, **भागम् इव** जैसे पुत्र पिता से दायभाग मांगता है। हे **इन्द्र** परमैश्वर्यवान् परमात्मन् राजन् वा आचार्य! **ते** आपकी **कृत्तिः** कीर्ति, और **शरणा** शरण **मही इव** महती पृथिवी के समान विशाल है। **ते** आपके **सुम्ना** सुख **नः** हमें **अश्नवन्** प्राप्त हों ॥२॥

यहां उपमालंकार है ॥२॥

भावार्थ– जैसे परमेश्वर यशस्वी, शरणप्रदाता, सुखदाता, दोष दूर करने वाला, प्राणदाता और धनदाता है वैसे ही राजा और आचार्य को होना चाहिए ॥२॥

॥१३॥ अथ 'यजिष्ठं त्वा' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सोभरिः काण्वः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** काकुभः प्रगाथः (१ विषमा ककुबुष्णिक्, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः–** १ ऋषभः, २ पञ्चमः॥

१४१३. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ११२ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी। यहां आचार्य का विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ– हे अग्नि अर्थात् तेजस्वी विद्वन्! **यजिष्ठम्** अतिशय परमेश्वरपूजक वा पंचमहायज्ञों को करने वाले, **देवत्रा देवम्** ज्ञान के प्रकाशक विद्वानों में भी विशिष्ट विद्वान्, **होतारम्** सुख-प्रदाता, **अमर्त्यम्** यशः शरीर से अमर, **अस्य यज्ञस्य** इस विद्या-यज्ञ के **सुक्रतुम्** सुकर्ता **त्वा** आपको, हम विद्यार्थी **ववृमहे** आचार्य रूप में वरण करते हैं॥१॥

भावार्थ– आस्तिक, याज्ञिक, चरित्रवान्, शिक्षण कला में कुशल विद्वान् मनुष्य को ही पढ़ाने के काम में लगाना चाहिए ॥१॥

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१४१४. अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ ३ १ २ ३ २
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में एक साथ परमात्मा, राजा और आचार्य तीनों का विषय है।

पदार्थ–अपाम् उत्कृष्ट प्राणों वा उत्कृष्ट कर्मों को **नपातम्** अधःपतित न करने वाले, **सुभगाम्** अत्यधिक यशस्वी, **सुदीदितिम्** उत्कृष्ट तेज देने वाले, **श्रेष्ठशोचिषम्** उत्तम् तेज से युक्त **अग्निम् उ** मार्गदर्शक परमात्मा, राजा वा आचार्य को, हम **ववृमहे** वरण करते हैं। **सः** वह परमात्मा राजा वा

---

१. ऋ० ८।१९।३, साम० ११२।
२. ऋ० ८।१९।४।

आचार्य **मित्रस्य** सूर्य वा प्राण के, **वरुणस्य** वायु, बिजली वा अपान के, **सः** वह परामात्मा राजा वा आचार्य **अपाम्** जलों के, व्याप्त लोकों के वा प्राणों के **सुम्नम्** सुख वा सुखदायक ज्ञान को **नः** हमारे **दिवि** तेजोमय जीवात्मा में **आ यक्षते** प्राप्त कराये। [यहाँ 'ववृहमे' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है] ॥२॥

भावार्थ- जैसे जगदीश्वर सबकी उन्नति करने वाला, यशस्वी, तेजस्वी, तेज देने वाला, सुखदाता और ज्ञानप्रदाता है, वैसे ही राजा और आचार्य के गुणों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है॥

बारहवें अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त।

॥१४॥ अथ 'यमग्ने' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः**– शुनःशेप आजीगर्तिः। **देवता**– अग्निः। **छन्दः**– गायत्री। **स्वरः**–षड्जः॥

१४१५. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः ॥१॥[1]

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से जगदीश्वर की स्तुति है।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक, तेजस्वी, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! आप **यं मर्त्यम्** जिस मनुष्य की **पृत्सु** देवासुरसंग्रामों में **अवाः** रक्षा करो, **यम्** और जिसे **वाजेषु** आत्मिक, शारीरिक तथा सामाजिक बल की प्राप्ति के लिए **जुनाः** प्रेरित करो, **सः** वह **शश्वतीः** बहुत सी **इषः** अध्यात्म संपदाओं को **यन्ता** प्राप्त कर ले ॥१॥

भावार्थ– मनुष्य को विजय के लिए और ऐहिक तथा पारलौकिक समृद्धि के लिए अपने पुरुषार्थ के अतिरिक्त परमात्मा की कृपा भी अपेक्षित होती है ॥१॥

१४१६. न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्। वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में परमेश्वर की कृपा का फल वर्णित है।

पदार्थ– हे **सहन्त्य** शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाले अग्रणी परमात्मन्! **कयस्य चित्** युद्ध विद्या के ज्ञाता **अस्य** इस आपके स्तोता को **पर्येता** घेरने वाला वा उस पर आक्रमण करने वाला **न किः** कोई नहीं होता, प्रत्युत **वाजः** युद्ध **श्रवाय्यः** उसका यश फैलाने वाला **भवति** होता है ॥२॥

भावार्थ– जिस पर जगदीश्वर कृपा करता है उसे युद्ध में कोई भी हरा नहीं सकता, अपितु वह विजय श्री को प्राप्त करता है ॥२॥

१४१७. स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता। विप्रेभिरस्तु सनिता ॥३॥[3]

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– विश्वचर्षणिः सब मनुष्यों पर अनुग्रह करने वाला **सः** वह अग्रणी जगदीश्वर **अर्वद्भिः** आक्रमणकारी क्षत्रिय योद्धाओं द्वारा **वाजम्** संग्राम को **तरुता** पार कराने वाला **अस्तु** होवे। और, **विप्रेभिः** मेधावी ब्राह्मणों द्वारा **सनिता** ज्ञान आदि को देने वाला **अस्तु** होवे ॥३॥

---

१. ऋ० १।२७।७, य० ६।२९ 'स्वाहा' इत्यधिकम्।
२. ऋ० १।२८।८।
३. ऋ० १।२७।९

भावार्थ– निराकार परमेश्वर ब्राह्मणों के माध्यम से ज्ञान का दान, क्षत्रियों के माध्यम से रक्षा, वैश्यों के माध्यम से पोषक पदार्थों का दान करता हुआ मनुष्यों का उपकार करता है।।३।।

।।१५।। अथ 'साकमुक्षो' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नोधा गौतमः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१४१८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५३८ क्रमांक पर सोम ओषधि और परमात्मा की प्राप्ति के विषय में की जा चुकी है । यहां परमात्मा की ही प्राप्ति का विषय भिन्न प्रकार से वर्णित है ।

पदार्थ– धीरस्य ध्यान में संलग्न जीवात्मा को **साकमुक्षः** एक साथ ज्ञान से सींचने वाली, **स्वसारः** बहिनों के समान प्रिय, **धनुत्र्यः** तृप्ति प्रदान करने वाली **दश** दस **धीतयः** चार वेद और छह वेदांग रूप प्रज्ञाएं **मर्जयन्त** शुद्ध करती हैं। तब **सूर्यस्य** सूर्य के समान प्रकाशमान और प्रकाशक परमात्मा का **जाः** पुत्र **हरिः** जीवात्मा **पर्यद्रवत्** परमात्मा को पाने के लिए सक्रिय हो जाता है, और **अत्यः न** घोड़े के समान **वाजी** वेगवान् वह **द्रोणम्** प्राप्तव्य उस अपने पिता परमात्मा को **ननक्षे** पा लेता है।।१।।

यहां उपमालंकार है । द्वितीय चरण में धकार का और चतुर्थ में नकार का अनुप्रास है ।।१।।

भावार्थ– वेद-वेदांगों को आचार्य से भलीभांति पढ़कर ज्ञानी और अत्यन्त निर्मल अन्तःकरण वाला जीव अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है ।।१।।

१४१९. सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ।।२।।[2]

अगले मंत्र में फिर परमात्मा की प्राप्ति का विषय है ।

पदार्थ- वावशानः माँ को चाहता हुआ **शिशुः** शिशु**मातृभिः न** जैसे मताओं से धारण किया जाता है, वैसे ही **वावशानः** परमात्मा को चाहता हुआ, **वृषा** उसे अपने प्रेम से सींचने वाला, **पुरुवारः** बहुत-से सद्गुणों को वरने वाला सोम जीवात्मा **अद्भिः** परमात्मा के पास से आयी हुई आनन्द-धाराओं से **सं दधन्वे** भली-भाँति धारण किया जाता है और **मर्यः न** मर्त्य पुरुष जैसे **योषाम् अभि** पत्नी के प्रति प्रेम से जाता है, वैसे ही **निष्कृतम् अभि** श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाओं से अलंकृत परमात्मा के प्रति **यन्** जाता हुआ वह **कलशे** आनन्द की कलाओं से परिपूर्ण मोक्षधाम में **संगच्छते** संगत हो जाता है ।।२।।

यहाँ उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ- परमात्मा के प्रति उत्कट प्रेम और उत्कट श्रद्धा उसकी प्राप्ति में बड़े कारण बनते हैं ।।२।।

---

१. ऋ०९।९३।१, साम० ५३८ ।

२. ऋ० ९।९३।२ ।

१४२०. उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में उपासक की आनन्द-प्राप्ति का वर्णन है ।

पदार्थ– **उत** और, जीवात्मा-रूपी बछड़े को देखकर **अघ्न्यायाः** जगन्मातारूपिणी दुधारु गाय का **ऊधः** ऊधस् **प्र पिप्ये** आनन्दरूप दूध से जब बढ़ जाता है, तब **सुमेधाः** उत्कृष्ट मेधा वाला **इन्दुः** जीवात्मा-रूपी बछड़ा **धाराभिः** आनन्द की धारों से **सचते** संयुक्त हो जाता है । **गावः** ज्ञानेन्द्रिय-रूप गौएं **पयसा** ज्ञान रूप दूध से **मूर्धानम्** शरीर के प्रधान जीवात्मा को **चमूषु** प्राण-रूप पतीलों में **अभि श्रीणन्ति** परिपक्व करती हैं, **न** जैसे **निक्तैः** शुद्ध **वसुभिः** सूर्यकिरणों से फल आदि पकते हैं ।।३।।

यहां उपमा और निगरणरूप अतिशयोक्ति अलंकार है ।।३।।

भावार्थ– जैसे बछड़ा अपनी माँ गाय का दूध पीता है, वैसे ही उपासक जगन्माता के आनन्द-रस का पान करता है।।३।।

।।१६।। अथ 'पिबा सुतस्य' इत्यादिकस्य षोडशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेध्यातिथिः काण्वः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१४२१. पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३९ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां परमेश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** विघ्नों के विनाशक सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! आप **रसिनः** रसीले **सुतस्य** प्रकट हुए मेरे प्रेमरस का **पिब** पान करो, **गोमतः** गाय आदि के ऐश्वर्यों से युक्त **नः** हम लोगों को **मत्स्व** आनन्दित करो । **सदमादे** सहयात्रा में **वृधे** बढ़ाने के लिए **आपिः** बन्धु बने हुए आप **नः** हमें **बोधि** बोध दो । **ते** आपके **धियः** प्रज्ञा और कर्म **अस्मान्** हम उपासकों की **अवन्तु** रक्षा करें ।।१।।

भावार्थ– यदि हम परमात्मा से स्नेह करते हैं तो वह भी हमसे स्नेह करता है और सद्बुद्धि, सत्कर्म आदि देकर हमारा उपकार करता है ।।१।।

१४२२. भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ९।९३।३

२. ऋ० ८।३।१, 'सधमाद्यो' इति भेदः । साम० २३९ ।

३. ऋ० ८।३।२

अगले मन्त्र में फिर परमेश्वर से प्रार्थना है ।

पदार्थ– हे इन्द्र जगदीश्वर! **वयम्** आपके उपासक हम **वाजिनः** बलवान् होते हुए **ते** आपकी **सुमतौ** सुमति में **भूयाम** होवें, अर्थात् आपसे मिलने वाली सुमति के पात्र बनें । आप **नः** हमें **अभिमातये** अभिमान के **मा स्तः** वशीभूत मत होने दो । **अस्मान्** हम स्तोताओं की **चित्राभिः** अद्भुत **अभिष्टिभिः** अभीष्ट आध्यात्मिक और भौतिक संपत्तियों से **अवतात्** रक्षा करो । साथ ही **नः** हमें **सुम्नेषु** दिव्य आनन्दों में **आ यामय** रमाओ।।२।।

भावार्थ– मनुष्य सुमति को पाकर और अभिमान को दूर करके जगदीश्वर से रक्षा किया जाकर सुखी होता है ।।२।।

।।१७।। अथ 'त्रिरस्मै' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** रेणुर्वैश्वामित्रः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।।

१४२३. त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५६० क्रमांक पर स्तोता के विषय में हो चुकी है । यहां सोमयाग का फल वर्णित है।

पदार्थ– परमे उत्कृष्ट, **व्योमनि** विशेषरूप से रक्षक सोमयाग में **अस्मै** इस यागकर्ता के लिए **सप्त धेनवः** गायत्र्यादि सात छन्दों वाली वेदवाणी रूप गौएं **त्रिः** दिन में तीन बार अर्थात् प्रातः सवन, माध्यन्दिन-सवन और सायं-सवन में **सत्याम् आशिरम्** सत्यरूप दूध **दुदुह्रिरे** दुहती हैं। वह यागकर्ता **यत्** जब **ऋतैः** सत्य के ग्रहण द्वारा **अवर्धत** वृद्धि प्राप्त करता है, तब **निर्णिजे** आत्मशोधन के लिए **चत्वारि** चार, **चारुणि** सुरम्य **अन्या भुवनानि** अन्य लोकों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास को **चक्रे** अपने लिए निर्धारित कर ललेता है अर्थात् याग के काल में गृहस्थ होता हुआ उसके बाद वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में भी प्रविष्ट होता है ।।१।।

भावार्थ– याग आत्मशुद्धि और सत्य के अनुष्ठानार्थ होते हैं। जीवन में सत्य को अपनाकर ब्रह्मचर्य से लेकर संन्यास पर्यन्त आश्रमों का पालन करके अपने और दूसरों के दुःख दूर करने चाहिएं ।।१।।

१४२४. स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ।।२।।[2]

आगे परमात्मा के उपासक का विषय है ।

पदार्थ– सः वह परमेश्वर का उपासक **चारुणः** सुन्दर **अमृतस्य** उपासनाजन्य दिव्य आनन्द का **भक्षमाणः** सेवन करता हुआ **काव्येन** वेदकाव्य द्वारा **उभे द्यावा** दीप्यमान दोनों अभ्युदय और निःश्रेयस वा ज्ञान और कर्म को **विशश्रथे** विश्लेषणपूर्वक जान लेता है । साथ ही **मंहना** अपने महत्त्व से **तेजिष्ठाः अपः** अतिशय तेजस्वी कर्मों को **परि व्यत** धारण कर लेता है अर्थात् जीवन का अङ्ग बना लेता है **यदि** जिन्हें **सदः** शिष्यभाव से आचार्य के समीप पहुँचने वाले विद्यार्थी **देवस्य** ज्ञान के प्रकाशक आचार्य के **श्रवसा** उपदेश श्रवण से **विदुः** जाना करते हैं।।।२।।

१. ऋ० ९।७०।१ 'दुदुहे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि' इति पाठः साम० ५६०

२. ऋ० ९।७०।२, 'भिक्षमाणो' इति भेदः ।

भावार्थ-परमात्मा की उपासना का यह फल होता है कि उपासक कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेचन करके प्रशस्त कर्मों का ही आचरण करता है, निन्दित का नहीं ।।२।।

१४२५. ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा के तेज का विषय है ।

पदार्थ— **अस्य** इस सोम परमात्मा की **ते** वे प्रसिद्ध **अमृत्यवः** अमरणशील वा न मारने वाली, **अदाभ्यासः** पराजित न की जा सकने वाली **केतवः** तेज की किरणें **उभे जनुषी** दोनों जन्मों को अर्थात् इस जन्म तथा अगले जन्म को **अनु सन्तु** अनुगृहीत करें, **येभिः** जिन तेज की किरणों से **मनना**: मननशील उपासक अपने **नृम्णा च** देह-बल से किये जाने योग्य कर्मों को **दैव्या च** और आत्म-बल से किये जाने योग्य कर्मों को **पुनते** पवित्र कर लेते हैं, **आत् इत्** और उसके अनन्तर ही **राजानम्** तेजस्वी परमेश्वर को **अगृभ्णत** ग्रहण कर पाते हैं।।३।।

भावार्थ— परमात्मा के तेजों का ध्यान करने तथा उन्हें धारण करने से यह लोक, परलोक और सब-कर्म शुद्ध हो जाते हैं तथा परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है।।३।।

इस खण्ड में परमेश्वर की उपासना तथा सोमयाग के फल का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

बारहवें अध्याय में पंचम खण्ड समाप्त ।।

।।१८।। अथ 'अभि वायुं' इत्यादिकस्याष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कुत्स आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१४२६. अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभि नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में उपासक को प्रेरित किया गया है ।

पदार्थ— हे सोम अर्थात् शान्तिमय उपासक! **गृणानः** परमात्मा की स्तुति करता हुआ तू **वीती** वेग से **वायुम्** गतिशील मन को **अभि अर्ष** परमात्मा को प्रति प्रेरित कर । **पूयमानः** पवित्र किया जाता हुआ तू-**मित्रावरुणा** प्राण-अपान को **अभि अर्ष** परमात्मा के प्रति प्रेरित कर, **धीजवनम्** ध्यान में वेगवान्, **रथेस्ठाम्** देह-रथ में स्थित **नरम्** नेता जीवात्मा को **अभि अर्ष** परमात्मा के प्रति प्रेरित कर । और **वृषणम्** सुखवर्षक, **वज्रबाहुम्** शस्त्रास्त्रधारी सेनापति के समान शत्रुओं के विनाश में समर्थ **इन्द्रम्** परमेश्वर को **अभि अर्ष** अपनी ओर प्रेरित कर ।।१।।

भावार्थ— मनुष्य जब अपने मन, बुद्धि, प्राण-अपान, और जीवात्मा को परमात्मा की ओर प्रेरित-करता है तब परमात्मा झट स्वयं ही उसके संमुख प्रकट हो जाता है।।१।।

१४२७. अभि वस्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ।।२।।[1]

१. ऋ० ९।७०।३
२. ऋ० ९।९७।४९ ।
१. ऋ० ९।९७।५०

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

पदार्थ– हे **देव** दानादि गुणों से युक्त **सोम** जगत्पति परमात्मन्! आप हमारे लिए **सुवसनानि** सुन्दरता से धारण करने योग्य **वस्त्रा** वस्त्र **अभि अर्ष** प्रदान करो, **पूयमानः** मन में विद्यमान काम, क्रोध, आदि से पृथक् करके पवित्र रूप में दर्शन किये जाते हुए आप **सुदुघाः** दुधारू **धेनूः** धेनुएं **अभि अर्ष** प्रदान करो। **नः** हमारे **भर्तवे** भरण-पोषण के लिए **चन्द्रा** चांदी और **हिरण्या** सुवर्ण **अभि अर्ष** प्रदान करो। साथ ही **रथिनः** रथ में जुड़ने वाले **अश्वान्** घोड़े **अभि अर्ष** प्रदान करो ।।२।।

भावार्थ– मनुष्यों के समाज में कोई वस्त्रहीन, गोदुग्धहीन, धनहीन और वाहनहीन न रहे, प्रत्युत सभी श्रीमान् और गुणवान् होवें ।।२।।

१४२८. अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः।
अभियेन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे सोम जगदीश्वर! आप **नः** हमें **दिव्या वसूनि** सत्य, अहिंसा आदि दिव्य ऐश्वर्य **अभि अर्ष** प्राप्त कराओ, **पूयमानः** मन में विद्यमान काम, क्रोध आदि से पृथक् करके विशुद्ध रूप में दर्शन किये जाते हुए आप **विश्वा** सब **पार्थिवा** पार्थिव धन **अभि अर्ष** प्राप्त कराओ। हम **येन** जिसके द्वारा **द्रविणम्** दिव्यज्ञान **अभ्यश्नवाम** प्राप्त कर सकें, वह **आर्षेयम्** आर्ष चक्षु **जमदग्निवत्** जैसे प्रज्वलित अग्नि वाले अग्निहोत्री को आप देते हो वैसे ही **नः** हमें भी **अभि अर्ष** प्रदान करो ।।३।।

यहाँ उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर की कृपा से हम समस्त भौतिक और दिव्य धन तथा आर्ष चक्षु प्राप्त कर लें, जिससे सब सत्य ज्ञान और गूढ़ रहस्य भी हमारे संमुख हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जाएं।।३।।

।।१९।। अथ 'यज्जायथा' इत्यादिकस्यैकोनविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषि** नृमेधपुरुमेधौ आङ्गिरसौ। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** १, २ अनुष्टुप्, ३ बृहती। **स्वरः** १, २ गान्धारः, ३ मध्यमः ।।

१४२९. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ६०१ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहां भी वही- विषय प्रकारान्तर से दर्शाया जा रहा है।

पदार्थ– हे **अपूर्व्य** स्वयंभू, **मघवन्** ऐश्वर्यशाली इन्द्र जगदीश्वर! **यत्** क्योंकि, आप **वृत्रहत्याय** विघ्नों के विनाश के लिए **जायथाः** समर्थ हो, **तत्** इसी कारण, आप **पृथिवीम्** भूमण्डल को **अप्रथयः** फैला सके हो, **उत उ** और **तत्** इसी कारण **दिवम्** सूर्य को **अस्तभ्नाः** स्थिर कर सके हो ।।१।।

भावार्थ– जो विघ्नों को विनष्ट करने में समर्थ होता है वही हाथ में लिए हुए कार्यों में सफल होता- है।।१।।

---

१. ९।९७।५१
२. ऋ० ८।८९।५, 'उ॒त द्याम्' इति भेदः। साम० ६०१

१४३०. तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ।।२।।[१]

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की महिमा का वर्णन है ।

पदार्थ– हे इन्द्र जगदीश्वर! क्योंकि आप विघ्नों के विनाश में समर्थ हो **तत्** इसी कारण **ते** आपका **यज्ञः** सृष्टिरूप यज्ञ **अजायत** उत्पन्न हो सका है । **तत्** इसी कारण **अर्कः** सूर्य **उत** और **हस्कृतिः** बिजली का अट्टाहास उत्पन्न हो सका है । **तत्** इसी कारण **विश्वम्** सब कुछ **यत् जातम्** जो पैदा हो चुका है **यत् च-जन्त्वम्** और जो भविष्य में पैदा होना है, उसे आप **अभिभूः असि** अपनी महिमा से तिरस्कृत किये हुए हो।।२।।

भावार्थ– विघ्नों के विनाश में समर्थ होने से ही परमेश्वर सूर्य, चन्द्र, बिजली, नक्षत्र आदि से युक्त-इस सब जगत् को बनाने और धारण करने में सफल होता है ।।२।।

१४३१. आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ।।३।।[२]

अगले मन्त्र में उपास्य-उपासक का विषय है।

पदार्थ– हे इन्द्र जगदीश्वर! आपने **अमासु** अपरिपक्व ओषधियों में **पक्वम्** पका फल, अथवा **अमासु** अपरिपक्व गायों में **पक्वम्** पका दूध **ऐरयः** प्रेरित किया है, **दिवि** आकाश में **सूर्यम्** सूर्य को **आरोहयः** चढ़ाया है । हे मनुष्यों ! तुम **गिर्वणसे** वाणियों से संभजनीय इन्द्र जगदीश्वर के लिए **जुष्टम्** प्रिय **बृहत्** महान् **सामन्** स्तोत्र को **धर्मम् न** अग्नि के समान **तपत** परिपक्व और प्रकाशित करो ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– तपस्या से पका हुआ ही स्तोत्र परमात्मा के चित्त को आकृष्ट करता है और फलदायक होता है।।३।।

।।२०।। अथ 'मत्स्यपायि' इत्यादिकस्य विंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अगस्त्यो मैत्रावरुणः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** १ एकन्धोग्रीवी बृहती, २, ३ अनुष्टुप्। **स्वरः** १ मध्यमः २, ३ गान्धारः ।।

१४३२. मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ।।१।।[३]

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्द का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– हे **हरिवः** ऋक् और साम वाले इन्द्र जगदीश्वर! आप **मत्सि** आनन्दित करते हो । **महः पात्रस्य इव** रस से भरे हुए बड़े घट आदि पात्र के तुल्य **ते** आपका **मदः** उत्साहित करने वाला **मत्सरः** आनन्द-रूप सोमरस **अपायि** मैंने पी लिया है । अब अपने अन्तरात्मा को कहते हैं– हे मेरे अन्तरात्मन्! **वृष्णे** बलवान् **ते** तेरे लिए यह **वृषा** औरों पर सुख वर्षा करने वाला, **वाजी** बलवान् **इन्दुः** आनन्दरूप सोमरस **सहस्रसातमः** असंख्य लाभ पहुंचाने वाला है ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

---

१. ऋ० ८।८९।६
२. ऋ० ८।८९।७, 'सार्म्न्' इति भेदः ।
३. ऋ० १।१७५।१ ।

भावार्थ– परमेश्वर जल से पूर्ण कलश के समान आनन्द-रस से परिपूर्ण है। उसका आनन्द-रस पान करके स्तोता का आत्मा कृतार्थ हो जाता है ॥१॥

१४३३. आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्द के विषय का ही वर्णन है।

पदार्थ– हे **इन्द्र** परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर **ते** आपका **वृषा** मनोरथ पूर्ण करने वाला, **मदः** उत्साहित करने वाला, **वरेण्यः** वरणीय, **सहावान्** बलवान् ,**सानसिः** संभजनीय, **पृतनाषाट्** शत्रु सेनाओं को पराजित करने वाला, **अमर्त्यः** अक्षय **मत्सरः** आनन्द-रूप सोम **नः** हमें **आ गन्तु** प्राप्त होवे ॥२॥

भावार्थ– रसमय परमेश्वर से परमानन्द-रस पाकर मनुष्यों को शूरतापूर्वक आन्तरिक तथा बाह्य सब शत्रुओं का उन्मूलन करके निष्कण्टक स्वराज्य स्थापित करना चाहिए ॥२॥

१४३४. त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम्।
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३॥[2]

अब परमात्मा की शूरता वर्णित करते हैं।

पदार्थ– हे इन्द्र! हे शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले जगदीश! **त्वं हि** आप निश्चय ही **शूरः** शूरवीर, तथा **सनिता** उत्साह देने वाले हो। **मनुषः** मनुष्य के **रथम्** प्रगति के रथ को **चोदयः** आगे प्रेरित करते हो। **सहावान्** बलवान्, आप **अव्रतम्** व्रतहीन और कर्महीन को, तथा दस्युम् हिंसक स्वभाव को और हिंसक मनुष्य को **शोचिषा** प्रदीप्त अग्निज्वाला से **पात्रं न** मिट्टी के घड़े आदि के समान **ओषः** संतप्त कर देते हो ॥३॥

यहां उपमालंकार है ॥३॥

भावार्थ– जो परमेश्वर सज्जनों को पुरस्कार और दुष्टों को दण्ड देता है उससे डरकर दुर्जनों को दुष्टता छोड़ देनी चाहिए और सत्कर्मों में उत्साह दिखाना चाहिए ॥३॥

इस खण्ड में उपास्य-उपासक विषय का तथा ब्रह्मानन्द का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ॥

बारहवें अध्याय में षष्ठ खण्ड समाप्त।

बारहवां अध्याय समाप्त ॥

षष्ठ प्रपाठक में द्वितीय अर्ध समाप्त॥

---

१. ऋ० १।१७५।२

२. ऋ० १।१७५।३।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः षष्ठे प्रपाठके तृतीयोऽर्धश्च।।

।।१।। तत्र 'पवस्व' इत्यादिकस्य प्रथमस्य पञ्चर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कविर्भार्गवः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१४३५. पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में जगत्स्रष्टा परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे सोम! हे सर्वान्तर्यामी परमेश्वर! आप **दिवः परि** उच्च आत्मलोक से **नः** हमारे लिए **अपाम् ऊर्मिम्** दिव्य धाराओं की तरंगरूप **वृष्टिम्** वर्षा को **सु आ पवस्व** भली-भाँति चारों ओर से प्रवाहित करो, साथ ही **अयक्ष्माः** नीरोग अर्थात् वासना आदि से रहित **बृहतीः इषः** उच्च महत्त्वकांक्षाओं को **आ पवस्व** हमारे अन्दर उत्पन्न करो ।।१।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर अन्तरिक्ष से वर्षा तथा भूमि पर आरोग्यकारी अन्न उत्पन्न करता है वैसे ही वह हमारे अन्दर आनन्द की वर्षा और उच्च महत्त्वाकांक्षाओं को जन्म दे ।।१।।

१४३६. तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ।।२।।[2]

आगे फिर उसी विषय में कहा गया है ।

पदार्थ– हे तेज के धाम परमात्मन्! आप **तया धारया** उस तेज की धारा से **पवस्व** हमें पवित्र करो, **यया** जिस धारा से **इह** यहाँ **नः गृहम्** हमारे हृदय-सदन में **जन्यासः** उत्तरोत्तर जन्म लेने वाली **गावः** तेज की किरणें **उपागमन्** उपस्थित हो जाएं ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा के पास से प्रवाहित होते हुए तेज उसके स्तोताओं को तेजस्वी बना देते हैं।।२।।

१४३७. घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ।।३।।

आगे फिर परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे जगत्पति! **यज्ञेषु** उपासनारूप यज्ञों में **देववीतमः** अतिशय दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाले आप **धारया** धारा रूप में **घृतम्** स्नेह तथा दीप्ति को **पवस्व** हमारे लिए प्रेरित करो । **अस्मभ्यम्** हम उपासकों के लिए **वृष्टिम्** आनन्दवर्षा को **आ पव** रिमझिम बरसाओ ।।३।।

भावार्थ– उपासना किया हुआ जगदीश्वर उपासक के लिए अपने प्रेम, आनन्द और अक्षयतेज को प्रदान करता है ।।३।।

---

१. ऋ० ९।४९।१।

२. ऋ० ९।४९।२।

३. ऋ० ९।४९।३

१४३८. स न ऊर्जे व्या३व्ययं पवित्रं धाव धारया। देवासः शृणवन् हि कम् ॥४॥[1]

आगे पुनः उसी विषय में कहते हैं।

पदार्थ— हे भक्तवत्सल देव! **सः** वह प्रसिद्ध आप **नः** हमे **ऊर्जे** बल और प्राणशक्ति देने के लिए हमारे **पवित्रम्** पवित्र **अव्ययम्** अविनाशी अन्तरात्मा को **धारया** आनन्द की धारा के साथ **वि धाव** शीघ्रता से प्राप्त होवो। **देवासः** विद्वान् उपासक लोग **हि** अवश्य **कम्** सुख से **शृणवन्** आपके सन्देशों को सुनें ॥४॥

भावार्थ— जगदीश्वर की मैत्री में निवास करते हुए स्तोता जन बल, प्राणशक्ति, आनन्द और दिव्य सन्देश प्राप्त करके धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं ॥४॥

१४३९. पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत्। प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥५॥[2]

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि उपासना किया हुआ जगदीश्वर क्या करता है।

पदार्थ— पवमानः पवित्रतादायक आनन्दवर्षी जगदीश्वर **रक्षांसि** काम, क्रोध आदि रिपुओं को और पापों को **अपजङ्घनत्** नष्ट करता हुआ **प्रत्नवत्** पुरातन अग्नि के समान **रुचः** तेजों को **रोचयन्** प्रदीप्त करता हुआ **असिष्यदत्** बह रहा है ॥५॥

यहां उपमालंकार है ॥५॥

भावार्थ— परमेश की कृपा से उपासक के अन्तःकरण से वासनाएं क्षीण हो जाती हैं, तेज दमकते हैं और हृदय कालिमा से रहित पवित्र हो जाता है ॥५॥

॥२॥अथ 'प्रत्यस्मै' इत्यादिकस्य चतुर्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** १-३ अनुष्टुप, ४ बृहती। **स्वरः** १-३ गान्धारः, ४ मध्यमः॥

१४४०. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१॥[3]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३५२ क्रमांक पर परमात्मा और आचार्य के विषय में की जा चुकी है यहाँ जगदीश्वर की उपासना का विषय दर्शाते हैं।

पदार्थ— हे मानव! **नरः** पुरुषार्थी तू **पिपीषते** तेरे श्रद्धारस को पान करने के इच्छुक, **विश्वानि विदुषे** सब जानने योग्य विषयों को जानने वाले, **अरङ्गमाय** पर्याप्त देने वाले, **जग्मये** क्रियाशील, **अपश्चा-दध्वने** पीछे पग न रखने वाले **अस्मै** इस इन्द्र जगदीश्वर के लिए **प्रतिभर** श्रद्धा का उपहार प्रदान कर ॥१॥

भावार्थ— परमात्मा में श्रद्धा रखता हुआ मनुष्य कभी जीवन में पतन को प्राप्त नहीं करता॥१॥

१४४१. एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम्।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥[4]

१. ऋ० ९।४९।४।
२. ऋ० ९।४९।५।
३. ऋ० ६।४२।१, 'ऽपश्चाद्ध्वने नरे' इति भेदः। साम० ३५२।
४. ऋ० ६।४२।२।

अगले मन्त्र में मनुष्यों को परमात्मा की उपासना के लिए प्रेरित किया गया है ।

पदार्थ– हे मनुष्यों! तुम **सोमपातमम्** तुम्हारे श्रद्धारस को अतिशय पान करने वाले **एनम् प्रति** इस परमात्मा के प्रति **ईम्** सब ओर से **सोमेभिः** श्रद्धारसों के साथ **एतन** पहुँचो । **ऋजीषिणम्** सरल धार्मिक जनों के पास पहुँचने का जिसका स्वभाव है ऐसे **इन्द्रम् प्रति** जगदीश्वर के प्रति **अमत्रेभिः** महान् , **सुतेभिः** अभिषुत किये हुए, **इन्दुभिः** भिगो देने वाले श्रद्धारसों के साथ **एतन** पहुँचो ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा के प्रति हार्दिक श्रद्धारस के प्रवाह से मनुष्य का जीवन उज्ज्वल हो जाता है ।।२।।

१४४२. यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तंतमिदेषते ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा की उपासना का फल वर्णित है ।

पदार्थ– हे उपासको! **यदि** यदि **सुतेभिः** अभिषुत किये हुए, **इन्दुभिः** सराबोर कर देने वाले **सोमेभिः** श्रद्धारसों से, तुम इन्द्र परमात्मा को **प्रतिभूषथ** अलंकृत करते हो, तो **मेधिरः** मेधावी वह इन्द्र **विश्वस्य** तुम्हारे सब मनोरथों को **वेद** जान जाता है और **धृषत्** विघ्नों को परास्त करता हुआ **तं तम्** उस-उस मनोरथ को **इत्** अवश्य ही **आ इषते** पूर्ण करता है ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर में श्रद्धा रखने वाला मनुष्य अभीष्ट की पूर्ति में समर्थ हो जाता है ।।३।।

१४४३. अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ।।४।।[2]

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मोपासना का विषय है ।

पदार्थ– हे **अध्वर्यो** उपासना-यज्ञ के इच्छुक! **अस्मै अस्मै इत्** इसी इन्द्र जगदीश्वर के लिए **अन्धसः** श्रद्धारूप सोम के **सुतम्** रस को **प्र भर** लाओ । वह इन्द्र जगदीश्वर **कुवित्** बहुत अधिक **समस्य** सब **जेन्यस्य** जीते जाने योग्य **शर्धतः** हिंसक शत्रुओं से की जाने वाली **अभिशस्तेः** हिंसा वा निन्दा से **अवस्वरत्** उद्धार कर देवे ।।४।।

भावार्थ– परमेश्वर में श्रद्धा रखने वाले मनुष्य की कोई भी हिंसा नहीं कर सकता, न ही उसे अपयश का पात्र बना सकता है ।।४।।

इस खण्ड में परमात्मा की उपासना का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है।।

तेरहवें अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त।।

---

१. ऋ० ६।४२।३।

२. ऋ० ६।४२।४, 'खसरत्' इति भेदः ।

।।३।। अथ 'बभ्रवे' इत्यादिकस्य तृतीयस्य षड्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** असितः काश्यपो देवलो वा। **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१४४४. बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को प्ररेणा दी गयी है ।

पदार्थ– हे मनुष्यों ! तुम **बभ्रवे** धारण-पोषण करने वाले, **स्वतवसे निज बल वाले, अरुणाय** तेज से जगमगाने वाले, **दिविस्पृशे** जीवात्मा में सद्गुणों का स्पर्श कराने वाले **सो माय** रसनिधि, जगत्स्रष्टा, सर्वान्त- र्यामी परमेश्वर के लिए **गाथम्** गाने योग्य स्तोत्र को **अर्चत** गाओ ।।१।।

भावार्थ– जो अपने ही बल से, न कि दूसरे के द्वारा प्रदत्त बल से, बलवान् है, उस तेजस्वी परमात्मा की आराधना करके मनुष्य बलवान् ओर तेजस्वी बनें ।।१।।

१४४५. हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ।।२।।[2]

आगे फिर मनुष्यों को प्रेरित करते हैं।

पदार्थ– हे उपासको ! **हस्तच्युतेभिः** हाथ रहित **अद्रिभिः** हृदय और मस्तिष्क रूप सिल-बट्टों से **सुतम्** अभिषुत किये गये **सोमम्** श्रद्धारस को **पुनीतन** पवित्र करो । **मधौ** अपने मधुर श्रद्धारस में **मधु** परमात्मा से प्राप्त मधुर आनन्द-रस को **आधावत** मिला दो ।।२।।

यहां 'मधा, मधु' और 'धावा, धाव' में छेकानुप्रास अलंकार है ।।२।।

भावार्थ– जब योगी लोगों को ब्रह्मानन्द-रस की अनुभूति हो जाती है तभी उनकी परब्रह्म में श्रद्धा सफल होती है ।।२।।

१४४६. नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ।।३।।[3]

आगे फिर मनुष्यों को प्रेरित किया गया है ।

पदार्थ– हे साथियो ! तुम **नमसा इत्** नमस्कार के साथ ही **उप सीदत** परमात्मा की उपासना करो । उस सात्त्विक नमस्कार को **दध्ना इत्** रजोगुण से उत्पन्न कर्म के साथ मिलाकर **अभि श्रीणीतन** परिपक्व करो । **इन्दुम्** परमात्मा के पास से प्रसुत हुए आनन्द-रस को **इन्द्रे** जीवात्मा में **दधातन** धारण कर लो ।।३।।

यहां एक कर्ता कारक के साथ उपसीदत, श्रीणीतन और दधातन इन अनेक क्रियाओं का योग होने से दीपक अलंकार है । दकार आदि का अनुप्रास है । गोदुग्ध सात्त्विक होता है, दही खट्टा होने से राजस । अतः दधि से यहां कर्म सूचित होता है ।।३।।

भावार्थ– केवल उपासना से अभीष्ट सिद्धि नहीं होती, उसके साथ कर्मयोग भी अपेक्षित होता है ।।३।।

---

१. ऋ० ९।११।४ ।
२. ऋ० ९।११।५ ।
३. ऋ० ९।११।६।

१४४७. अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ।।४।।[1]

अब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे **सोम** जगदीश्वर ! **अमित्रहा** काम, क्रोध आलस्य आदि शत्रुओं के विनाशक, **विचर्षणिः** विशेष द्रष्टा, **देवेभ्यः** विद्वानों के लिए **अनुकामकृत्** अभीष्ट सिद्ध करने वाले आप **गवे** स्तोता के लिए **शम्** शान्तिदायक होते हुए **पवस्व** आनन्द प्रवाहित करो ।।४।।

भावार्थ– आराधना किया गया परमेश्वर उपासक के दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि को विनष्ट करके उसे सद्‌गुण देकर उसके लिए सुख, शान्ति और दिव्य आनन्द प्रवाहित करता है ।।४।।

१४४८. इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ।।५।।[2]

अब परमात्मा को कहते हैं।

पदार्थ– हे **सोम** रसागार परमेश ! **मनश्चित्** मन को चेताने वाले, **मनसः पतिः** मन के अधीश्वर, आप **इन्द्राय** जीवात्मा के **पातवे** पान के लिए, और **मदाय** उत्साह के लिए **परिषिच्यसे** जीवात्मा में सींचे जा रहे हो ।।५।।

भावार्थ– परमात्मा के ध्यान से प्राप्त हुआ आनन्दरस मन, बुद्धि, प्राण आदि को चेतनामय करता हुआ उपासक को जागरूक किये रखता है ।।५।।

१४४९. पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः। इन्दविन्द्रेण नो युजा ।।६।।[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **पवमान** पवित्रतादायक, **इन्दो** रस से सराबोर करने वाले **सोम** आनन्द-रस के भण्डार जगदीश ! आप **नः युजा** हमारे सहायक **इन्द्रेण** मन द्वारा **नः** हमारे लिए **सुवीर्यम्** श्रेष्ठ वीरता से युक्त **रयिम्** ऐश्वर्य **रिरीहि** प्राप्त कराओ ।।६।।

भावार्थ– परमात्मा, जीवात्मा और मन की मित्रता से ही मनुष्य चरम उन्नति करने में समर्थ होता है।।६।।

।।४।। अथ 'उद् घेदभि' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सुकक्ष आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

---

१. ऋ० ९।१११७ ।

२. ऋ० ९।१११८ ।

३. ऋ० ९।१११९, 'णः' इत्यत्र 'नः' इति पाठः ।

१४५०. उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पुर्वार्चिकि में १२५ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधन की गयी थी । परमात्मा का प्रचार भी उन्नत राष्ट्र में ही हो सकता है, इसलिए यहां राष्ट्रोन्नति के निमित्त राजा का विषय वर्णित करते हैं ।

पदार्थ– हे **सूर्य** सूर्य के समान प्रतापी वीर ! आप **श्रुतामघम्** प्रसिद्ध धनों वाले, **वृषभम्** बलवान् **नर्यापसम्** मनुष्यों के हितकारक कर्मों को करने वाले, **अस्तारम्** दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि को परे फेंक देने वाले प्रजाजन को **घ इत्** ही **अभि** लक्ष्य करके **उदेषि** राजा रूप में राष्ट्रगगन में उदित होते हो ।।१।।

भावार्थ– जिसके राज्य में सुयोग्य प्रजाएँ हैं वही राजा सुयोग्य माना जाता है ।।१।।

१४५१. नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में राजा वा सेनापति की शूरता का वर्णन है ।

पदार्थ– यः जो वीर **बाह्वोजसा** बाहुबल से **नव नवतिं पुरः** नव्वे-नव्वे शत्रु योद्धाओं के नौ व्यूहों को **बिभेद** तोड़ देता है, और जो **वृत्रहा** शत्रुहन्ता वीर **अहिं च** मार-काट करने वाले शत्रुदल को भी **अवधीत्** विध्वस्त कर देता है, वही राजा या सेनापति बनने योग्य है ।।२।।

भावार्थ– उसी मनुष्य को राजा के पद पर वा सेनापति के पद पर अभिषिक्त करना चाहिए जो अकेला होता हुआ भी बहुत से शत्रुओं के छक्के छुड़ा सके ।।२।।

१४५२. स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में यह कहते हैं कि राजा प्रजाओं के लिए क्या करे ।

पदार्थ– सः वह **नः** हमारा **शिवः** मंगलकारी, **सखा** मित्र **इन्द्रः** वीर राजा **अश्वावत्** घोड़ों से युक्त, **गोमत्** गायों से युक्त **यवमत्** जौ आदि अन्नों से युक्त धन को **दोहते** हमारे लिए दुह कर दे , **उरुधारा इव** जैसे धारों वाली दुधारु गाय दूध देती है ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– वही राजा होने योग्य है जो प्रजाजनों को धन, धान्य, गाय, घोड़े आदि सम्पदाओं से समृद्ध कर सके, क्योंकि समृद्ध लोग ही आध्यात्म-मार्ग पर चलना चाहते हैं ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा की उपासना के तथा राजनीति के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

तेरहवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

।।५।। अथ 'विभ्राड्' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विभ्राट् सौर्यः । **देवता** सूर्यः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

---

१. ऋ० ८।९३।१, अथ० २०।७।१, साम० १२५ ।
२. ऋ० ८।९३।२, अथ० २०।७।२ ।
३. ऋ० ८।९३।३, अथ० २०।७।३।

१४५३. विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा विराजति ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ६२८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां सूर्य के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा का प्रकाशन है ।

पदार्थ– विभ्राट् विशेष रूप से भ्राजमान सूर्य **यज्ञपतौ** यजमान को **अविह्रुतम्** अकुटिल **आयुः** आयु **दधुत्** प्रदान करता हुआ **बृहत्** विशाल **सोम्यम्** सोम आदि ओषधियों के रस से युक्त **मधु** जल को **पिबतु** पिये, **वातजूतः** सूत्रात्मक प्राण के द्वारा प्रेरित **यः** जो सूर्य **त्मना** अपने-आप **अभि रक्षति** संपूर्ण सौरमण्डल की रक्षा करता है, **प्रजाः** जड़-चेतन-रूप प्रजाओं को **पिपर्ति** पालित-पूरित करता है और **बहुधा** अनेक रूपों में **वि राजति** विराजमान होता है, क्योंकि प्रत्येक मास में नवीन-नवीन रूप धारण करता है ॥१॥

भावार्थ– यह जगदीश्वर की ही महिमा है कि उसने वर्षा करने वाला, बहुत उपकार करने वाला तेज का गोला सूर्यलोक रचा है ॥१॥

१४५४. विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणो सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्राहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में सूर्य की ज्योति का वर्णन करके परमात्मा की महिमा प्रकाशित की गयी है ।

पदार्थ– देखो, **विभ्राट्** देदीप्यमान, **बृहत्** विशाल, **सुभृतम्** अत्यन्त पुष्ट, **वाजसातमम्** अन्न और बल की अतिशय देने वाली, **सत्यम्** सत्य नियमों वाली, **धर्मन्** ग्रहोपग्रहों के धारणकर्ता **दिवः धरुणे** द्युलोक के स्तम्भरूप सूर्य में **अर्पितम्** अर्पित, **अमित्रहा** रोग आदि शत्रुओं को नष्ट करने वाली, **वृत्रहा** अन्धकार की विनाशक, **दस्युहन्तमम्** चोर आदि दस्युओं को दूर करने वाली, **असुरहा** अप्रशस्त दुर्भिक्ष आदि को विनष्ट करने वाली, **सपत्नहा** एक साथ आक्रमण करने वाले रोग-कृमियों की विनाशक **ज्योतिः** सूर्य की ज्योति **जज्ञे** प्रादुर्भूत हुई है ॥२॥

यहां स्वभावोक्ति अलंकार है । 'हा' का चार बार प्रयोग होने के कारण वृत्यनुप्रास है । 'तमं' और 'त्रहा' के दो-दो बार प्रयोग में छेकानुप्रास है ॥२॥

भावार्थ– रात्रि के घोर अन्धकार को विध्वस्त करती हुई सूर्य की ज्योति परमात्मा की आभा की ओर संकेत करती है॥२॥

---

१. ऋ० १०।१७०।१, य० ३३।३०, उभयत्र 'प्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति' इति पाठः । साम० ६२८ ।

२. ऋ० १०।१७०।२ 'धर्मं' इत्यत्र 'धर्मन्' इति पाठः ।

१४५५. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥[१]

अगले मन्त्र में फिर सूर्य की ज्योति का वर्णन है ।

पदार्थ– **इदम्** यह सामने दिखायी देती हुई, **श्रेष्ठम्** श्रेष्ठ, **ज्योतिषां ज्योतिः** ज्योतियों की ज्योति अर्थात् प्रकाशक ग्रह-उपग्रह तथा अग्नि-विद्युत् आदि को भी प्रकाशित करने वाली, **उत्तमम्** उत्कृष्टतम् **बृहत्** विस्तीर्ण सूर्य-ज्योति **विश्वजित्** सबको जीतने वाली और **धनजित्** धनों को जीतने वाली **उच्यते** कही जाती है । **विश्वभ्राट्** सम्पूर्ण सौरमण्डल का प्रकाशक, **भ्राजः** देदीप्यमान **सूर्यः** सूर्य **दृशे** देखने के लिए **महि** महान्, **उरु** विस्तीर्ण, **सहः** अन्धकार को तिरस्कृत करने वाले, **अच्युतम्** अन्य ज्योतियों से तिरस्कृत न होने वाले **ओजः** तेज को **पप्रथे** फैला रहा है ॥३॥

यहां भी स्वभावोक्ति अलंकार है ॥३॥

॥६॥ अथ 'इन्द्रं क्रतुं' इत्यादिकस्य षष्ठस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः–** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ॥

१४५६. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१॥[२]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २५९ क्रमांक पर परमात्मा और आचार्य को सम्बोधित की गयी थी । यहाँ परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** विघ्नविनाशक, विश्ववेत्ता, सर्वकारी, सर्वशक्तिमान् परमात्मन्! आप **नः** हमें **क्रतुम्** प्रज्ञा और कर्म को **आ भर** प्रदान करो, **यथा** जिस प्रकार **पिता** पिता **पुत्रेभ्यः** सन्तानों को प्रदान करता है । हे **पुरुहूत** बहुतों से पुकारे जाने वाले जगदीश्वर! आप **अस्मिन् यामनि** इस संसार-मार्ग में **नः** हमें **शिक्ष** कर्तव्य-अकर्तव्य की शिक्षा दो । **जीवाः** जीवन से अनुप्राणित हम, आपके पास से **ज्योतिः** दिव्य ज्योति को **अशीमहि** प्राप्त करें ॥१॥

यहाँ उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ– जैसे माता, पिता और आचार्य मनुष्य के शिक्षक हैं, वैसे ही परमेश्वर भी है । वह अन्तरात्मा में प्रविष्ट हुआ सदा ही सत्य-असत्य का उपदेश करता रहता है ॥१॥

१४५७. मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासोऽव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२॥[३]

---

१. ऋ० १०।१७०।३।
२. ऋ० ७।३२।२६, अथ० १८।३।६७ यमः देवता, २०।७९।१। साम० २५९ ।
३. ऋ० ७।३२।२७, अथ० २०।७९।२, उभयत्र 'माशिवासो अव क्रमुः' इति सन्धिरहितः पाठः ।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा से प्रार्थना है।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जगदीश! **मा** न तो **अज्ञाताः** अज्ञात **वृजनाः** बलवान् वा युद्ध करने वाले, **दुराध्यः** बुरे मनसूबे बाँधने वाले शत्रु और **मा** न ही **अशिवासः** अभद्र परिचित लोग **नः** हमें **अवक्रमुः** पद्दलित कर सकें। हे **शूर** वीर जगदीश्वर! **त्वया** आपकी सहायता से **प्रवतः** उत्कृष्ट आचरण वाले **वयम्** हम आपके उपासक **शश्वतीः** बहुत सी **अपः** नदियों को अर्थात् नदियों के समान उमड़ने वाली बाधाओं को **अति तरामसि** पार कर लेवें ।।२।।

भावार्थ– जैसे शत्रु लोग, वैसे ही सम्बन्धी जन भी कभी-कभी पाप आदि कर्मों में लिप्त करते हैं और विघ्न भी धर्ममार्ग में बाधक होते हैं। परमेश्वर से बल पाकर उन सबको हम लाँघ जाएँ ।।२।।

।।७।। अथ 'अद्याद्या' इत्यादिकस्य सप्तमस्य द्वयचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भर्गः प्रागाथः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१४५८. अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
विश्वा च नो जरितन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ।।१।।[1]

अगले मन्त्र में परमेश्वर से रक्षा के लिए प्रार्थना करते है।

पदार्थ– हे **इन्द्र** विघ्ननाशक परमात्मन्! आप **अद्य अद्य** आज-आज, **श्वः श्वः** कल-कल, **परे च** और अगले दिनों में भी **नः** हमारी **त्रास्व** रक्षा करो। हे **सत्पते** सज्जनों के पालक! **विश्वा च अहा** सभी दिनों में **जरितॄन् नः** हम स्तोताओं की **दिवा नक्तं च** दिन-रात **रक्षिषः** रक्षा करते रहो ।।१।।

भावार्थ– मनुष्यों के जीवन में कुसंग आदि के कारण नीचे गिरने के बहुत से अवसर आते हैं। परमेश्वर पर अटूट विश्वास उन अवसरों पर उनकी रक्षा करता है ।।१।।

१४५९. प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः संम्मिश्लो वीर्याय कम्।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुणकर्मों का वर्णन है।

पदार्थ– हे जगदीश्वर! आप **प्रभङ्गी** दुष्टों और दुर्गुणों के तीव्र भंजक, **शूरः** वीर, **मघवा** ऐश्वर्यवान्, **तुवीमघः** बहुत दानी, और **वीर्याय** हमें बल प्रदान करने के लिए **कम्** निश्चय ही **सम्मिश्लः** हमसे मिलने वाले, हमारे साथ सखित्व स्थापित करने वाले हो। हे **शतक्रतो** बहुत प्रज्ञा तथा बहुत कर्मों वाले! **उभा** दोनों **वृषणा** वर्षा करने वाले वायु और सूर्य **ते** आपकी **बाहू** बाहुएं हैं, **या** जो **वज्रम्** जल को **नि मिमिक्षतुः** निरन्तर सींचा करती हैं।।२।।

यहां वर्षक वायु और सूर्य में बाहुओं के आरोप के कारण रूपक अलंकार है ।।२।।

---

१. ऋ० ८।६१।१७।
२. ऋ० ८।६१।१८

भावार्थ– जैसे कोई बाहुधारी मनुष्य बाहुओं में घड़ा आदि पकड़कर भूमि पर जल सींचता है, वैसे ही जगदीश्वर वायु और सूर्य रूप बाहुओं में मेघ रूप घड़े को लेकर वर्षाजल भूमि पर बरसाता है।।२।।

इस खण्ड में सूर्य के वर्णन द्वारा तथा प्रत्यक्षतः भी परमात्मा की महिमा का वर्णन होने से और उसके प्रति प्रार्थना होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

तेरहवें अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।।

।।८।। अथ 'जनीयन्तो' इत्यादिकस्याष्टमस्य एकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** सरस्वान् । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

३ २ ३ १२ ३१ २ ३ १२ १ २
१४६०. जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्त सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में गृहस्त के कर्तव्य के रूप में परमात्मा की पूजा का वर्णन है ।

पदार्थ– अग्रवः पुरुषार्थी, **जनीयन्तः** पत्नी को चाहने वाले, **पुत्रीयन्तः** पुत्र-पुत्री को चाहने वाले, **सुदानवः** उत्कृष्ट दान करने वाले हम गृहस्थ लोग **सरस्वन्तम्** आनन्दरसमय परमात्मा को **नु** शीघ्र ही **हवामहे** पुकारते हैं ।।१।।

भावार्थ– ब्रह्मचारी लोग स्नातक होकर विदुषी, सच्चरित्र, गुणवती कन्या से विवाह करके, प्रशस्त सन्तान उत्पन्न करके, पंचमहायज्ञ आदि गृहस्थ के कर्तव्यों को पालन करते हुए परमात्मा की उपासना करें।।१।।

।।९।। अथ 'उत नः' इत्यादिकस्य नवमस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । **देवता-** सरस्वती । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः षड्जः** ।।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १२ ३ १ २
१४६१. उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ।।१।।[2]

अगले मन्त्र में वेदवाणी का विषय है ।

पदार्थ– उत और **प्रियासु प्रिया** प्यारी माताओं में अत्यधिक प्रिय, **सप्तस्वसा** गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती रूप सात बहिनों वाली, **सुजुष्टा** वेदज्ञ महर्षियों द्वारा भली-भाँति सेवित **सरस्वती** ज्ञानमयी वेदमाता **नः** हमारी **स्तोम्या** स्तुतिपात्र अर्थात् अध्ययन-अध्यापन की पात्र **भूत्** होवे ।।१।।

भावार्थ– वेदों का अध्ययन करके, उनसे सब विद्याएं तथा परमात्मा की उपासना का प्रकार जानकर अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करने चाहिएँ ।।१।।

।।१०।। अथ 'तत्सवितुर्' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १ विश्वामित्रो गाथिनः, २मेधातिथिः काण्वः, ३ शतं वैखानसाः । **देवता** १ सविता, २ ब्रह्मणस्पतिः, ३ अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

---

१. ऋ० ७।९६।४।
२. ऋ० ६।६१।१०।

१४६२. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में सविता परमेश्वर की उपासना का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– ऋचा में तीन पाद है।, प्रत्येक वेद से एक-एक पाद दुहा गया है (मनु० २।७७।) मनु के इस वचन के आधार पर प्रत्येक पाद का पृथक् अर्थ देखते हैं। १. **सवितुः** सकल जगत की उत्पत्ति करने वाले, सब शुभगुणों के प्रेरक परमात्मा का **तत्** वह प्रसिद्ध तेज **वरेण्यम्** वरणीय है । २. **देवस्य** दाता, प्रकाशमान और प्रकाशक उस परमात्मा के **भर्गः** तेज को, हम **धीमहि** धारण करें वा ध्यावें । ३. **यः** जो सविता प्रभु **नः** हमारे **धियः** प्रज्ञाओं और कर्मों को **प्रचोदयात्** सन्मार्ग पर प्रेरित करे ।।१।।

भावार्थ– सकल जगत् के स्रष्टा, सूर्य के समान सबके अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाले, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के तेजों के ध्यान और धारण करने से वह उपासक की बुद्धियों और क्रियाओं को सन्मार्ग में प्रेरित करके उसे सुखी करता है ।।१।।

१४६३. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते कक्षीवन्तं य औशिजः ।।२।।[2]

द्वितीय ऋचा पूर्वार्चिक में १३९ क्रमांक पर जगदीश्वर को सम्बोधित की गयी थी । यहां आचार्य को कहते हैं ।

पदार्थ– हे **ब्रह्मणः पते** वेदों के प्रकाण्ड पण्डित आचार्य ! **यः** जो मैं **औशिजः** बहुत अधिक वेदाध्ययन का इच्छुक हूँ उस मुझको, आप **सोमानाम्** ज्ञानों का **स्वरणम्** प्राप्तकर्ता, और **कक्षीवन्तम्** कटिबद्ध **कृणुहि** कर दो ।।२।।

भावार्थ– गुरुओं का यह कर्तव्य है कि वे शिष्यों को विद्वान् और कर्मयोगी बनायें । पुरुषार्थहीन विद्वत्ता कुछ काम नहीं आती है ।।२।

१४६४. अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।।३।।[3]

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ६२७ क्रमांक पर परमात्मा और विद्वान् राजा को सम्बोधित की गयी थी । यहाँ आचार्य को कहते हैं ।

पदार्थ– हे **अग्ने** चरित्र को ऊंचा उठाने वाले आचार्यवर! आप शिष्यों के **आयूंषि** जीवनों को **पवसे** पवित्र करते हो । **नः** हम शिष्यों के लिए **ऊर्जम्** आत्मबल वा चरित्र-बल, **इषं च** और अभीष्ट विद्या **आसुव** प्रदान करो । **दुच्छुनाम्** दुर्गति करने वाली अविद्या को **आरे** दूर **बाधस्व** बाधित कर दो।।३।।

---

१. ऋ० ३।६२।१०।

२. ऋ० १।१८।१, य० ३।२८, उभयत्र 'सोमानम्' इति पाठः। साम० १३९, इन्द्रो देवता ।

३. ऋ० ९।६६।१९, य० १९।१८, ३५।१६, साम० ६२७, १५१८ ।

भावार्थ– श्रेष्ठ आचार्य को प्राप्त कर विद्यार्थी पवित्रात्मा और विद्वान् होकर समावर्तन के अनन्तर घर आकर राष्ट्र को उन्नत करें ।।३।।

।।१।। अथ 'ता नः' इत्यादिकस्यै कादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** यजत आत्रेयः । **देवता** मित्रावरुणौ । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

तत्र प्रथमा ऋगुत्तरार्चिके ११४५ क्रमाङ्के परमात्मजीवात्म-विषये व्याख्याता । अत्र ब्राह्मणक्षत्रियौ प्रार्थ्येते ।

१४६५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा उत्तरार्चिक में ११४५ क्रमांक पर परमात्मा और जीवात्मा के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है । यहां ब्राह्मण और क्षत्रिय से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे मित्र-वरूणो अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रियो! **ता** वे तुम दोनों **नः** हमें **पार्थिवस्य** भौतिक, और **दिव्यस्य** आध्यात्मिक **महः** महान् **रायः** ऐश्वर्य की पाप्ति के लिए **शक्तम्** समर्थ बनाओ । **देवेषु** विद्वानों में **वाम्** तुम दोनों का **महि** महान् **क्षत्रम्** शत्रुजन्य प्रहार से वा अविद्या दुर्व्यसन आदि दोष से त्राण करने का सामर्थ्य है।।१।।

भावार्थ– जहां ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलकर श्रेष्ठ विद्या, श्रेष्ठ धर्म आदि के प्रदान द्वारा और शत्रुओं से रक्षा द्वारा उपकारक होते हैं वह राष्ट्र अत्यधिक उन्नत हो जाता है ।।१।।

१४६६. ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में पुनः ब्राह्मण-क्षत्रिय का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– ये मित्र-वरूण अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय **ऋतम्** राष्ट्र-यज्ञ की **ऋतेन** सत्य ब्रह्मबल वा सत्य क्षात्रबल से **सपन्ता** सेवा करते हुए **इषिरम्** प्रेरक **दक्षम्** उत्साह को **आशाते** प्राप्त करते हैं। **अद्रुहा** आपस में द्रोह न करने वाले **देवौ** ब्रह्मवर्चस वा क्षात्र तेज से प्रकाशमान, दानादि गुणों से युक्त ये **वर्धेते** वृद्धि प्राप्त करते हैं ।।२।।

भावार्थ– आपस में द्रोह न करते हुए, अपितु सहयोग करते हुए ब्राह्मण और क्षत्रिय ब्रह्मबल और क्षात्रबल का उपयोग करके स्वयं बढ़ते हुए राष्ट्र को भी बढ़ाते हैं ।।२।।

१४६७. वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में ब्राह्मण-क्षत्रियों का उपकार वर्णित किया गया है ।

पदार्थ- **वृष्टिद्यावा** वर्षकामेष्टि द्वारा अन्तरिक्ष से वर्षा कराने वाले, **रीत्यापा** नहर आदि में जल प्रवाहित कराने वाले, **दानुमत्याः** लाभकारिणी **इषः** धन, अन्न, विद्या आदि की सम्पदा के **पती** स्वामी मित्र-वरूण अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय **बृहन्तम्** महान् **गर्तम्** राष्ट्ररूप रथ को **आशाते** चलाते हैं ।।३।।

---

१. ऋ० ५।६८।३, साम० ११४५ ।
२. ऋ० ५।६८।४
३. ऋ० ५।६८।५ ।

भावार्थ— राष्ट्र में ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलकर जब ज्ञान-विज्ञान के उत्कर्ष से वर्षा, नदियों पर बांध का निर्माण, नहरों का निर्माण, धान्य-समृद्धि, भूगर्भ से सोने आदि धातुओं की प्राप्ति शिल्पविद्या से भूयान, जलयान, अन्तरिक्षयान आदि का आविष्कार इत्यादि कर्मों को कराते हैं तब राष्ट्र समृद्धि के शिखर पर पहुंच जाता है ।।३।।

।।१२।। अथ 'युञ्जन्ति' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २
१४६८. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमात्मा, सूर्य, प्राण आदि ग्रहण किये गये हैं।

पदार्थ— **प्रथम** परमात्मा के पक्ष में । जो योगी विद्वान् लोग **ब्रध्नम्** महान्, **अरुषम्** तेजस्वी, अहिंसक, करूणामय, **तस्थुषः** सब स्थावर पदार्थों वा दृढ़ स्वभाव वाले मनुष्यों में **परिचरन्तम्** व्याप्त इन्द्र परमेश्वर का **युञ्जन्ति** अपने साथ योग करते हैं, वे **रोचना** दीप्तिमान् होते हुए **दिवि** प्रकाशमय मोक्षधाम में **रोचन्ते** शोभा पाते हैं।।

द्वितीय सूर्य के पक्ष में । जो पृथिवी, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि लोक **ब्रध्नम्** महान्, **अरुषम्** आरोचमान, **तस्थुषः** सब स्थावर पदार्थों वा मनुष्यों को **परिचरन्तम्** अपनी किरणों से व्याप्त करते हुए इन्द्र नामक सूर्य को **युञ्जन्ति** अपने साथ जोड़ते हैं, वे **रोचना** दीप्तिमान् होते हुए **दिवि** आकाश में **रोचन्ते** चमकते हैं।।

तृतीय प्राण के पक्ष में । जो उपासक लोग **ब्रध्नम्** सब अंगों की वृद्धि करने वाले, महान् **अरुषम्** क्षति न पहुंचाने वाले, **तस्थुषः** शरीर में स्थित सब अंगों को **परिचरन्तम्** प्राप्त होने वाले इन्दु नामक प्राण को **युञ्जन्ति** प्राणायाम की रीति से अपने अन्दर जोड़ते हैं, वे **रोचना** चमकने वाले नक्षत्र जैसे **दिवि** आकाश में प्रकाशित होते हैं, वैसे ही **रोचन्ते** तेजस्वी होते हैं।।

चतुर्थ शिल्प के विषय में । जो शिल्पशास्त्र के ज्ञाता विद्वान् लोग **ब्रध्नम्** महान्, **तस्थुषः** स्थावर वनौषधि आदि को वा मनुष्यों को **परिचरन्तम्** प्राप्त होने वाले इन्द्र नामक पार्थिव अग्नि, विद्युत्, वायु वा सूर्य को **युञ्जन्ति** भूयान, जलयान तथा विमानों में और यन्त्र-कलाओं में जोड़ते हैं, वे **दिवि** आकाश में **रोचना** चमकने वाले नक्षत्रों के समान **रोचन्ते** यशस्वी होते हैं।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। तृतीय, चतुर्थ व्याख्यानों में लुप्तोपमा भी है ।।१।।

भावार्थ— जैसे योगियों को अपने आत्मा में परमेश्वर के योग से परमात्मा का प्रकाश प्राप्त होता है, और शरीर के अंगों में प्राण के योग से प्राणसिद्धि प्राप्त होती है, वैसे ही सूर्य-किरणों के योग से हमारे सौर मण्डल के सब ग्रह-उपग्रहों को भौतिक प्रकाश प्राप्त होता है और शिल्पियों को यान आदियों में अग्नि, वायु, बिजली, सूर्य के योग से यश प्राप्त होता है ।।१।।

---

१. ऋ० १।६।१, य० २३।५, अथ० २०।२६।४, ४७।१०, ६९।९ ।

१४६९. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में दो हरियों का रथ में जोड़ना वर्णित है।

पदार्थ— प्रथम प्राण-अपान के विषय में विद्वान् योगी लोग **अस्य** इस इन्द्र नामक जीवात्मा के **रथे** शरीररूप रथ में **काम्या** चाहने योग्य, **विपक्षसा** प्राणक्रिया और अपानक्रिया रूप विशिष्ट पंखों वाले, **शोणा** गतिशील, **धृष्णु** चतुर, **नृवाहसा** मनुष्य-देह को वहन करने वाले **हरी** प्राण-अपान रूप दो घोड़ों को **युञ्जन्ति** प्राणायाम की विधि से उपयोग में लाते हैं॥

द्वितीय शिल्प के विषय में। शिल्पी लोग **अस्य** इस सूर्य या बिजली रूप अग्नि के **काम्या** कमनीय, **विपक्षसा** परस्पर विरुद्ध गुण वाले, **शोणा** गतिशील, **धृष्णू** घर्षणशील, **नृवाहसा** मनुष्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले **हरी** ऋणात्मक विद्युत् तथा धनात्मक विद्युत् रूप दो घोड़ों को **युञ्जन्ति** भूयान, जलयान तथा विमानों में जोड़ते हैं॥२॥

भावार्थ— जैसे प्राणायाम का अभ्यास करने वाले विद्वान् लोग प्राण-अपान रूप घोड़ों को नियुक्त करके शरीर-रथ को चलाते हैं वैसे ही शिल्पी लोग ऋण और धन विद्युत् को यान आदि तथा घर आदि में लगाकर यात्रा और प्रकाश किया करें॥२॥

१४७०. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥३॥[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा, सूर्य और प्राण का उपकार वर्णित है।

पदार्थ— हे इन्द्र अर्थात् परमात्मन्, सूर्य वा प्राण! तुम **अकेतवे** प्रज्ञान-हीन और कर्म-हीन के लिए **केतुम्** प्रज्ञान और कर्म को **कृण्वन्** उत्पन्न करते हुए **उषद्भिः** उषाओं के साथ **सम् अजायथाः** प्रकट होते हो। हे **मर्याः** मनुष्यो! तुम भी वैसा ही करो॥३॥

भावार्थ— परमेश्वर के समान, सूर्य के समान और प्राण के समान मनुष्य भी यदि ज्ञानहीनों में ज्ञान, कर्महीनों में कर्म और रूपहीनों में रूप का विस्तार करें तभी उनका जन्म सफल है॥३॥

इस खण्ड में वेदवाणी, आचार्य, ब्राह्मण-क्षत्रिय तथा परमात्मा, सूर्य और प्राण के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है॥

तेरहवें अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त।

॥१३॥ अथ 'अयं सोम' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** उशनाः काव्यः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** त्रिष्टुप्। **स्वरः** धैवतः॥

---

१. ऋ० १।६।२, य० २३।६, अथ० २०।२६।५, ४७।११, ६९।१०।

२. ऋ० १।६।३, य० २९।३७, अथ० २०।२६।६, ४७।१२, ६९।११।

१४७१. अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥१॥[1]

प्रथम मन्त्र में आनन्दरस के प्रवाह का वर्णन है।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जीवात्मन्! **अयं सोमः** यह ब्रह्मानन्द-रस **तुभ्यम्** तेरे लिए **सुन्वे** अभिषुत हो रहा है, **तुभ्यम्** तेरे लिए **पवते** प्रवाहित हो रहा है। **त्वम् अस्य पाहि** तू इसका पान कर, **यम्** जिस **इन्दुम्** भिगोने वाले **सोमम्** ब्रह्मानन्द-रस को **मदाय** उत्साह के लिए, **युज्याय** और ब्रह्म के साथ मैत्री के लिए त्वं ह तूने ही **चकृषे** ब्रह्म के पास से उत्पन्न किया है, और **त्वम्** तूने ही **ववृषे** उसके पास से अपने ऊपर उसकी वर्षा की है ॥१॥

भावार्थ– परमात्मा के साथ अपने आत्मा का योग करते हुए योगी लोग उसके पास से परमानन्द प्राप्त करके कृतार्थ हो जाते हैं ॥१॥

१४७२. स इ रथो न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा की मैत्री का फल वर्णित है।

पदार्थ– सः ईम् वह यह **भुरिषाट्** बहुत-से विघ्नों को परास्त करने वाला, **महः** महान् सोम नामक जीवात्मा **पुरूणि वसूनि** बहुत से ऐश्वर्यों को **सातये** प्राप्त करने के लिए **रथ न** रथ के समान **अयोजि** परमात्मा के साथ जुड़ गया है। **आत ईम्** तदनन्तर ही **विश्वा** सब **जाता** बलवान् बने हुए **नहुष्याणि** मनुष्य के मन, बुद्धि आदि **स्वर्षाता** प्रकाश की प्राप्ति हो जाने पर **बने** तेज में **ऊर्ध्वा** ऊर्ध्वगामी हो कर **नवन्त** क्रियाशील हो गये हैं ॥२॥

यहाँ उपमालंकार है ॥२॥

भावार्थ– जैसे रथ जब बिजली रूप अग्नि के साथ जुड़ जाता है तब तुरन्त सक्रिय हो जाता है, वैसे ही परमात्मा की मित्रता में जुड़ा हुआ जीवात्मा स्वयं पुरुषार्थी होकर मन, बुद्धि आदि को भी सक्रिय कर देता है ॥२॥

१४७३. शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट्।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण् न यज्ञः ॥३॥[3]

---

१. ऋ० ९।८८।१

२. ऋ० ९।८८।२

३. ऋ० ९।८८।७।

अगले मन्त्र में मनुष्य को प्रेरित किया गया है ।

पदार्थ– हे सोम अर्थात् शान्तिप्रिय मानव ! **शुष्मी** बलवान् तू **मरुतां शर्धः न** पवनों के गण के समान **पवस्व** क्रियाशील बन । **दिव्या विट्** दिव्य गुणों वाली विदुषी प्रजा **यथा** जैसे **अनभिशस्ता** अनिन्दित होती है वैसे ही तू अनिन्दित हो । **आपः न** नदियों के समान **मक्षु** शीघ्र **नः** हमारे लिए **सुमतिः** परोपकार की मति वाला **भव** बन । **सहस्राप्साः** सहस्र रूपों वाले **पृतनाषाट्** न सेनाओं को पराजित करने वाले सेनापति के समान **यज्ञः** आत्म-बलिदान करने वाला बन ।।३।।

यहां मालोपमा अलंकार है ।।३।।

भावार्थ– मनुष्य यदि पवनों के समान बलवान् विद्वानों के समान प्रशस्त, नदियों के समान परोपकारी और सेनापतियों के समान आत्म-बलिदान करने वाले हों तो निश्चित ही राष्ट्र सर्वोन्नत हो जाए ।।३।।

।।१४।। अथ 'त्वमग्ने' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** १ वर्धमाना गायत्री, २-३ गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२ ३ २ ३ २ ३ १ ३ ३२ ३२ ३ १२३ १२
१४७४. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २ क्रमांक पर परमात्मा और सूर्य के विषय में की जा चुकी है । यहां परमेश्वर के गुण-कर्मों का वर्णन करते हैं ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनेता, ज्ञानी, सर्वान्तर्यामी, तेजस्वी, पापों को दग्ध करने वाले परमेश्वर ! **त्वम्** सर्वोपकारी आप **यज्ञानाम्** देवपूजा, संगतिकरण, दान रूप व्यवहारों के **होता** दाता हो, और **विश्वेषाम्** सबके **हितः** हितकर्ता हो । साथ ही **मानुशे जने** मानव-समाज में **देवेभिः** सदाचारी विद्वानों द्वारा [उपासना किये जाते हो] ।।१।।

भावार्थ– जगदीश्वर हमारा पिता होकर हमें सब व्यवहार सिखाता है, न्यायकारी और दयालु होकर सबका हित करता है, इस कारण सब लोगों को उसकी पूजा करनी चाहिए ।।१।।

१ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २
१४७५. स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः। आ देवान् वक्षि यक्षि च ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे अग्ने ! हे सबके अग्रनेता परमात्मन् ! **सः** वह आप **मन्द्राभिः** आनन्दायिनी **जिह्वाभिः** वेदवाणियों से **अध्वरे** जीवन-यज्ञ में **नः** हमें **महः** तेज **यज** प्राप्त कराओ, और **देवान्** दिव्यगुणों को **आवक्षि** लाओ, **यक्षि च** और हमारे साथ संगति करो ।।२।।

भावार्थ– जगत्पिता परमेश्वर की यह बड़ी भारी कृपा है कि उसने हमारे लिए वेदवाणी प्रदान की है, जिससे हमें अपने कर्तव्य का बोध होता है तथा जिससे हम तेज, पुरुषार्थ आदि की प्रेरणा पाते हैं।।२।।

---

१. ऋ० ६।१६।१, साम० २ ।
२. ऋ० ६।१६।२।

१४७६. वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा के उपकार का वर्णन है।।

पदार्थ– हे **वेधः** जगत् के विधाता, **देव** सबको प्रकाशित करने वाले, **सुक्रतो** शुभ प्रजा और शुभ कर्मों वाले, **अग्ने** अग्रनायक, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी परमात्मन् ! आप **हि** निश्चय ही **यज्ञेषु** जीवनयज्ञो में **अञ्जसा** शीघ्र या सरलतापूर्वक, हमारे लिए **अध्वनः** अभ्युदय के मार्गों को **वेत्थ** जानते तथा जनाते हो।।३।।

भावार्थ– जगदीश्वर हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मार्गों को जनाकर हमारा परम मित्र होता है।।३।।

।।१५।। अथ 'होता देवो' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वामित्रो गाथिनः। **देवता** अग्निः **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१४७७. होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया। विदथानि प्रचोदयन् ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर का वर्णन है ।

पदार्थ– होता कार्यसिद्धि को देने वाला, **देवः** दिव्य गुणों वाला, **अमर्त्यः** अमर अग्निनामक परमेश्वर **विदथानि** ज्ञानों, कर्मों और उच्च विचारों को **प्रचोदयन्** अन्तरात्मा में प्रेरित करता हुआ **मायया** ऋतम्भरा प्रज्ञा के साथ **पुरस्तात्** संमुख **एति** आता है ।।१।।

भावार्थ– योगाभ्यास द्वारा योगी लोग योगसिद्धि पाकर परमात्मा को बिल्कुल सामने देखते हैं।।१।।

१४७८. वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ।।२।।[3]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– वाजी बलवान् अग्नि नामक परमेश्वर **वाजेषु** देवासुरसंग्रामों में **धीयते** अन्तरात्मा में धारण किया जाता है, और **अध्वरेषु** हिंसारहित व्यवहारों में **प्रणीयते** आगे लाया जाता है । वह **विप्रः** विशेष पूर्णता प्रदान करने वाला तथा **यज्ञस्य साधनः** जीवन-यज्ञ को सफल करने वाला है ।।२।।

भावार्थ– जो परमेश्वर सबको सिद्धि देने वाला है उसकी सब लोगों को मनोयोगपूर्वक आराधना करनी चाहिए ।।२।।

१४७९. धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ।।३।।[4]

---

१. ऋ० ६।१६।३ ।
२. ऋ०३।२७।७ ।
३. ऋ०३।२७।८।
४. ऋ० ३।२७।९ ।

अगले मन्त्र में परमेश्वर क्या करता है यह कहते हैं।

पदार्थ– वरेण्यः वरणीय और श्रेष्ठ वह अग्नि नामक परमात्मा, अपने उपासक को **तना धिया** विस्तृत बुद्धि के दान द्वारा **दक्षस्य** मनोबल का **पितरम्** पिता **चक्रे** बना देता है। साथ ही **भूतानाम्** उत्पन्न प्रशस्त जनों में **गर्भम्** सद्गुणों के गर्भ को **आ दधे** स्थापित करता है ।।३।।

भावार्थ– उपासना किया हुआ जगदीश्वर उपासक का सखो बनकर उसके बल, विज्ञान और अध्यात्म-धन को बढ़ाता है ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, आनन्दरस प्रवाह और मानव-प्रेरणा का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

तेरहवें अध्याय में पंचम खण्ड समाप्त ।

।।१६।। अथ 'आ सुते' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** हर्यतः प्रागाथः । **देवता अग्निः । छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१४८०. आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ।।१।।[1]

प्रारंभ में उपास्य उपासक का विषय वर्णन करते हैं।

पदार्थ– हे मनुष्यो ! तुम **सुते** भक्तिरस के उमड़ने पर **रोदस्योः** द्युलोक और भूलोक के **अभि श्रियम्** शोभा-संपादक, **श्रियम्** आश्रय लेने योग्य अग्नि-नामक जगदीश्वर को **आ सिञ्चत** भक्तिरस से नहलाओ । **रसा** जगदीश्वर से निकली हुई आनन्दरस की नदी **वृषभम्** तुम्हारे ज्ञानसिक्त जीवात्मा को **दधीत** बल और पुष्टि प्रदान करे ।।१।।

यहां 'श्रियम्' की पुनरुपि में यमक अलंकार है ।।१।।

भावार्थ– जब परमेश्वर के उपासक उसके प्रति भक्तिरस की नदी प्रवाहित करते हैं तब परमेश्वर उनके प्रति आनन्द-रस की नदी बहाता है ।।१।।

१४८१. ते जानत स्वमोक्यां३ सं वत्सासो न मातृभिः।
मिथो नसन्त जामिभिः।।२।।[2]

आगे फिर उसी विषय में कहा गया है ।

पदार्थ– ते वे परमेश्वर के उपासक **स्वम्** अपने **ओक्यम्** हृदय-सदन में विद्यमान परमात्माग्नि को **जानत** उपास्य रूप में जानते हैं। और फिर उस परमेश्वर को उपासने के लिए **मिथः** आपस में **जामिभिः** माँ-बहिन आदियों के साथ **सं नसन्त** मिलकर बैठते हैं, **वत्सासः न** जैसे बछड़े **मातृभिः** अपनी माताओं गौओं के साथ **सं नसन्त मिलते हैं** ।।२।।

---

१. ऋ० ८।७२।१३। य० ३३।२१- अन्ते 'तं प्रत्नथाऽयं वेनः' इत्याधिकम् ।
२. ऋ० ८।७२।१४ ।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे बछड़े प्रेम से गौओं के साथ रहते हैं, वैसे ही घर के बालक से लेकर बूढ़े तक सब लोग आपस में एक साथ बैठकर परमात्मा की उपासना किया करें ।।२।।

१४८२. उप स्रक्वेषु बप्सतःकृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ।।३।।[1]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– उपासक लोग **स्रक्वेषु** आत्मसमर्पण होन पर **उप बप्सतः** समीप आकर पापों को खा लेने वाले परमात्मा का **दिवि** अपने आत्मा में **धरुणम्** धारण **कृण्वते** करते हैं। और वे **इन्द्रे** परमैश्वर्यशाली, विघ्नविदारक **अग्ना** अग्रनायक परमात्मा में **नमः** नमस्कार समर्पित करके **स्वः** प्रकाश को पा लेते हैं।।३।।

भावार्थ– ध्यान द्वारा परमात्मा को अपने आत्मा में धारण करके, श्रद्धा से नमस्कार करके उपासकों को परम ज्योति प्राप्त करनी योग्य है ।।३।।

।।१७।। अथ 'तदिदास' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** बृहद्दिव आथर्वणः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१४८३. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ।।१।।[2]

प्रारंभ में इन्द्र परमात्मा की महिमा वर्णित करते हैं।

पदार्थ– तत् इत् वह ब्रह्म ही **भुवनेषु** सूर्य, नक्षत्र आदि लोकलोकान्तरों में **ज्येष्ठम्** ज्येष्ठ **आस** है, **यतः** जिससे **उग्रः** प्रचण्ड, **त्वेषनृम्णः** प्रदीप्त ज्योतिरूप धन वाला अथवा प्रदीप्त बल वाला सूर्य **शत्रून्** अन्धकार, मलिनता, रोग आदि शत्रुओं को **नि रिणाति** विनष्ट करता है, **यम् अनु** जिसकी अनुकूलता से **विश्वे** सब **ऊमाः** रक्षक पृथिवी, मंगल, बुध, चन्द्रमा आदि **मदन्ति** प्रकाश और प्राण को प्राप्त करते हैं।।१।।

भावार्थ– ज्येष्ठ ब्रह्म ही सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, मंगल, बुध, बृहस्पति, तारामंडल आदि लोक-लोकान्तरों का निर्माण करके इस ब्रह्माण्ड का संचालन कर रहा है ।।१।।

१४८४. वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ८।७२।१५ ।

२. ऋ० १०।१२०।१, य० ३३।८०। अथ० ५।२।१ देवता वरुणः, २०।१०७।४, अथर्ववेदे उभयत्र 'अनु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः' इति चतुर्थः पादः ।

३. ऋ० १०।१२०।२, अथ० ५।२।२ देवता वरुणः, २०।१०७।५ ।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का प्रताप वर्णित है ।

पदार्थ– **शवसा** बल से **वावृधानः** अतिशय बढ़ा हुआ, **भूर्योजाः** बहुत प्रतापी, **शत्रुः** दुष्टों का विनाश करने वाला इन्द्र परमेश्वर **दासाय** यज्ञ आदि सत्कर्मों का विध्वंस करने वाले को **भियसम्** भय **दधाति** देता है । हे इन्द्र परमात्मन्! **अव्यनच्च** निर्जीव **व्यनत् च** और सजीव जगत् **सस्नि** आप से ही संस्नात होता अर्थात् शुद्ध किया जाता है । हे देव! **ते** आपके द्वारा उत्पन्न **मदेषु** आनन्दों में **प्रभृता** प्रकृष्ट रूप से धारण और पुष्ट किये गये सब प्राणी **सन्नवन्त** आपकी स्तुति करते हैं ।।२।।

भावार्थ– अनन्त बल वाले जगदीश्वर से दुष्ट लोग भय खाते हैं और सज्जन उससे पालित-पोषित होकर श्रद्धा से उसकी बारम्बार स्तुति करते हैं ।।२।।

१४८५. त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का प्रभाव वर्णन करते हुए उससे प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे इन्द्र जगदीश्वर! **यत् एते** जो ये **ऊमाः** रक्षक माता, पिता, अतिथि, संन्यासी आदि लोग **द्विः** दो बार, या **त्रिः** तीन बार **भवन्ति** जन्म लेते हैं, वे **त्वे** आपमें ही **क्रतुम्** किये जाते हुए सब कर्म को **अपि वृञ्जन्ति** समर्पित करते हैं। आप **स्वादुना** मेरे स्वादु आनन्द के साथ **स्वादोः स्वादीयः** अपने स्वादुतर आनन्द को **संसृज** मिला दो । **अदः** इस **सुमधु** अति मधुर अपने रस को **मधुना** मेरे मधुर जीवन के साथ **अभियोधीः** मिला दो ।।३।।

यहां स्वादोः, स्वादी, स्वादु में वृत्त्यनुप्रास है, द, स और ध की आवृत्ति में भी वही अनुप्रास है । 'मधु, मधु' में छेकानुप्रास है ।।३।।

भावार्थ– एक जन्म माता-पिता से और दूसरा जन्म आचार्य से पाकर मनुष्य द्विज बनता है, और जो गृहस्थाश्रय में प्रवेश करके सन्तान उत्पन्न करता है, वह इसका तृतीय जन्म होता है, क्योंकि 'पिता स्वयं पुत्र के रूप में जन्म लेता है' (निरू० ३।४) यह शास्त्र का वचन है । जो भी द्विज या त्रिज महापुरुष होते है वे परमात्मा में ही अपना सर्वस्व अर्पित कर देते हैं और परमात्मा उनके लिए अत्यन्त मधुर अपना आनन्द-रस बरसाता है ।।३।।

।।१८।। अथ 'त्रिकद्रुकेषु' इत्यादिकस्याष्टदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गृत्समदः शौनकः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** १ अष्टिः, २-३ अतिशक्वरी । **स्वरः** १ मध्यमः, २-३ पञ्चमः ।।

१४८६. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्
तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्त्तवे महामुरुं
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।१।।[2]

---

१. ऋ० १०।१२०।३, अथ० ५।२।३ देवता वरुणः, २०।१०७।६, उभयत्र 'वृञ्जन्ति विश्वे' इत्यत्र 'पृञ्चन्ति भूरि' इति पाठः ।
२. ऋ० २।२२।१, अथ० २०।९५।१, उभयत्र 'तृम्पत्' इत्यत्र 'तृपत्' इति, अन्ते च 'सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः' इति पाठः । साम० ४५७ ।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४५७ क्रमांक पर सूर्य-चन्द्र और गुरु-शिष्य के विषय में की गयी थी । यहां उपास्य-उपासक का विषय दर्शाते हैं ।

पदार्थ— **त्रिकद्रुकेषु** तीन ऋग्, यजुः, साम रूप साधनों वाले उपासना-यज्ञों में **महिषः** महान् जीवात्मा **विष्णुना** सर्वव्यापक परमात्मा से **सुतम्** चुआए हुए, **यवाशिरम्** योगाभ्यास से परिपक्व, **तुविशुष्मम्** बहुत बलदायक **सोमम्** ब्रह्मानन्द-रस को **यथावशम्** यथेच्छ **अपिबत्** पीता है । **सः** वह ब्रह्मानन्द-रस **महाम्** महान्, **उरुम्** विस्तृत ज्ञान वाले **ईम्** इस जीवात्मा को **महि कर्म** महान् कर्म **कर्तवे** करने के लिए **ममाद** उत्साहित करता है । **सः** वह **देवः** प्रकाशक, **सत्यः** सत्य, **इन्दुः** उपासक को भिगोने वाला ब्रह्मानन्द-रस **देवम्** दिव्य-गुण-युक्त, **सत्यम्** सत्य के प्रेमी **एनम् इन्द्रम्** इस जीवात्मा को **सश्चत्** निरन्तर प्राप्त होता रहता है ।।१।।

भावार्थ— वेदमन्त्रों के गान पूर्वक मनुष्य जब परमात्मा को ध्याता है तब परमात्मा के पास से धारा-प्रवाह में बहता हुआ परमानन्द-रस उसके आत्मा को निरन्तर नहलाता रहता है ।।१।।

१४८७. साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः
सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं
सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।१।।[1]

अगले मन्त्र में फिर उपास्य-उपासक का विषय है ।

पदार्थ— हे इन्द्र जगदीश्वर ! आप **क्रतुना** कर्म और प्रज्ञा के **साकम्** साथ, और **ओजसा** बल के **साकम्** साथ **जातः** प्रसिद्ध हो । इसी कारण आप **ववक्षिथ** जगत् के भार को वहन कर रहे हो । आप **वीर्यैः साकम्** पराक्रमों के साथ **वृद्धः** प्रवृद्ध, **मृधः सासहिः** हिंसकों को परास्त करने वाले, **विचर्षणिः** पुण्यकर्ताओं और अपुण्यकर्ताओं को विवेक पूर्वक देखने वाले हो । हे **प्रचेतन** उत्कृष्टरूप से चेताने वाले ! आप **स्तुवते** स्तुतिकर्ता जन के लिए **राधः** सफलता, और **काम्यं वसु** अभीष्ट ऐश्वर्य के **दाता** देने वाले हो । **सः** वह **देवः** दिव्यगुणों वाला, **सत्यः** सत्य का प्रेमी **इन्दुः** तेजस्वी स्तोता **एवम्** इस **देवम्** दिव्य गुणों वाले, **सत्यम्** सत्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले **इन्द्रम्** परमैश्वर्यवान् आप जगदीश्वर को **सश्चत्** प्राप्त कर लेवे ।।२।।

भावार्थ— जो ज्ञान, कर्म, बल और पराक्रम में सर्वाधिक है और सदाचारी स्तोता के उत्तम मनोरथों को पूर्ण करने वाला है, उस जगदीश्वर को ध्याकर और पाकर सब मनुष्य पूर्ण मनोरथों वाले हों ।।२।।

---

१. ऋ० २।२२।३, 'सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः' इत्यन्ते भेदः ।

१४८८. अध त्विषीमाँ अभ्योजसा कृविं युधाभवदा
रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा और उपासक का विषय वर्णित है ।

पदार्थ— **अध** और **त्विषीमान्** प्रशस्त तेज वाला वह इन्द्र जगदीश्वर **ओजसा** बल से **युधा** युद्ध द्वारा **क्रिविम्** हिंसक जन को **अभि अभवत्** परास्त कर देता है । वही **रोदसी** द्युलोक और भूलोक को **आ पृणत्** जल, तेज आदि ऐश्वर्यों से भरपूर करता है । **अस्य** इस इन्द्र जगदीश्वर के **मज्मना** बल से, यह सब जगत् **प्र वावृधे** प्रवृद्ध होता है । वह जगदीश्वर **अन्यम्** किसी को अर्थात् दुष्टाचारी को **जठरे** भूकम्प आदि से भूमि कोठ फाड़कर उसके पेट में **अधत्त** डाल देता है, और **ईम्** कोई अर्थात् सदाचारी मनुष्य **प्र अरिच्यत** इसकी महिमा से बढ़ता है । **सः** वह **देवः** दिव्यगुणी, **सत्यः** सत्य का प्रेमी **इन्दुः** तेजस्वी उपासक **देवम्** प्रकाश देने वाले, **सत्यम्** सत्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले **एनम् इन्द्रम्** इस परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर को **सश्चत्** प्राप्त करे । हे जगदीश्वर ! आप उस उपासक को **प्रचेतय** प्रज्ञानयुक्त करो ।।३।।

भावार्थ— जो सज्जनों को पीड़ित करते हैं उन्हें जो जगत् का स्रष्टा, अपरिमित बल वाला, न जीता जा सकने वाला जगदीश्वर यथायोग्य दण्डित करता है उसकी सब लोग श्रद्धा और प्रेम से उपासना करके अपने अभीष्टों को पूर्ण करें ।।३।।

इस खण्ड में उपास्य-उपासक विषय का और परमात्मा की महिमा का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

तेरहवें में षष्ठ खण्ड समाप्त ।

तेरहवां अध्याय समाप्त ।

षष्ठ प्रपाठक में तृतीय अर्ध समाप्त ।।

इति बरेलीमण्डलान्तर्गतफरीदपुरवास्तव्यश्रीमद्गोपालरामभगवतीदेवीतयेन हरिद्वाररीयगुरुकुल-कागड़ीविश्वविद्यालयेऽधीतविद्येन विद्यामार्तण्डेन आचार्यरामनाथवेदालङ्कारेण महर्षिदयानन्द-सरस्वतीस्वामिकृतवेदभाष्यशैलीमनुसृत्य- विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां- समन्वितसुप्रमाणयुक्त- सामवेद-भाष्ये उत्तरार्चिके षष्ठः प्रपाठकः समाप्तिमगात् ।।

।।१।। अथ 'अभि प्र' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रियमेध आङ्गिरसः । **देवता—** इन्द्रः । छन्दः गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

---

१. ऋ० २।२२।२, 'प्रचेतय' इति नास्ति, अन्ते च 'सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः' इति भेदः ।

१४८९. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १६८ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की जा चुकी है। यहां जीवात्मा का विषय लेते हैं।

पदार्थ– हे मित्र ! तू **गोपतिम्** इन्द्रियों के स्वामी, **सत्यस्य सूनुम्** सत्यस्वरूप परमात्मा के पुत्र, **सत्पतिम्** श्रेष्ठ विचारों के रक्षक इन्द्र नामक जीवात्मा को **अभि** लक्ष्य करके **प्र अर्च** बहुत अधिक उद्बोधन-वाक्यों का उच्चारण कर, **यथा** जिससे वह **विदे** बोध प्राप्त कर ले ।।१।

भावार्थ– मनुष्य का अपना आत्मा यदि तीव्र उद्बोधन प्राप्त कर ले तो जगत् में उसके लिए कुछ भी दुर्लभ न हो ।।१।।

१४९०. आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि संनवामहे ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में जीवात्मा के अधिष्ठान देह का वर्णन है।

पदार्थ– बर्हिषि अधि यज्ञ रूप इस देह में **अरुषीः** यज्ञ को न हिंसित करने वाले **हरयः** मन और प्राणसहित ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप घोड़े **आ ससृज्रिरे** आकर जुड़े हुए हैं, **यत्र** जिस देह-यज्ञ में स्थित इन्द्र जीवात्मा को, हम **अभि संनवामहे** संस्तुत करते हैं, उद्बोधन देते हैं।।२।।

भावार्थ– जो लोग शरीर को यज्ञस्थल, उसमें स्थित इन्द्रियों को ऋत्विज् और जीवात्मा को यजमान मानकर पवित्र जीवन बिताते हैं वे सफल होते हैं।।२।।

१४९१. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत्सीमुपह्वरे विदत् ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि आत्मा ज्ञान कैसे प्राप्त करता है।

पदार्थ– वज्रिणे वीर्यवान् **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए **गावः** मन और बुद्धि सहित इन्द्रिय रूप धेनुएं **मधु** मधुर **आशिरम्** ज्ञानरूप दूध को **दुदुह्रे** दुहती हैं, **यत्** जिस ज्ञान-दुग्ध को वह इन्द्र जीवात्मा **सीम्** सब ओर से **उपह्वरे** अपने समीप **विदत्** लाता है ।।३।।

भावार्थ- परमात्मा ने जीवात्मा को मन, बुद्धि, इन्द्रिय रूपश्रेष्ठ साधन प्रदान किये हैं, जिनसे वह सारा ज्ञान अर्जित कर सकता है ।।३।।

।।२।। अथ 'आ नो' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषि** नृमेधपुरुमेधौ आङ्गिरसौ । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

---

१. ऋ० ८।६९।४, अथ० २०।२२।४, ९२।१, साम० १६८।

२. ऋ० ८।८९।५, अथ० २०।२२।५; ९२।२।

३ ऋ० ८।६९।६, अथ० २०।२२।६, ९२।३।

१४९२. आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २६९ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में की गयी थी । यहां विघ्न दूर करने के लिए परमात्मा और राजा से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे राष्ट्रवासी जनो ! तुम **विश्वास समत्सु** सब देवासुरसंग्रामों में **नः** हम प्रजाजनों के **हव्यम्** आह्वान करने योग्य **इन्द्रम्** परमात्मा वा राजा को **आभूषत** स्वागत-गानों से अलंकृत करो । हे **वृत्रहन्** विघ्न-विदारक, पाप-दल के विध्वंसक, **ऋचीषम** स्तोताओं को मान देने वाले परमात्मन् वा राजन् ! **परमज्याः** प्रबल आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को विनष्ट करने वाले आप, हमारे **ब्रह्माणि** ब्रह्म यज्ञों में, तथा **सवनानि सोमयाग** के प्रातः सवन, माध्यन्दिन-सवन और सायं-सवनों में **उप** आओ ।।१।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर नास्तिक पापियों को दण्ड देकर और धर्मात्मा आस्तिक लोगों से मित्रता करके धार्मिकता का पोषण करता है, वैसे ही राजा भी करे ।।

१४९३. त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा का वर्णन है ।

पदार्थ– हे इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर वा राजन् ! **त्वम्** आप **राधसाम्** ऐश्वर्यों के **प्रथमः** श्रेष्ठ **दाता** दाता, **सत्यः** सत्य के प्रेमी और **ईशानकृत्** निर्धनों को भी धन स्वामी बना देने वाले **असि** हो । **तुविद्युम्नस्य** बहुत धनी वा यशस्वी, **शवसः पुत्रस्य** बल के पुत्र अर्थात् अति बली, **महः** महान् आपके **युज्या** मित्रभाव को, सहयोग को **वृणीमहे** हम वरते हैं ।।२।।

भावार्थ– परमदानी, अतिशक्तिशाली परमात्मा और राजा की मैत्री को स्वीकार करके निर्धन भी धनवान्, कुछ करने में असमर्थ भी बहुत कार्य कर सकने वाले, सेवक भी स्वामी और निन्दित भी यशस्वी हो जाते हैं ।।२।।

।।३।। अथ 'प्रत्नं पीयूषं' इत्यादिकस्य तृतीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषी** त्र्यरुणत्रसदस्य त्रैवृष्णपौरुकुत्सौ । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** ऊर्ध्वा बृहती । **स्वरः** मध्यमः ।।

१४९४. प्रत्नं पीयुषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ।।१।।[3]

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रस का वर्णन है ।

---

१. ऋ० ८।९०।१, अथ० २०।१०४।३, उभयत्र 'हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु', 'वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः' इति पाठः । साम० २६९ ।

२. ऋ० ८।९०।२, अथ० २०।१०४।४ ।

३. ऋ० ९।११०।८, 'दिवः पीयूषं' मिति भेदः ।

पदार्थ– **यत्** जो **प्रत्नम्** सनातन, **पूर्व्यम्** पूर्वजों से अनुभूत, ओर **उक्थ्यम्** प्रशंसनीय है, उस **पीयूषम्** पान करने योग्य ब्रह्मानन्द-रूप अमृत को **महः** महान्, **गाहात्** गहन **दिवः** प्रकाशमय परमेश्वर से **आ निरधुक्षत** उपासक लोग दुहकर प्राप्त कर लेते हैं। **इन्द्रम् अभि** जीवात्मा के प्रति **जायमानम्** उत्पन्न होते हुए उसकी **ते** वे उपासक जन **समस्वरन्** भली-भांति स्तुति करते हैं।।१।।

भावार्थ- परब्रह्म के पास से जीवात्मा के प्रति प्रवाहित होते हुए आनन्द-रस का उपासक लोग स्वागतगानपूर्वक अभिनन्दन करते हैं।।१।।

१४९५. आदीं के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ।।२।।[1]

आगे पुनः वही विषय है ।

पदार्थ– **आत्** जब परब्रह्म के पास से बहता हुआ ब्रह्मानन्द-रस जीवात्मा को प्राप्त होने लगता है उसके अनन्तर इस ब्रह्मानन्द के **आप्यम्** अपने साथ बन्धुत्व को **पश्यमानासः** देखते हुए, **वसुरुचः** अग्नि, बिजली और आदित्य के समान कान्तिवाले तेजस्वी **केचित्** कोई **दिव्याः** दीप्तिमान् ब्रह्म का साक्षात्कार करने में निपुण उपासक **ईम्** इस ब्रह्मानन्द-रस की **अभ्यनूषत** स्तुति करते हैं। **सविता** सूर्य **दिवः न वारम्** जैसे आकाश के शिशु चन्द्रमा को अपने प्रकाश से **व्यूर्णुते** आच्छादित करता है, वैसे ही **सविता** रस का प्रवाहक सोम परमेश्वर उन उपासकों को **व्यूर्णुते** आनन्द-रस से अच्छादित करता है।।२।।

यहां उपमालंकार है । वारम्=बालम् ।।२।।

भावार्थ– जैसे सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा स्नान करता है, वैसे ही परमात्मा के आनन्द-रस से जीव।।२।।

१४९६. अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभा वि राजसि ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में परमेश्वर की महिमा वर्णित है।

पदार्थ– **अध** और, हे **पवमान** क्रियाशील परमात्मन्! आप **यत्** जब **इमे रोदसी** इन द्युलोक और भूलोक को **इमा च** तथा इन **विश्वा भुवना** सब भुवनों को **मज्मना** बल से **अभि** अभिभूत करते हो, तब **यूथे न** जैसे गौओं के झुण्ड में **निष्ठाः** स्थित **वृषभा** सांड शोभा पाता है, वैसे ही आप **विराजसि** शोभते हो ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

---

१. ऋ० ९।११०।६, 'वारं न देवः सविता व्यूर्णुते' इति तृतीयः पादः ।

२. ऋ० ९।११०।९, 'यूथे न निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे' इति तृतीयः पादः ।

भावार्थ- जैसे गौओं के झुण्ड में वृषभ अपने महत्व के कारण पृथक् शोभा पाता है, वैसे ही ब्रह्माण्ड के लोक-लोकान्तारों के मध्य जगत्स्रष्टा परमेश्वर सर्वाधिक महिमा के कारण पृथक् भासित होता है ।।३।।

।।४।। अथ 'इमम्' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शुनःशेप आजीगर्तिः **देवता** अग्निः ।

१४९७. इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २८ क्रमांक पर परमेश्वर को सम्बोधित की गयी थी । यहां जगदीश्वर और आचार्य को सम्बोधन है ।

पदार्थ- हे **अग्ने** विद्वन् जगदीश्वर वा आचार्य! **त्वम् उ** आप **इमाम्** इस **अस्मांक सनिम्** हमें बहुत बोध देने वाले **गायत्रम्** गायत्री आदि छन्दों से युक्त वेदज्ञान को वा गायत्र नामक सामको **देवेषु** दिव्य गुणों वाले सत्पात्रों में **सु प्रवोचः** भली-भाँति उपदेश करते हो ।।१।।

भावार्थ- जैसे सृष्टि के आदि में जगदीश्वर अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा नामक ऋषियों के हृदय में चारों वेदों को प्रेरित करता है, वैसे ही गुरु लोग आजकल से सत्पात्र शिष्यों को वेदज्ञान का उपदेश करें ।।१।।

१४९८. विभक्तासि चित्रभानो सिनधोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में फिर जगदीश्वर और आचार्य को कहा गया है ।

पदार्थ- प्रथम परमात्मा के पक्ष में । हे **चित्रभानो** अद्भुत तेज वाले अग्नि नामक परमात्मान्! आप **विभक्ता असि** अपना तेज को अन्य सूर्य आदि पदार्थो में बांटने वाले हो । आप **सिन्धोः** समुद्र वा नदी की **ऊर्मों** लहर में विद्यामान हो । आप **उपाके** सबके समीप **आ** विराजमान हो । आप **दाशुषे** आत्मसमर्पणकर्ता उपासक के लिए **सद्यः** शीघ्र ही **क्षरसि** आनन्द को चुआते हो ।।

द्वितीय- आचार्य के पक्ष में । हे **चित्रभानो** अद्भुत विद्या-प्रकाश से पूर्ण विद्वान् आचार्य! आप **विभक्ता असि** अन्यों में विद्या को बांटने वाले हो । **सिन्धोः ऊर्मौ उपाके** नदी के लहरों वाले प्रवाह के निकट **आ** गुरुकुल आश्रम की स्थापना करके निवास करते हो । और वहां **सद्यः** जल्दी-जल्दी **दाशुषे** आत्मसमर्पक शिष्य के लिए **क्षरसि** विद्या को बरसाते हो ।।२।।

यहां श्लेषालंकार है ।।२।।

भावार्थ- जैसे जगदीश्वर सब वस्तुएं अपनी प्रजाओं में बांटते हैं, वैसे ही गुरु लोग सब विद्याएं अपने शिष्यों में बांटें ।।२।।

१४९९. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ।।३।।[3]

---

१. ऋ० १।२७।४, साम० २८ ।

२. ऋ० १।२७।६ ।

३. ऋ० १।२७।५।

आगे जगदीश्वर और आचार्य से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे अग्ने! हे विद्वन् परमात्मन् वा आचार्य! आप **परमेषु** परा-विद्या से उत्पन्न होने वाले उच्च **वाजेषु** विज्ञानों में **नः आ भज** हमें भागी बनाओ, **मध्यमेषु** अपरा विद्या से उत्पन्न होने वाले मध्यम **वाजेषु** विज्ञानों में **आ भज** भागी बनाओ, और **अन्तमस्य** आपके समीप विद्यमान **वस्वः** सकल ऐश्वर्य का भी **शिक्ष** दान करो ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर की कृपा से तथा योग्य गुरुओं की शिक्षा से सब लोग 'परा विद्या वह है जिससे उस अविनश्वर परब्रह्म की प्राप्ति होती है '(मु० २।५)' इस लक्षण वाली परा विद्या को, 'अपरा विद्या है ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द, ज्योतिष (मु० २५)' इस लक्षण वाली अपरा विद्या को, और सकल चांदी, सोना, मणि, मोती आदि धन को प्राप्त करें ।।३।।

।।५।। अथ 'अहमिद्धि' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वत्सः काण्वः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५००. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १५२ क्रमांक पर व्याख्यात हो चुकी है । यहां मनुष्य अपनी उपलब्धि का वर्णन कर रहा है ।

पदार्थ– अहम् मैंने **इत् हि** निश्चय ही **पितुः परि** पालनकर्ता पिता, आचार्य वा परमेश्वर से **ऋतस्य** सत्य ज्ञान और सत्य आचरण की **मेधाम्** बुद्धि को **जग्राह** ग्रहण कर लिया है । **अहम्** सत्यज्ञान वा सत्य आचरण को प्राप्त मैं **सूर्यः इव** सूर्य के समान सर्वोन्नत, प्रकाशवान् और प्रकाशक **अजनि** हो गया हूं ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जो माता, पिता वा आचार्य के पास से तथा परमेश्वर की प्रेरणा से सब विद्याओं और सदाचार को सीखकर उनका यथायोग्य सत्कार तथा पूजन करते हैं और दूसरों को विद्याएं तथा सदाचार सिखाते हैं वे प्रशंसित होते हैं ।।१।।

१५०१. अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

पदार्थ– अहम् मैं महत्त्वाकांक्षी जन प्रत्नेन जन्मना आचार्य के पास से प्राप्त श्रेष्ठ जन्म से **कण्ववत्** मेधावी विद्वान् के समान **गिरः** अपनी वाणियों को **शुम्भामि** सत्य भाषण से अलंकृत करता हूं, **येन** जिससे **इन्द्रः** मेरा जीवात्मा **शुष्मम् इत्** बल को ही **दधे** धारण करता है ।।२।।

---

१. ऋ० ८।६।१०, अथ० २०।११५।१, उभयत्र 'जुग्रभ' इति भेदः । साम० १५२

२. ऋ० ८।६।११, अथ० २०।११५।२ उभयत्र 'जन्मना' इत्यत्र 'मन्मना'।

भावार्थ– आचार्य और सावित्री के पास से द्वितीय जन्म ग्रहण कर, द्विज होकर जो मन, वाणी और कर्म से सत्य का ही अनुष्ठान करता है वह पवित्र आत्मा वाला और सबल आत्मा वाला होकर सबसे सत्कार पाता है ।।२।।

१५०२. ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में स्तोता अपना अभिप्राय प्रकट कर रहा है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** परमैश्वर्यवान् , दोषहन्ता, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ! **ये** जो निरीश्वरवादी लोग **त्वाम्** आप की **न तुष्टुवुः** स्तुति नहीं करते हैं, **ये च ऋषयः** और जो तत्त्वदर्शी, वेदार्थवेत्ता, आपके स्वरूप का साक्षात्कार करने वाले विद्वान् जन **तुष्टुवुः** महिमा-वर्णन द्वारा आपकी स्तुति करते हैं, वे अपनी इच्छा के अनुसार भले ही व्यवहार करें, किन्तु **मम** मेरे स्तोत्र से **सुष्टुतः** भली भांति आराधना किये गये आप, मेरे अन्तरात्मा में **वर्धस्व इत्** अवश्य वृद्धि को प्राप्त होवो ।।३।।

भावार्थ– कोई लोग कहते हैं कि परमेश्वर नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, यदि है भी तो वह उपेक्षा योग्य है । भले ही वे उसकी स्तुति न करें । मेरी जीवन-नौका का तो वही कर्णधार है, इसलिए मैं बार-बार उसका वन्दन करता हूं और अभिनन्दन करता हूं ।।३।।

इस खण्ड में जीवात्मा, परमात्मा, ब्रह्मानन्द, राजा, आचार्य और स्तोता के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

चौदहवें अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।।

।।६।। अथ 'अग्ने' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अग्निस्तापसः ।**देवता** अग्निः (विश्वे- देवाः?)। **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धार ।।

१५०३. अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ।।१।।

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे सहस्कृत ध्यान-बल से प्रकट किये गये **अग्ने** विश्ववन्द्य परमात्मन् ! आप **विश्वेभिः** सब **अग्निभिः** तेजों के साथ **ब्रह्म** हमारे अन्तरात्मा को **जोषि** प्राप्त होवो । **ये** जो तेज **देवत्रा** प्रकाशक बिजली, सूर्य आदियों में हैं, और **ये** जो तेज **आयुषु** मनुष्यों में हैं **तेभिः** उनसे **नः** हमारी **गिरः** वाणियों को **महय** महिमामय करो ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा ने जो अग्नियां रची हैं उनसे तेज के तत्त्व को लेकर हम अपने वाणी, मन, बुद्धि, आत्मा आदि को तेजस्वी बनायें ।।१।।

१५०४. प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः ।।२।।

१. ऋ० ८।६।१२, अथ० २०।११५।३ ।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है ।

पदार्थ– **अग्निः** अग्नि नाम से प्रसिद्ध जगदीश्वर **सः** वह है **यस्य** जिसके रचे हुए **वाजिनः** बलवान् मन, बुद्धि, प्राण आदि और सूर्य, चन्द्र आदि हैं। **सः** वह **विश्वेभिः अग्निभिः** अपनी रची हुई आग, बिजली, सूर्य आदि सब अग्नियों के कारण **प्र** प्रशंसनीय बना हुआ है। **वाजैः** बलों से **परीवृतः** घिरा हुआ वह **अस्मत्** हममें और **तोके तनये** हमारे पुत्र, पौत्र आदियों में **सम्यङ्** भली-भाँति **आ** आये ॥२॥

भावार्थ– न केवल हम, प्रत्युत हमारी भावी सन्ततियां भी अध्यात्म मार्ग की पथिक होवें ॥२॥

१५०५. त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥३॥[1]

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक, ज्योतिप्रदायक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ जगदीश्वर ! **त्वम्** सर्वशक्तिमान् आप **अग्निभिः** अपनी ज्योतियों से **नः** हमारे **ब्रह्म** जीवात्मा को **यज्ञं च** और हमारे द्वारा किये जाने वाले उपासना, मानवसेवा आदि यज्ञ को **वर्धय** बढ़ाओ । **आप देवतातये** राष्ट्रोत्थानरूप यज्ञ की पूर्ति के लिए **नः** हमें **रायः** विद्या, सुवर्ण, धान्य आदि धन के **दानाय** दान के लिए **चोदय** प्रेरित करो ॥३॥

भावार्थ– परमात्मा के तेज से तेजस्वी होकर हम परमात्मा के समान परोपकार-यज्ञ में संलग्न होवें और विद्या, धन, धान्य आदि का दान करते हुए समाज को उन्नत करें ॥३॥

॥७॥ अथ 'त्वे सोम' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषी** त्र्यरुणत्रसदस्यू त्रैवृष्णपौरुकुत्सौ । **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** ऊर्ध्वा बृहती । **स्वरः** मध्यमः ॥

१५०६. त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥१॥[2]

प्रथम मन्त्र में सोम नाम से जगत्पति से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **सोम** जगत् के उत्पादक, शुभ गुण-कर्म-स्वभाव के प्रेरक, सब को आह्लाद देने वाले परमात्मन् ! **प्रथमाः** श्रेष्ठ **वृक्तबर्हिषः** उपासना-यज्ञ में कुशाओं का आसन बिछाये हुए यजमान **महे वाजाय** महान् बल के लिए, और **श्रवसे** यश के लिए **त्वे** आप में **धियं दधुः** ध्यान लगाते हैं । **सः त्वम्** वह सब श्रेष्ठ जनों से ध्यान किये गये आप **नः** हम ध्यानकर्ताओं को **वीर्याय** वीर कर्म के लिए **चोदय** प्रेरित कीजिए ॥१॥

भावार्थ– परमात्मा के ध्यानकर्ता लोग बली होकर शुभ्र लोकहितकारी कर्मों को करते हुए यशस्वी होते हैं ॥१॥

१५०७. अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥२॥[3]

---

१. ऋ० १०।१४१।६। अथ० ३।२०।५ 'देवतातये' इत्यत्र 'देव दातवे'।
२. ऋ० ९।११०।७ ।
३. ऋ० ९।११०।५ ।

अगले मन्त्र में जगत्पति के उपकारों का वर्णन है ।

पदार्थ– हे सोम नामक जगत्पति परमात्मन् ! **श्रवसा** यश से प्रसिद्ध आप **अक्षितम् उत्सं न** अक्षय जल-स्रोत के समान **अक्षितं जनपानम्** मनुष्यों से पान करने योग्य अक्षय आनन्द-रस को **अभ्यभि हि** उपासकों के प्रति **ततर्दिथ** बहाते हो । और **गभस्त्योः** बाहुओं की **शर्याभिः न** अंगुलियों से जैसे कोई मनुष्य किसी वस्तु को पकड़ता है वैसे ही आपने **गभस्त्योः** द्यावापृथिवी की **शर्याभिः** किरणों से **भरमाणः** लोक लोकान्तरों को धारण किया हुआ है ।।२।।

इस मन्त्र में शिलष्टोपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे स्रोत से बहता हुआ जलप्रवाह भूभाग को आप्लावित कर देता है, वैसे ही परमात्मा के पास से बहता हुआ आनन्द-रस उपासकों के अन्तःकरण को आप्लावित करता है । और जैसे बाहुओं की अंगुलियों से कोई किसी पदार्थ को धारण करता है, वैसे ही जगदीश्वर द्यावापृथिवी में व्याप्त सूर्य-रश्मियों से विभिन्न लोकों को धारण करता है ।।२।।

१५०८. अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय में वर्णन है ।

पदार्थ– हे **अमृत** अमर सोम जगदीश्वर! आपने **मर्त्याय** मनुष्य के लिए **ऋतस्य धर्मन्** जलवा सत्यनियम के धारणकर्ता आकाश में **चारुणः** कल्याणकारी, **अमृतस्य** अमृतमय बादल वा सूर्य के **कम्** सुखकारी जल वा प्रकाश को **अजीजनः** उत्पन्न किया है । साथ ही **वाजम् अच्छ** बल प्राप्त कराने के लिए **सनिष्यदत्** प्रवृत्त होते हुए आप **सदा** हमेशा **असरः** धार्मिक उपासकों को प्राप्त होते हो ।।३।।

भावार्थ– जगदीश्वर का हमारे प्रति कितना उपकार है कि वह हमारे लिए आकाश में जल बरसाने वाले बादल को और तेज के खजाने सूर्य को स्थापित करता है और वही सब विपदाओं तथा विघ्नों से मुकाबला करने के लिए हमें मनोबल भी देता है।।२।।

।।८।। अथ 'एन्दुमिन्द्राय' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वमना वैयश्वः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ।।

१५०९. एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधांसि चोदयते महित्वना ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा में पूर्वार्चिक के ३८६ क्रमांक पर इन्द्र शब्द से परमात्मा का ग्रहण किया गया था । यहां जीवात्मा का ग्रहण करते हैं ।

---

१. ऋ० ९।११०।४, 'मर्त्याय कमृतस्य' इत्यत्र 'मर्त्येष्वाँ ऋतस्य' इति पाठः ।

२. ऋ० ८।२४।१३ 'प्र राधसा चोदयाते' इति भेदः । साम० ३८६ ।

पदार्थ— हे साथियो! तुम **इन्द्राय** अपने अन्तरात्मा के लिए **इन्द्रम्** सराबोर करने वाले ब्रह्मानन्द-रस को **आ सिञ्चत** प्रवाहित करो। वह अन्तरात्मा **सोम्यम्** शान्तिकारी **मधु** उस मधुर ब्रह्मानन्द-रस को **पिबाति** पिये। पिया हुआ वह ब्रह्मानन्द-रस **महित्वना** अपनी महिमा से **राधांसि** ऐश्वर्यों को **प्रचोदयते** प्रेरित करे ॥१॥

भावार्थ— परमात्मा के पास से बहता हुआ आनन्द-रस जीवात्मा से पान किये जाने पर बहुत कल्याणकारी होता है ॥१॥

१५१०. उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम्। नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की स्तुति है।

पदार्थ— **हरीणाम्** आकर्षण के गुण से एक-दूसरे के साथ बंधे हुए सूर्य, भूमण्डल, मंगल, बुध, चन्द्र, नक्षत्र आदियों के अथवा ज्ञान और कर्म का आहरण करने वाली ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के **पतिम्** स्वामी, **राधः** ऐश्वर्य को **पृञ्चन्तम्** प्रदान करने वाले इन्द्र परमात्मा के **उप** समीप होकर, मैं **अब्रवम्** स्तुतिवचन बोलता हूं। हे इन्द्र परमात्मन्! **स्तुवतः** स्तुति करने वाले, **अश्व्यस्य** इन्द्रिय-रूपी घोड़ों को सन्मार्ग पर चलाने वाले मुझ उपासक के, उस प्रार्थना-वचन को, आप **नूनम्** अवश्य **श्रुधि** सुनो, पूर्ण करो ॥२॥

भावार्थ— आपस में आकर्षण-बल से बिना आधार के आकाश में स्थित लोकलोकान्तरों का और शरीर में यथास्थान स्थित अंग-प्रत्यंगों का एवं मन, बुद्धि, प्राण तथा इन्द्रियों का जो व्यवस्थापक है उस परमात्मा की सब लोग जितेन्द्रिय होकर पुनः-पुनः भली भांति स्तुति करें ॥२॥

१५११. न ह्या३ऽङ्ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत्।
न की राया नैवथा न भन्दना ॥३॥[2]

अगले मन्त्र में इन्द्र परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

पदार्थ— हे **अङ्ग** प्रिय परमेश्वर! **पुरा च न** पहले भी **त्वत्** आपकी अपेक्षा **वीरतरः** अधिक वीर **न जज्ञे** कोई उत्पन्न नहीं हुआ, [अब नहीं है, और भविष्य में नहीं होगा, इसका तो कहना ही क्या।] **न किः** न ही **भन्दना** कल्याण में आपसे अधिक कोई उत्पन्न हुआ है वा होगा ॥३॥

भावार्थ— जगदीश्वर से अधिक वीर, धनी, कर्मण्य, रक्षक और कल्याणकारी अन्य कोई भी न हुआ, न है, न होगा। इसलिए अपने सुख और शान्ति के लिए उसी की वन्दना सबको करनी चाहिए ॥३॥

॥९॥ अथ 'नदं व' इत्यादिकस्य नवमस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रियमेध आङ्गिरसः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** निचृदुष्णिक्। **स्वरः** ऋषभः ॥

१५१२. नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम्।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥१॥[3]

---

१. ऋ० ८।२४।१४।
२. ऊ० ८।२४।१५, 'चन, नकीं' इति समस्तः पाठः।
३. ऋ० ८।६९।२।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा की महिमा वर्णित है ।

पदार्थ– हे मनुष्यो! **वः** तुम **ओदतीनाम्** प्रकाश से आप्लुत करने वाली उषाओं के **नदम्** प्रकाशक जगदीश्वर की, **योयुवतीनाम्** स्वयं को अन्यों के साथ मिलाने वाली नदियों के **नदम्** कल-कल नाद कराने वाले जगदीश्वर की, और **वः** तुम्हारी **अघ्न्यानाम्** न मारी जाने योग्य **धेनूनाम्** गायों के **पतिम्** रक्षक इन्द्र जगदीश्वर की, स्तुति करो । हे इन्द्र जगदीश्वर! आप अधार्मिक शत्रुओं पर **इषुध्यसि** बाण चलाते हो, अर्थात् उन्हें दण्डित करते हो ।।१।।

यहां 'नद' की आवृत्ति में यमक अलंकार है और 'तीनों' की आवृत्ति में छेकानुप्रास । नकार की आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर ही उषाओं को चमकाने वाला, सूर्य को प्रदीप्त करने वाला, बिजलियों को विद्योतित करने वाला, पवन को चलाने वाला, नदियों में कल-कल निनाद कराने वाला, धेनुओं में दूध उत्पन्न करने वाला और दुष्टों का दलन करने वाला है ।।१।।

इस खण्ड में जगदीश्वर और जीवात्मा का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है।।

चौदहवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

।।१०।। अथ 'देवो वो' इत्यादिकस्य दशमस्य द्वयचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१५१३. देवो वो द्रविणोदाः पूर्णा विवष्ट्वासिचम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्व मादिद्वो देव ओहते ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५५ क्रमांक पर परमेश्वर की उपासना के विषय में की जा चुकी है । यहां अग्निहोत्र का विषय कहते हैं ।

पदार्थ– हे मनुष्यो! **द्रविणोदाः** आरोग्यरूप धन वा बल देने वाला, **देवः** प्रकाश से परिपूर्ण और प्रकाश देने वाला यज्ञाग्नि **वः** तुम्हारी **पूर्णाम्** केसर, कस्तूरी आदि से मिश्रित घी से पूर्ण, **आसिचम्** सींचने वाली स्रुवा को **विवष्टु** ग्रहण करे । तुम **उत्सिञ्चध्वं वा** सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित घृत की आहुतियों से उस अग्नि को सींचो **उपपृणध्वं च** और आहुति देने से खाली हुई स्रुवा को फिर घृत से भरो। **आत् इत्** तदनन्तर ही **देवः** प्रदीप्त यज्ञाग्नि **वः** तुम अग्निहोत्रियों को **ओहते** यज्ञ के लाभ प्राप्त करायेगा ।।१।।

भावार्थ– बारम्बार आहुति देने से यज्ञाग्नि आरोग्य, दीप्ति आदि लाभों से याज्ञिकों का उपकार करता हुआ परमेश्वर की उपासना में भी सहायक होता है ।।१।।

---

१. ऋ० ७।१६।११, 'विवष्ट्यासिचम्' इति भेदः । साम० ५५ ।

१५१४. तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में फिर अग्निहोत्र का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– **प्रचेतसम्** चेताने वाले **वाह्निम्** अग्नि को **देवाः** विद्वान् अग्निहोत्री लोग **अध्वरस्य** हिंसारहित यज्ञ का **होतारम्** निष्पादक **अकृण्वत** करते हैं। वह **अग्निः** यज्ञाग्नि **विधते** परमेश्वर-पूजक, **दाशुषे जनाय** हवि देने वाले अग्निहोत्री को **सुवीर्यम्** सुवीर्य से युक्त **रत्नम्** आरोग्य आदि रत्न **दधाति** प्रदान करता है ॥२॥

भावार्थ– यज्ञाग्नि में रोग हरने वाले सुगन्धित द्रव्यों की जो आहुति दी जाती है वह अग्नि-ज्वालाओं द्वारा विच्छिन्न और सूक्ष्म की जा कर वायु के माध्यम से इधर-उधर फैलकर श्वास द्वारा प्राणियों के फेफड़ों में पहुंच कर वहां रक्तवाहिनी पतली-पतली केशिकाओं में खून से सम्बद्ध होकर खून में औषध को प्रविष्ट करा देती है और खून की मलिनता को हरकर सांस से बाहर निकाल देती है । इस प्रकार प्राणियों को स्वास्थ्य देती है । अग्निज्वालाओं की दीप्ति, ऊर्ध्वगति, दोष-दाहकता इत्यादि गुणों को देखकर यज्ञकर्ता अपने अन्दर भी इन गुणों को धारण करने का यत्न करता है । इस प्रकार अग्निहोत्र से बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार के लाभ होते हैं ॥२॥

॥११॥ अथ 'अदर्शि' इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सौभरिः काण्वः। **देवता** अग्निः । **छन्दः** बृहती । **स्वरः** मध्यमः ॥

१५१५. अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४७ क्रमांक पर परमेश्वर की पूजा के विषय में व्याख्या हो चुकी है । यहां परमात्मा और राजा का विषय वर्णित करते हैं ।

पदार्थ– **गातुवित्तमः** कर्तव्य-मार्ग का अतिशय बोध कराने वाले जगदीश्वर वा राजा के **अदर्शि** हमने दर्शन किये हैं, **यस्मिन्** जिसके आश्रय में रहते हुए प्रजाजन **व्रतानि** अपने-अपने कर्तव्य कर्म **आदधुः करते हैं**। **उ सुजातम्** भली-भांति अन्तरात्मा में प्रकट हुए अथवा निर्वाचन-पद्धति से राजा के पद पर अभिषिक्त हुए, और **आर्यस्य वर्धनम्** श्रेष्ठ मनुष्य को बढ़ाने वाले **अग्निम्** अग्रनायक जगदीश्वर वा राजा के पास **नः** हमारे **गिरः** प्रार्थना-वचन **उप नक्षन्तु** पहुंचे ॥१॥

भावार्थ–जैसे जगदीश्वर कर्तव्यमार्ग का बोधक, आर्यों को प्रोत्साहन देने वाला और दुर्जनों को दण्डित करने वाला है, वैसे ही राजा को भी होना चाहिए ॥१॥

१५१६. यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्तय ॥२॥[3]

---

१. ऋ० ७।१६।१२ ।
२. ऋ० ८।१०३।१ 'नक्षन्त' इति भेदः । साम० ४७ ।
३. ऋ० ८।१०३।३ ।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा का विषय है ।

पदार्थ– चर्कृत्यानि अतिशय करने योग्य कर्मों को **कृण्वतः** करते हुए **यस्मात्** जिस जगदीश्वर वा राजा से **कृष्टयः** दुष्ट मनुष्य **रेजन्त** भय के मारे कांपते हैं, उस **सहस्रसाम्** सहस्र गुणों वा सहस्र पदार्थों के दाता **अग्निम्** अग्रनायक जगदीश्वर वा राजा को, आप लोग **त्मना** स्वयं **धीभिः** बुद्धियों और कर्मों से **सपर्यत** पूजित वा सत्कृत करो, **मेधसातौ इव** जैसे यज्ञ में **अग्निम्** यज्ञाग्नि को याज्ञिक जन **धीभिः** आहुति-प्रदान आदि कर्मों से सत्कृत करते हैं।।२।।

भावार्थ– जैसे न्यायकारी परमेश्वर से वैसे ही न्यायकारी राजा से दण्ड के भय से पापी लोग कांपें। जैसे सज्जनों को परमेश्वर सहस्र गुण व बल प्रदान करता है, वैसे ही राजा राष्ट्रभक्तों को सहस्र लाभ प्रदान करे। प्रजाजन भी परमेश्वर के भक्त जैसे परमेश्वर की पूजा करते हैं वा याज्ञिक लोग जैसे यज्ञाग्नि का हवियों से सत्कार करते हैं, वैसे ही अपने राजा का सत्कार करें।।२।।

१५१७. प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ।।३।।[1]

तृतीय ऋचा की पूर्वार्चिक में ५१ क्रमांक पर परमात्मा की महिमा के विषय में व्याख्या की गयी थी। यहां परमात्मा और राजा दोनों का विषय कहते हैं।

पदार्थ– दैवोदासः आनन्द का दाता, **देवः** प्रकाशक **अग्निः** अग्रनायक जगदीश्वर वा राजा **इन्द्रः न** सूर्य के समान **मज्मना** बल से **मातरं पृथिवीम्** माता के समान पालन करने वाली भूमि को **अनु विवावृते** अनुकूलता से पालता है, और **नाकस्य** सुख की **शर्मणि** रक्षा में **तस्थौ** उद्यत रहता है ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ–जैसे जगदीश्वर प्रजाओं को योगक्षेम प्रदान करता है और भूमि का पालन करता है, वैसे ही राजा भी करे ।।३।।

।।१२।। अथ 'अग्न आयूंषि' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शतं वैखानासाः। **देवता** अग्निः पवमानः **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

१५१८. अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।।३।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ६२७ क्रमांक पर परमात्मा, विद्वान् और राजा को तथा उत्तरार्चिक में १४६४ क्रमांक पर आचार्य को संबोधित की गयी थी। यहां योगिराज को संबोधन करते हैं।

---

१. ऋ० ८।१०३।२, द्वेवाँ अच्छा न मुज्मना इति द्वितीयः पादः 'शर्मणि' इत्यत्र 'सानवि' इति भेदः। साम० ५१।

२. ऋ० ९।६६।१९, य० १९।१८, ३५।१६। साम० ६२७, १४६४।

पदार्थ– हे **अग्ने** विद्वान् योगिराज ! आप **नः** हमारे लिए **ऊर्जम्** प्राणबल **इषं च** और इच्छासिद्धि को **आसुव** प्रदान करो । **दुच्छुनाम्** योगमार्ग में विघ्नभूत दुश्चरित्रता को **आरे** दूर **बाधस्व** धकेल दो ।।१।।

भावार्थ–सिद्ध योगियों के निर्देशन में योगाभ्यास करने से जिज्ञासुओं का जीवन निष्कलंक हो जाता है और वे प्राणसिद्धियों तथा इच्छासिद्धियों को शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं।।१।।

१५१९. अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में यहा कहा गया है कि योग-प्रशिक्षक कैसा हो ।

पदार्थ– अग्निः विद्वान् योगिराज **ऋषिः** परमात्मा का द्रष्टा, **पवमानः** अपने तथा दूसरों के जीवन को पवित्र करने वाला, **पाञ्चजन्यः** प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान रूप पंच प्राणों का हितकारी, **पुरोहितः** और योग-प्रशिक्षण के लिए संमुख स्थापित होता है। **महागयम्** महाप्राण **तम्** उस योगिराज से हम **ईमहे** योगसिद्धि की याचना करते हैं ।।२।।

भावार्थ-सिद्ध योगियों के समीप योगाभ्यास करने से योगसाधन से तत्पर शिष्यों की योग साधना सफल होती है ।।२।।

१५२०. अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि योगप्रशिक्षक क्या करे ।

पदार्थ– हे **अग्ने** योगविद्या के पण्डित योगिराज ! **स्वपाः** शुभ कर्मों वाले आप **अस्मे** हमारे लिए **सुवीर्यम्** श्रेष्ठ वीर्य से युक्त **वर्चः** योगजन्य तेज **पवस्व** प्राप्त कराओ, और **मयि** मुझ योग के जिज्ञासु में **पोषम्** पोषक **रयिम्** विवेकख्याति रूप अध्यात्म ऐश्वर्य **दधत्** धारण कराओ ।।३।।

भावार्थ– योगप्रशिक्षक योगिराज स्वयं शुभकर्मों का कर्ता होता हुआ शिष्यों को भी शुभ कर्म करने का उपदेश दे, और योगाभ्यास के द्वारा उन मुमुक्षु शिष्यों को वर्चस्वी तथा विवेकख्याति से संपन्न करके मोक्ष का अधिकारी बना दे ।।३।।

।।१३।। अथ 'अग्ने पावक' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** वसूयव आत्रेयाः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

१५२१. अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ९।६६।२० ।

२. ऋ० ९।६६।२१ ।

३. ऋ० ५।२६।१, य० १७।८ ।

प्रथम ऋचा में जगदीश्वर और आचार्य से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे **पावक** पवित्रताकारक, **देव** प्रकाशक **अग्ने** अग्रनायक जगदीश्वर वा विद्वान् आचार्य! आप **रोचिषा** तेजोमय, **मन्द्रया** आनन्द प्रद **जिह्वया** वेद-वाणी के द्वारा, हमारे अन्दर **देवान्** दिव्य गुण **आ वक्षि** लाओ, **यक्षि च** और हमारे उपासना-यज्ञ वा शिक्षा-यज्ञ को सफल करो ।।१।।

भावार्थ– वेदवाणी के माध्यम से परमेश्वर की उपासना करने से हृदय पवित्र होता है और गुरुमुख से वेदार्थ का अध्ययन करने से शिक्षा सफल होती है ।।१।।

१५२२. तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ।।२।।[1]

आगे फिर उन्हीं से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **घृतस्नो** विद्या-रस तथा आनन्द-रस को बहाने वाले, **चित्रभानो** अद्भुत तेज वाले जगदीश्वर वा आचार्य! **तम्** उन प्रसिद्ध **स्वर्दृशम्** विवेकरूप प्रकाश को दर्शाने वाले **त्वा** आपसे, हम **ईमहे** याचना करते हैं। आप **वीतये** हमारी प्रगति के लिए **देवान्** दिव्य गुणों को **आ वह** प्राप्त कराओ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से और आचार्यकुल में निवास से आनन्दरस, विद्या-रस तथा कर्तव्य-अकर्तव्य का प्रकाश और जीवन में प्रगति प्राप्त होती है ।।२।।

१५२३. वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ।।३।।[2]

आगे फिर उन्हीं के विषय में कहा गया है ।

पदार्थ– हे **कवे** क्रान्तदर्शी, अग्ने सर्वज्ञ, सर्वान्र्यामी जगदीश्वर वा विद्वान् आचार्य ! **वीतिहोत्रम्** जगत् के उत्पादन रूप यज्ञ को वा विद्यायज्ञ को करने वाले, **द्युमन्तम्** तेजस्वी, **बृहन्तम्** गुणों में महान् **त्वा** आपको, हम **अध्वरे** उपसना यज्ञ, जीवन-यज्ञ वा विद्याध्ययन-यज्ञ में **समिधीमहि** प्रदीप्त करते हैं।।३।।

भावार्थ– जो परमात्मा और आचार्य का सेवन करते हैं वे विद्वान्, सदाचारी, गुणवान् और कर्मशूर होते हुए अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करते हैं।।३।।

इस खण्ड में अग्निहोत्र, परमात्मा, राजा, योगिराज और आचार्य के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

चौदहवें अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

।।१४।। अथ 'अवा नो' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

१५२४. अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ५।२६।२

२. ऋ० ५।२६।३, य० २।४।

३. ऋ० १।७९।७।

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ हे **वन्द्य** वन्दनीय **अग्ने** अग्रनायक जगदीश्वर ! आप **गायत्रस्य** गायत्री आदि छन्दों से युक्त वेदज्ञान के **प्रभर्मणि** प्रकृष्ट रूप से ग्रहण करने में, और **विश्वासु धीषु** सब कर्मों में **ऊतिभिः** अपनी रक्षाओं के साथ **नः** हमें अब प्राप्त होवो ।।१।।

भावार्थ– ज्ञानप्राप्ति के समय और कर्म करते समय जो जगदीश्वर को नहीं भूलते वे श्रेष्ठ ज्ञान के अनुकूल श्रेष्ठ कर्म ही सदा करते हैं।।१।।

१५२५. आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में फिर जगदीश्वर से प्रार्थना है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक जगदीश्वर ! आप **नः** हमारे लिए **सत्रासाहम्** एक साथ अनेक विपदाओं को दूर करने वाले, **वरणीय, विश्वासु पृत्सु** सब संग्रामों में **दुष्टरम्** दुस्तर, अच्छेद्य **रयिम्** वीरता रूप ऐश्वर्य को **आभर** प्रदान करो ।।३।।

भावार्थ– परमवीर परमेश्वर का ध्यान करके हम वीरगणों में अग्रगण्य होते हुए सब विपदाओं तथा सब आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को पराजित कर देवें ।।२।।

१५२६. आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ।।३।।[2]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक जगदीश्वर ! आप **नः जीवसे** हमारे जीवन के लिए **सुचेतुना** शुभ ज्ञान के साथ **विश्वायुपोषसम्** सब मनुष्यों के पोषक, **मार्डीकम्** सुखदायक **रयिम्** ऐश्वर्य को **ओधेहि** प्रदान करो ।।३।।

भावार्थ– वह ज्ञान ज्ञान नहीं है और वह धन धन नहीं है जो दूसरों के उपकार के लिए न हो ।।३।।

।।१५।। अथ 'अग्निं हिन्वन्तु' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य पञ्चर्चस्य सूक्तस्य ऋषिः केतुराग्नेयः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५२७. अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनंधनम् ।।१।।[3]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और राजा का विषय है ।

पदार्थ– नः हमारी **धियः** ध्यान-क्रियाएं वा बुद्धियां **अग्निम्** अग्रनायक परमात्मा वा राजा को **हिन्वन्तु** प्रेरित करें, **आजिषु** युद्धों में **आशु सप्तिम् इव** जैसे वेगवान् घोड़े को प्रेरित करते हैं। **तेन** उस परमात्मा वा राजा के द्वारा **धनं धनम्** प्रत्येक आध्यात्मिक वा भौतिक ऐश्वर्य को, हम **जेष्म** जीत लेवें ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– दिव्य संपदाओं और भौतिक संपदाओं की प्राप्ति के लिए परमेश्वर और राजा परम सहायक होते हैं।।१।।

१५२८. यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये ।।२।।[4]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा का विषय है ।

---

१. ऋ० १।७९।८।
२. ऋ० १।७९।९ ।
३. ऋ० १०।१५६।१
४. ऋ० १०।१५६।२, 'आकरामहै' इति पाठः ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक परमात्मन् वा राजन् ! **तव यया ऊत्या सेनया** रक्षक सेना के द्वारा, हम **गाः** अन्तः प्रकाश की किरणों को अथवा गाय आदि सम्पत्तियों को **आकरामहै** प्राप्त करते हैं **ताम्** उस रक्षा को वा सेना को **मघत्तये** ऐश्वर्य के प्रदानार्थ **नः** हमारे लिए **हिन्व** प्रेरित करो ।।२।।

भावार्थ– राजा की सेना से रक्षित प्रजाएं जैसे भौतिक संपत्तियां प्राप्त करने में समर्थ होती हैं, वैसे ही परमात्मा के रक्षण-सामर्थ्य से रक्षित जन अध्यात्म संपत्तियां प्राप्त कर लेते हैं ।।२।।

१५२९. आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
अङ्धि रवं वर्तया पविम् ।।३।।[1]

आगे पुनः परमेश्वर और राजा से प्रार्थना है।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक जगदीश्वर वा राजन् ! आप **गोमन्तम्** अन्तः प्रकाश से युक्त अथवा धेनु, पृथिवी आदि से युक्त, **अश्विनम्** प्राण-संपदा से युक्त अथवा श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त, **पृथुम्** अति विशाल, **स्थूरम्** अति स्थिर, **रयिम्** ऐश्वर्य **आभर** प्रदान करो । **खम्** हृदयाकाश को वा राष्ट्र के आकाश को **अङ्धि** तामसिकता हटाकर निर्मल कर दो । अन्तःशत्रुओं बाह्य शत्रुओं के विध्वंस के लिए **पविम्** पवित्रता का वा शस्त्रास्त्रों का **वर्तय** प्रयोग करो ।।३।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर आन्तरिक विघ्नों वा शत्रुओं को विनष्ट करके अन्तरात्मा को पवित्र करता है, वैसे ही राष्ट्र का राजा बाह्य उपद्रवकारियों को नष्ट करके राष्ट्र को निष्कण्टक करे ।।३।।

१५३०. अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ।।४।।[2]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– प्रथम परमात्मा के पक्ष में । हे **अग्ने** ज्योतिर्मय, प्रकाशक, जगन्नायक परमात्मन्! **जनेभ्यः** उत्पन्न प्राणियों के लिए **ज्योतिः** प्रकाश **दधत्** प्रदान करते हुए आपने **नक्षत्रम्** गतिमय, अपनी धुरी पर घूमने वाले, **अजरम्** सृष्टि के आरंभ से लेकर अब तक जीर्ण न हुए **सूर्यम्** सूर्य को **दिवि** आकाश में **आरोहयः** चढ़ाया हुआ है ।।

द्वितीय राजा के पक्ष में । हे **अग्ने** राष्ट्रनायक राजन्! **जनेभ्यः** प्रजाओं के लिए **ज्योतिः** विद्या का प्रकाश और बिजली का प्रकाश **दधत्** प्रदान करते हुए आपने **नक्षत्रम् गतिमान् अजरम्** जीर्णता-रहित **सूर्यम्** विद्या और धर्म के सूर्य को **दिवि** राष्ट्र-गगन में आरोहयःचढ़ा दिया है ।।४।।

भावार्थ– जैसे परमेश्वर आकाश में वस्तुतः ही सूर्य को उत्पन्न करता है, वैसे ही जो राजा राष्ट्र में परा विद्या, अपरा विद्या और धर्म का प्रकाश करता है वह भी मानो सूर्य को उत्पन्न करता है ।।४।।

१५३१. अग्ने केतुर्विशामसिप्रेष्ठः श्रेष्ठः उपस्थसत् । बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ।।५।।[3]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा को संबोधन करते हैं।

---

१. ऋ० १०।१५६।३, 'पविम्' इत्यत्र 'पृणिम्' इति भेदः ।

२. ऋ० १०।१५६।४

३. ऋ० १०।१५६।५

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर सबका ज्ञानदाता, प्रियतम, प्रशस्यतम, सुखसम्पत्तिप्रदाता, आयु देने वाला और जगाने वाला है वैसे ही राष्ट्र में राजा को होना चाहिए ।।५।।

।।१६।। अथ 'अग्निर्मूर्धा' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विरूप आङ्गिरसः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५३२. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २७ क्रमांक पर परमात्मा और सूर्य के पक्ष में की जा चुकी है । यहां अग्नि-तत्त्व का महत्त्व वर्णित करते हैं ।

पदार्थ– अग्निः अग्नि ही, शरीर में **मूर्धा** मस्तिष्क है, क्योंकि मस्तिष्क अग्नि प्रधान है । यही सूर्य रूप में **दिवः** द्युलोक का **ककुत्** राजा है । **अयम्** यही पार्थिव अग्नि के रूप में **पृथिव्याः** पृथिवी का **पतिः** पालनकर्ता है । अग्नि ही **अपाम्** जलों के **रेतांसि** सूक्ष्म अवयवों को **जिन्वति** भूमि से अन्तरिक्ष की ओर और अन्तरिक्ष से भूमि की ओर प्रेरित करता है अर्थात् वर्षा में कारण बनता है ।।१।।

यहां एक अग्नि का अनेक रूप में उल्लेख होने के कारण विषय भेदनिबन्धन उल्लेखालंकार है ।।१।।

भावार्थ– अग्नि ही सब चेतन-अचेतन जगत् की स्थिति का कारण है । वही आग, बिजली, सूर्य, जाठराग्नि, प्राणाग्नि, वाडवाग्नि आदि के रूप में अनेक प्रकार से विद्यमान होता हुआ हमारा उपकार करता है, जैसा कि श्रुति कहती है– एकं एवाग्निर्बहुधा समिद्धः (ऋ० ८।५८।२)] ।।१।।

१५३३. ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वःपतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्माग्नि का विषय है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** जगन्नायक, विश्ववन्द्य, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, तेजस्वी, दयालु परमेश! **स्वः पतिः** आनन्द और दिव्य प्रकाश के अधिपति आप **वार्यस्य** वरणीय, **दात्रस्य** दातव्य ऐश्वर्य के **ईशिषे हि** स्वामी हो । **शर्मणि** आपकी शरण पाने के हेतु, मैं **तव** आपके **स्तोता** गुण-कर्म-स्वभावों का कीर्तन करने वाला **स्याम्** होऊं।।२।।

भावार्थ– परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभावों का चिन्तन करने से आंशिक रूप में मनुष्य भी वैसा हो सकता है ।।२।।

१५३४. उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतींष्यर्चयः ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में फिर परमात्माग्नि का विषय है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** तेजस्वी परमात्मन्! **तव** आपकी रची हुई **शुचयः** पवित्र, **शुक्राः** प्रदीप्त, **भ्राजन्तः** जगमगाने वाली **अर्चयः** बिजली, सूर्य आदि की प्रभाएं **तव ज्योतींषि** आपकी ज्योतियों को **उदीरते** प्रकट कर रही हैं।

---

१. ऋ० ८।४४।१६, य० ३।१२, १५।२०, साम० २७ ।
२. ऋ० ८।४४।१८, 'स्वर्पतिः' इति भेदः ।
३. ऋ० ८।४४।१७

उपनिषद् के ऋषि ने भी कहा है– परमेश्वर की चमक के आगे न सूर्य की कुछ चमक है, न चांद-तारों की चमक है, न बिजलियों की चमक है। उसी की चमक से जगत् का यह सब कुछ चमक रहा है (कठ० ५।१५) ।।३।।

भावार्थ– इस ब्रह्माण्ड में आग, बिजली, सूर्य, तारे आदि जो भी ज्योतियां हैं वे सब मिलकर भी ब्रह्म की महान् ज्योति की एक किनकी भी प्रकट करने में असमर्थ हैं ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, राजा और अग्नि तत्त्व का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

चौदहवें अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

चौदहवां अध्याय समाप्त ।

सप्तम प्रपाठक में प्रथम अर्ध समाप्त ।

।।१।। तत्र 'कस्ते जामिर्' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५३५. कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा के विषय में प्रश्न उठाये गये हैं।

पदार्थ– हे **अग्ने** जगन्नायक परमेश्वर! **जनानाम्** उत्पन्न मनुष्यों के मध्य **कः ते जामिः** कौन तेरा सहायक बन्धु है? अर्थात् कोई नहीं है । **कः** मनुष्यों के मध्य कौन ऐसा है **दाश्वध्वरः** जिसका यज्ञ तेरे लिए कुछ फल देने वाला हो? अर्थात् कोई नहीं है, क्योंकि सब लोग अपने ही लाभ के लिए यज्ञ करते हैं, तेरे लाभ के लिए नहीं । **कः ह** तू कौन है? **कस्मिन् श्रितः असि** किसके आश्रित है? अन्तिम दोनों प्रश्नों का उत्तर है– तू **कः ह** निश्चय ही कमनीय, सबसे आगे बढ़ा हुआ और सुखस्वरूप है । **कस्मिन् असि श्रितः** भला किसके आश्रित हो सकता है, अर्थात् किसी के नहीं, क्योंकि तू आत्मनिर्भर है ।।१।।

यहां काकु वक्रोक्ति अलंकार है, तृतीय प्रश्न में श्लेष है । अथवा यह मन्त्र जिसमें उत्तर छिपा हुआ है ऐसी पहेली है ।।१।।

भावार्थ– सबसे महान् परमेश्वर जगत् के संचालन के लिए किसी सहायक बन्धु की या किसी आश्रयदाता की अपेक्षा नहीं करता । न ही किसी के किसी भी कार्य से अपना लाभ चाहता है ।।१।।

१५३६. त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुणों का वर्णन है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** जगन्नायक परमेश्वर! **त्वम्** सबके हितचिन्तक आप **जनानाम्** उत्पन्न मनुष्यों के **जामिः** जहायक बन्धु, **प्रियः मित्रः** और प्रिय मित्र **असि** हो । **सखिभ्यः** जो आपके साथ मित्रता चाहते हैं उनके लिए **ईड्यः** स्तुतियोग्य **सखा** मित्र होते हो ।।२।।

---

१. ऋ० १।७५।३।

२. ऋ० १।७५।४।

भावार्थ– परमेश्वर का कोई सहायक नहीं है, प्रत्युत परमेश्वर ही दूसरों का सहायक बन्धु और प्यारा मित्र होता है ।।२।।

१५३७. यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे **अग्ने** जगन्नियन्ता परमेश्वर ! आप **नः** हमारे लिए **मित्रवरुणा** मैत्री का गुण और दोषनिवारण का गुण **यज** प्रदान करो । **देवान्** अन्य दिव्य गुणों को **बृहत् ऋतम्** और महान् सत्य को **यज** प्रदान करो । साथ ही **स्वं दमम्** अपने दमन करने के गुण को भी **यक्षि** प्रदान करो ।।३।।

भावार्थ–जो परमेश्वर सब गुणों की निधि है, वह हमें भी दिव्य गुण प्रदान करे ।।३।।

।।२।। अथ 'ईडेन्यो' इत्यादिकस्या द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वामित्रो गाथिनः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

१५३८. ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः। समग्निरिध्यते वृषा ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में परमात्माग्नि का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– **ईडेन्यः** स्तुति के योग्य, **नमस्यः** नमस्कार के योग्य, **तमांसी** तमोगुणों को **तिरः** दूर करने वाला, **दर्शतः** दर्शनीय, **वृषा** सुखों की वर्षा करने वाला **अग्निः** जगन्नायक परमेश्वर **समिध्यते** अन्तरात्मा में प्रदीप्त होता है ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर को अपने आत्मा में प्रदीप्त करके उसके नेतृत्व को पाकर मनुष्यों को अपना जीवन उन्नत करना चाहिए ।।१।।

१५३९. वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईडते ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा की उपासना का फल वर्णित है ।

पदार्थ– **वृषः** सुखों की वर्षा करने वाला **अग्निः** जगन्नायक परमेश्वर **समिध्यते** उपासकों द्वारा अपने अन्तरात्मा में प्रदीप्त किया जाता है, जो **देवावाहनः** विद्वानों के वाहन **अश्वः न** घोड़े के सामन **देववाहनः** दिव्य गुणों का वाहक है । **तम्** उस परमेश्वर की **हविष्मन्तः** आत्मसमर्पण करने वाले उपासक लोग **ईडते** आराधना करते हैं।।२।।

---

१. ऋ० १।७५।५, य० ३३।३।

२. ऋ० ३।२७।१३, अथ० २०।१०२।१।

३. ऋ० ३।२७।१४, अथ० २०।१०२।२।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे रथ में नियुक्त किया हुआ वेगवान् घोड़ा शीघ्र ही मनुष्यों को लक्ष्य पर पहुंचा देता है, वैसे ही योगाभ्यास से अपने अन्तरात्मा में नियुक्त परमेश्वर दिव्य गुण प्राप्त करा कर उपासकों को शीघ्र ही उन्नत कर देता है।।२।।

१५४०. वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ।।३।।[1]

आगे फिर परमात्मा का विषय है।

पदार्थ– हे **वृषन्** मनोरथों को पूर्ण करने वाले **अग्ने** जगन्नायक परमेश्वर ! **वृषणः** भक्तिरस बरसाने वाले **वयम्** हम उपासक **वृषणम्** आनन्द-रस के वर्षक, **बृहत् दीद्यतम्** बहुत देदीप्यमान **त्वा** आपको **समिधीमहि** अपने अन्दर प्रदीप्त करते हैं।।३।।

भावार्थ– जो परमात्मा को भक्तिरस से भिगोता है, उसे वह आनन्द-रस से भिगो देता है ।।३।।

।।३।। अथ 'उत्ते बृहन्तो' इत्यादिकस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विरूप आङ्गिरसः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५४१. उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का तेज वर्णित करते हैं।

पदार्थ– हे **दीदिवः** सत्य के प्रकाशक, **अग्ने** विज्ञानवान्, जगन्नायक परमात्मन् ! **समिधानस्य** देदीप्यमान **ते** आपकी **बृहन्तः** महान्, **शुक्रासः** पवित्र **अर्चयः** दीप्तियां **उदीरते** उठ रही हैं।।१।।

भावार्थ– जब उपासक परमात्मा में तन्मय हो जाता है तब भौतिक अग्नि की ज्वालाओं के समान उसका तेजस्वी रूप उसके समाने प्रकट हो जाता है ।।१।।

१५४२. उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा को हवि अर्पित करते हैं।

पदार्थ– हे **अग्ने** ज्योतिर्मय परमेश ! हे **हर्यत** कमनीय ! **मम** मुझ स्तोता की **घृताचीः** स्नेह से आर्द्र वा तेज से युक्त **जुह्वः** वाणियां **त्वा** आपको **उप यन्तु** प्राप्त हों । आप **नः** हमारी **हव्या** आत्मसमर्पणरूप हवियों को **जुषस्व** प्रेम से स्वीकार करो ।।२।।

भावार्थ– श्रद्धा और प्रेम से की गयी परमात्मा की स्तुति अवश्य फलदायक होती है ।।२।।

---

१. ऋ० ३।२७।२५, अथ० २०।१०२।३ ।

२. ऋ० ८।४४।४ ।

३. ऋ० ८।४४।५ ।

१५४३. मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीडे स उ श्रवत् ।।३।।[1]

अब परमात्मा के गुणों का वर्णन करते है ।

पदार्थ– मन्द्रम् आनन्दमय, **होतारम्** सब पदार्थों के दाता, **ऋत्विजम्** ऋतुओं में सामञ्जस्य स्थापित करने वाले अथवा प्रत्येक ऋतु में पूजनीय, **चित्रभानुम्** बहुरंगे सूर्य के रचयिता, **विभावसुम्** तेज रूप धन के धनी **अग्निम्** अग्रनेता जगदीश्वर की **ईडे** मैं स्तुति करता हूं वा उससे प्रार्थना करता हूं । **सः उ** वह मेरी स्तुति वा प्रार्थना को **श्रवत् सुने** ।।३।।

भावार्थ–जो सच्चिदानन्दस्वरूप, सकलसृष्टि का रचयिता, सारे ऋतुचक्र को चलाने वाला, तेजस्वी परमेश्वर है उसकी सब मनुष्यों को प्रेम से वन्दना करनी चाहिए ।।३।।

।।४।। अथ 'पाहि नो' इत्यादिकस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भर्गः प्रागथः **देवता** अग्निः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१५४४. पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक के भाष्य में, ३६ क्रमांक पर परमेश्वर और विद्वान् को सम्बोधित की गयी थी । यहां आचार्य को कहते हैं ।

पदार्थ– हे **अग्ने** विद्वान् आचार्य ! आप **एकया** धर्म का उपदेश करने वाली एक वाणी से **नः** हमारी पाहि पालना करो, **उत** और **द्वितीयया** धर्मानुकूल धन कमाने का उपदेश करने वाली दूसरी वाणी से **पाहि** हमारी पालना करो । हे **ऊर्जां पते** ब्रह्मबलों के अधिपति आचार्य ! आप **तिसृभिः गीर्भिः** धर्म, अर्थ और काम का उपदेश करने वाली तीन वाणियों से **पाहि** हमारी पलना करो । हे **वसो** सद्गुणों के निवासक आचार्य ! आप **चतसृभिः** धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश करने वाली चार वाणियों से **पाहि** हमारी पालना करो।।१।।

भावार्थ– आचार्य का यह कर्तव्य है कि वह शिष्यों को धर्म, धर्माविरोधी धन, धर्माविरोधी काम और मोक्ष के उपदेश से विद्वान्, सदाचारी और मोक्ष का अधिकारी बनाये ।।१।।

१५४५. पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ८।४४।६ ।

२. ऋ० ८।६०।९, य०,२७।४३, साम० ३६।

३. ऋ० ८।६०।१० ।

आगे फिर आचार्य को कहा जा रहा है ।

पदार्थ- हे अग्ने! हे विद्वान् आचार्य! आप **विश्वस्मात्** सब **अराव्णः** अदानशील, स्वार्थपरायण **रक्षसः** राक्षस-भाव से **पाहि** हमें बचाओ, **वाजेषु** देवासुरसंग्रामों में **नः** हमारी **प्र अव स्म** रक्षा करो । **त्वाम् इत् हि** आपको ही हम **देवतातये** दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए, और **वृधे** आगे बढ़ने के लिए **नेदिष्ठम्** सबसे अधिक निकट के **आपिम्** बन्धुरूप में **नक्षामहे** प्राप्त करते हैं ।।२।।

भावार्थ– आचार्य का यह कर्तव्य है कि वह शिष्यों की अन्तरात्मा में होने वाले देवासुरसंग्रामों में दिव्यभावों की विजय के लिए सहायक हो और स्वार्थ-वृत्तियों को विनष्ट करके परोपकार की वृत्तियां उत्पन्न करे ।।२।।

इस खण्ड में परमात्मा और आचार्य के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

पन्द्रहवें अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।

।।५।। अथ 'इनो राजन्' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** त्रित आप्त्यः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१५४६. इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा में परमात्मा का कर्तृत्व वर्णित है।

पदार्थ– हे **राजन्** विश्व के राजा, सर्वान्तर्यामी परमात्मन्! आप **इनः** सबके स्वामी, **अरतिः** सर्वव्यापक, और **समिद्धः** स्वतः प्रकाशमान हो । आगे परोक्षरूप में कहते हैं– **रौद्रः** दुष्टों के लिए भयंकर, **सुषुमान्** सज्जनों के लिए रसमय वह परमात्मा **दक्षाय** बल प्राप्ति के लिए **अदर्शि** साक्षात्कार किया जाता है । **चिकित्** सर्वज्ञ वह **बृहता** महान् **भासा** दीप्ति से **विभाति** भासित होता है । **रुशतीम्** चमकीली उषा को **अपाजन्** व्यतीत कराता हुआ **असिक्नीम्** काली रात्रि को **एति** प्राप्त करता है । इसी प्रकार काली रात्रि को व्यतीत कराता हुआ चमकीली उषा को प्राप्त करता है यह भी सूचित होता है । अभिप्राय यह है कि सारा दिन-रात्रि आदि का प्रपंच उसी का किया हुआ है ।।१।।

भावार्थ- दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतुएं, उत्तरायण, दक्षिणायन, वर्ष इत्यादि सारा ही काल-विभाग और जल, स्थल, आकाश, चांद, सूर्य, तारे इत्यादि सारा देश-विभाग परमेश्वर का ही किया हुआ है, जिसमें वह सम्राट् होकर सब व्यवस्था कर रहा है ।।१।।

१५४७. कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ।।२।।[2]

आगे फिर परमात्मा के कर्तृत्व का वर्णन है ।

१. ऋ० १०।३।१
२. ऋ० १०।३।२

पदार्थ— **यत्** जब **बृहतः पितुः** महान् पालनकर्ता सूर्य की **जाम्** पुत्री **योषाम्** उषा-नारी को **जनयन्** उत्पन्न करना चाहता हुआ अग्नि परमेश्वर **एनीम्** व्याप्त **कृष्णाम्** काली रात्रि को **वर्पसा** सूर्य के रूप से **अभिभूत्** तिरस्कृत करता है, तब **सूर्यस्य** सूर्य के **ऊर्ध्वम्** ऊपर स्थित **भानुम्** प्रकाश-मण्डल को **स्तभायन्** थामे हुए **अरतिः** सबका स्वामी वह परमेश्वर **दिवः** द्युलोक के **वसुभिः** ग्रह, नक्षत्र आदि लोकों से **विभाति** विशेष रूप से शोभित होता है ।।२।।

भावार्थ— भूमि पर और आकाश में व्याप्त काली रात्रि को छिन्न-भिन्न करके चमकीली उषा को और उसके अनन्तर तीव्र प्रकाश वाले सूर्य को उत्पन्न करता हुआ जगदीश्वर महिमा से अत्यधिक शोभा पाता है।।२।।

१५४८. भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मा ही प्राकृतिक घटनाचक्र को संचालित करता है ।

पदार्थ— **भद्रः** श्रेष्ठ सूर्य **भद्रया** श्रेष्ठ दीप्ति से **सचमानः** संयुक्त होता हुआ **आगात्** आया है । **जारः** रात्रि को जीर्ण करता हुआ वह **स्वसारम्** भली भांति अन्धकार को दूर फेंकने वाली उषा के **पश्चात्** पीछे **अभ्येति** आता है । **अग्निः** अग्रनायक जगदीश्वर **सुप्रकेतैः** सुप्रकाशमान **द्युभिः** तेजों से **वितिष्ठन्** व्याप्त होता हुआ **रुशद्भिः वर्णैः** सूर्य के चमकीले रंगों से **रामम्** काले अंधेरे को **अभि अस्थात्** दूर करता है ।।३।।

भावार्थ— रात्रि के बाद उषा, उषा के बाद दिन, दिन के बाद सन्ध्या, सन्ध्या के बाद फिर रात्रि, रात्रि के बाद फिर उषा यह जो चक्र चल रहा है उसका चलाने वाला जगदीश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि मनुष्य में ऐसा सामर्थ्य नहीं है ।।३।।

।।६।। अथ 'कया ते' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** उशना काव्यः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५४९. कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की स्तुति के विषय में प्रश्न उठाया गया है ।

पदार्थ— हे **अङ्गिरः** प्राणप्रिय, **ऊर्जः नपात्** बल और प्राणशक्ति को न गिरने देने वाले, **देव** प्रकाशक **अग्ने** जगन्नायक परमेश्वर! **वराय** वरणीय, श्रेष्ठ, **मन्यवे** मनन करने योग्य वा तेजस्वी **ते** आपके लिए **कया** किस रीति से, हम **उपस्तुतिम्** स्तोत्र को करें? यह प्रश्न है । इसका उत्तर है कि वेदोक्त रीति से ही स्तुति करनी चाहिए ।।१।।

---

१. ऋ० १०।३।३।
२. ऋ० ८।८४।४ ।

भावार्थ– सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर की स्तुति बैदिक पद्धति से ही करनी चाहिए, न कि साकार मूर्तिपूजा के प्रकार से ।।१।।

१५५०. दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ।।२।।[1]

आगे फिर प्रश्न करते हैं।

पदार्थ– हे **सहसः यहो** बल के पुत्र अर्थात् अत्यन्त बली परमेश्वर ! **कस्य यज्ञस्य मनसा** किस यज्ञ के मन से, हम आपको **आशेम** आत्मसमर्पण करें? **कत् उ** कैसे मैं **इदं नमः** इस नमस्कार को **वोचे** आपके प्रति कहूं? ।।२।।

भावार्थ– अनेक सकाम यज्ञ और निष्काम यज्ञ प्रचलित हैं। पर मैं तो हे जगदीश्वर! आपकी उपासना ही जिसका प्रयोजन है ऐसे यज्ञ से ही आपको आत्मसमर्पण करता हूं, किसी स्वार्थ को मन में रखकर नहीं । कैसे मैं आपको नमस्कार करूं? कुछ लोग साष्टांग प्रणाम करते हैं, कोई अञ्जलि बांधकर प्रणाम करते हैं, कोई मूर्ति पर सिर नंवाकर प्रणाम करते हैं। पर मैं तो चित्त को ही तेरे प्रति नंवाता हूं, शरीर के अंगों को नहीं ।।२।।

१५५१. अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना है ।

पदार्थ– हे अग्ने! हे विश्वनायक जगदीश! **अध** सब **त्वं हि** आप **नः** हमारी **विश्वाः गिरः** सब वाणियों को **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **सुक्षितीः** उत्तम निवास देने वाली, और **वाजद्रविणसः** बल रूप धन से युक्त अर्थात् बलवती **करः** कर दो ।।३।।

भावार्थ– श्रद्धा के साथ परमात्मा की उपासना करने से ऐसा वाणी का बल पाया जा सकता है जो श्रोताओं के मन पर प्रभाव उत्पन्न करे ।।३।।

।।७।। अथ 'अग्न आ' इत्यादिकस्य सप्तमस्य द्वयृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भर्गः प्रागाथः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१५५२. अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ८।८४।५

२. ऋ० ८।८४।६

३. ऋ० ८।६०।१, अथ० २०।१०३।२।

प्रथम मन्त्र में परमात्मारूप अग्नि का आह्वान है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनेता परमात्मन्! आप **अग्निभिः** तेजों के साथ **आ याहि** आओ । **होतारम्** दाता **त्वाम्** आपको, हम **वृणीमहे** भजते हैं। **यजिष्ठं त्वाम्** हमारे साथ अतिशय संगम करने वाले आपको, हमारी **हविष्मती** समर्पणयुक्त **प्रयता** पवित्र प्रज्ञा **बर्हिः** हृदयासन पर **आसदे** बैठने के लिए **अनक्तु** प्रकट करे ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर जब स्तोता के अन्तरात्मा में प्रबल संकल्प, उत्साह, वीरता और आशावाद की अग्नियों के साथ आता है तब स्तोता मार्ग से सब विघ्न हट जाते हैं और लक्ष्यप्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है।।१।।

१५५३. अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।।२।।[1]

अब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे **सहसः सूनो** बल और साहस के प्रेरक, **अङ्गिरः** प्राणाप्रिय परमेश्वर ! **अध्वरे** उपासना-यज्ञ में **त्वा अच्छ** आपके प्रति **हि** निश्चय ही **स्रुचः** मेरी वाणियां **चरन्ति** प्रवृत्त हो रही हैं। हम **यज्ञेषु** अपने जीवन-यज्ञों में **ऊर्जः नपातम्** बल और प्राणशक्ति के न गिरने देने वाले, **घृतकेशम्** प्रदीप्त तेज वाले, **पूर्व्यम्** सनातन **अग्निम्** आप अग्रनेता परमात्मा से **ईमहे** बल की याचना करते हैं।।२।।

भावार्थ- उपासना का यही लाभ है कि उपासक बल के खजाने परमात्मा के पास से अपरिमित बल प्राप्त करके लक्ष्यसिद्धि में सफल हो जाता है ।।२।।

।।८।। अथ 'अच्छा नः' इत्यादिकस्याष्टमस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सुदीतिपुरुमीढौ तयोर्वान्यतरः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** बार्हतः प्रागथः (१ विषमा बृहती, २ सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

१५५४. अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर को आत्म-समर्पण करते हैं ।

पदार्थ- नः हमारी **गिरः** वाणियां **शीरशोचिषम्** व्याप्त तेज वाले, **दर्शतम्** दर्शनीय अग्रनायक परमात्मा के **अच्छ** प्रति **यन्तु** प्रवृत्त हों । साथ ही, हमारे **यज्ञासः** उपासना-यज्ञ **ऊतये** रक्षा के लिए **नमसा** नमस्कार के साथ **पुरूवसुम्** बहुत धन वाले, **पुरुप्रशस्तम्** बहुत श्लाध्य उस अग्नि नामक परमात्माप के **अच्छ** प्रति **यन्तु** **पहुंचें ।।१।।**

भावार्थ- श्रद्धा के साथ नमस्कार पूर्वक की गयी ही परमात्मा की उपासना सफल होती है, बेमन से की गयी नहीं ।।१।।

---

१. ऋ० ८।६०।२, अथ० २०।१०३।३।
२. ऋ० ८।७१।१०।

१५५५. अग्नि सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ।।२।।[1]

अब परमेश्वर के गुणों का वर्णन है ।

पदार्थ— सहसः सूनुम् बल के प्रेरक, **जातवेदसम्** सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, ज्ञान और धन के उत्पादक, **अग्निम्** अग्रनायक जगदीश्वर की **वार्याणाम्** वरणीय सद्गुणों और श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के **दानाय** दान के लिए, मैं स्तुति करता हूँ । **मर्त्येषु** मरणधर्मा प्राणियों के मध्य में **अमृतः** अमर, और **विशि** मनुष्य-प्रजा में **मन्द्रतमः** अतिशय आनन्द प्रदाता, **होता** जीवनयज्ञ का निष्पादक **यः** जो अग्नि जगदीश्वर **द्विता** दोनों स्थानों में अर्थात् इहलोक में और मोक्षलोक में **आ भूत्** सहायक होता है ।।२।।

भावार्थ— न केवल इस जीवन में, अपितु जन्मजन्मान्तरों में और मोक्षलोक में भी जो जगदीश्वर हमारे साथ मित्रता का निर्वाह करता है वह वन्दनीय क्यों न हो ।।२।।

इस खण्ड में परमात्मा का विषय वर्णित होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए।

पंद्रहवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

।।९।। अथ 'अदाभ्यः' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वामित्रो गाथिनः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५५६. अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का वर्णन करते हैं।

पदार्थ— अग्निः जगन्नायक सर्वान्तर्यामी परमेश्वर **अदाभ्यः** किसी से दबाया या पराजित न किया जा सकने वाला, और **मानुषीणां विशाम्** मानवी प्रजाओं के **पुर एता** आगे पहुंचने वाला है । **रथः** इससे रचा हुआ मानव-शरीर रूप रथ **तूणिः** शीघ्रगामी और **सदा नवः** सदा स्तुति योग्य होता है ।।१।।

भावार्थ— जगदीश्वर कैसा विलक्षण शिल्पकार है कि उससे रचा हुआ आत्मा से अधिष्ठित मानव-देह-रूप रथ चेतन होता हुआ स्वयं ही चलता है, स्वयं ही रूकता है और स्वयं ही कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक करता है ।।१।।

१५५७. अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमात्मा की स्तुति से क्या प्राप्त होता है ।

---

१. ऋ० ८।७१।११ ।

२. ऋ० ३।११।५

३. ऋ० ३।११।७

पदार्थ– दाश्वान् आत्मसमर्पण करने वाला **मर्त्यः** मनुष्य **वाहसा** परमेश्वर के प्रति किये गये स्तोत्र से **प्रयांसि** आनन्द-रसों को **अभि अश्नोति** पा लेता है। साथ ही **पावक-शोचिषः** पवित्रकारी ज्योति वाले उस परमेश्वर के **क्षयम्** मोक्षधाम को भी प्राप्त कर लेता है ।।२।।

भावार्थ– मनुष्य को योग्य है कि तेजस्वी जगदीश्वर की स्तुति से स्वयं भी उसके गुणों को धारण करके अभ्युदय तथा निःश्रेयस प्राप्त करे ।।२।।

३ १र २र ३२ ३ १२३ २ ३१ २
१५५८. साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानामृक्तः ।
३ २ ३ १ २
अग्निस्तुविश्रवस्तमः ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुण वर्णित हैं।

पदार्थ– विश्वाः अभियुजः सब आक्रमणकारी काम, क्रोध, आदियों को **साह्वान्** अपने बल से तिरस्कृत करता हुआ, **देवानाम्** दिव्य गुणों का **क्रतुः** उत्पादक, **अमृक्तः** किसी से शुद्ध न किया गया अर्थात् स्वतः शुद्ध **अग्निः** तेजस्वी परमेश्वर **तुविश्रवस्तमः** बहुत अधिक यशस्वी है ।।३।।

भावार्थ– अनन्त गुणों से युक्त होने के कारण जगदीश्वर की कीर्ति सबसे अधिक बढ़ी हुई है ।।३।।

।।१०।। 'भद्रो नो' इत्यादिकस्य दशमस्य द्वयचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सोभरिः काण्वः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** काकुभः प्रगाथः (१ विषमा ककुबुष्णिक्, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ ऋषभः, २ पञ्चमः ।।

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१५५९. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
३ २ ३ १र २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १११ क्रमांक पर यज्ञाग्नि, अतिथि और परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां राष्ट्र-विषयक भद्र की प्रार्थना है ।

पदार्थ– आहुतः जिसमें आहुति डाली गयी है ऐसी **अग्निः** राष्ट्रियता की अग्नि **नः** हमारे लिए **भद्रः** शुभ हो । **रातिः** राष्ट्र के लिए की गयी दान की क्रिया **भद्रा** शुभ हो । हे **सुभग** सौभाग्यवान् राजन् ! **अध्वरः** तुम्हारे और हमारे द्वारा किया गया राष्ट्र-यज्ञ **भद्रः** शुभ हो । **उत** और **प्रशस्तयः** राष्ट्र की उन्नति से प्राप्त प्रशस्तियां **भद्राः** शुभ हों।।१।।

भावार्थ– सब प्रजाजन और राजा, मन्त्री आदि राज्याधिकारी राष्ट्रभक्त होकर मातृभूमि के लिए अपना बलिदान भी करने के लिए सदा तैयार रहें ।।१।।

३१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१५६०. भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ।।२।।[3]

---

१. ऋ० ३।११।६
२. ऋ० ८।१९।१९, य० १५।३८, साम० १११ ।
३. ऋ० ८।१९।२०, 'सासहः', 'अभिष्टिभिः' इति भेदः ।

अगले मन्त्र में मनुष्य को उद्बोधन दिया गया है ।

पदार्थ– हे मनुष्य! तू **वृत्रतूर्ये** जिसमें उपद्रवियों का वध किया जाता है ऐसे संग्राम में **मनः** अपने मन को **भद्रम्** भद्र **कृणुष्व** बना, **येन** जिस मन से, तू **समत्सु** युद्धों में **सासहिः** शत्रुओं के छक्के छुड़ाने वाला होता है । **शर्धताम्** उपद्रवी शत्रुओं के **भूरि** बहुत से **स्थिरा** स्थिर बलों को **अवतनुहि** नीचा दिखा दे । हम **ते** तेरी **अभिष्टये** अभीष्ट प्राप्ति के लिए **वनेम** मिलकर प्रयत्न करें ।।२।।

भावार्थ– भद्र मन से ही युद्ध करके ऐसा यत्न करना चाहिए कि शत्रु भी भद्र हो जाएं, यदि भद्र न हों तो उन्हें विश्वहित के लिए बांधकर कारागार में डाल दे या उनका वध कर दे ।।२।।

।।११।। अथ 'अग्ने वाजस्य' इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** उष्णिक् **स्वरः** ऋषभः ।।

तत्र प्रथमा ऋक् पूर्वार्चिके ९९ क्रमाङ्के परमात्मानं विद्वज्जनं राजानं च सम्बोधिता । अत्राचार्यः प्रार्थ्यते।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५६१. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में ९९ क्रमांक पर) परमात्मा, विद्वान् और राजा को सम्बोधित की गयी थी। यहां आचार्य से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे **अग्ने** छात्रों को उन्नत करने वाले विद्वान् आचार्यवर! हे **सहसः यहो** आत्मबल के पुत्र अर्थात् अतिशय आत्मबल से युक्त! हे **जातवेदः** उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता! **गोमतः वाजस्य** वेदवाणी से युक्त ऐश्वर्य के **ईशानः** अधीश्वर आप **अस्मे** हमारे लिए **महि श्रवः** महान् शास्त्रज्ञान और उससे उत्पन्न यश **देहि** प्रदान करो ।।१।।

भावार्थ– आचार्य के पास से विविध विद्याओं का ज्ञान पाकर शिष्य विद्वान् और कीर्तिमान् बनें।।१।।

१ २ ३ १२ २र ३ २३ २ ३१ २ ३ २ ३२३ १ २
१५६२. स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा आचार्य और राजा से प्रार्थना करते हैं ।

---

१. ऋ० १।७९।४, य० १५।३५, साम० ९९ ।

२. ऋ० १।७९।५। य० १५।३६ ।

पदार्थ– हे **पुर्वणीक** बहुत सी सेना वाले परमात्मन्, आचार्य वा राजन्! **इधानः** प्रकाश देते हुए, **वसुः** निवास-प्रदाता, **कविः** मेधावी और क्रान्तद्रष्टा, **गिरा ईडेन्यः** वाणी से स्तुति करने योग्य **अग्निः** उन्नति कराने वाले **सः** वे आप **अस्मभ्यम्** हम उपासकों, शिष्यों वा प्रजाजनों के लिए **रेवत्** शोभा के साथ **दीदिहि** चमको।।२।।

भावार्थ– परमात्मा और आचार्य सद्गुणों की सेना से और राजा योद्धाओं की सेना से बढ़ता है तथा अपने उपासकों, शिष्यों और प्रजाजनों को बढ़ाता है ।।२।।

१५६३. क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ।।३।।[1]

आगे फिर परमात्मा, आचार्य और राजा से प्रार्थना है ।

पदार्थ– हे **राजन्** सम्राट्, **तिग्मजम्भ** तीक्ष्ण दण्ड वाले **अग्ने** परमात्मन्, आचार्य वा राजन्! **सः** वह विविध गुणों और कर्मों से सुशोभित आप **त्मना** स्वयम् **क्षपः** रात्रि में, **वस्तोः** दिन में, **उत** और **उषसः** उषाकालों में **रक्षसः** ब्रह्मचर्य-विरोधी, विद्या-विरोधी और सच्चरित्र-विरोधी दुष्ट विचारों को **प्रति दह** भस्म कर दो ।।३।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर दिन-रात जागरूक होकर उपासकों के सच्चरित्र की रक्षा करता हुआ उनके काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा आदि के भावों को विनष्ट करता है, वैसे ही आचार्य शिष्यों के लिए और राजा प्रजाओं के लिए करे ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, राष्ट्र, मानवोद्बोधन, राजा और आचार्य के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

पंद्रहवें अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

।।१२।। अथ 'विशो विशो' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोपवन आत्रेयः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** आनुष्टुभः प्रगाथः (१ अनुष्टुप्, २-३ गायत्री) । **स्वरः** १ गान्धारः, २, ३ षड्जः ।।

१५६४. विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र की व्याख्या पूर्वार्चिक में ८७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां यज्ञाग्नि का वर्णन करते हैं ।

---

१. ऋ० १।७९।६, य० १५।३७ ।

२. ऋ० ८।७४।१, साम० ८७ ।

पदार्थ– हे मित्रो! **वाजयन्तः** बल, आरोग्य और आध्यात्मिक ऐश्वर्य की कामना करते हुए **वः** तुम **विशः विशः** प्रत्येक मनुष्य के **अतिथिम्** अतिथि के समान सत्कार करने योग्य, **पुरूप्रियम्** बहुत प्यारे, **वः** तुम्हें **दुर्यम्** घर के समान शरण देने वाले **अग्निम्** यज्ञाग्नि के प्रति **वचः** वचन को प्रेरित करो। मैं भी **शूषस्य** बलवान् ज्ञानी परमेश्वर के रचे हुए **मन्मभिः** वेदमन्त्रों से , यज्ञाग्नि की **स्तुषे** स्तुति करता हूं ।।१।।

भावार्थ– घर में आये हुए अतिथि के समान यज्ञाग्नि को आहुति देकर सबको सत्कार करना चाहिए।।१।।

१५६५. यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम्। प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ।।२।।[1]

अब यज्ञाग्नि की प्रशंसा करते हैं।

पदार्थ– **सर्पिरासुतिम्** जिसमें घृत की आहुति दी जाती है ऐसे **यम्** जिस यज्ञाग्नि की **हविष्मन्तः** सुगन्धित, मीठे, पुष्टिवर्धक, आरोग्यवर्धक कस्तूरी, केसर, घी, दूध, शक्कर, शहद, गुडूची आदि हव्यों से युक्त **जनासः** याज्ञिक मनुष्य **मित्रं न** मित्र के समान **प्रशस्तिभिः** प्रशस्तियों से **प्रशंसन्ति** प्रशंसा करते हैं, उस अग्नि की मैं भी **स्तुषे** स्तुति करता हूं। [यहां 'स्तुषे' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है] ।।२।।

भावार्थ– आध्यात्मिक जीवन बिताने के इच्छुक मनुष्यों को चाहिए कि वे अग्निहोत्र से परमात्माग्नि में अपनी आत्मा के होम की प्रेरणा ग्रहण करें ।।२।।

१५६६. पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता। हव्यान्यैरयद् दिवि ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में यज्ञाग्नि और अन्तरिक्ष का परस्पर विनिमय दर्शाया गया है।

पदार्थ- **यः** जो यज्ञाग्नि **देवताति** यज्ञ में **उद्यता** डाली गयी **हव्यानि** हवियों को **दिवि** अन्तरिक्ष में **ऐरयत्** पहुंचा देता है, उस **पन्यांसम्** अतिशय आदान-प्रदान का व्यवहार करने वाले अर्थात् हवि लेकर बदले में आकाश से वर्षा देने वाले **जातवेदसम्** प्रकाशित यज्ञाग्नि की, मैं **स्तुषे** स्तुति करता हूं। [यहां स्तुषे पद पहले से चला आ रहा है ।।३।।

भावार्थ– वर्षा के लिए अग्नि में डाली हुई आहुति अग्नि द्वारा अलग-अलग सूक्ष्म अवयवों में विभक्त होकर गरम वायु के साथ ऊपर आकाश में पहुंचती है। तब ऊपर स्थित पवनों में गति उत्पन्न हो जाती है, जिससे मेघस्थ जल-वाष्पों से जब शीतल पवन टकराते हैं तब वर्षा होती है ।।३।।

।।१३।। अथ 'समिद्धमग्निं' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्य आङ्गिरसो वा। **देवता-** अग्निः। **छन्दः** जगती। **स्वरः** निषादः ।।

---

१. ऋ० ८।७४।२।
२. ऋ० ८।७४।३।

१५६७. समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरूवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर के गुणों का वर्णन है ।

पदार्थ— **समिद्धम्** तेजस्वी **अग्निम्** अग्रनायक जगदीश्वर की **समिधा गिरा** तेजोमयी वाणी से, मैं **गृणे** स्तुति करता हूं । **शुचिम्** पवित्र, **पावकम्** पवित्रकर्ता, **पुरः** सामने **अध्वरे** उपासना-यज्ञ में **ध्रुवम्** स्थिर रूप में विद्यमान, **विप्रम्** विशेष रूप से पूर्णता प्रदान करने वाले, **होतारम्** सुख आदि देने वाले, **पुरुवारम्** बहुत वरणीय अथवा बहुत से दोषों का निवारण करने वाले, **कविम्** क्रान्तद्रष्टा, मेधावी, **जातवेदसम्** सर्वज्ञ, सर्वव्यापक जगदीश्वर से, हम **सुम्नैः** सुखकारी स्तोत्रों के द्वारा **ईमहे** याचना करते हैं ।।१।।

यहां विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है ।।१।।

भावार्थ— जो तेजस्वी, पवित्र, पवित्रकर्ता, स्थिर, छिद्रों को भरने वाला, सद्गुणों का दाता, दुर्गुणों को दूर करने वाला, भक्तवत्सल, क्रान्तद्रष्टा, सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमेश्वर है उसका श्रद्धा से सबको भजन करना चाहिए और उस से सद्गुणों की याचना करनी चाहिए ।।१।।

१५६८. त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ।।२।।[2]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ— हे **अग्ने** स्वयं प्रकाशमान, जगन्नायक, प्रकाशप्रदाता परमात्मन्! **दूतम्** दुःखों को दग्ध करने वाले, **अमृतम्** अमर, **हव्यवाहम्** दातव्य पदार्थों वा गुणों को प्राप्त कराने वाले, **पायुम्** पालनकर्ता, **ईड्यम्** स्तुतियोग्य, **जागृविम्** जागरूक, **विभुम्** व्यापक, **विश्पतिम्** प्रजापालक **त्वाम्** आप जगदीश्वर को **देवासः च** विद्वान् योगी लोग भी **मर्तासः च** और सामान्य मनुष्य भी **दधिरे** अपने आत्मा में धारण करते हैं, और **नमसा** नमस्कार के साथ **निषेदिरे च** आपके समीप बैठते हैं ।।२।।

यहां विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है, अनुप्रास भी है ।।२।।

भावार्थ— सब गुणों से समृद्ध, परोपकारी परमात्मा को छोड़कर अन्य किसी की परब्रह्म के रूप में उपासना करनी उचित नहीं है ।।२।।

१५६९. विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्म नस्त्रिवरूथः शिवो भव ।।३।।[3]

---

१. ऋ० ६।१५।७।

२. ऋ० ६।१५।८

३. ऋ० ६।१५।९

अगले मन्त्र में गुणकर्मवर्णनपूर्वक परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** जगत् के नायक, सर्वप्रकाशक परमात्मन्! **उभयान्** पूर्वमन्त्रेक्त विद्वान् योगियों तथा सामान्य मनुष्यों दोनों को **विभूषन्** सद्गुण आदियों से अलंकृत करते हुए, **देवानाम्** विद्वानों को **दूतः** धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त कराने वाले आप **व्रता अनु** अपने नियमों का अनुसरण करते हुए **रजसी** द्यावापृथिवी को **समीयसे** व्याप्त करते हो । **यत्** क्योंकि **ते** आपकी **धीतिम्** धारणा वा ध्यान को, और **सुमतिम्** सुमति को **आ वृणीमहे** हम प्राप्त करते हैं, **अध** इसलिए **त्रिवरूथः** पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, तीनों में घर के समान निवास करने वाले अथवा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों दुःखों को दूर करने वाले आप **नः** हमारे लिए **शिवः** मंगलकारी **भव स्म** होवो ।।३।।

भावार्थ– ध्यान किया गया परमेश्वर उपासकों को सुख-शान्ति देता है ।।३।।

।।१४।। अथ 'उप त्वा' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रयोगो भार्गवः, पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोरन्यतरो वा । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५७०. उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में १३ क्रमांक पर) परमात्मा की महिमा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां वेद-वाणियों का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– हे अग्ने! हे प्रकाशमय जगदीश्वर! **हविष्कृतः** आत्मसमर्पणकर्ता उपासक की **जामयः** बहिनों के समान हितकारिणी, **त्वा देदिशतीः** आपके गुणों का निर्देश करती हुई **गिरः** वेदवाणियां **वायोः** प्राणप्रिय आपके **अनीके** समीप **उप अस्थिरन्** उपस्थित हो रही हैं।

अन्यत्र कहा भी है –ऋचाएं उसी अविनाशी सर्वोच्च परमेश्वर का प्रतिपादन करती हैं जिसमें सब दिव्यगुण अवस्थित हैं। जिसने उसे नहीं जाना उसे वेद से क्या लाभ? जो उसे जान लेते हैं वे मोक्ष पद में समासीन हो जाते हैं (ऋ० १।१६४।३९)।।१।।

भावार्थ– जो परमेश्वर अग्नि के समान स्तोता के हृदय में दिव्य ज्योति प्रज्वलित कर देता है और वायु के समान उसे धौंकता रहता है उसी की महिमा को सब वेद एक स्वर से गाते हैं ।।१।।

१५७१. यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् । आपश्चिन्नि दधा पदम् ।।२।।[2]

---

१. ऋ० ८।१०२।१३, साम० १३ ।

२. ऋ० ८।१०२।१४

अगले मन्त्र में अन्तरिक्ष के महत्त्व द्वारा परमात्मा का महत्त्व वर्णित है ।

पदार्थ– **यस्य** जिस जगदीश्वर का **त्रिधातु** वायु, बिजली और सूर्य इन तीनों धातुओं से युक्त, **अवृतम्** न समेटा हुआ अर्थात् विस्तृत **बर्हिः** अन्तरिक्ष **असन्दिनम्** खुला हुआ **तस्थौ** स्थित है, जिस अन्तरिक्ष में **आपः चित्** मेघ-जल भी **पदम्** स्थिति को **नि दघ** धारण किये हुए हैं। [हे मनुष्यो! उसकी महिमा को तुम जानो]।।२।।

भावार्थ– परमेश्वर से रचे हुए अन्तरिक्ष आदि की महिमा से परमेश्वर की ही महिमा प्रकाशित होती है।।२।।

३२ ३१ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १र २र ३२ १
१५७२. पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ।।३।।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की कृपा का विषय है ।

पदार्थ– **मीढुषः** सुख को सींचने वाले **देवस्य** प्रकाशक जगदीश्वर का **पदम्** प्राप्तव्य मोक्षपद **अनाधृष्टाभिः** अपराजित **ऊतिभिः** रक्षाओं से युक्त है । और उसकी **उपदृक्** कृपा दृष्टि **सूर्यः इव** सूर्य के समान **भद्रा** शुभ है ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा की शरण में जाकर मनुष्य उसकी कभी क्षीण न हो सकने वाली रक्षा को और अमृतमयी कृपादृष्टि को पा लेता है ।।३।।

इस खण्ड में यज्ञाग्नि और परमेश्वर के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

पंद्रहवें अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

पंद्रहवां अध्याय समाप्त ।।

सप्तम प्रपाठक में द्वितीय अर्ध समाप्त ।।

।।१।। तत्र 'अभि त्वा' इत्यादिकस्य प्रथमस्य द्वयचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१५७३. अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २५६ क्रमांक पर परमात्म की स्तुति के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां गुरु-शिष्य के विषय को कहते हैं।

पदार्थ– हे **इन्द्र** विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य ! **पूर्वपीतये** श्रेष्ठ विद्यारस के पान के लिए **आयवः** विद्यार्थी जन **स्तोमेभिः** स्तोत्रों द्वारा **त्वा** आपसे **अभि** अभ्यर्थना कर रहे हैं। आपके ही निर्देशन में **ऋभवः** मेधावी छात्र **समीचीनासः** आपस में मिलकर **समस्वरन्** वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं, और **रुद्राः** प्राणवान् ब्रह्मचारीगण **पूर्व्यम्** पूर्व कवियों वा ऋषियों से रचे हुए स्तोत्र आदि काव्य का भी **गृणन्त** गान करते हैं।।१।।

१. ऋ० ८।१०२।१५।
२. ऋ०८।३।७, अथ० २०।९९।१, साम० २५६।

भावार्थ– सुयोग्य ब्रह्मवेत्ता गुरुओं से सुयोग्य शिष्यों द्वारा पढ़ी हुई भौतिक विद्या और ब्रह्मविद्या फलदायक होती है ।।१।।

१५७४. अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवो ऽ नु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।।२।।[1]

आगे फिर गुरु-शिष्य का ही विषय कहते हैं।

पदार्थ– **इन्द्रः** विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य **अस्य** इस शिष्य के **वृष्ण्यम्** आत्मिक **शवः** बल को **इत्** निश्चय ही **वावृधे** बढ़ाता है । वह शिष्य **सुतस्य** प्राप्त ज्ञान के **विष्णवि** व्यापक **मदे** आनन्द में वृद्धि को प्राप्त करता है । **अस्य** इस आचार्य की **तम् महिमानम्** उस महिमा की **आयवः** मनुष्य **पूर्वथा** पूर्व की तरह **अद्य** आज भी **अनुष्टुवन्ति** प्रशंसा करते हैं।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– आचार्य शिष्य का जो आत्मबल बढ़ाता है वह उस शिष्य की अपूर्व निधि होती है।।२।।

।।२।। अथ 'प्र वामर्चन्त्युक्थिनो' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य चतुर्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वामित्रो गाथिनः। **देवता** इन्द्राग्नी । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५७५. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः। इन्द्राग्नी इष आ वृणे ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** जीवात्मन् और परमात्मन् ! **उक्थिनः** गुणों के प्रशंसक, **नीथाविदः** नीतिज्ञ **जरितारः** स्तोता लोग **वाम्** आप दोनों की **प्र अर्चन्ति** भली भांति स्तुति करते हैं। मैं आप दोनों की सहायता से **इषः** आनन्द-रसों और ज्ञान-रसों को **आवृणे** ग्रहण करता हूं ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य जीवात्मा को उद्बोधन देकर और परमात्मा की पूजा करके दिव्य ज्ञान तथा आनन्द को पाकर महान् उन्नति कर सकते हैं।।१।।

१५७६. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ।।२।।[3]

आगे फिर उसी विषय में कहते हैं।

---

१. ऋ० ८।३।८, य० ३३।९७ अन्ते प्रतीकान्यधिकानि, अथ० २०।९९।२ ।

२. ऋ० ३।१२।५, साम० १७०३ ।

३. ऋ० ३।१२।६, साम० १७०४।

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** जीवात्मन् और परमात्मन् ! **एकेन** अद्वितीय **कर्मणा पुरुषार्थ के साकम्** साथ **दासपत्नीः** काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर रूप दास जिनके स्वामी हैं, ऐसी **नवतिं पुरः** नव्वे शत्रु-नगरियों को पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय, पांच कर्मेन्द्रियों के विषय और उन उन में आने वाले व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभुमिकत्व, अनवस्थिततत्वये नो योगमार्ग के विघ्न इस प्रकार नव्वे हो जाते है, वे ही नव्वे शत्रु-नगरियां हैं, उन्हें तुम दोनों **अधूनुतम्** कंपा डालते हो।।२।।

भवार्थ– परमात्मा की मित्रता पाकर और जीवात्मा को उद्‌बोधन देकर योगाभ्यास में संलग्न मनुष्य को सब योग-विघ्नों को दूर करके योगमार्ग में सफलता पाना योग्य है ।।२।।

१५७७. इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ।।३।।[1]

आगे फिर जीवात्मा और परमात्मा का ही विषय उपदिष्ट है ।

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** जीवात्मन् ओर परमात्मन् ! **धीतयः** ध्यानकर्ता लोग **ऋतस्य** सत्य के **पथ्याः** मार्गों का **अनु** अनुसरण करते हुए **अपसः परि** । धर्म कर्मों के पार पहुंच कर, तुम दोनों को **उप प्र यन्ति** प्राप्त कर लेते हैं।।३।।

भावार्थ– जीवन में सत्य मार्ग का अनुसरण और परमेश्वर की प्राप्ति यह मनुष्य का लक्ष्य है ।।३।।

१५७८. इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ।।४।।[2]

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** जीवात्मन् और परमात्मन् ! **वाम्** तुम दोनों के **तविषाणि** बल **प्रयांसि च** और प्रयत्न **सधस्थानि** साथ-साथ होते हैं। **युवोः** तुम दोनों में **अप्तूर्यम्** कर्म के अनुष्ठान की शीघ्रता **हितम्** निहित है ।।४।।

भावार्थ– जीवात्मा और परमात्मा एक दूसरे के साथी हैं। परमात्मा की मित्रता में जीव महान् उन्नति कर सकता है ।।४।।

।।३।। अथ 'शग्ध्यूषु' इत्यादिकस्य तृतीयस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भर्गः प्रागाथः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

१५७९. शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ।।१।।[3]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २५३ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में हो चुकी है । यहां अपने अन्तरात्मा को प्रबोधन है ।

---

१. ऋ० ३।१२।७, साम० १६९४ ।

२. ऋ० ३।१२।८, साम० १६९५ ।

३. ऋ० ८।६१।५, अथ० २०।११८।१, साम० २५३।

पदार्थ– हे **शचीपते** प्रज्ञा और कर्म के स्वामिन् ! **इन्द्र** मेरे अन्तरात्मन् ! तू **विश्वाभिः** सब **ऊतिभिः** प्रगतियों से **उ सु** भली भांति **शग्धि** सशक्त हो । **हे शूर** शूरवीर ! **भगं न** सूर्य के समान **यशसम्** यशस्वी और **बसुविदम्** ऐश्वर्यों को पाने वाले **त्वा** तेरा, हम **अनु चरामसि** सेवन करते हैं ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– अपने आत्मा को प्रबुद्ध करके ही मनुष्य उन्नति कर सकते हैं ।।१।।

१५८०. पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
न किर्हि दानं परि मर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति और उससे प्रार्थना है ।

पदार्थ– हे इन्द्र! हे परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर! आप **अश्वस्य** सूर्य वा प्राण को **पौरः** पूर्ण करने वाले **गवाम्** सूर्य किरणों, पृथिवियों, इन्द्रियों वा धेनुओं की **बहुकृत्** बहुतायत करने वाले **असि** हो । हे **देव** दान आदि गुणों से युक्त! आप संपदाओं के **हिरण्ययः** ज्योतिर्मय **उत्सः** स्रोत हो । **त्वे** आप में विद्यमान **दानम्** दान के गुण को **न किः हि** कोई भी नहीं **परि मर्धिषत्** नष्ट कर सकता है । इसलिए मैं **यत् यत्** जो-जो **यामि** आपसे मांगता हूं **तत्** वह **आभर** मुझे प्रदान कर दो ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा की कृपा से और अपने पुरूषार्थ से मनुष्य सारी दिव्य और लौकिक सम्पदा प्राप्त कर सकता है ।।२।।

।।४।। अथ 'त्वं ह्येहि' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य द्वयृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भर्ग प्रागाथः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१५८१. त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २४० क्रमांक पर परमेश्वर और राजा को सम्बोधित की गयी थी । यहां योग-साधना में संलग्न कोई साधक परमात्मा से प्रार्थना करता है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** परमैश्वर्यशालिन् परमात्मन्! **त्वं हि** आप **चेरवे** मुझ योगाभ्यासी के लिए **एहि** आओ । **वसुत्तये** योग के ऐश्वर्य का दान करने के इच्छुक मेरे लिए **भगम्** योग का ऐश्वर्य **विदाः** प्राप्त कराओ । हे **मघवन्** दानी! आप **गविष्टये** अध्यात्म प्रकाश की किरणों के इच्छुक मेरे ऊपर **उद् वावृषस्व** अध्यात्म प्रकाश की किरणों को सींच दो । **अश्वमिष्टये** प्राणों के इच्छुक मेरे ऊपर **उद् वावृषस्व** प्राण-बल की वर्षा कर दो ।।१।।

---

१. ऋ० ८।६१।६, अथ० २०।११८।२ ।
२. ऋ० ८।६१।७, साम० २४० ।

भावार्थ— परमेश्वर के प्रति ध्यान से योगाभ्यासी मनुष्य प्राणों को ऊपर चढ़ाता हुआ तरह तरह के अध्यात्म प्रकाशों को और विविध योग-सिद्धियों को पा सकता है ॥१॥

१५८२. त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥२॥[1]

आगे फिर परमात्मा को संबोधन है।

पदार्थ— हे इन्द्र! हे परमैश्वर्यशालिन् परमात्मदेव! **त्वम्** परम दानी आप **पुरू** बहुत से **सहस्राणि** हजार, **शतानि च** और सौ हजार अर्थात् लाख **यूथा** गौओं के झुण्डों को अर्थात् अध्यात्म प्रकाश के समूहों को **दानाय** अन्यों को देने के लिए, हम योगाभ्यासियों को **मंहसे** देते हो। **विप्रवचसः** बुद्धिपूर्वक वचनों वाले, हम **गायन्तः** आपकी स्तुति का गान करते हुए **अवसे** रक्षा के लिए **पुरन्दरम्** विपत्तिरूप नगरियों को तोड़-फोड़ देने वाले **इन्द्रम्** वीर आपको **आ चकृम** अपना सखा बना लेते हैं॥२॥

भावार्थ— निरन्तर योगाभ्यास की साधना से, परमात्मा के ध्यान से, प्रणव-जप आदि से अनन्त प्रकाश के समूह सामने आते हैं, जिनकी चकमक से चमत्कृत हुआ साधक परम स्थिति को पा लेता है ॥२॥

॥५॥ अथ 'यो विश्वा' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य द्वयृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सोभरिः काण्वः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः॥

१५८३. यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४४ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में की जा चुकी है। यहां एक-साथ परमात्मा और आचार्य दोनों को लक्ष्य करके कहते हैं।

पदार्थ— **होता** ब्रह्माण्ड-यज्ञ वा शिक्षा-यज्ञ का कर्ता, **जनानाम्** मनुष्यों को **मन्द्रः** आनन्द देने वाला **यः** जो परमात्मा वा आचार्य **विश्वा वसु** सब आध्यात्मिक धनों को वा विद्या-धनों को **ददाति** देता है **अस्मै अग्नये** ऐसे अग्रनायक परमात्मा वा आचार्य के लिए **प्रथमानि** श्रेष्ठ **मधोः पात्रा न** मधुपूर्ण पात्रों के समान **स्तोमाः** धन्यबाद के वचन **प्र यन्तु** पहुंचें ॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ— जैसे परमेश्वर पुरूषार्थी को भौतिक और आध्यात्मिक धन प्रदान करता है, वैसे ही आचार्य शिष्यों को विद्या-धन देता है, इसलिए वे दोनों सबके द्वारा अभिनन्दन करते योग्य हैं ॥१॥

१५८४. अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥२॥[3]

---

१. ऋ० ८।६१।८।
२. ऋ० ८।१०३।६, 'यन्त्यग्नये' इति भेदः। साम० ४४।
३. ऋ० ८।१०३।७।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और आचार्य का विषय है ।

पदार्थ- प्रथम परमात्मा के पक्ष में । **देवयवः** दिवय गुणों की कामना वाले **सुदानवः** भली-भाँति आत्मसमर्पण करने वाले उपासक **रथ्यम् अश्वं न** रथ को खींचने वाले घोड़े के समान **रथ्यम्** ब्रह्माण्ड-रथ को खींचने वाले परमात्मा को **गीर्भिः** स्तुति-वाणियों से **मर्मृज्यन्ते** अलंकृत करते हैं, और प्रार्थना करते हैं कि - हे **दस्म** दर्शनीय **विश्पते** प्रजापति परमात्मन्! आप हमारे **तोके तनये** पुत्र-पौत्रों **उभे** दोनों में **मघोनाम्** धनियों के **राधः** धन के समान **राधः** अध्यात्म और धन को, भौतिक धन को और सफलता को **पर्षि** सींचो, बहुत रूप में प्रदान करो ।

द्वितीय- आचार्य के पक्ष में । **देवयवः** अपने पुत्रों को विद्वान् बनाना चाहते हुए **सुदानवः** उत्तम दानी गृहस्थ लोग **रथ्यम् अश्वं न** रथ को खींचने वाले घोड़े के समान **रथ्यम्** विद्या-रूप रथ को चलाने वाले आचार्य को **गीर्भिः** प्रशंसा-वचनों से **मर्मृज्यन्ते** अलंकृत करते है, और कहते हैं कि-हे **दस्म** दोषों को दूर करने वाले, **विश्पते** शिष्य रूप प्रजाओं के पालक आचार्य! आप हमारे **तोके तनये** पुत्र और पौत्र **उभे** दोनों में **मघोनाम् विद्या-धन के धनी गुरूजनों के राधः** विद्यारूप को **पर्षि** सींचो, बहुत रूप में प्रदान करो।।२।।

इस मन्त्र में उपमा और श्लेष अलंकार हैं ।।२।।

भावार्थ- परमात्मा और आचार्य की कृपा से हमारी सन्तानें परमेश्वर-पूजक, पुरूषार्थी, विद्यावान् और धार्मिक हों ।।२।।

इस खण्ड में गुरू-शिष्य, परमात्मा-जीवात्मा और मनुष्य के उद्बोधन के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

सोलहवें अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।।

।।६।। अथ 'इमं मे' इत्यादिकस्य षष्ठस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शुनःशेप आजीगर्तिः । **देवता** वरूणः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

३ १ २ ३ १२३ १ २ १ २ ३ १र २र

१५८५. इमं मे वरूण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके।।१।।[1]

परमात्मा, राजा और आचार्य से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ- हे **वरुण** दोष-निवारक वरणीय परमात्मन्, राजन् व आचार्य ! **इमं मे हवम्** इस मेरी पुकार को **श्रुधि सुनो । और अद्य** आज, मुझे **मृडय च** आनन्दित भी कर दो । **अवस्युः** आपकी रक्षा का इच्छुक मैं **त्वाम्** चाह रह हूँ ।।१।।

भावार्थ- मनुष्यों को चाहिए कि यथायोग्य परमात्मा, राजा और आचार्य से प्रार्थना करके, अपने दोषों का निवारण करके, सद्गुण और सत्कर्मो को स्वीकार करके उन्नति करें ।।१।।

---

१. ऋ० १।२५।१९ । य० २१।१ ।

।।७।। अथ 'कया त्वं' इत्यादिकस्य सप्तमस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सुकक्ष आङ्गिरसः । **देवता**—इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

१५८६. कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर ।।१।।[1]

आगे पुनः जगदीश्वर, राजा वा आचार्य से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ— हे **वृषन्** मनोरथों को पूर्ण करने वाले, मार्ग के विघ्नों को हटाने वाले जगदीश्वर, राजन् वा आचार्य ! **त्वम्** आप **कया** सुखदायिनी **ऊत्या** रक्षा द्वारा **नः अभि** हमारे आभिमुख होकर **प्र मन्दसे** हमें भली भांति आनन्दित करते हो । **कया** उसी सुखदायिनी रक्षा द्वारा, आप **स्तोतृभ्यः** आपके गुण-कर्म-स्वभाव का कीर्तन करने वाले स्तोताओं को **आभर** आनन्द प्रदान करो ।।१।।

भावार्थ— जगदीश्वर, राजा और आचार्य अविद्या, दुःख, दुर्गण, दुर्व्यसन, शत्रु आदियों से यदि हमारी रक्षा करें तो वैयक्तिक और सामाजिक महान् उन्नति हो सकती है ।।१।।

।।८।। अथ 'इन्द्रमिद्' इत्यादिकस्याष्टमस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः । **देवता**- इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

१५८७. इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २४९ क्रमांक पर जगदीश्वर और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां यज्ञ की सफलता के लिए जगदीश्वर का आह्वान है ।

पदार्थ— **इन्द्रम् इत्** जगदीश्वर को ही **देवतातये** यज्ञ के आरंभ के लिए, **इन्द्रम्** जगदीश्वर को ही **अध्वरे** यज्ञ के **प्रयति** प्रवृत्त होने पर, **इन्द्रम्** जगदीश्वर को ही **समीके** यज्ञ समाप्त होने पर, **इन्द्रम्** जगदीश्वर को ही **धनस्य** यज्ञफल की **सातये** प्राप्ति के लिए **वनिनः** भक्ति में तन्मय होकर हम **हवामहे** पुकारते हैं।।१।।

भावार्थ— अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त अथवा देवपूजा, संगतिकरण और दानरूप जो भी यज्ञ आयोजित किया जाता है उसमें सदा परमेश्वर का स्मरण रखने से वह सफल होता है ।

१५८८. इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की महिमा वर्णित है ।

---

१. ऋ० ८।९३।१९, य० ३६।७ ।

२. ऋ० ८।३।५, अथ० २०।११८।३, साम० २४९ ।

३. ऋ० ८।३।६, अथ० २०।११८।४, उभयत्र 'सुवानास' इति भेदः।

पदार्थ– इन्द्रः जगदीश्वर नें **मह्ना** अपनी महिमा से **रोदसी** द्यावापृथिवी को और **शवः** उनके बल को **पप्रथत्** फैलाया है। **इन्द्रः** जगदीश्वर ने ही **सूर्यम्** सूर्य को **अरोचयत्** चमकाया है। **इन्द्रे** जगदीश्वर के आश्रय में ही **विश्वा भुवनानि** सब लोक **येमिरे** नियन्त्रित हैं। **इन्द्रे** जगदीश्वर के आश्रय में ही **स्वानासः** बहते हुए **इन्दवः** जल **येमिरे** नियन्त्रित हैं ॥२॥

भावार्थ- ग्रह, उपग्रह, सूर्य, नक्षत्र, निहारिका आदि सभी लोक जगत्स्रष्टा परमेश्वर की ही महिमा से धारित और नियन्त्रित होकर ठहरे हुए हैं ॥२॥

॥९॥ अथ 'विश्वकर्मन्' इत्यादिकस्य नवमस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वकर्मा भौवनः। **देवता** विश्वकर्मा। **छन्दः** त्रिष्टुप्। **स्वरः** धैवतः॥

१५८९. विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वां३ स्वा हि ते।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥१॥[1]

इस एक ऋचा वाले सुक्त में अपने अन्तरात्मा को उद्‌बोधन दिया गया है।

पदार्थ– हे **विश्वकर्मन्** शारीरिक सब कर्मों के कर्त्ता जीव! **हविषा** सद्‌गुणों के आधान द्वारा **वावृधानः** समृद्ध हुआ तू **स्वयम्** अपने आप ही **तन्वम्** शरीर को **यजस्व** यज्ञ-कर्मों में नियुक्त कर, **हि** क्योंकि, वह **ते** तेरी **स्वा** अपनी है, उस पर तेरा अधिकार है। **अभितः** सब ओर स्थित **अन्ये** दूसरे **जनासः** उत्पन्न बाह्य तथा आन्तरिक शत्रु **मुह्यन्तु** मोह को प्राप्त हो जाएं। **मघवा** ऐश्वर्यशाली जगदीश्वर **इह** इस जगत् में **अस्माकम्** हमारा **सूरिः** प्रेरक **अस्तु** होवे ॥१॥

भावार्थ– जीव का यह कर्तव्य है कि वह अपने देह को शुभकर्मों में लगाकर परमात्मा की पूजा करते हुए अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करे ॥१॥

॥१०॥ अथ 'अया रुचा' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अनानतः पारुच्छेपिः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** अत्यष्टिः। **स्वरः** गान्धारः॥

१५९०. अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः
सूरो न सयुग्वभिः। धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥[2]

ऋचा की व्याख्यता पूर्वार्चिक में ४६३ क्रमांक पर जीवात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहां परमात्मा का विषय वर्णित करते हैं।

---

१. ऋ० १०।८१।६, यजु० १७।२२, उभयत्र 'स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्' इति द्वितीयः पादः। यजुर्वेदे 'अभितः सपत्नाः' इत्यापि भेदः।

२. ऋ० ९।१११।१, स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः', 'धारा सुतस्य रोचते'। 'परियात्यृक्वभिः' इति भेदः। साम० ४६३।

पदार्थ— या सोम नामक परमेश्वर **अया** इस **हरिण्या** कष्टों को हरने वाली **रुचा** कान्ति से **पुनानः** पवित्रता देता हुआ **सयुग्वभिः** सहयोगी मन, बुद्धि आदियों द्वारा, उपासक के **विश्वा द्वेषांसि** सब द्वेषों को **तरति** दूर कर देता है। कैसे ? **सूरः न** सूर्य जैसे **सयुग्वभिः** सहयोगी किरणों द्वारा **विश्वा द्वेषांसि** सब अन्धकारों को **तरति** दूर करता है । **पृष्ठस्य** आनन्द सींचने वाले परमेश्वर की **धारा** पवित्रता की रस-धार **रोचते** मन को भाती है । हे परमेश्वर ! **अरुषः** तेजस्वी, **हरिः** दुःखहर्ता आप, उस धारा से **पुनानः** पवित्र करते हो, **यत्** जब **ऋक्वभिः** वेदपाठियों से, तथा **सप्तास्यैः ऋक्वभिः** गायत्र्यादि सात छन्दों वाले वेदमन्त्रों से गाये जाते हुए आप **विश्वा रूपा** विभिन्न रूपों को **परि यासि** प्राप्त करते हो, अर्थात् विभिन्न रूपों में वर्णित किये जाते हो ॥१॥

यहां उपमालंकार और यमक है ॥१॥

भावार्थ— जैसे सूर्य अन्धकारों को दूर करता है, वैसे ही जगदीश्वर पुरूषार्थी उपासकों के दुःख, दुर्व्यसन आदि को दूर करता है ॥१॥

१५९१. प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो
रथः । अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमात्मा की उपासना से जीव क्या प्राप्त करता है ।

पदार्थ— परमेश्वर की मित्रता प्राप्त करके जीव **चेकितत्** विज्ञानवान् होता हुआ **प्राचीं प्रदिशम्** प्रकृष्ट दिशा की ओर **अनुधावति** अग्रसर होने लगता है । **दर्शतः** द्रष्टा वह **रथः** रथ के समान वेगवान् होता हुआ **रश्मिभिः** तेज की किरणों से **संयतते** संयुक्त हो जाता है । इसका **रथः** देहरूप रथ **दैव्यः** सज्जनों का हित करने वाला, और **दर्शतः** दर्शनीय हो जाता है । शुभगुण प्रेरक, सोम परमात्मा की उपासना से **उक्थानि** प्रशंसनीय **पौंस्या** बल **इन्द्रम्** जीवात्मा को **अग्मन्** प्राप्त होते हैं, और उसे **जैत्राय** विजय के लिए **हर्षयन्** उत्साहित करते हैं, **यत्** क्योंकि, हे सद्गुणों की प्रेरणा करने वाले जगदीश्वर! आप **वज्रः च** और आपका वज्रतुल्य दण्ड देने का सामर्थ्य दोनों **अनपच्युता** अडिग होते हुए **समत्सु** देवासुर संग्रामों में **अनपच्युता** अटूट बल वाले **भवथः** होते हो ॥२॥

भावार्थ— परमेश्वर का सखा शत्रुओं से अपराजित होता हुआ सदा ही उत्कर्ष प्राप्त करता है ॥२॥

१५९२. त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभि
र्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥३॥[2]

१. ऋ० ९।१११।३
२. ऋ० ९।१११।२

अगले मन्त्र में उपासक की उपलब्धि का वर्णन है ।

पदार्थ– हे सोम अर्थात् शान्त उपासक! **त्वं ह** तू **पणीनां त्यत् वसु** दुर्विचाररूप दस्युओं से चुरा लिये गए सद्विचाररूप धन को **विदः** फिर प्राप्त कर लेता है । **मातृभिः** मातारूप वेद-वाणियों से स्वयं को **संमर्जयसि** संशोधित वा अलंकृत कर लेता है । **स्वे** अपने **दमे** इन्द्रियों के दमन रूप कार्य में **आ** तत्पर रहता है । **ऋतस्य** सत्य की **धीतिभिः** धारणाओं के साथ **दमे** घर में **आ** आता है, **यत्र** जिस घर में **परावतः** दूर देश से **न** जैसे **साम** साम का संगीत सुनाई देता है, वैसे ही **धीतयः** स्तुति-वाणियाँ **रणन्ति** शब्दायमान होती हैं । वह उपासक **त्रिधातुभिः** पूर्व-पूर्व जिनमें बलवान् हैं ऐसे सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों से युक्त **अरुषीभिः** चमकीली दीप्तियों से **वयः** आनन्द-रस को **दधे** अपने अन्दर धारण करता है, और **रोचमानः** तेजस्वी होता हुआ **वयः** जीवन को **दधे** धारण करता है ।।३।।

यहां यमक और उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर का उपासक अन्तः प्रकाश, जितेन्द्रियता और आनन्द-रस प्राप्त करके चिरकाल तक प्रसन्न रहता है ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, राजा, आचार्य, आत्म-प्रबोधन और उपासक की उपलब्धि का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

सोलहवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।।

।।११।। अथ 'उत नो' इत्यादिकस्यैकादशस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । **देवता** पूषा । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५९३. उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुह्यूतये ।।१।।[1]

अगले एक ऋचा सूक्त में पूषा परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे पूषन् ! हे पुष्टिप्रदाता जगदीश्वर ! आप **ऊतये** रक्षार्थ **नः** हमारे लिए **गोषणिम्** अन्तः प्रकाश को प्राप्त करने वाली, **उत** और **अश्वसाम्** इन्द्रिय-बलों को प्राप्त करने वाली, **उत** और **वाजसाम्** प्राण-बलों को प्राप्त करने वाली, तथा **नृवत्** पुरुषार्थयुक्त **धियम्** प्रज्ञा को **कृणुहि** प्रदान करो ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर की उपासना से मनुष्यों को आत्मबल, इन्द्रिय-बल, प्राण-बल, प्रज्ञा-बल और पुरुषार्थ-बल प्राप्त करना योग्य है ।।१।।

।।१२।। अथ 'शशमानस्य' इत्यादिकस्य द्वादशस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः । **देवता** मरुतः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१५९४. शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ।।१।।[2]

---

१. ऋ० ६।५३।१०, 'कृणुहि वीतये' इति भेदः ।

२. ऋ० १।८६।९ ।

आगे एक ऋचा वाले सूक्त में विद्वान् जनों को सम्बोधन है ।

पदार्थ– हे **नरः** नेता मरुतो ! विद्वान् लोगो ! तुम **शशमानस्य** शीघ्रता से प्रयत्न करते हुए, **स्वेदस्य** पसीने से तर-बतर शरीर वाले, **सत्यशवसः** सत्य बल वाले **वेनतः वा** और महत्वाकांक्षा से युक्त मनुष्य के **कामस्य** मनोरथ को **विद** जानो और पूर्ण करो ।।१।।

भावार्थ– परिश्रम के पसीने से नहाये हुए शरीर वाले, सत्य विज्ञान वाले, सत्यबल वाले और सत्य कर्म वाले मनुष्य की ही महत्त्वाकांक्षाएं सिद्ध होती है, आलसी की नहीं ।।१।।

।।१३।। अथ 'उप नः' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** ऋजिष्वा भारद्वाजः । **देवता** विश्वेदेवाः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

१५९५. उप नः सूनवो गिरः शृणवन्त्वमृतस्य ये। सुमृडीका भवन्तु नः ।।१।।[1]

अगले एक ऋचा वाले सूक्त में सन्तान कैसी हों यह विषय है ।

पदार्थ– **यः** जो **नः** हमारे **सूनवः** सन्तान हों, वे **अमृतस्य** अविनाशी परमेश्वर वा नित्य वेद की **गिरः** वाणियों को **उप शृण्वन्तु** अर्थज्ञानपूर्वक गुरुमुख से सुनें । इस प्रकार विद्वान होकर **नः** हमारे लिए **सुमृडीकाः** अति सुखकारी **भवन्तु** होवें ।।१।।

भावार्थ– आचार्य के मुख से सब वेद आदि शास्त्रो को पढ़कर सब व्यावहारिक विद्याओं में जो पारंगत हो जाते हैं वे ही स्वयं को और समाज को सुखी कर सकते हैं।।१।।

।।१४।। अथ 'प्र वां महि' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वामदेवो गौतमः । **देवता** द्यावापृथिव्यौ । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

१५९६. प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ।।१।।[2]

अब द्यावापृथिवी के नाम से आत्मा और बुद्धि का विषय कहते हैं।

पदार्थ– हे द्यावापृथिवी ! हे आत्मा और बुद्धि ! हम **प्रशस्तये** प्रशस्ति प्राप्त करने के लिए **द्यवी** तेजस्वी, **शुची** पवित्र **वाम् अभि** तुम दोनों के प्रति **महि** बहुत अधिक **उपस्तुतिम्** तुम्हारे गुण-कर्मों की प्रशंसा **प्र उप भरामहे** करते हैं।।१।।

भावार्थ– आत्मा और बुद्धि दोनों ही अपना-अपना महत्त्व रखते हैं। उनसे उपकार सबको लेना चाहिए।।१।।

१५९७. पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में आप्मा और बुद्धि के आपस के उपकार का वर्णन है ।

---

१. ऋ० ६।५२।९, य० ३३।७७ ।

२. ऋ० ४।५६।५।

३. ऋ० ४।५६।६ ।

पदार्थ— **तन्वा** स्वरूप से **मिथः** एक दूसरे को **पुनाने** पवित्र करते हुए तुम दोनों आत्मा और बुद्धि **स्वेन** अपने **दक्षेण** बल से **राजथः** शोभित होते हो । **सनात्** चिरकार से **ऋतम्** सत्य को **ऊह्याथे** चरितार्थ करते हो॥२॥

भावार्थ— आत्मा और बुद्धि आकाश और भूमि के समान एक दूसरे के उपकारक होते हुए मनुष्य को अभ्युदय और निःश्रेयस के मार्ग पर भली भांति चलाते हैं॥२॥

१५९८. मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं नि षेदथुः ॥३॥[1]

अब दोनों के आश्रय से योगसिद्धि होने का वर्णन करते हैं।

पदार्थ— हे आत्मा और बुद्धि ! **मही** महान् तुम दोनों **मित्रस्य** मित्र उपासक की **साधथः** योगसाधना को पूर्ण करते हो । **तरन्ती** योग के विघ्नों को पार करते हुए, **ऋतम्** सत्य को **पिप्रती** पूर्ण करते हुए तुम दोनों **यज्ञम्** योगी के योग-यज्ञ को **परि निषेदथुः** चारों ओर से व्याप्त करते हो ॥३॥

भावार्थ— जीवात्मा के बिना बुद्धि और बुद्धि के बिना जीवात्मा योग सिद्ध नहीं कर सकते । दोनों आपस में मिलकर ही योगयज्ञ की पूर्ति करते हैं॥३॥

॥१५॥ अथ 'अयमु' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शुनःशेप आजीगर्तिः । देवता इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः॥

१५९९. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में १८३ क्रमांक पर) परमेश्वर को संबोधित की गयी थी । यहां उपासक को संबोधन करते हैं।

पदार्थ— हे उपासक ! **अयम् उ** यह इन्द्र नामक परमेश्वर **ते** तेरा ही है, जिसे तू **समतसि** भलीभांति प्राप्त करता है । कैसे प्राप्त करता है ? **कपोतः इव** जैसे कबूतर **गर्भधिम्** नन्हें-नन्हें शिशुओं को धारण करने वाले अपने घोंसले को प्राप्त करता है । **तत् चित्** इस **नः** हमारे **वचः** वचन पर, हे उपासक ! तू **ओहसे** विचार कर ॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ— परमेश्वर के साथ अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित करके उपासक को परमेश्वर के गुण अपने में धारण करने का प्रयत्न करना चाहिए ॥१॥

१६००. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभुतिरस्तु सूनृता ॥२॥[3]

अगले मन्त्र में इन्द्र परमेश्वर की स्तुति है ।

---

१. ऋ० ४।५६।७ ।

२. ऋ० १।३०।४, अथ० २०।४५।१, साम० १८३।

३. ऋ० १।३०।५, अथ० २०।४५।२।

पदार्थ– हे **राधानां पते** ऐश्वर्यों के स्वामिन् **गिर्वाहः** वेदवाणियों से प्राप्त करने योग्य, **वीर** शूरवीर परमात्मन् ! **यस्य ते** जिन आपको **स्तोत्रम्** स्तुतिकीर्तन सब जगह होता है, उन आपकी **सूनृता** सत्य, प्रिया और मधुर वेदवाणी, हमारे लिए **विभूतिः** वैभव देने वाली **अस्तु** होवे ।।२।।

भावार्थ– वेदों को पढ़कर, उनमें विद्यमान सब विद्याओं को जानकर सब मनुष्य वैभवशाली और ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले होवें ।।२।।

१६०१. ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ।।३।।[1]

अब परमेश्वर को संबोधन करते हैं।

पदार्थ– हे **शतक्रतो** अनन्त ज्ञानी और अनन्त कर्मों को करने वाले इन्द्र परमात्मन् ! आप **अस्मिन् वाजे** इस देवासुरसंग्राम में **नः ऊतये** हमारी रक्षा के लिए **ऊर्ध्वः** सजग **तिष्ठ** रहो । **अन्येषु** दूसरे अवसरों पर भी, आप और मैं **संब्रवावहै** आपस में अन्तरंग संलाप किया करें ।।३।।

भावार्थ– जब जब बाहरी या आन्तरिक देवासुर संग्राम उपस्थित होते हैं तब तब परमेश्वर-विश्वास को अपने अन्दर बलवान् करके, आत्मोद्बोधन पाकर, सब विघ्नों को विफल करके विजय पानी चाहिए ।।३।।

।।१६।। अथ 'गाव उप' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** हर्यतः प्रागाथः । **देवता** अग्निर्हवींषि वा । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१६०२. गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ११७ क्रमांक पर पहले की जा चुकी है । यहां अन्य व्याख्या देते हैं।

पदार्थ– हे मानव ! उपासना-यज्ञ में तू **अवटे** आनन्द-रसों के कूप अग्नि परमेश्वर के विषय में **गावः** वेद-वाणियों को **उपवद** समीपता के साथ उच्चारण कर । **मही** महान् द्यावापृथिवी **यज्ञस्य** पूजनीय परमात्मा की **रप्सु-दा** कीर्ति गान करने वाली हैं, **उभा** जो दोनों **कर्णा** विविध ऐश्वर्यों को बिखेरने वाली, तथा **हिरण्यया** ज्योतिर्मय हैं।।१।।

भावार्थ– ऐश्वर्यों से परिपूर्ण देदीप्यमान द्यु-लोक और पृथिवी-लोक जगदीश्वर की ही महिमा का गान करते हैं।।१।।

१६०३. अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु। अवटस्य विसर्जने ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में वर्षा वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा दर्शाते हैं।

---

१. ऋ० १।३०।६, अथ० २०।४५।३ ।

२. ऋ० ८।७२।१२, य०३३।१९, उभयत्र 'उपावताव॒तं' इति पाठः । साम० ११७, देवता इन्द्रः।

३. ऋ० ८।७२।११, 'अ॒व॒तस्य॑' इति भेदः ।

पदार्थ– अग्नि नामक परमात्मा की ही महिमा से **अद्रयः** बादल **अभ्यारम् इत्** आपस में टकराते हैं। तब **अवटस्य** मेघ रूप जलभंडार के **विसर्जने** बरसने पर **पुष्करे** भूमि के सरोवर में **मधु** मधुर वर्षा-जल **निषिक्तम्** सिंच जाता है ।।२।।

भावार्थ– जो यह भूमि पर स्थित जल सूर्य के ताप से अन्तरिक्ष में जाकर मेघ बनता है और फिर भूमि पर बरस जाता है, वह सब जगदीश्वर का ही कर्तृत्व है ।।२।।

३ २३ १ २ ३२३ १२३ १ २ ३ १२ ३ १ २
१६०४. सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनबारमक्षितम् ।।३।।[1]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– परमेश्वर की ही महिमा से सूर्य-किरणें **उच्चाचक्रम्** उच्च विद्युत-रूप चक्र वाले, **नीचीनवारम्** नीचे की ओर द्वार वाले, **अक्षितम्** अक्षय **अवटम्** मेघ-रूप कुएं को **परिज्मानम्** भूमि पर चारों ओर फैलाने के लिए **नमसा** बिजली-रूप वज्र से **सिञ्चन्ति** सींचती हैं ।।३।।

भावार्थ– जिस परमेश्वर की व्यवस्था से मेघों का निर्माण होता है और उनसे वर्षा होती है उसे हृदय में धारण करके योगी लोग धर्ममेघ समाधि को प्राप्त करें ।।३।।

इस खण्ड में परमेश्वर, विद्वान्, सन्तान, आत्मा-बुद्धि, उपासक तथा वृष्टि का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।

सोलहवें अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।।

।।१७।। अथ 'मा भेम' इत्यादिकस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** देवातिथिः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती।) **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

१ २३ १ २ ३१ २ ३ १र २र
१६०५. मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में इन्द्र परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे इन्द्र परमात्मन् ! **उग्रस्य** अधार्मिकों के प्रति उग्रता दिखाने वाले **तव** आपकी **सख्ये** मित्रता में रहते हुए हम **मा भेम** किसी से भयभीत न हों, **मा श्रमिष्म** थकें नहीं । **वृष्णः ते** सुख आदि की वर्षा करने वाले आपका **महत्** महान् **कृतम्** कर्म **अभिचक्ष्यम्** प्रशंसनीय है । आपकी कृपा से हम अपने राष्ट्र में **तुर्वशम्** हिंसकों को वश में करने वाले तथा **यदुम्** संयमशील मनुष्य-समाज को **पश्मेम** देखें ।।१।।

---

१. ऋ० ८।७२।१०, 'नमसावत' मिति भेदः।
२. ऋ० ८।४।७ ।

भावार्थ- जगदीश्वर से मित्रता स्थापित करने वाले लोग न कभी डरते हैं, न थकते हैं, प्रत्युत सत्कर्मों को करते हुए सदा ही उन्नति के मार्ग पर अग्रसर रहते हैं ॥१॥

१६०६. सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा के उपासक को कहते हैं ।

पदार्थ- हे परमात्मा के उपासक ! **वृषा** बलवान् तू **सव्याम्** बायीं **स्फिग्यम्** टांग को आगे करके और दाहिनी टांग को पीछ करके **वावसे** दौड़ लगाने के लिए खड़ा रह, अर्थात् सदा विक्रमशील रह । **अस्य** ऐसे विक्रमशील तेरी **दानः** कोई भी हिंसक **न रोषति** हिंसा नहीं कर सकेगा । हे उपासक ! **सारघेण मध्वा** मधुमक्खियों से प्राप्त मधु से **संपृक्ताः** संयुक्त **धेनवः** गोदुग्ध आदि तैयार हैं । तू **तूयम्** शीघ्र **एहि** आ **द्रव** क्रियाशील हो, **पिब** पान कर ॥२॥

भावार्थ- जैसे दौड़ की प्रतिस्पर्धा में प्रतिस्पर्धी लोग घुटने पर मुड़ी हुई बायीं टांग को आगे करके और दाहिनी को पीछे करके आकृति-विशेष में दौड़ने के लिए तैयार खड़ रहते हैं , वैसे ही परमेश्वर का उपासक सदा ही पुरुषार्थ के लिए तैयार रहता है । इसलिए उसके रास्ते में बाधा नहीं डाल सकता, प्रत्युत उसका सभी अभिनन्दन करते हैं ॥२॥

॥१८॥ अथ 'इमा उ त्वा' इत्यादिकस्याष्टादशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः । देवता इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमाबृहती, २ सम सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्जमः ॥

१६०७. इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमै रनूषत ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में २५९० क्रमांक पर) परमात्मा को संबोधित की गयी थी । यहाँ एक साथ परमात्मा और आचार्य दोनों को कहते हैं ।

पदार्थ- हे **पुरूवसो** बहुत ऐश्वर्य से युक्त परमात्मन् वा बहुत विद्याधन से सम्पन्न आचार्य ! **इमाः उ** ये **याः मम गिरः** जो मेरी वाणियाँ हैं, वे **त्वा** आपको **वर्धन्तु** बढ़ायें अर्थात् आपकी महिमा को प्रकाशित करें । **पावकवर्णाः** अग्नि के समान उज्ज्वल वर्ण वाले, तेजस्वी, **शुचयः** पवित्र **विपश्चितः** विद्वान् लोग **स्तोमैः** स्तोत्रों से, आपकी **अभ्यनूषत** स्तुति कर रहे रहे हैं ॥१॥

यहाँ 'पावकवर्णाः' में वाचकलुप्तोपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ- जैसे जगदीश्वर वेदज्ञान के प्रदानद्वारा वैसे ही आचार्य वेदादि शास्त्रों के शिक्षण द्वारा सबका उपकार करता है ॥१॥

१६०८. अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यजेषु विप्रराज्ये ॥२॥[3]

---

१. ऋ० ८।४।८ ।
२. ऋ० ८।३।३, य० ३३।८१, अथ० २०।१०४।१, साम० २५० ।
३. ऋ० ८।३।४।, य० ३३, ८३, अथ० २०।१०४।२ ।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और आचार्य का विषय है ।

पदार्थ– अयम् यह परमेश्वर वा आचार्य **सहस्रम्** सहस्रबार **ऋषिभिः** तत्वदर्शी जनों द्वारा **सहस्कृतः** बल के साथ स्तुति किया गया **समुद्रः इव** समुद्र के समान **पप्रथे** यश से प्रख्यात होता है । **सः** वह **अस्य** इस परमेश्वर वा आचार्य की **महिमा** महिमा **सत्यः** सत्य है । मैं **विप्रराज्ये** विद्वानों के राज्य में **यज्ञेषु** उपासना-यज्ञों वा शिक्षा-यज्ञों में, **शवः** इसके बल की **गृणे** स्तुति करता हूं ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे समुद्र जल से विस्तीर्ण होता है वैसे ही जगदीश्वर और आचार्य यश से प्रख्यात होते हैं ।।२।।

।।१९।। अथ 'यस्यायं' इत्यादिकस्यैकोनविंशस्य द्वृचस्य सूक्तस्य **ऋषि** श्रुष्टिगुः काण्वः। **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वर** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

१६०९. यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में इन्द्र परमेश्वर का वर्णन है ।

पदार्थ- यस्य जिस तुझ इन्द्र परमात्मा का **अयम्** यह प्रत्यक्ष दिखाई देता हुआ **विश्वः** सम्पूर्ण संसार है, जो तू **आर्यः** श्रेष्ठ, **दासः** दुष्टों का क्षय करने वाला, शेवधिपाः निधियों का रक्षक, और **अरिः** समर्थ है, और जो तू **अर्ये** जीवनाधार पवन में, **ऋशमे** चमकीले सूर्य में तथा **पवीरवि** बिजली-युक्त बादल में तिरः चित् विद्यमान है, ऐसे **तुभ्य इत्** तेरे लिए ही **सः** वह जगत् में सर्वत्र बिखरा हुआ **रयिः** धन **अज्यते** समर्पित है ।।१।।

भावार्थ- विश्व का सम्राट्, श्रेष्ठ, सज्जनों का रक्षक, दुष्टों का दलन करने वाला, भूगर्भ में निहित निधियों का रक्षक, सब कुछ करने में समर्थ, सर्वान्तर्यामी जो परमेश्वर है उसी का सब धन है, इस हेतु से ईश्वरार्पण-बुद्धि से उसका सेवन करना चाहिए ।।१।।

१६१०. तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः ।।२।।[2]

आगे फिर परमेश्वर का विषय है ।

---

१. ऋ० ८।५१।९, य० ३३।८२ ।

२. ऋ० ८।५१।१०, अथ० २०।११९।२, उभयत्र 'स्वानास' इत्यत्र 'सं॑वा॒नास्'

पदार्थ– **तुरण्यवः** सत्कर्मों में शीघ्रता करने वाले, **विप्रासः** विद्वान् लोग **मधमन्तम्** मधुर आनन्द से युक्त, **घृतश्चुतम्** तेज वा स्नेह को प्रवाहित करने वाले **अर्कम्** अर्चनीय इन्द्र परमेश्वर को **आनृचुः** पूजते हैं। उसी की कृपा से **अस्मे** हमारे लिए **रयिः** ऐश्वर्य **पप्रथे** सर्वत्र फैला हुआ है, **वृष्ण्यम्** सुखों की वर्षा करने वाला **शवः** बल भी फैला हुआ है, उसी से **अस्मे** हमारे लिए **स्वानासः** अभिषुत किये जाते हुए **इन्दवः** आनन्द-रस हमें प्राप्त होते हैं ।।२।।

भावार्थ– जगदीश्वर ही हमें तेज, धन, बल, आनन्द आदि प्रदान करता है, इस कारण सबको श्रद्धापूर्वक उसकी वन्दना करनी चाहिए ।।२।।

।।२०।। अथ 'गोमन्न' इत्यादिकस्य विंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषी:** पर्वतनारदौ। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** उष्णिक्। **स्वरः** ऋषभः ।।

१६११. गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव ।
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ।।२।।[1]

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में ५७४ क्रमांक पर) परमेश्वर, राजा और आचार्य को संबोधित की गयी थी । यहां जीवात्मा और परमात्मा को संबोधन है ।

पदार्थ– हे **सुदक्ष** श्रेष्ठ बल से युक्त **इन्दो** तेजस्वी जीवात्मन् वा परमात्मन्! **सुतः** शरीर में जन्मा वा अन्तरात्मा में प्रेरित तू **नः** हमारे लिए **गोमत्** गाय, पृथिवी आदि से युक्त, तथा **अश्ववत्** घोड़े, आग, बिजली आदि से युक्त धन को **धनिव** प्राप्त करा **गोषु च** और इन्द्रियों में **शुचिं वर्णम्** पवित्र सात्त्विक रूप को **अधिधारय** धारण करा ।।१।।

भावार्थ– भली भांति उद्बोधन दिया हुआ मनुष्य का आत्मा और भलीभांति आराधना किया हुआ परमात्मा समस्त ऐश्वर्य प्राप्त कराने और मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदियों में पवित्रता संचार करने के लिए समर्थ होते हैं ।।१।।

१६१२. स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे **हरीणां पते** इन्द्रियों के अथवा आकर्षण गुणयुक्त सूर्य, चन्द्र, भूमण्डल आदियों के स्वामिन्, **इन्दो** तेजस्वी जीवात्मन् वा परमात्मन्! **देवप्सरस्तमः** देहस्थ मन, बुद्धि आदि देवों को वा ब्रह्माण्डस्य सूर्य, चन्द्र आदि देवों को अतिशय रूप देने वाला, **नर्यः** मनुष्यों को हितकर्ता **सः** वह तू **नः** हमें **रुचे** तेज देने के लिए **भव** हो, **सख्ये** मित्र को **सखा इव** मित्र जैसे तेज देता है ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

---

१. ऋ० ९।१०५।४ 'धनिव, शुचिं च, धारय' इत्यत्र क्रमेण 'धन्व, शुचिं ते दीधरम्' इति पाठः । साम० ५७४ ।

२. ऋ० ९।१०५।५ ।

भावार्थ– जीवात्मा जैसे शरीर में स्थित सब मन, बुद्धि प्राण आदियों को अपने-अपने कर्म में संचालित करता हुआ और उन्हें शक्ति देता हुआ शरीर का सम्राट् होता है, वैसे ही परमेश्वर ब्रह्माण्ड में स्थित सूर्य, चांद, नक्षत्र आदियों को संचालित करता हुआ और उन्हें शक्ति देता हुआ ब्रह्माण्ड का सम्राट् होता है ॥२॥

१६१३. सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम् ।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥३॥[1]

आगे फिर जीवात्मा और परमात्मा का विषय है ।

पदार्थ– हे **इन्दो** तेजस्वी जीवात्मन् वा परमात्मन्! **त्वम्** शक्तिशाली तू **सनेमि** पुरानी मित्रता को **अस्मत्** हमारे प्रति **आ** ला । **अदेवम्** न देने वाले, सहायता न करने वाले **कंचित्** किसी भी **अत्रिणम्** भक्षक पाप, दुर्व्यसन आदि को वा दुर्जन को **अप** दूर कर दे । **साह्वान्** शत्रुओं को पराजित करने वाला तू **बाधः** बाधकों को **परि** चारों ओर विनष्ट कर, **द्वयुम्** सत्य-असत्य दोनों से युक्त अथवा पीछे कुछ और सामने कुछ या मन में कुछ और वचन में कुछ इस द्विविध आचरण वाले, छल-छद्म का व्यवहार करने वाले मनुष्य को **अप** दूर कर दे ॥३॥

भावार्थ– जीवात्मा को प्रोत्साहन देकर और परमात्मा की उपासना करके सब लोग दुष्टों तथा छद्म का आचरण करने वालों को दूर हटाकर, सज्जनों की संगति करके स्वयं को और समाज को उन्नत करें ॥३॥

॥२१॥ अथ 'अञ्जते' इत्यादिकस्यैकविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अत्रिर्भौमः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ॥

१६१४. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरूच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५६४ क्रमांक पर की जा चुकी है । यहां भिन्न प्रकार से व्याख्या करते हैं ।

पदार्थ– परमेश्वर के उपासक विद्वान् लोग **अञ्जते** स्वयं का मार्जन करते हैं, **व्यञ्जते** स्तुति-वाणियों को व्यक्त करते हैं, **समञ्जते** परमात्मा के साथ संगम करते हैं, **क्रतुम्** श्रेष्ठ ज्ञान और श्रेष्ठ कर्म का **रिहन्ति** आस्वादन करते हैं, **मध्वा** मधुर ब्रह्मानन्द से **अभ्यञ्जते** अपने आत्मा में सद्गुणों का उबटन लगाते हैं , अर्थात् अपने आत्मा को संस्कृत करते हैं। **सिन्धोः** रक्त के सिन्धु हृदय के **उच्छ्वासे** स्पन्दन में **पतयन्तम्** गति देते हुए, **उक्षणम्** बल को सींचने वाले, **पशुम्** द्रष्टा जीवात्मा को **हिरण्यपावाः** ज्योति के रक्षक उपासक लोग **अप्सु** अपने कर्मों में **गृभ्णते** ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् उसकी प्रेरणा के अनुसार कर्म करते हैं ॥१॥

१. ऋ० ९।१०५।६, 'त्वमस्मदाँ' इति भेदः ।
२. ऋ० ९।८६।४३ 'मधुनाभ्यञ्जते,' 'पशुमासु' इति भेदः । अथ० १८।३।१८ ऋषिः अथर्वा, देवता यमः, पाठः ऋग्वेदवत् । साम० ५६४ ।

यहां एक कर्ता कारक के अनेक क्रियाओं से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलंकार है, जैसा कि साहित्यदर्पण में इसका लक्षण किया गया है 'अनेक क्रियाओं में एक कारक हो तो दीपक होता है (सा० द० १०।४९)' 'व्जते' के चार बार पठित होने से वृत्त्यनुप्रास है ।।१।।

भावार्थ– शरीर में हृदय का स्पन्दन, धमनियों और शिराओं में रक्त का संचार, फेफड़ों में रक्त का शोधन इत्यादि जो कुछ भी कार्य हैं वह सब जीवात्मा के अधीन है और जीवात्मा भी परमात्मा के अधीन है।।१।।

१६१५. विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद् वृषा हरिः ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में जीवात्मा का वर्णन है ।

पदार्थ– हे मनुष्यो! तुम **विपश्चिते** मेधावान्, **पवमानाय** मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदि को पवित्र करने वाले जीवात्मा के लिए **गायत** गाओ, उसके महत्त्व को वर्णित करो । वह **अन्धः** अन्धेरे को तमोगुण को **अत्यर्षति** लांघ जाता है, **मही न धारा** जैसे बड़ी जलधारा मार्ग में आयी हुई शिला आदि की बाधा को लांघ जाती है । वह जीवात्मा **जूर्णाम्** पुरानी, बूढ़ी **त्वचम्** त्वचा को, त्वचा-युक्त शरीर को **अतिसर्पति** छोड़कर चला जाता है, **अहिः न** जैसे सांप **जूर्णाम्** पुरानी **त्वचम्** केंचुली को **अति सर्पति** छोड़कर चला जाता है । साथ ही **वृषा** बलवान्, **हरिः** शरीर-रथ का वाहक वह जीवात्मा **अत्यः न** रथ में जुड़े घोड़े के समान **क्रीडन्** कीड़ा करता हुआ **असरत्** शरीर-रथ को धारण किये हुए चलता है ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– न जाने कब जीव शरीर को छोड़कर चला जाए । इसलिए शीघ्र ही धर्म कर्मों में मन लगाना चाहिए, नहीं तो पीछे पछतावा होगा ।।२।।

१६१६. अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में जगदीश्वर के गुणों का वर्णन है।

पदार्थ– अग्रेगः आगे-आगे चलने वाला, **राजा** विश्व का राजा, **अप्यः** प्राणों के लिए हितकर, **अह्नां विमानः** दिनों का निर्माण करने वाला, **भुवनेषु अर्पितः** लोकलोकान्तरों में व्यापक सोम परमेश्वर **तविष्यते** महिमा-गान द्वारा बढ़ेगा । **घृतस्नुः** वृष्टि-जल को बरसाने वाला, **सुदृशीकः** भली भांति दर्शन करने योग्य, **अर्णवः** सद्गुणों का समुद्र, **ज्योतीरथः** सूर्य, चन्द्र, विद्युत् आदि ज्योतिष्मान् पदार्थों को वेग से चलाने वाला, **ओक्यः** गृहरूप देह के लिए हितकर **हरिः** वह हृदयहारी जगदीश्वर **राये** ऐश्वर्य देने के लिए **पवते** प्राप्त होता है ।।३।।

---

१. ऋ० ९।८६।४४।
२. ऋ० ९।८६।४५

भावार्थ– दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, दक्षिणायन, उत्तरायण, वर्ष आदि का और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि का बनाने वाला सबका हितकर्ता परमेश्वर सबके द्वारा वन्दनीय है ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, जीवात्मा, राजा और आचार्य का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

सोलहवें अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त।

सोलहवां अध्याय समाप्त ।

सप्तम प्रपाठक में तृतीय अर्ध समाप्त ।।

इति बरेलीमण्डलान्तर्गत फरीदपुखास्तव्य श्रीमद्गोपालराम भगवती देवी तनयेनहिरद्वारी गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालयेऽधीतविघेन विधामार्तण्डेन आचार्यरामनाथ वेदालङ्कारेण महर्षिदयानन्दसरस्वती स्वामिकृतवेद भाष्यशैलीमनुसृत्य विरचिते संस्कृतार्य भाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते सामवेद भाष्ये उत्तरार्चिक सप्तमः प्रपाठःक समाप्तिमगात् ।।

।।१।। अथ 'विश्वेभिः' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शुनः शेप आजीगर्तिः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१६१७. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** जगन्नायक परमात्मन्! आप **विश्वेभिः** सब **अग्निभिः** संकल्प, उत्साह, महत्त्वाकांक्षा, वीरता आदि की अग्नियों के साथ **इमम्** इस **यज्ञम्** हमारे जीवन-यज्ञ में आओ । **इदम्** इस **वचः** वचन को सुनो । हे **सहसः यहो** बल के पुत्र अर्थात् अतिबली परमात्मन्! आप हमें **चनः** आनन्द का अमृत **धाः** प्रदान करो ।।१।।

भावार्थ– अग्निहीन मनुष्य मृत के तुल्य होता है । इसलिए हृदय अग्नियों को प्रज्वलित कर आशावाद के साथ कर्मयोग का सहारा लेकर विजयश्री सबको प्राप्त करनी चाहिए ।।१।।

१६१८. यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा को समर्पण किया गया है।

पदार्थ– यत् चित् हि यद्यपि **शश्वता** प्रचुर **तना** धन से, हम **देवं देवम्** प्रत्येक विद्वान् का **यजामहे** सत्कार करते हैं, तो भी हे अग्ने ! हे जगन्नायक परमात्मन् ! वस्तुतः **हविः** समर्पणीय आत्मा, मन, बुद्धि आदि तथा सब कर्म **त्वे इत्** आप में ही **हूयते** हमारे द्वारा समर्पित हैं।।२।।

भावार्थ- यथोचित सत्कार माता, पिता, अतिथि, राजा, आचार्य, उपदेशक, वानप्रस्थ, सन्यासी आदि सभी का करना चाहिए, किन्तु जगत् के उत्पत्तिकर्ता, धारणकर्ता, संहारकर्ता आदि रूप में एक परमेश्वर की ही पूजा करनी योग्य है ।।२।।

---

१. ऋ० १।२६।१०।

२. ऋ० १।२६।६।

१६१९. प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में उपास्य-उपासक का सबंन्ध वर्णित है ।

पदार्थः— विश्वपतिः प्रजापालक राजा के समान सब मनुष्यों को पालनकर्ता, **होता** देने योग्य वस्तुओं का देने वाला, **मन्द्रः** आनन्द-प्रदाता, **वरेण्यः** वरणीय जगदीश्वर **नः** हमारा **प्रियः** प्यारा **अस्तु** होवे । **स्वग्नयः** शुभ संकल्प, उत्साह, राष्ट्रियता, वीरता आदि अथवा आहवनीय आदि अग्नियों वाले **वयम्** हम उपासक जन भी उस जगदीश्वर के **प्रियाः** प्यारे होवें ।।३।।

यहां अन्योन्यालंकार है ।।३।।

भावार्थ— जब मनुष्य परमात्मा से प्रीति करते हैं तब वह भी उनसे प्रीति करता है ।।३।।

।।२।। अथ 'इन्द्रं वो' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

१६२०. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा का विषय है ।

पदार्थ— हे साथियो ! **विश्वतः परि** सबसे ऊपर, हम **इन्द्रम्** विघ्ननाशक, परमैश्वर्यवान् परमात्मा को **जनेभ्यः वः** आप प्रजाजनों के लिए **हवामहे** पुकारते हैं। वह **अस्माकम्** हम स्रोताओं **केवलः** अद्वितीय सखा **अस्तु** होवे ।।१।।

भावार्थ— भले ही माता, पिता, राजा आदि हमें सुख देने वाले होते हैं, परन्तु सदा सहायक, सदा अशरण-शरण, सदा धैर्यप्रदाता सखा तो जगदीश्वर ही है ।।१।।

१६२१. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ।।२।।[3]

अब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ— हे **वृषन्** सुखों की वर्षा करने वाले, **सत्रादावन्** एक साथ दान देने वाले, सत्य के प्रेरक वा सृष्टि यज्ञ के संपादक जगदीश्वर ! **अप्रतिष्कुतः** अविचल **सः** वह आप **अस्मभ्यम्** आपकी आज्ञा में और पुरुषार्थ में वर्तमान हम उपासकों के लिए **अमुं चरुम्** सूर्य के प्रतिबन्धक के समान इस मोक्षमार्ग में रुकावट डालने वाले अविद्या, दुराचार आदि को **अपावृधि** दूर कर दो ।।२।।

---

१. ऋ० १।२६।७ ।

२. ऋ० १।७।१०, अथ० २०।३९।१; ७०।१६ ।

३. ऋ० १।७।६।

भावार्थ– जैसे सूर्य अपने प्रकाश के संचार में बाधा डालने वाले मेघ रूप कपाट को खोलकर भूमण्डल को प्रकाशित करता है, वैसे ही जगदीश्वर हमारे मोक्ष में बाधक अविद्या, दुष्कर्म आदि को हटाकर हमें मोक्ष प्राप्त कराते हैं ।।२।।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
१६२२. वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ।।३।।[1]

अब कैसा परमात्मा कि इसके समान किन्हें प्राप्त होता है यह कहते हैं।

पदार्थ– **वंसगः** शान से चलने वाला **वृषा** सांड **यूथा इव** जैसे गौओं के झुण्ड में जाता है, वैसे ही **वृषा** शुभगुणों की वर्षा करने वाला, **वंसगः** धर्मसेवी के पास जाने वाला **ईशानः** जगदीश्वर **अप्रतिष्कुतः** किसी से न रोका जाता हुआ **ओजसा** बल के साथ **कृष्टीः** उपासक मनुष्यों के पास **इयर्ति** पहुंच जाता है।।३।।

यहां श्लिष्टोपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– जो श्रद्धा से परमेश्वर की उपासना करते हैं परमेश्वर भी उन धर्मात्मा लोगों की अवश्य सहायता करता है और उन्हें बल देता है ।।३।।

।।३।। अथ 'त्वं नश्चित्र' इत्यादिकस्य तृतीयस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषि** शंयुर्बार्हस्पत्यः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २पञ्चमः।।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
१६२३. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४१ क्रमांक पर हो चुकी है । यहां परमेश्वर और आचार्य से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे **वसो** निवासक परमेश्वर वा आचार्य ! **चित्रः** अद्भुत गुणों वाले **त्वम्** आप **ऊत्या** रक्षा के साथ **नः** हमारे लिए **राधांसि** विद्या-धन, सच्चरित्रता आदि के धन और आध्यात्मिक ऐश्वर्य **चोदय** प्ररित करो । हे **अग्ने** विद्वान्, अग्रनायक, तेजस्वी परमेश्वर वा आचार्य ! **त्वम्** आप **अस्य** इस **रायः** विद्या, सदाचार आदि धन के **रथीः** स्वामी **असि** हो । इसलिए **नः** हमारी **तुचे** सन्तान के लिए **तु** शीघ्र ही **गाधम्** तलस्पर्शी पाण्डित्य **विदाः** प्राप्त कराओ ।।१।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर सबके आत्मा में ज्ञान, सद्गुण आदि प्रेरित करता है, वैसे ही विद्वान् गुरुजन गृहस्थों को भली-भांति उपदेश करें और उनके पुत्र, पौत्र आदियों को गुरुकुल में सब विद्याएं पढ़ा कर विद्वान् तथा चरित्रवान् बनायें ।।१।।

---

१. ऋ० १।७।८, अथ० २०।७०।४ ।

२. ऋ० ६।४८।९, साम० ४।१ ।

१६२४. पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में पुनः परमेश्वर और आचार्य को कहते हैं ।

पदार्थ– हे **अग्ने** परमात्मन् वा आचार्य ! **त्वम्** आप **अदब्धैः** अबाध, **अप्रयुत्वभिः** अलग न होने वाले **पर्तृभिः** पालन-पूरण के प्रकारों से **तोकं तनयम्** पुत्र-पौत्र की **पर्षि** पालना करो और उन्हें विद्या आदि से भरपूर करो । **नः** हमारे **दैव्या** धार्मिक विद्वानों के प्रति किये जाने वाले **हेडांसि** अनादररूप अपराधों को, **अदेवानि च** और अवांछनीय **ह्वरांसि** कुटिल कर्मों को **युयोधि** हम से अलग करो ॥२॥

भावार्थ– परमात्मा की प्रेरणा से और गुरुओं की शिक्षा से सब मनुष्यों को दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि छोड़ने चाहिएं और सद्‌गुणों तथा सत्कर्मों को प्राप्त करना चाहिए ॥२॥

॥४॥ अथ 'किमित्ते' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। **देवात** विष्णुः। **छन्दः** त्रिष्टुप्। **स्वरः** धैवतः ॥

१६२५. किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥१॥[2]

अगले मंत्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है ।

पदार्थ– हे **विष्णो** सर्वव्यापक जगदीश्वर! **किम् इत् ते** क्या यही आपका **परिचक्षि** चारों ओर प्रकाशनीय स्वरूप है **यत्** जो आप **प्र ववक्षे** कहते हो कि मैं **शिपिविष्टः** किरणों से घिरा हुआ अर्थात् तेजस्वी **अस्मि** हूं? उससे अतिरिक्त भी आपका स्वरूप है यह कहते हैं– **एतत् वर्पः** इस रूप को **अस्मत्** हमसे **मा अप गूहः** मत छिपाओ **यत्** कि आप **समिथे** उपासना-यज्ञ में **अन्यरूपः** जगत्प्रपंच में अधिष्ठित रूप से भिन्न **बभूथ** होते हो ॥१॥

भावार्थ– सूर्य आदि जगत्प्रपंच में परमात्मा को जो तेजोमय रूप है वह सबको दृष्टिगोचर होता है, परन्तु उसका जगत्प्रपंचातीत जो वास्तविक रूप है उसका योगी लोग ही साक्षात्कार करते हैं॥१॥

१६२६. प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्य मर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥२॥[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति है ।

---

१. १. ऋ० ६।४८।१० ।

२. ऋ० ७।१००।६, 'परिचक्षि नाम' इत्यत्र 'परिचक्ष्यं भूत्' ।

३. ऋ० ७।१००।५, 'हव्यमर्यः' इत्यत्र 'नामार्यः' इति पाठः ।

पदार्थ– हे **शिपिविष्ट** तेज की किरणों से घिरे हुए अर्थात् तेजस्वी सर्वव्यापक विष्णु जगदीश्वर! **अर्यः** स्तुतियों का ईश्वर और **वयुनानि विद्वान्** कर्तव्य कर्मों को जानने वाला मैं **अद्य** आज **ते** आपके **तत्** उस प्रसिद्ध **हव्यम्** दान की **प्र शंसामि** प्रशंसा करता हूं। **अतव्यान्** अमहान् मैं **तवसम्** महान् और **अस्य रजसः** इस रजोगुण के **पराके** परे **क्षयन्तम्** निवास करने वाले **तम्** उस प्रसिद्ध **त्वा** आपकी **गृणामि** स्तुति करता हूं ।।२।।

भावार्थ– अल्पशक्ति वाला मनुष्य महाशक्ति वाले परमात्मा के गुणों के स्मरण से निरभिमान होकर महान् कार्यों को करने के लिए अपने आत्मा में बल संचित करे ।।२।।

१६२७. वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।३।।[1]

आगे फिर उसी विषय में कहा गया है ।

पदार्थ- हे **विष्णो सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! मैं आसः** मुख से **ते** आपके लिए **वषट्** स्तुति को **आकृणोमि** करता हूँ। **तत् मे हव्यम्** उस मेरे समर्पण को, आप **जुषस्व** प्रेमपूर्वक स्वीकार करो। **मे** मेरी **सुष्टुतयः** उत्कृष्ट स्तुति वाली **गिरः** वाणियाँ **त्वा वर्धन्तु** अपाकी महिमा को बढ़ायें, प्रचारित करें। हे विष्णु जगदीश्वर! **यूयम्** तुम **स्वस्तिभिः** कल्याणों द्वारा **नः** हमारी **सदा** सदा पात रक्षा करते रहो ।।३।।

भावार्थ- जन-जन में जगदीश्वर की महिमा के प्रचार से सब धार्मिक होकर अपने और समाज के जीवन को उन्नत करें ।।३।।

इस खण्ड में जगदीश्वर, आचार्य और उपास्य)उपासक के सम्बन्ध का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

सत्रहवें अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।

।।५।। अथ 'वायो' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वामदेवो गौतमः । **देवता १ वायुः, २-३ ३ इन्द्रवायु । छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः ।।

१६२८. वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में उपास्य-उपासक का आपस का सम्बन्ध वर्णित है ।

पदार्थ– हे **वायो** सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! **दिविष्टिषु** विवेक-प्रकाश की प्राप्तियों के हो जाने पर **शुक्रः** पवित्र मैं **ते** आपके **मध्वः** आनन्द-रस के **अग्रम्** श्रेष्ठ भाग को **अयामि** पा रहा हूं। हे **देव** मोदमय! **स्पार्हः** स्पृहणीय आप **सोमपीतये** मेरे श्रद्धा-रस के पानार्थ **नियुत्वता** नियुक्त रथ से जैसे कोई आता है वैसे **आयाहि** आओ ।।१।।

---

१. ऋ० ७।९९।७, १००।७ ।
२. ऋ० ४।४७।१, य० २७।३० ।

यहां 'नियुत्वता' में लुप्तोपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे उपासक परमेश्वर के आनन्द-रसों का प्यासा होता है, वैसे ही परमेश्वर भी उपासक के भक्ति-रसों का प्यासा होता है ।।१।।

१६२९. इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में इन्द्र और वायु के नाम से जीवात्मा और प्राण का साहचर्य वर्णित है ।

पदार्थ– हे **वायो** प्राण! तू **इन्द्रः च** और जीवात्मा, तुम दोनों **एषां सोमानाम्** इन शान्त-रसों के **पीतिम् अर्हथः** पान के योग्य हो । **युवाम् हि** तुम दोनों की ओर **इन्दवः** प्रकाशपूर्ण शान्त-रस **सध्र्यक्** एक साथ **यन्ति** आते हैं, **आपः न** जैसे जल **निम्नम्** निचले भू भाग की ओर आते हैं ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– मनुष्य का आत्मा प्राणायाम से और योगसाधना से परमेश्वर के साथ मित्रता संस्थापित करके उससे मधुर शान्त-रस प्राप्त कर सकता है ।।२।।

१६३०. वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ।।३।।[2]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– हे **वायो** प्राण! तू **इन्द्रः च** और जीवात्मा **शुष्मिणा** बलवान्, **शवसः पती** बल के रक्षक और **नियुत्वन्ता** सदा कार्य-तत्पर रहते हुए **नः ऊतये** हमारी रक्षा के लिए **सरथम्** एक ही देह-रथ पर चढ़कर **सोमपीतये** शान्त रस के पानार्थ **आयातम्** आओ ।।३।।

भावार्थ– जीवात्मा प्राण के ही साथ देह में आता है और उसी के साथ जीवन में सब कार्य सिद्ध करता हुआ योगाभ्यास द्वारा शान्ति प्राप्त करता है ।।३।।

।।६।। अथ 'अधक्षपा' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषी** रेभसूनू काश्यपौ । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** अनुष्टुप्। **स्वरः** गान्धारः ।।

१६३१. अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ।।१।।[3]

अब परमात्मा और जीवात्मा का विषय वर्णित करते हैं ।

---

१. ऋ० ४।४७।२ ।
२. ऋ० ४।४७।३ ।
३. ऋ० ९।९९।२, 'गाहते' इति भेदः ।

पदार्थ– हे मानव! **यदि** जब **विवस्वतः** तमोगुणों को हटाने वाले परमेश्वर की **धियः** प्रज्ञाएं **हरिम्** तुझ मनुष्य को **यातवे** पुरुषार्थ करने के लिए **हिन्वन्ति** प्रेरित करती हैं, तब **क्षपा** परमेश्वर की दोष क्षीण करने की शक्ति से **परिष्कृतः** संस्कृत हुआ तू **वाजान्** विविध ऐश्वर्यों में **अभि प्र गाहसे** अवगाहन अर्थात् रमण करने लगता है ।।१।।

भावार्थ– आत्मशुद्धि और पुरुषार्थ से ही मनुष्य विविध संपदाएं पा सकते हैं ।।१।।

१६३२. तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में उपासना का विषय कहते हैं ।

पदार्थ– अस्य इस स्तोता मनुष्य का **यः** जो **इन्द्रपातमः** परमेश्वर द्वारा अतिशय पान करने योगय **मदः** हर्षदायक भक्ति-रस है, **तम्** उसे, हम **मर्जयामसि** शुद्ध करते हैं, **यम्** जिसे **पुरा नूनं च** पहले और आज भी **सूरयः** विद्वान् **गावः** स्तोता लोग **आसभिः** मुखों से **दधुः** प्रकट करते रहे हैं ।।२।।

भावार्थ– आडम्बर से रहित, निश्छल, शुद्ध उपासना ही जगदीश्वर को स्वीकार होती है ।।२।।

१६३३. तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति और उसके फल का वर्णन है ।

पदार्थ– पुनानम् पवित्र करने वाले **तम्** उस सोम की अर्थात् शुभ गुण-कर्मों की प्रेरणा करने वाले परमात्मा की, स्तोता लोग **पुराण्या** सनातन **गाथया** वेद-गाथा से **अभ्यनूषत** स्तुति करते हैं। **उत उ** और **नाम** परमात्मा के प्रति नमन को **बिभ्रतीः** धारण करती हुई **देवानाम्** विद्वानों की **धीतयः** बुद्धियां और क्रियाएं **कृपन्त** शक्तिशालिनी हो जाती हैं ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा की स्तुति से स्तोताओं की वाणियां, प्रज्ञाएं और क्रियाएं बलवती होकर जीवन में उन्हें सफल करती हैं ।।३।।

।।७।। अथ 'अश्वं न' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शुनःशेप आजीगर्तिः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१६३४. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ९।९९।३।

२. ऋ० ९।९९।४

३. ऋ० १।२७।१, साम० १७ ।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में (१७ क्रमांक पर) परमात्मा को संबोधन की गयी थी । यहां एक साथ परमात्मा और आचार्य दोनों को कह रहे हैं ।

पदार्थ— **वारवन्तम्** मलिनता-निवारक किरण रूप बालों से युक्त **अश्वं न** सूर्य के समान **वारवन्तम्** दोष-निवारण के सामर्थ्य से युक्त, **अध्वराणाम्** सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति आदि यज्ञों के वा शिक्षा-यज्ञों के **राजन्तम्** सम्राट्, **अग्निं त्वाम्** आप नायक परमात्मा वा आचार्य को **नमोभिः** नमस्कारों से **वन्दध्यै** बन्दना करने के लिए, मैं बुलाता हूं ।।१।।

यहां श्लिष्टोपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ— जैसे सूर्य अपने किरण-समूह से भूमि पर स्थित मलिनता आदि को दूर करता है, वैसे ही परमेश्वर और आचार्य अपने स्वच्छ करने के सामर्थ्य से मनुष्यों के पाप, दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख आदि दूर करते हैं ।।१।।

१६३५. स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और आचार्य का विषय है ।

पदार्थ— **सः घ** वह निश्चय ही **सूनुः** शुभ गुण, कर्म, विद्या आदि का प्रेरक, **पृथुप्रगामा** विस्तृत कर्तव्य मार्ग का उपदेश करने वाला, **सुशेवः** उत्तम सुख देने वाला परमेश्वर वा आचार्य **नः** हमें **मीढ्वावान्** विद्या, धन आदि की वर्षाओं से सींचने वाला **बभूयात्** होवे ।।२।।

भावार्थ— भली भांति उपासना किया गया परमेश्वर और भली भांति सेवा किया गया आचार्य विद्या, शुभ गुण-कर्म आदि के उपदेश से मनुष्यों को सुखी करते हैं।।२।।

१६३६. स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ।।३।।[2]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ— हे परमात्मन् वा अचार्य! **विश्वायुः** सौ वर्ष की पूर्ण आयु की प्राप्ति का उपदेश देने वाले **सः** वह आप **दूरात् च** दूर से **आसात् च** और समीप से **अघायोः** दूसरों को पापी बनाना चाहने वाले **मर्त्यात्** मनुष्य से **सदम् इत्** सदा ही **अस्मान्** हमें **नि पाहि** निरन्तर बचाते रहो ।।३।।

भावार्थ— परमेश्वर की प्रेरणा से और सद्गुरूओं के उपदेश से सब लोग पापात्माओं की कुसंगति छोड़कर, सत्संग करके नैतिक नियमों और स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए सदाचारी और दीर्घायु होवें।।३।।

---

१. ऋ० १।२७।२।
२. ऋ० १।२७।३ ।

।।८।। अथ 'त्वमिन्द्र' इत्यादिकस्याष्टमस्य द्वयृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नृमेध आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१६३७. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में (३११ क्रमाङ्क पर) परमात्मा और राजा के विषय में की जा चुकी हैं, यहाँ परमात्मा और जीवात्मा को सम्बोधन किया जा रहा है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** विघ्नों को दूर करने वाले परमात्मन्, वा जीवात्मन्! तुम **प्रतूर्तिषु** वेग वाले देवासुरसंग्रामों में **विश्वाः** सब **स्पृधः** प्रतिस्पर्धा करने वाली काम, क्रोध आदि की सेनाओं को **अभि असि** परास्त कर देते हो । तुम **अशस्तिहा** अप्रशस्तियों को मारने वाले, **जनिता** प्रशस्ति कारक श्रेष्ठ गुणों तथा कर्मों को जन्म देने वाले, और **वृत्रतूः** पापों की हिंसा करने वाले **असि** हो। **त्वम्** तुम **तरुष्यतः** हिंसकों को **तूर्य** विनष्ट करो ।।१।।

भावार्थ– मनुष्यों को योग्य है कि परमात्मा से प्रार्थना करके और अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर सभी आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को जीतकर अपने उन्नति के मार्ग को निष्कंटक करें ।।१।।

१६३८. अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और जीवात्मा को कहा गया है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** शूर परमात्मन् वा जीवात्मन्! **ते** तुम्हारे **तुरयन्तम्** शीघ्र कार्य करने वाले **शुष्मम्** बल को **क्षोणी** आकाश-भूमि वा मन-बुद्धि **अनु ईयतुः** अनुसरण करते हैं, **तुरयन्तम्** तेजी से चलते हुए **शिशुं न** शिशु को जैसे **मातरा** माता-पिता अनुसरण करते हैं, अभिप्राय यह है कि जैसे शिशु के पीछे-पीछे चलने में माता-पिता किसी महान् आनन्द का अनुभव करते हैं, वैसे ही परमात्मा के बल का अनुसरण करने से द्यावापृथिवी और जीवात्मा के बल का अनुसरण करने से मन-बुद्धि विशेष शक्ति प्राप्त करते हैं। हे इन्द्र परमात्मन् वा जीवात्मन्! **यत्** जब, तुम **वृत्रम्** काम आदि शत्रु को वा विघ्न समूह को **तूर्वसि** नष्ट करते हो, तब **ते** तुम्हारे **मन्यवे** तेज के संमुख **विश्वाः** सब **स्पृधः** शत्रु-सेनाएं वा विघ्नों की सेनाएं **श्नथयन्त** हतप्राय वा दुर्बल हो जाती हैं ।।२।।

भावार्थ– द्यावापृथिवी आदि सब कुछ परमात्मा के बल से ही बलवान् दिखायी देता है, इसी प्रकार शरीरस्थ मन-बुद्धि आदि जीवात्मा के बल से बलवान् होते हैं। मन में परमात्मा के चिन्तन से और अपने अन्तरात्मा के उद्बोधन से सब विघ्न और बाह्य तथा आन्तरिक शत्रु जड़ समेत उखाड़े जा सकते हैं ।।२।।

इस खण्ड में उपास्य-उपासक, जीवात्मा, प्राण, परमात्मा, आचार्य और राजा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

सत्राहवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

---

१. ऋ० ८।९९।५, य० ३३।६६, अथ० २०।१०५।१, साम० ३११ ।
२. ऋ० ८।९९।६; य० ३३।६७; अथ० २०।१०५।२ ।

सत्रहवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।

॥९॥ अथ 'यज्ञ इन्द्र' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषि** गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ॥

१६३९. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १२१ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की गयी थी । यहां जीवात्मा का विषय कहते हैं ।

पदार्थ— यज्ञः परमात्मा की संगति करना रूप यज्ञ **इन्द्रम्** जीवात्मा को **अवर्धयत्** बढ़ाता है, शक्तिशाली बनाता है, **यत्** क्योंकि, वह जीवात्मा **दिवि** तेजस्वी परमात्मा में **ओपशम्** निवास **चक्राणः** करता हुआ **भूमिम्** पार्थिव शरीर को **व्यवर्तयत्** भली भांति चलाता है ॥१॥

भावार्थ— परमात्मा के पास से ही बल प्राप्त करके जीवात्मा शरीररूप राज्य के मस्तिष्क-संस्थान, रक्त-संस्थान, पाचन-संस्थान, श्वास-संस्थान, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों सबका भली भांति संचालन करने में समर्थ होता है । इसलिए उसे चाहिए कि परमात्मा को कभी न भूले ॥१॥

१६४०. व्या३न्तरिक्षमतिरन् मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में फिर जीवात्मा का विषय है ।

पदार्थ— इन्द्रः बलवान् जीवात्मा **सोमस्य** भक्तिरस के **मदे** उत्साह में **यत्** जब **वलम्** आवरण डालने वाले अर्थात् लक्ष्य-प्राप्ति के बाधक अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष आदि, काम-क्रोध आदि, और व्याधि-स्त्यान-संशय-प्रमाद-आलस्य आदि विघ्न-समूह को **अभिनत्** छिन्न-भिन्न कर देता है, तब **अन्तरिक्षम्** मध्यस्थ मनोमय और विज्ञानमय आकाश को तथा **रोचना** उसमें प्रकाशमान सद्भाव-रूप नक्षत्रों को **वि-अतिरत्** फैला देता है ॥२॥

भावार्थ— परमात्मा के पास से प्राप्त बल से ही मनुष्य का आत्मा पग-पग पर आये हुए विघ्नों का विध्वंस करके लक्ष्य तक पहुंचने में समर्थ होता है ॥२॥

१६४१. उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३॥[3]

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है ।

पदार्थ— इन्द्र नामक बलवान् जीवात्मा **अर्वाञ्चम्** अपने सामने आये हुए **वलम्** पूर्व मन्त्र में कहे गए आवरण डालने वाले विघ्न-समूह को **नुनुदे** परे धकेल देता है, और **गुहा सतीः** गुफा में छिपी हुई **गाः** अध्यात्म-प्रकाश की किरणों को **अङ्गिरोभ्यः** प्राणायाम के अभ्यासियों के लिए **उद् आजत्** बाहर निकाल लाता है ॥३॥

---

१. ऋ० ८।१४।५, अथ० २०।२७।५, साम०१२१ ।
२. ऋ० ८।१४।७, अथ० २०।२८।१, ३९।२ ।
३. ऋ० ८।१४।८, अथ० २०।२८।२, ३९।३ ।

भावार्थ– जिन विघ्न-जालों से घिरे हुए योगाभ्यासी लोग विवेक-ख्याति के प्रकाश को वा परमात्मा के प्रकाश को नहीं प्राप्त कर पाते उन विघ्नों को प्रयत्नशील जीवात्मा परमात्मा की कृपा से पराजित करके लक्ष्य-प्राप्ति में सफल हो जाता है ।।३।।

।।१०।। अथ 'त्यमु वः' इत्यादियकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः–** श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः। **देवता-** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

१६४२. त्यमुवः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १७० क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां परमात्मा और जीवात्मा का विषय कहते हैं ।

पदार्थ– हे भाई ! तू **त्यम् उ** उसी **सत्रासाहम्** एक साथ सब विघ्नों को पराजित कर देने वाले, **विश्वासु गीर्षु** सब वाङ्मयों में **आयतम्** व्याप्त परमात्मा वा जीवात्मा को **वः** वरण कर और **ऊतये** रक्षा के लिए **आच्यावयसि** अपनी ओर झुका ।।१।।

भावार्थ– जगदीश्वर सब वेद-वाणियों में व्याप्त है, क्योंकि श्रुति कहती है कि 'जिसने उसे नहीं जाना वह ऋचा से भला क्या लाभ उठा सकेगा (ऋ०१।१६४।३९)'। जीवात्मा का भी वेदादि वाणियां पद-पद पर वर्णन करती हैं। परमात्मा की शरण में जाकर और अपने अन्तरात्मा को भली भांति उद्बोधन देकर मनुष्य रक्षित तथा समुन्नत हो सकते हैं।।१।।

१६४३. युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा के गुणों का वर्णन है ।

पदार्थ– युध्मं सन्तम् योद्धा होते हुए **अनर्वाणम्** किसी दूसरे पर आश्रित न रहने वाले, **सोमपाम्** वीर रस का पान करने वाले, **अनपच्युतम्** विघ्नों से विचलित न होने वाले **नरम्** नेता **अवार्यक्रतुम्** जिसके संकल्प वा कर्म को कोई रोक नहीं सकता ऐसे परमात्मा वा जीवात्मा को, हे मानव ! तू **आ च्यावयसि** अपनी ओर झुका । [यहां 'आच्यावयसि' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है]।।२।।

यहां 'युध्मं सन्तम् अनर्वाणम्' जो योद्धा होते हुए भी आक्रमणकारी नहीं है- यह अर्थ प्रतीत होने से विरोधभासित होता है, भाष्य में दी गयी व्याख्या से उस विरोध का परिहार हो जाता है । अतः विरोधाभास अलंकार है ।।२।।

भावार्थ- जगदीश्वर अधार्मिक, दूसरों को सताने वाले लोगों से मानों युद्ध करके उन्हें पराजित और दंडित करता है । देहधारी जीव भी वीरतापूर्वक दुर्विचारों और दुष्ट जनों से युद्ध करके अदम्य संकल्प-बल से सब शत्रुओं को जीतकर उन्नति की सबसे उपरली सीढ़ी पर पहुंचने में समर्थ हो जाता है।।२।।

---

१. ऋ० ८।९२।७; साम० १७० ।

२. ऋ० ८।९२।८ ।

१६४४. शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम। अवा नः पार्ये धने ॥३॥[1]

आगे परमात्मा और जीवात्मान से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– हे **ऋचीषम** वेदवागीशों का मान करने वाले **इन्द्र** परमैश्वर्यवान् परमात्मा वा जीवात्मा ! **पुरु** बहुत **विद्वान्** विद्वान् तुम **नः** हमें **रायः** भौतिक और आध्यात्मिक ऐश्वर्य **आ शिक्ष** प्रदान करो। **पार्ये** मार्ग के पार जाकर प्राप्त करने योग्य **धने** धन के निमित्त **नः** हमारी **अव** रक्षा करो ॥३॥

भावार्थ– परमात्मा की प्रेरणा और जीवात्मा के पुरुषार्थ से मनुष्य निर्धारित मार्ग के पार पहुंच कर महान् ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सकते हैं॥३॥

॥११॥ अथ 'तव त्यं' दित्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषि** गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** उष्णिक्। **स्वरः** ऋषभः॥

१६४५. तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम्।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम्॥१॥[2]

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर के गुणों का वर्णन है।

पदार्थ– हे इन्द्र ! परमैश्वर्यवन् विघ्नविनाशक वीर परमात्मन् ! **तव धिषणा** आपकी बुद्धि **तव** आपके **त्यत्** उस प्रसिद्ध **वरेण्यम्** श्रेष्ठ वा वरणीय, **बृहत्** महान् **इन्द्रियम्** इन्द्रत्व को, परमैश्वर्य को, **दक्षम्** बल को, **क्रतुम्** प्रज्ञान, कर्म, सङ्कल्प व यज्ञ को **उत** और **वज्रम्** न्यायरूप वज्र को वा दण्ड-सामर्थ्य को **शिशाति** सदैव तीक्ष्ण करती रहती है ॥१॥

भावार्थः– परमात्मा को परमैश्वर्य, बल, प्रज्ञान, कर्म, श्रेष्ठ संकल्प, यज्ञ-भावना, न्याय-प्रदान और दण्ड-सामर्थ्य कभी घटते नहीं, प्रत्युत सदा बढ़े हुए और सदा तीक्ष्ण रहते हैं, जिससे सब लोग लाभान्वित होते हैं॥१॥

१६४६. तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२॥[3]

अब जगदीशवर की महिमा वर्णन करते हैं।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जगदीश्वर ! **तव** आपके **पौंस्यम्** बल को, और **श्रवः** यश को **द्यौः** द्युलोक और **पृथिवी** भूलोक **वर्धति** बढाते हैं, गाते हैं। **त्वाम्** आपको **आपः** नदियां **पर्वतासः च** और पर्वत **हिन्विरे** कीर्तिगान से बढाते हैं॥२॥

भावार्थ– सूर्य, बादल, बिजली, वायु, पृथिवी, नदियां, पहाड़, समुद्र, लताएं, ऋतुएं, तारावलि, मनुष्य, पशु, पक्षी सभी परमेश्वर की ही महिमा को गा रहे हैं, और गाते-गाते थकते नहीं ॥२॥

---

१. ऋ० ८।९२।९।
२. ऋ० ८।१५।७; अथ० २०।१०६।१।
३. ऋ० ८।१५।८; अथ० २०।१०६।२।

१र २र३१र २र ३ १ २ ३ १२
१६४७. त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः।
१र २र ३ १ २ ३ १ २
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३॥[1]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– हे इन्द्र ! हे परम सम्राट् जगदीश ! **त्वाम्** आप महाबली की **विष्णुः** किरणों से व्याप्त सूर्य **बृहन् क्षयः** विस्तीर्ण अन्तरिक्षरूप घर, **मित्रः** वायु और **वरुणः** अग्नि **गृणाति** स्तुति कर रहे हैं। **मारुतं शर्धः** मानसून पवनों की सेना भी **त्वाम् अनु** आपकी ही अनुकूलता होने पर **मदति** हर्ष को प्राप्त करती है ॥३॥

भावार्थ– संसार में जो कोई भी पदार्थ अपना-अपना कार्य करते हैं वे सभी परमेश्वर से ही शक्ति पाते हैं ॥३॥

इस खण्ड में जीवात्मा और परमात्मा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ॥

सत्रहवें अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

॥१२॥ अथ 'नमस्ते' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विरूप आङ्गिरसः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
१६४८. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः। अमैरमित्रमर्दय ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में ११ क्रमांक पर) परमात्मा और राजा को संबोधित की गयी थी । यहां परमात्मा, राजा और योगिराज को संबोधन है।

पदार्थ– हे **देव** दान आदि गुणों से युक्त **अग्ने** अग्रनायक परमात्मन् राजन् वा योगिराज ! **ते ओजसे** तुम्हारे बल और प्रताप के लिए **कृष्टयः** मनुष्य **नमः गृणन्ति** नमस्कार करते हैं अर्थात् तुम्हारे बल और प्रताप की प्रशंसा करते हैं। तुम **अमैः** अपने बलों से **अमित्रम्** योग-मार्ग वा जीवन-मार्ग में आते हुए शत्रु को **अर्दय** पीड़ित कर डालो ॥१॥

भावार्थ– पग-पग पर हमारे निर्धारित लक्ष्य में जो विघ्न आते हैं वे परमेश्वर की प्रेरणा से, राजा की सहायता से और योग-प्रशिक्षक के योग्य प्रशिक्षण से सरलतापूर्वक दूर किये जा सकते हैं ॥१॥

३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
१६४९. कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥२॥[3]

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं से प्रार्थना की गयी है ।

---

१. ऋ० ८।१५।९, अथ० २०।१०६।३ ।

२. ऋ० ८।७५।१०, साम०११ ।

३. ऋ० ८।७५।११ ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक परमात्मन्, राजन् वा योगिराज ! आप **नः** हमारे **गविष्टये** विवेकख्याति के प्रकाशों की प्राप्ति के लिए अथवा विविध विद्याओं में गवेषणा के लिए **कुवित्** बहुत **रयिम्** आध्यात्मिक ऐश्वर्य वा भौतिक धन **सु संवेषिषः** भली भांति प्राप्त कराओ । **उरुकृत्** बहुत देने वाले आप **नः** हमारे लिए **उरु** बहुत **कृधि** दो ।।२।।

भावार्थ– परमात्मा की कृपा से और योग-प्रशिक्षक के योग्य मार्गदर्शन से योगाभ्यासी शिष्य आध्यात्मिक धन प्राप्त करके मोक्ष के अधिकारी होवें । और राजा विविध विज्ञानों में अनुसंधान के इच्छुकों को धन प्राप्त करा कर राष्ट्र में विद्यासूर्य के उदय में सहायक हो ।।२।।

१६५०. मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं से प्रार्थना है ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक परमात्मन्, राजन् वा योगिराज! **महाधने** जीवन-संग्राम में आप **नः** हमें **मा परावर्ग्** बीच में ही मत छोड़ दीजिए, **भारभृत् यथा** जैसे जिसने रक्षा का भार लिया हुआ है वह रक्षणीय को बीच में ही नहीं छोड़ देता, अथवा जैसे बोझ को दूसरे स्थान पर पहुंचाने के लिए नियुक्त किया हुआ मनुष्य भार को बीच में ही नहीं छोड़ देता । साथ ही आप **संवर्गम्** जिससे पाप-ताप आदि कटते हैं ऐसे **रयिम्** आध्यात्मिक धन को, अथवा **संवर्गम्** जिससे दीन जनों के दुःख कटते हैं ऐसे **रयिम्** भौतिक धन को **संजय** प्राप्त कराइए ।।३।।

भावार्थ– जो परमात्मा वा योगिराज की शरण में जाते हैं उन्हें वह बीच में ही न छोड़कर देवासुरसंग्राम में विजयी करता है । वैसे ही राजा को भी चाहिए कि प्रजाजनों द्वारा प्रारंभ किये गये महान् कार्यों में उन्हें बीच में ही न छोड़कर धन आदि से उनकी सहायता करके उन्हें सफलता तक पहुंचाये ।।३।।

।।१३।। अथ 'समस्य मन्यवे' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वत्सः काण्वः । **देवता** इन्द्रः **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१६५१. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १३७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां राजा के दृष्टान्त से परमात्मा का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– जैसे **अस्य** इस इन्द्र राजा के **मन्यवे** क्रोध के संमुख **विश्वाः** सब **कृष्टयः** विनाशक **विशः** शत्रु सेनाएं **संनमन्त** झुक जाती हैं, वैसे ही **अस्य** इस इन्द्र परमात्मा के **मन्यवे** तेज के संमुख **विश्वाः** सब **कृष्टयः** योगाभ्यासरूप कृषि करने वाली **विशः** प्रजाएं **सं नमन्त** नम्र हो जाती हैं, **समुद्राय इव** जैसे समुद्र को प्राप्त करने के लिए **सिन्धवः** नदियां **सं नमन्त** नम्र अर्थात् नीचे की ओर बहने वाली हो जाती हैं ।।१।।

---

१. ऋ० ८।७५।१२, 'मा नो अस्मिन् महाधने' इति प्रथमः पादः ।

२. ऋ० ८।६।४, अथ० २०।१०७।१, साम० १३७ ।

यहां उपमा और श्लेष अलंकार हैं ॥१॥

भावार्थ– जगदीश्वर का प्रताप, प्रभाव और महत्त्व सब से महान् है जिसके संमुख सभी नतमस्तक होते हैं ॥१॥

१ २ ३२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २ १२ ३१ २
१६५२. वि चिद् वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना । वज्रेण शत पर्वणा ॥२॥ [1]

अगले मन्त्र में राजा वा सेनापति के दृष्टान्त से परमात्मा के वीर कर्म का वर्णन है ।

पदार्थ– जैसे **वृष्णिना** गोली बरसाने वाली बन्दूक से अथवा **शतपर्वणा** सौ कीलो वाली **वज्रेण** गदा से, इन्द्र अर्थात् शूरवीर राजा वा सेनापति **दोधतः** सज्जनों को कँपाने वाले **वृत्रस्य** दुष्ट शत्रु का **शिरः** सिर **वि बिभेद** तोड़ देता है, वैसे ही **वृष्णिना** सुखवर्षक, **शतपर्वणा** बहुतों का पालन करने वाले **वज्रेण** दण्डसामर्थ्य से इन्द्र अर्थात् वीर परमेश्वर **दोधतः** कँपाने वाले **वृत्रस्य** पाप के **शिरः** सिर को अर्थात् प्रभाव को **वि बिभेद चित्** नष्ट-भ्रष्ट कर देता है ॥२॥

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से सब विघ्न और सब पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे राजा या सेनापति के शस्त्रास्त्रों से सब शत्रु ॥२॥

२ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ २ ३ १२३ १२
१६५३. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥३॥ [2]

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में १८२ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में पहले व्याख्यात हो चुकी है । यहाँ पुनः व्याख्या करते हैं ।

पदार्थ– यत् जो **इन्द्रः** परमेश्वर ने **चर्म इव** सन्ध्या-वन्दन के लिए जैसे मृगचर्म कोई फैलाता है वैसे ही **उभे रोदसी** दोनों द्यावापृथिवी के समान अपरा और परा नामक दोनों विद्याओं को **समवर्तयत्** फैलाया है, **तत्** वह **अस्य** इस परमेश्वर का **ओजः** ज्ञान-बल **तित्विषे** प्रदीप्त हो रहा है ॥३॥

यहां उपमालंकार है ॥३॥

भावार्थ– यह जगदीश्वर की महान् कृपा है कि वह सत्पात्र ऋषियों के हृदय में पराविद्या और अपरा विद्या के ज्ञान को द्यावापृथिवी के समान फैलाता है ॥३॥

॥१४॥ अथ 'सुमन्मा' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शुनःशेप आजीगर्तिः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** १ एकपदा पङ्क्तिः, २-३ गायत्री । **स्वरः** १ पञ्चमः, २-३ षड्जः ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१६५४. सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥१॥

३ १ २ ३ १ २र १ २र १ २र ३ १ २ ३ १ २र
सुमन्मा सु मन्मा वस्वी रन्ती सूनरी सु नरी ॥१॥

---

१. ऋ० ८।६।६, अथ० २०।१०७।३, उभयत्र 'वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥' इति पाठः ।

२. ऋ० ८।६।५, अथ० २०।१०७।२, साम० १८२ ।

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की शक्ति वा वेदवाणी का वर्णन है ।

पदार्थ– हे इन्द्र जगदीश्वर! आपकी शक्ति वा वेदवाणी **सुमन्मा** शुभ ज्ञान देने वाली, **वस्वी** निवासप्रद, **रन्ती** रमणीय, और **सूनरी** उत्तम नेतृत्व करने वाली है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा की शक्ति का ध्यान करने से और उसकी वेदवाणी का अध्ययन करने तथा श्रवण करने से मनुष्य ज्ञानवान्, अपने आत्मा में सद्‌गुणों का निवास कराने वाले, श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले और सुखी होते हैं ।।१।।

१६५५. सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि । ताविमा उप सर्पतः ।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा को बुला रहे हैं ।

पदार्थ– हे **सरूप** विविध रूपों से युक्त, **वृषन्** सुखों की वर्षा करने वाले इन्द्र जगदीश्वर! आप **इमौ** इन **भद्रौ** कल्याणकारी, **धुर्यौ** देह के धुरे को वहन करने वाले आत्मा और मन के **अभि** प्रति **आगहि** आओ । **तौ इमौ** ये वे दोनों आत्मा और मन, **उपसर्पतः** आपके समीप पहुंच रहे हैं ।।२।।

भावार्थ– जगदुत्पादकत्व, जगद्धारकत्व, जगत्संहारकत्व, न्यायकारित्व, दयालुत्व, निराकारत्व, अजरत्व, अमरत्व, अभयत्व, पवित्रत्व आदि परमात्मा के अनेक रूप हैं, इसीलिए उसे 'सरूप' संबोधन किया गया है। स्तोता के आत्मा और मन जब स्वयं परमात्मा को पाने का यत्न करते हैं तब वहीं छिपा बैठा वह उनके लिए प्रकट हो जाता है ।।२।।

१६५६. नीव शीर्षाणि मृड्वं मध्य आपस्य तिष्ठति । शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ।।३।।

अब परमात्मा की व्यापकता का वर्णन करते हैं ।

पदार्थ– इन्द्र जगदीश्वर **दशभिः** दस **शृङ्गेभिः** सींगों से अर्थात् पृथिवी, अप्, तेजस्, वायु, आकाश इन पंच स्थूल भूतों तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द इन पांच सूक्ष्म भूतों से **दिशन्** जगत्प्रपंच का सर्जन करता हुआ **आपस्य** व्याप्त ब्रह्माण्ड के **मध्ये** अन्दर **तिष्ठति** विद्यमान है । हे मनुष्यो! तुम उसकी सत्ता में विश्वास करके **शीर्षाणि** अपने मस्तिष्कों को **निमृड्वम् इव** मांज लो ।।३।।

भावार्थ– चर्मचक्षुओं से जगत् के संचालनकर्ता किसी को न देखते हुए जो लोग परमेश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते वे व्यर्थ ही भ्रम में पड़े हुए हैं। जो श्रद्धा का दीप प्रज्वलित कर लेते हैं वे कण-कण में परमेश्वर को देखते हैं ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, राजा और योगी के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

सत्रहवें अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

सत्रहवां अध्याय समाप्त ।

अष्टम प्रपाठक में प्रथम अर्ध समाप्त ।

।।१।। अथ 'पन्य' मित्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१६५७. पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १२३ क्रमांक पर भक्तिरस के विषय में की जा चुकी है । यहां ज्ञानरस का विषय है ।

पदार्थ— हे **सोतारः** ज्ञानरस को अभिषुत करने वाले मनुष्यो! तुम **मद्याय** आनन्दित किये जाने योग्य, **वीराय** काम-क्रोध आदि षड् रिपुओं को विशेष रूप से प्रकंपित करने वाले, **शूराय** शूरवीर जीवात्मा के लिए **पन्यम् पन्यम् इत्** प्रशंसनीय-प्रशंसनीय ही **सोमम्** अध्यात्म ज्ञान-रस को **आधावत** पहुंचाओ ॥१॥

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिए कि वे प्रशंसा-योग्य ही भौतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान का आत्मा में संचय करें, जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस के मार्ग को भली भांति पार कर सकें ॥१॥

१६५८. एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा द्वारा जोड़े गये दोनों हरियों के कार्य का वर्णन किया गया है ।

पदार्थ— **ब्रह्मयुजा** परमात्मा द्वारा शरीर में जोड़े गए, **शग्मा** सुखदायक वा शक्तिशाली **हरी** ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप वा प्राण-अपान रूप दो घोड़े **सखायम्** अपने सखा, **गिर्वणसम्** प्रशस्त वाणियों से सेवित **इन्द्रम्** जीवात्मा को **इह** इस देह-रथ में **गीर्भिः** वाणियों के साथ **आवक्षतः** वहन करते हैं ॥२॥

भावार्थ— जगदीश्वर की ही यह महिमा है कि उसके द्वारा जोड़े गये ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप अथवा प्राण-अपान रूप घोड़े देह-रथ को निर्विघ्न चलाते हैं, जिससे उसमें बैठा हुआ जीव जीवन-यात्रा को करता हुआ योगाभ्यास द्वारा मोक्ष-पद का अधिकारी हो जाता है ॥२॥

१६५९. पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥३॥[3]

अब जगदीश्वर का आह्वान करते हैं ।

पदार्थ— **वृत्रहा** विघ्नों को दूर करने वाला, **सुतम्** अभिषुत किये हुए श्रद्धा-भक्ति के रस को **पाता** पीने वाला इन्द्र जगदीश्वर **घ** निश्चय ही **आ गमत्** हमारे पास आये । **अस्मत् आरे** हमसे दूर **न** न रहे । **शतमूतिः** अनन्त रक्षाओं वाला वह **नियमते** हमें नियन्त्रणपूर्वक चलाये ॥३॥

भावार्थ— जगदीश्वर को अपने समीप अनुभव करके स्तोता जीव नियमपूर्वक ही जीवन बिताता है॥३॥

॥२॥ अथ 'आ त्वा' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ॥

---

१. ऋ० ८।२।२५, साम० १२३ ।

२. ऋ० ८।२।२७, 'गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम्' इति तृतीयः पादः ।

३. ऋ० ८।२।२६।

१६६०. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः। न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १९७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में हो चुकी है। यहां जीवात्मा का विषय कहते हैं।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जीवात्मन्! **इन्दवः** आचार्य से प्राप्त ज्ञान-रस और परमात्मा से प्राप्त आनन्द-रस **त्वा** तुझमें **आ विशन्तु** प्रवेश करें, **समुद्रम् इव** समुद्र में जैसे **सिन्धवः** नदियां प्रवेश करती हैं। देह में कोई भी मन, प्राण आदि **त्वाम्** तुझ जीवात्मा से **न अतिरिच्यते** महत्ता में अधिक नहीं है ॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ– जीवात्मा शरीर का सम्राट् है। मन, बुद्धि, प्राण, मस्तिष्क, हृदय आदि सब उसी के अनुशासन में हैं। वह यदि जागरूक है तो सारे अभ्युदय या निःश्रेयस को वह प्राप्त कर सकता है ॥१॥

१६६१. विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे। य इन्द्र जठरेषु ते ॥२॥[2]

अब जीवात्मा को उद्‌बोधन देते हैं।

पदार्थ– हे **वृषन्** बलवान्, **जागृवे** जागरूक **इन्द्र** जीवात्मन्! तू **महिना** अपनी महिमा से **सोमस्य** ज्ञान-रस और आनन्द-रस के **भक्षम्** भाग को **विव्यक्थ** विस्तारित कर, **यः** जो भाग **ते** तेरे **जठरेषु** अन्दर है॥२॥

भावार्थ– मनुष्य जिस भी ज्ञान वा आनन्द को संचित करता है उसका विस्तार उसे निरन्तर करते रहना चाहिए ॥२॥

१६६२. अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन्। अरं धामभ्य इन्दवः ॥३॥[3]

आगे फिर जीवात्मा को ही कहा गया है।

पदार्थ– हे **वृत्रहन्** विघ्नविनाशक **इन्द्र** जीवात्मन्! **सोमः** ज्ञान-रस और आनन्द-रस **ते कुक्षये** तेरे पेट के लिए अर्थात् तेरे अपने लिए **अरम्** पर्याप्त **भवतु** होवे। और **इन्दवः** सराबोर करने वाले ज्ञान-रस और आनन्द-रस **धामभ्यः** अन्य धामों के लिए भी **अरम्** पर्याप्त होवें ॥३॥

भावार्थ– स्वयं गुरुजनों से ज्ञान लेकर और जगदीश्वर की उपासना से आनन्द पाकर उस ज्ञान तथा उस आनन्द का प्रसार जन-जन में, घर-घर में और प्रत्येक समाज में करना चाहिए ॥३॥

॥३॥ अथ 'जराबोध' इत्यादिकस्य तृतीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शुनःशेप आजीगर्तिः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ॥

१६६३. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१॥[4]

---

१. ऋ० ८।९२।२२।
२. ऋ० ८।९२।२३।
३. ऋ० ८।९२।२४।
४. ऋ० १।२७।१०, साम० १५।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १५ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में की गयी थी। यहां भी वही विषय कहा जा रहा है।

पदार्थ– हे **जराबोध** स्तुतिविज्ञ मानव ! तू **विशे विशे** प्रत्येक मनुष्य के हितार्थ **यज्ञियाय** पूजनीय, **रुद्राय** दुःखहर्ता परमात्मा के लिए **तत्** उस उज्ज्वल **दृशीकम्** रमणीय **स्तोमम्** स्तोत्र को, गुण-गान को **विविड्ढि** कर ।।१।।

भावार्थ– सब मनुष्यों को चाहिए कि जगदीश्वर का गुणगान करके यथाशक्ति उसके गुणों को अपने अन्दर धारण करने का प्रयत्न करें ।।१।।

१६६४. स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः। धिये वाजाय हिन्वतु ।।२।।[1]

अब परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए उससे प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– **सः** वह प्रसिद्ध, **महान्** गुणों में महान्, **अनिमानः** देश और काल से असीमित, **धूमकेतुः** फहराती हुई ओ३म् की ध्वजा वाला, **पुरुश्चन्द्रः** बहुत आह्लाददायक अग्रनायक परमेश्वर **नः** हमें **धिये** ज्ञान और कर्म के लिए, तथा **वाजाय** बल के लिए **हिन्वतु** प्रेरित करे ।।२।।

भावार्थ– सच्ची परमात्मा की स्तुति वही है, जिससे मनुष्य ज्ञान कमाने, बल संचित करने तथा पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है ।।२।।

१६६५. स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ।।३।।[2]

अब कैसा परमेश्वर क्या करे यह कहते हैं।

पदार्थ– **रेवान् इव** महाधनाढ्य के समान **विश्पतिः** प्रजाओं का पालनकर्ता, **दैव्यः** विद्वानों का हितकर्ता, **केतुः** ज्ञान देने वाला, **बृहद्भानुः** महान् तेज वाला **सः** वह प्रसिद्ध **अग्निः** जगत् का नेता परमेश्वर **उक्थैः** स्तोत्रों के द्वारा **नः** हमें अर्थात् हमारे प्रार्थना वचनों को **शृणोतु** सुने, पूर्ण करे ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– जैसे कोई प्रशस्त धन वाला मनुष्य प्रजाओं का पालन करता हुआ, विद्वानों को संमान देता हुआ, ज्ञान और तेजस्विता का प्रसार करता हुआ, याचकों के वचनों को सुनता हुआ सबका हित करता है, वैसे ही जगदीश्वर भी करता है। परन्तु इतनी विशेषता है कि परमेश्वर का वैसा करने में कोई स्वार्थ नहीं होता ।।३।।

---

१. ऋ० १।२७।११।

२. ऋ० १।२७।१२।

।।४।। अथ 'तद्वो गाय' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** शंयुर्बार्हस्पत्यः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

१६६६. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने। शं यद् गवे न शाकिने ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ११५ क्रमांक पर परमात्मा के गान के विषय में की जा चुकी है। यहां भी वही विषय है।

पदार्थ– हे साथी ! **वः** तू **सुते** श्रद्धा-रस के उत्पन्न होने पर **सचा** अन्य स्तोताओं के साथ **पुरुहूताय** बहुतों से बुलाये गये, **सत्वने** बलशाली इन्द्र परमात्मा के लिए **तत् गाय** उस गीत को गा **यत्** जो गीत **शाकिने गवे न** घास भक्षी बैल के समान **शाकिने** शक्तिमान् **गवे** तुझ स्तोता के लिए **शम्** शान्तिदायक हो ।।१।।

यहां श्लिष्टोपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– श्रद्धा से भरे हुई चित्त से जिस स्तुति-गीत का उपहार जगदीश्वर को दिया जाता है वह स्तोता के लिए बहुत कल्याणकारी होता है ।।१।।

१६६७. न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः। यत् सीमुप श्रवद्गिरः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा के दान का वर्णन है।

पदार्थ– **वसुः** बसाने वाला इन्द्र परमेश्वर **गोमतः** अध्यात्म प्रकाश से युक्त **वाजस्य** बल के **दानम्** दान को **न घ** कभी नहीं **नि यमते** रोकता है, **यत् सीम्** जब कि वह **गिरः** श्रद्धा से भरी हुई स्तुति-वाणियों को **उप श्रवत्** सुन लेता है ।।२।।

भावार्थ– श्रद्धालुओं के श्रद्धा से सिंचे हुए, प्रेम से भरे स्तोत्रों से द्रवित होकर जगदीश्वर नये-नये आध्यात्मिक ऐश्वर्य के उपहार स्तोता की भेंट करता है ।।२।।

१६६८. कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्। शचीभिरप नो वरत् ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा तथा राजा का विषय कहा गया है।

पदार्थ– **प्रथम** परमात्मा के पक्ष में जो **दस्युहा** विघ्नों का विनाशक इन्द्र जगदीश्वर **कुवित्सस्य** बहुत दान देने वाले को **गोमन्तं व्रजम्** उत्कृष्ट धेनुओं से युक्त गोशाला वा अध्यात्म प्रकाश का समूह **प्र गमत्** प्राप्त कराता है, वह **शचीभिः** अपने कर्मों से **नः** हमारे लिए भी **अप वरत्** गाय आदि धनों वा अध्यात्म प्रकाशों का द्वार खोल दे ।।

द्वितीय राजा के पक्ष में। **दस्युहा** दुष्टों का वधकर्ता इन्द्र राजा **कुवित्सस्य** गोघातक की **गोमन्तं व्रजम्** धेनुओं से युक्त गोशाला में **प्र गमत् हि** पहुंचे और **शचीभिः** अपनी सेनाओं से, उसकी गौओं को **नः** हम धार्मिकों को लिए **अप वरत्** छीन लाये ।।३।।

---

१. ऋ० ६।४५।२२, अथ० २०।७८।१, साम० ११५।
२. ऋ० ६।४५।२३, अथ० २०।७८।२।
३. ऋ० ६।४५।२४, अथ० २०।७८।३।

भावार्थ— परमात्मा दानियों का ही सहायक होता है। दुष्ट गोहत्यारों का यही दण्ड है कि उनकी गौएं छीनकर धर्मात्मा सज्जनों को भेंट कर दी जाएं ॥३॥

इस खण्ड में ज्ञानरस, जगदीश्वर, जीवात्मा और राजा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

अठारहवें अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ॥

॥५॥ अथ 'इदं विष्णुर्' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य षडृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः **देवता** विष्णुः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ॥

१६६९. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुले ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २२२ क्रमांक पर परमेश्वर और सूर्य के विषय में की जा चुकी है। यहां परमेश्वर का विषय कहा जा रहा है।

पदार्थ— **विष्णुः** सर्वान्तर्यामी परमेश्वर **इदम्** इस ब्रह्माण्ड वा मानव-शरीर में **विचक्रमे** व्याप्त है। उसने **त्रेधा** तीन स्थानों में अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ में तथा शरीर के प्राण, मन और आत्मा में **पदम्** पग **निदधे** रखा हुआ है। तो भी **अस्य** इस परमेश्वर का वह पग **पांसुले** धूलि के ढेर में **समूढम्** छिपे हुए के समान है, अर्थात् चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं देता है ॥१॥

यहां लुप्तोपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ— यहां निराकार भी परमेश्वर में पग रखने का वर्णन गौण है। अभिप्राय यह है कि जैसे कोई देहधारी कदम भर कर भूमि के किसी प्रदेश को अपने अधीन कर लेता है वैसे ही जगदीश्वर ने सारे ब्रह्माण्ड को और सारे मानवदेह को अपने अधीन किया हुआ है ॥१॥

१६७०. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन् ॥२॥[2]

आगे फिर परमेश्वर का विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ— **गोपाः** रक्षक, **अदाभ्यः** किसी से भी हिंसित, पराजित या अपमानित नहीं किया जा सकने वाला, **विष्णुः** सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर **त्रीणि पदा** प्रकृति, जगत्प्रपंच और जीवात्माएं इन तीनों में **विचक्रमे** व्याप्त है। **अतः** इसी कारण से, वह **धर्माणि** सब पदार्थों में उनके गुण-कर्म-स्वभाव की **धारयन्** व्यवस्था कर रहा है ॥२॥

भावार्थ— जो परमात्मा ब्रह्माण्ड के सब पदार्थों में व्याप्त है वही उनको धारण करने वाला भी है॥२॥

---

१. ऋ० १।२२।१७, य० ५।१५, अथ० ७।२६।४, सर्वत्र 'पांसु रे' इति पाठः। साम० २२२, देवता इन्द्रः।

२. ऋ० १।२२।१८, य० ३४।४३, अथ० ७।२६।५। अथर्ववेदे 'अतो' इत्यत्र 'इतो' इति भेदः।

१६७१. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३॥[1]

अगले मन्त्र में परमेश्वर के महत्त्व का वर्णन है।

पदार्थ– **विष्णोः** सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर के **कर्माणि** जगत्प्रपंच की उत्पत्ति करना, व्यवस्था करना आदि कर्मों को **पश्यत** देखो, **यतः** क्योंकि उसने उन्हें करने के लिए **व्रतानि** व्रत **पस्पशे** ग्रहण किये हुए हैं। वह जगत्पति **इन्द्रस्य** जीवात्मा का **युज्यः** साथ रहने वाला **सखा** मित्र है ॥३॥

भावार्थ– जैसे व्रती जगदीश्वर इस जगत् में महान् कर्मों को कर रहा है, वैसे ही उसका सखा जीव भी उससे बल पाकर बहुत से कार्य करने में समर्थ होता है ॥३॥

१६७२. तद्विष्णोः परमं पदे सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥४॥[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा के परमपद के साक्षात्कार का विषय है।

पदार्थ– **विष्णोः** सर्वव्यापक जगदीश्वर के **तत्** उस प्रसिद्ध, **परमम्** अति उत्कृष्ट **पदम्** प्राप्त करने योग्य स्वरूप को **सूरयः** विद्वान् उपासक लोग **सदा** हमेशा **पश्यन्ति** वैसे ही स्पष्ट रूप में देखते हैं **दिवि इव** जैसे सूर्य के प्रकाश में **आततम्** फैली हुई वस्तु को **चक्षुः** आंख देखती है ॥४॥

यहां उपमालंकार है ॥४॥

भावार्थ– भले ही स्थूल दृष्टि वाले लोगों को परमात्मा न दिखायी दे, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि वाले विद्वान् स्तोता जन तो उसका वैसे ही साक्षात्कार करते हैं जैसे सूर्य के प्रकाश में कोई मनुष्य किसी विशाल मूर्त पदार्थ को देखता है ॥४॥

१६७३. तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥५॥[3]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

पदार्थ– **विपन्यवः** विविध रूप में जगदीश्वर के गुणों की स्तुति करने वाले, **जागृवांसः** जागरूक **विप्रासः** विप्रजन **यत्** जो **विष्णोः** सर्वव्यापक परमेश्वर का **परमम्** सर्वोत्कृष्ट **पदम्** प्राप्तव्य स्वरूप है **तत्** उसे **समिन्धते** अपने अन्तरात्मा में भली भांति प्रकाशित कर लेते हैं ॥५॥

भावार्थ– जो मनुष्य अविद्या, आलस्य, अधर्माचरण रूप नींद को छोड़कर विद्या, धर्म, योगाभ्यास आदि के आचरण में जागरूक हैं वे ही सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वोत्तम, सर्वव्यापी, सबसे प्राप्त करने योग्य जगदीश्वर को पाने में समर्थ होते हैं ॥५॥

१६७४. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्या अधि सानवि ॥२॥[4]

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का शरीर में व्याप्त होना वर्णित है।

---

१. ऋ० १।२२।१९; य० ६।४।; १३।३३; अथ० ७।२६।६।

२. ऋ० १।२२।२०, य० ६।५, अथ० ७।२६।७।

३. ऋ० १।२२।२१, य० ३४।४४। उभयत्र 'विपन्यवो' इति भेदः।

४. ऋ० १।२२।१६, 'पृथिव्याः सप्तधामभिः' इति तृतीयः पादः।

पदार्थ– **यतः** क्योंकि **विष्णुः** व्यापक जगदीश्वर **पृथिव्याः** पार्थिव शरीर के **सानवि अधि** उच्च प्रदेश मस्तिष्क में **विचक्रमे** व्याप्त है, **अतः** इसी कारण **देवाः** विद्वान, जन, उसकी कृपा से मस्तिष्क द्वारा ज्ञान पाकर **नः** हमारी **अवन्तु** रक्षा करें ।।६।।

भावार्थ– परमेश्वर ही शरीर के मस्तिष्क आदि अंगों में स्थित हुआ उनके द्वारा सब ज्ञान-ग्रहण आदि करवाता है ।।६।।

।।६।। अथ 'मो षु' इत्यादिकस्य षष्ठस्य द्वयृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१र २र ३ १ २ ३ २उ ३ १र २र
१६७५. मो षु त्वा वाधतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २८४ क्रमांक पर परमात्मा और राजा को सम्बोधित की गयी थी । यहां मनुष्य अपने मन को संबोधन कर रहा है ।

पदार्थ– हे इन्द्र! हे मेरे मन! **बाधतः च न** आकर्षक भी पदार्थ **त्वा** तुझे **अस्मत् आरे** हमसे दूर **मा उ सु न नि रीरमन्** क्रीडा करायें । **आरात्तात्** सुदूर देश से भी **नः** हमारे **सधमादम्** उपासना-यज्ञ में **आ गहि** आ जा, **इह वा सन्** और यहीं रहता हुआ **उप श्रुधि** हमारे आदेश को सुन ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य का मन दूर से दूर दौड़ता रहता है और अनेक संकल्प-विकल्प करता रहता है । उसकी यह चेष्टा परमात्मा के ध्यान में बाधक होती है । अतः साधक दूर गये हुए अपने मन को यहां वापिस लौटा रहा है ।।१।।

३१र २र ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ २उ ३ १ २
१६७६. इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा की उपासना का विषय है ।

पदार्थ– हे जगदीश्वर! **इमे हि** ये **ते** तेरे लिए **ब्रह्मकृतः** स्तोत्र-पाठ करने वाले उपासक **सुते** उपासना-यज्ञ में **सचा** एक साथ मिलकर **आसते** बैठे हुए हैं, **मधौ न** शहद के छत्ते पर जैसे **मक्षः** मधु-मक्खियां **सचा** मिलकर **आसते** बैठी होती हैं। **वसूयवः** अध्यात्म धन के इच्छुक **जरितारः** स्तोता गण **इन्द्रे** परमैश्वर्यशाली तुझ जगदीश्वर में **कामम्** अपनी अभिलाषा को **आदधुः रखे हुए हैं, संजोये हुए हैं, वसूयवः** भौतिक धन के इच्छुक लोग **रथे न** जैसे रथ में **पादम्** अपना पैर रखते हैं।।२।।

---

१. ७।३२।१, साम० २८४ ।
२. ७।३२।२ ।

यहां उपमालंकार है ॥२॥

भावार्थ— मधु बनाने वाली मधुमक्खियां जैसे मधु के छत्ते पर बैठती हैं, वैसे ही उपासना करने वाले लोग उपासनागृह में बैठते हैं। और जैसे भौतिक धन-धान्य आदि अन्य स्थान से लाने के इच्छुक लोग रथ में अपना पैर रखते हैं, वैसे ही सत्य, अहिंसा, योगैश्वर्य आदि के अभिलाषी लोग परमात्मा में अपनी कामना को रख देते हैं॥२॥

॥७॥ अथ 'अस्तावि' इत्यादिकस्य सप्तमस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** आयुः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः॥

१६७७. अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१॥[1]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की स्तुति के लिए प्रेरणा की गयी है ।

पदार्थ— **पूर्व्यम्** सनातन **मन्म** वेद-स्तोत्र, मेरे द्वारा **अस्तावि** प्रस्तुत किया जा रहा है । हे साथियो ! तुम भी **इन्द्राय** जगदीश्वर के लिए **ब्रह्म** स्तोत्र **वोचत** पाठ करो । **ऋतस्य** सत्यमय वेद की **पूर्वीः** श्रेष्ठ **बृहतीः** बृहती छन्द वाली ये ऋचाएं **अनूषत** जगदीश्वर की स्तुति कर रही हैं। **स्तोतुः** स्तोता की **मेधाः** धारणावती बुद्धियां **असृक्षत** उत्पन्न हो रही हैं॥१॥

भावार्थ— सामगान द्वारा परमेश्वर की स्तुति करने से स्तोताओं की ऋतम्भरा प्रज्ञाएं उत्पन्न हो जाती हैं॥१॥

१६७८. समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥२॥[2]

अब परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव का वर्णन करते हैं।

पदार्थ— **इन्द्रः** जगदीश्वर **बृहतीः** विस्तीर्ण **रायः** संपदाओं को **सम् अधूनुत** भली भांति प्रेरित करता है, **क्षोणी** द्युलोक और भूलोक को **सम्** भली भांति प्रेरित करता है , **उ** और **सूर्यम्** सूर्य को **सम्** भली-भांति प्रेरित करता है । **शुक्रासः** तेजस्वी, **शुचयः** पवित्र आचरण वाले लोग **इन्द्रम्** जगदीश्वर को **सम् अमन्दिषुः** भली भांति आनन्दि करते हैं, और **गवाशिरः** तेजों से परिपक्व **सोमाः** श्रद्धारस **इन्द्रम्** जगदीश्वर को **सम् अमन्दिषुः** भली भाँति आनन्दित करते हैं॥२॥

भावार्थ— जगदीश्वर ने ही सब संपदाएं हमें प्रदान की हैं और वही सूर्य, पवन, द्यावापृथिवी आदि की व्यवस्था को संचालित कर रहा है । अतः सबको चाहिए कि पवित्र अन्तःकरण वाले होकर श्रद्धा से उसकी उपासना करें ॥२॥

---

१. ऋ० ८।५२।९, अथ० २०।११९।१ ।
२. ऋ० ८।५२।१०।

।।८।। अथ 'इन्द्राय सोम' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** अनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः।

१६७९. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणवते वीराय सदनासदे ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या उत्तरार्चिक में १३३१ क्रमांक पर गुरु-शिष्य विषय में हो चुकी है यहां परमात्मा की भक्ति का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– हे **सोम** मेरे भक्तिरस ! तू **वृत्रघ्ने** पाप-विनाशक, **दक्षिणावते** दानी, **वीराय** काम आदि षड् रिपुओं को विशेष रूप से कंपायमान करने वाले, **सदनासदे** हृदय-सदन में स्थित **नरे च** और नेतृत्व करने वाले **इन्द्राय** जगदीश्वर के **पातवे** पान करने के लिए **परिषिच्यसे** प्रवाहित किया जा रहा है ।।१।।

भावार्थ– परमात्मा के भक्त लोग पाप-कर्मों का परित्याग करके, प्रचुर ऐश्वर्य प्राप्त करके सब आन्तरिक और बाह्य विघ्नों को नष्ट करने में समर्थ हो जाते हैं।।१।।

१६८०. तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ।।२।।[2]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– हे **सखायः** साथियो ! **वयं यूयं च सूरयः** हम और तुम मेधावी उपासक **तम्** उस प्रसिद्ध, **पुरूरुचम्** बहुत तेजस्वी, **वाजगन्ध्यम्** आत्मबल को ग्रहण कराने वाले रसागार सोम प्रभु को **अश्याम** प्राप्त कर लें, **वाजपस्त्यम्** विज्ञान की प्राप्ति कराने वाले शुभगुणकर्मप्रेरक सोम जगदीश्वर को **सनेम** भज लें ।।२।।

भावार्थ– सब साथी मिलकर श्रद्धा से तरंगित होते हुए यदि परमात्मा की उपासना करते हैं तो तेज, बल, विज्ञान आदि की प्राप्ति निरन्तर होती रहती है ।।२।।

१६८१. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ।।३।।[3]

तृतीय ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५५२ क्रमांक पर जीवात्मा की शुद्धि के विषय में और उत्तरार्चिक में १३२९ क्रमांक पर गुरु-शिष्य के विषय में हो चुकी है । यहां मन की शुद्धि का विषय कहते हैं ।

---

१. ऋ० ९।९८।१०, 'वीराय' इत्यत्र 'देवाय' साम० १३३१।
२. ऋ० ९।९८।१२, 'तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः' इति पूर्वार्धपाठः।
३. ऋ० ९।९८।७; साम० ५५२, १३२९ ।

पदार्थ— योगाभ्यासी लोग **त्यम्** उस **हर्यतम्** चाहने योग्य, **बभ्रुम्** इन्द्रियों को विषय ग्रहण में सहायता देने वाले, **हरिम्** ज्ञान के ग्रहण में साधनभूत मन को **वारेण** अशुद्धि-निवारक योगानुष्ठान से **परि पुनन्ति** पवित्र करते हैं, **यः** जो मन **मदेन सह** उत्साह के साथ **विश्वान् देवान् इत्** सभी इन्द्रियों में **परि गच्छति** उन-उन के विषय को ग्रहण कराने के लिए परिव्याप्त होता है, [क्योंकि मन का व्यापार न हो तो इन्द्रियां विषय को ग्रहण नहीं कर सकतीं] ।।३।।

भावार्थ— मनुष्यों का मन यदि दूषित हो तो वह इन्द्रियों को कुमार्ग पर ही ले जाता है । इसलिए अध्यात्म जीवन के लिए और परमात्मा के दर्शन के लिए उसका शोधन अत्यन्त आवश्यक है ।।३।।

।।९।। अथ 'कस्तमिन्द्र' इत्यादिकस्य नवमस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रवरुणिः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१६८२. कस्तमिन्द्र त्वावसवा मर्त्यो दधर्षति।
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवी वाजी वाजं सिषासति ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में २८० क्रमांक पर पहले व्याख्या हो चुकी है । यहां श्रद्धा का महत्त्व प्रतिपादित किया जा रहा है।

पदार्थ— **त्वावसो** तुम स्वयं ही जिस स्वयं के धन हो ऐसे **इन्द्र** हे जगदीश! **तम्** आप में श्रद्धा रखने वाले आपके भक्त को **कः मर्त्यः** भला कौन मनुष्य **आ दधर्षति** पराजित कर सकता है, अर्थात् कोई नहीं । हे **मघवन्** ऐश्वर्यशालिन्! **ते** आप में **श्रद्धा** श्रद्धावान् मनुष्य **हि** निश्चय ही **पार्ये दिवि** पार करने योग्य सम्पूर्ण दिन में **वाजी** बल, विज्ञान, अन्न, धन आदि **सिषासति** अन्यों को बांटना चाहता है ।।१।।

भावार्थ— वही वस्तुतः परमात्मा का श्रद्धालु होता है जो उसकी प्रेरणा से श्रेष्ठ कर्म करे और उसकी कृपा से प्राप्त ऐश्वर्य से दीनों की सहायता करे ।।१।।

१६८३. मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ— हे **हर्यश्व** परस्पर आकर्षण से युक्त व्याप्त सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि लोकों के स्वामी जगदीश्वर! आप **मघोनः** धनी मनुष्यों को **वृत्रहत्येषु** जिनमें पापों वा पापी दुष्ट शत्रुओं की हत्या की जाती है ऐसे देवासुरसंग्रामों में **चोदय** प्रेरित करो, **ये** जो धनी मनुष्य **प्रिया वसु** प्रिय धनों को **ददति** परोपकार के लिए दान करते हैं। **तव प्रणीती** आपके श्रेष्ठ मार्ग दर्शन से, हम **सूरिभिः** विद्वान् स्तोताओं सहित **विश्वा दुरिता** सब दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदियों को **तरेम** तर जाएं ।।२।।

---

१. ऋ० ७।३२।१४ 'त्वा वसवा' इत्यत्र 'त्वा वसुमा,' 'हि ते' इत्यत्र च 'इत्ते' । साम० २८० ।
२. ऋ० ७।३२।१५ ।

भावार्थ– व्यक्तियों तथा समाज की उन्नति के लिए धन और दान के साथ पापों का संहार तथा विघ्नों पर विजय भी अपेक्षित होती है ॥२॥

इस खण्ड में परमात्मा, मन और श्रद्धा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

अठारहवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ॥

॥१०॥ अथ 'एदु मधोर्' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वमना वैयश्वः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ॥

१६८४. एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३८५ क्रमांक पर मानव को संबोधित की गयी थी । यहां परमेश्वर को संबोधन करते हैं ।

पदार्थ– हे **अध्वर्यो** ब्रह्माण्ड-यज्ञ के संचालक इन्द्र परमात्मन्! आप **मधोः** मधुर **अन्धसः** आनन्द के **मदिन्तरम्** अतिशय तृप्ति देने वाले रस को **इत्** निश्चय ही **आ सिञ्च उ** उपासक के अन्तरात्मा में सींचो । **एव हि** इसी प्रकार **वीरः** शूरवीर उपासक **सदावृधः** सदा उन्नत होता हुआ **स्तवते** प्रशंसा पाता है॥१॥

भावार्थ– ब्रह्मानन्द-रस से पूर्णतः तृप्त हुआ उपासक सदा वृद्धि और उन्नति पाता हुआ सबका-प्रशंसापात्र होता है ॥१॥

१६८५. इन्द्र स्थातहरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में परमेश्वर की महिमा वर्णन करते हैं ।

पदार्थ– **हरीणाम्** एक-दूसरे का आकर्षण करने वाले सूर्य, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र आदि लोकों के और विषयों को ग्रहण करने वाली देह-स्थित इन्द्रियों के **स्थातः** अधिष्ठाता, हे **इन्द्र** जगदीश्वर! **ते** आपकी **पूर्व्यस्तुतिम्** श्रेष्ठ स्तुति को **नः किः** न कोई **शवसा** बल से, **न भन्दना** न कल्याण से **उदानंश** लांघ पाता है ॥२॥

भावार्थ– जगदीश्वर से अधिक बलवान् और बल-प्रदाता, कल्याणवान् और कल्याणकर्ता संसार भर में कोई नहीं है ॥२॥

१६८६. तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥३॥[3]

---

१. ऋ० ८।२४।१६; अथ० २०।६४।४; साम० ३८५ ।
२. ऋ० ८।२४।१७, अथ० २०।६४।५ ।
३. ऋ० ८।२४।१८, अथ० २०।६४।६

अब जगदीश्वर को बुलाते हैं।

पदार्थ– हे साथियो! **श्रवस्यवः** कीर्ति के इच्छुक हम **वः** तुम्हारे **वाजानाम्** बल, विज्ञान, अन्न, धन आदियों के **पतिम्** स्वामी वा पालनकर्ता, और **अप्रायुभिः** बिना प्रमाद के किये जाने वाले **यज्ञेभिः** सृष्टि के उत्पादन, धारण, पालन, न्याय आदि यज्ञों से **वावृधेन्यम्** बढ़ी हुई महिमा वाले **तम्** उस इन्द्र जगदीश्वर को **अहूमहि** बुलाते हैं ।।३।।

भावार्थ– सबको चाहिए कि संसार में विद्यमान सब ऐश्वर्यों के स्वामी, सदा परोपकाररूप यज्ञ में संलग्न, महामहिम, राजराजेश्वर जगदीश को पुकारें तथा उसकी स्तुति और उपासना करें ।।३।।

।।११।। अथ 'तं गूर्धया' इत्यादिकस्यैकादशस्य द्वयचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सोभरिः काण्वः । **देवता** अग्निः । छन्दः काकुभः प्रगाथः (१ विषमा ककुबुष्णिक्, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ ऋषभः, २ पञ्चमः ।।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१६८७. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
३ २ ३ १ २
देवत्रा हव्यमूहिषे ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में १०९ क्रमांक पर व्याख्या की जा चुकी है । यहां परमात्मा की स्तुति का विषय कहते हैं ।

पदार्थ– हे मानव! तू **तम्** उस प्रसिद्ध, **स्वर्णरम्** ब्रह्मानन्द वा दिव्य प्रकाश को प्राप्त कराने वाले जगन्नायक परमात्मा की **गूर्धय** अर्चना कर । **देवासः** विद्वान्, दिव्य गुणों वाले लोग, उस **देवम्** प्रकाशक, **अरतिम्** सबके स्वामी जगदीश्वर को **दधन्विरे** अपने आत्मा में धारण करते हैं। हे ज्योतिर्मय देव! आप **देवत्रा** विद्वान् जनों में **हव्यम्** देने योग्य सद्गुण-समूह को **ऊहिषे** प्राप्त कराओ ।।१।।

भावार्थ– जो मनुष्य श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव वाले परमेश्वर की उपासना करते हैं वे स्वयं भी वैसे हो जाते हैं ।।१।।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१६८८. विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ।।२।।[2]

आगे फिर परमात्मा की स्तुति का विषय है ।

पदार्थ– हे **सोभरे** भले प्रकार स्तोत्रों का उपहार लाने वाले **विप्र** विद्वन्! तू **विभूतरातिम्** व्यापक दान वाले, **चित्रशोचिषम्** अद्भुत तेज वाले, **अस्य** इस **सोभ्यस्य** ब्रह्मानन्द-रूप सोम के संपादक **मेधस्य** उपासना-यज्ञ का **यन्तुरम्** नियन्त्रण करने वाले, **पूर्व्यम्** सनातन **ईम्** इस **अग्निम्** अग्रनेता जगदीश्वर को **अध्वराय** जीवन-यज्ञ की सफलता के लिए **प्र ईडिष्व** भली-भांति स्तुति का पात्र बना ।।२।।

---

१. ऋ० ८।१९।१, 'हुव्यामोहिरे' इति भेदः । साम० १०९ ।

२. ऋ० ८।१९।२।

भावार्थ– जीवन-यज्ञ की पूर्णता के लिए मनुष्यों को उपासना-यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए॥२॥

॥१२॥ अथ 'आ सोम' इत्यादिकस्य द्वादशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषयः** सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरूणिः) । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ॥

१६८९. आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में ५१३ क्रमांक पर) परमात्मा को संबोधित की गयी थी। यहां जीवात्मा को संबोधन करते हैं।

पदार्थ– हे **सोम** ज्ञानरस का आस्वादन करने वाले जीवात्मन्! **अद्रिभिः** आदर के योग्य गुरूजनों से **स्वानः** प्रेरणा किया जाता हुआ तू **अव्यया** भौतिक **वाराणि** आच्छादक विघ्न आदियों को **तिरः** तिरस्कृत कर दे । आगे परोक्ष रूप में कहते हैं– यह **हरिः** ज्ञान का आहरण करने वाला जीवात्मा **चम्वोः** मस्तिष्क और हृदय में **विशत्** प्रवेश करता है, **जनः न** जैसे कोई मनुष्य **पुरि** नगरी में प्रविष्ट होता है । आगे फिर प्रत्यक्ष रूप में कहते हैं– हे जीवात्मन्! तू **वनेषु** सेवनीय इन्द्रियों और प्राणों में **सदः** निवास को **दधिषे** धारण करता है ॥१॥

भावार्थ– जो यह जीवात्मा देह में प्रविष्ट होकर अणु परिमाण वाला भी होता हुआ अपने सामर्थ्य से अंग-अंग में प्रवेश किये रहता है उसे चाहिये कि जीवन में वा योग-मार्ग में आये हुए सब विघ्नों को दूर करके विजय प्राप्त करे ॥१॥

१६९०. स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥२॥[2]

आगे फिर जीवात्मा का विषय है ।

पदार्थ– **वाजयुः** अन्न के इच्छुक **सप्तिः न** घोड़े के समान **वाजयुः** बल और विज्ञान का इच्छुक, **मीढ्वान्** अन्यों पर सुख सींचने वाला, **मेष्यः** ज्ञान का सेचन करने वाली वेदवाणी के **अण्वानि** सूक्ष्म विज्ञान-तत्त्वों को **तिरः** प्राप्त करके **पवमानः** स्वयं को पवित्र करता हुआ **सः** वह **सोमः** जीवात्मा **मनीषिभिः** मननशील, **ऋक्वभिः** वेदज्ञ **विप्रेभिः** विद्वानों के द्वारा **अनुमाद्यः** हर्षित किये जाने योग्य होता हुआ **मामृजे** श्रेष्ठ गुण-कर्मों से अलंकृत किया जाता है ॥२॥

---

१. ऋ० ९।१०७।१०, 'सुवानो', 'दधिषे' इति भेदः । साम० ५१३ ।
२. ऋ० ९।१०७।११, मीळहे सप्तिर्न वाजयुः' इति द्वितीयः पादः ।

यहां श्लिष्टोपमा अलंकार है ।।२।।

भावार्थ– सब मनुष्यों को चाहिए कि वेद पढ़कर, अपने आत्मा की शक्ति को जान कर, सदाचारी विद्वानों के संग से अपनी उन्नति निरन्तर किया करें ।।२।।

।।१३।। अथ 'वयमेन०' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य द्वयचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कलिः प्रागाथः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
१६९१. वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणाम् ।
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २७२ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की जा चुकी है । यहां जीवात्मा का विषय है ।

पदार्थ– वयम् हम कर्मयोगी लोगों ने **एनम्** इस **वज्रिणम्** वाणी-रूप वज्र से युक्त अपने अन्तरात्मा को **इदा** इस काल में, और **ह्यः** बीते काल में **इह** इस जीवन-यज्ञ में **अपीपेम** बढ़ाया है । हे भाई ! तू भी **तस्मै उ** उस अन्तरात्मा के लिए **अद्य** आज **सवने** कर्मयोग-रूप यज्ञ में **सुतम्** अभिषुत वीर रस को **भर** अर्पित कर । हे साथियो ! तुम सभी **नूनम्** निश्चय ही **श्रुते** शास्त्र-ज्ञान में, अपने अन्तरात्मा को **आभूषत** अलंकृत करो ।।१।।

भावार्थ– सब मनुष्यों को चाहिए कि अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर वीरता पूर्ण कर्म करें और विविध विद्याओं के ज्ञान का संचय करें ।।१।।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१६९२. वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
२उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा को बुलाया जा रहा है ।

पदार्थ-वारणः रोग आदि के निवारक, **उरामथिः** फैले हुए अंधेरे को नष्ट करने वाले **वृकःचित्** सूर्य के समान **अस्य** इन आप जगदीश्वर का **वारणः** दुःख आदि का निवारक प्रताप **वयुनेषु** आपके कर्मों में **आ भूषति** भूषण-रूप है । **सः** वह आप, हे **इन्द्र** परमात्मन् ! **नः** हमारे **इमम्** इस **स्तोमम्** स्तोत्र को **जुजुषाणः** सेवन करते हुए **चित्रया धिया** अद्भुत प्रज्ञा वा क्रिया के साथ **प्र आ गहि** भली भांति हमारे पास आओ।।२।।

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार ।।२।।

भावार्थ– जिस जगदीश्वर का प्रताप सूर्य के प्रकाश के समान सर्वत्र फैल रहा है उसकी सबको श्रद्धा के साथ उपासना करनी चाहिए ।।२।।

।।१४।। अथ 'इन्द्राग्नी' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वामित्रो गाथिनः। **देवता** इन्द्राग्नी। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

---

१. ऋ० ८।६६।७; अथ० २०।९७।१; साम० २७२ ।
२. ऋ० ८।६६।८; अथ० २०।९७।२ ।

१६९३. इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः। तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥१॥[1]

प्रथम मन्त्र में आत्मा और मन का विषय कहा जा रहा है ।

पदार्थ- हे **इन्द्राग्नी** आत्मा और मन ! **युवाम्** तुम दोनों **वाजेषु** देवासुरसंग्रामों में **दिवः** प्रकाशक परमात्मा की **रोचना** ज्योति को **परिभूषथः** चारों ओर से प्राप्त करते हो । **तत्** वह प्रसिद्ध **वाम्** तुम दोनों को पराजित करके परमात्मा की प्राप्ति के लक्ष्य तक पहुंचे है ॥१॥

भावार्थ– मनुष्य के आत्मा और मन को योग्य है कि आन्तरिक देवासुरसंग्राम में सब आसुरी भावों को पराजित करके परमात्मा की प्राप्ति के लक्ष्य तक पहुंचे ॥१॥

१६९४. इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः। ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥२॥[2]

द्वितीय ऋचा की व्याख्या उत्तरार्चिक में १५७७ क्रमांक पर जीवात्मा और परमात्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां आत्मा ओर मन का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** आत्मा और मन ! **धीतयः** ज्ञान **अपसः परि** कर्मों में ही **उप प्रयन्ति** परिसमाप्त हुआ करते हैं। अतः तुम दोनों **ऋतस्य** सत्य कर्म के **पथ्याः** मार्गों का **अनु** अनुसरण करो॥२॥

भावार्थ– कर्महीन अकेले ज्ञान शोभा नहीं पाते ॥२॥

१६९५. इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥३॥[3]

तृतीय ऋचा उत्तरार्चिक में १५७८ क्रमांक पर जीवात्मा और परमात्मा के विषय में व्याख्यात की गयी थी । यहां आत्मा और मन का विषय कहते हैं ।

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** आत्मा और मन ! **वाम्** तुम दोनों के **तविषाणि** बल **प्रयांसि च** और प्रयत्न **सधस्थानि** साथ मिलकर होते हैं। **युवोः** तुम दोनों का **अप्तूर्यम्** कर्मों की शीघ्रता का गुण **हितम्** हितकर होता है ॥३॥

भावार्थ– मनुष्य का आत्मा और मन परस्पर मिलकर ही ज्ञान एकत्र करके, पुरुषार्थ करके बल तथा कर्मों में सिद्धि प्राप्त करते हैं॥३॥

॥१५॥ अथ 'क ईं वेद' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेध्यातिथिः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बृहती । **स्वरः** मध्यमः॥

१६९६. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥१॥[4]

---

१. ऋ० ३।१२।९ ।
२. ऋ० ३।१२।७, साम० १५७७ ।
3. ऋ० ३।१२।८, साम० १५७८ ।
४. ऋ० ८।३३।७, अथ० २०।५३।१; ५७।११॥ साम० २९७, ऋषिः मेधातिथिः ।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २९७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां प्रश्नोत्तर-शैली से उपास्य-उपासक का विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ— **सुते** उपासक के भक्ति-रस के अभिषुत होन पर **सचा** एक साथ **ईम्** इस भक्ति-रस को **पिबन्तम्** पीते हुए इन्द्र परमात्मा को **कः वेद** कौन जानता है ? **कत्** कब, वह उपासक के अन्तरात्मा में **वयः** आनन्द-रस को **दधे** रख देता है यह भी **कः वेद** कौन जानता है? आगे इसका उत्तर दिया गया है— **अयं यः** यह जो **शिप्री** विस्तीर्ण बल वाला उपासक **अन्धसः** आनन्द-रस से **मन्दानः** उत्साह प्राप्त करता हुआ **ओजसा** आत्म-बल से **पुर** आन्तरिक असुरों की किलेबन्दियों को **विभिनत्ति** तोड़-फोड़ देता है, वही जानता है ।।१।।

भावार्थ— कैसे परमात्मा भक्त के भक्तिरस में डूब जाता है और कैसे उपासक भगवान् के ब्रह्मानन्द-रस में डूबता है इस बात को आत्मसमर्पक भगवद्-भक्त ही जानता है, दूसरा कोई जिसने भक्ति का प्रसाद अनुभव नहीं किया इस बात को नहीं जान सकता ।।१।।

३ २ ३ १र २र३ १ २ ३ २ ३१ २
१६९७. दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २३ १ २
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ।।२।।[1]

आगे जगदीश्वर का वर्णन करते हैं।

पदार्थ— **वारण** हाथी **मृगः** पशु **न** जैसे **चरथम्** गण्डस्थलों पर बहने वाले **दाना** मदजल को **दधे** धारण करता है, वैसे ही **वारणः** विपत्तियों का निवारणकर्ता, **मृगः** सज्जनों को खोजने वाला इन्द्र जगदीश्वर **पुरुत्रा** बहुत अधिक **चरथम्** संचार करने वाले **दाना** आनन्द-दान को **दधे** धारण करता है। हे इन्द्र जगदीश्वर! आप **सुते** हमारे भक्तिरस के उमड़ने पर **आ गमः** आओ । **त्वा** आते हुए आपको **न किः** कोई नहीं **नि यमत्** रोक सके। **महान्** महान् आप **ओजसा** प्रताप के साथ **चरसि** सर्वत्र व्याप्त हो ।।२।।

यहां श्लिष्टोपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ— जैसे हाथी गण्डस्थलों पर मदजल प्रवाहित करता है, वैसे ही परमेश्वर उपासकों के प्रति आनन्द-रस को बहाता है ।।२।।

२ ३ १र २र ३ १र २र३ १ २
१६९८. य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ।।३।।[2]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ— **यः** जो इन्द्र जगदीश्वर **उग्रः सन्** अधार्मिकों के लिए प्रचण्ड होता हुआ **अनिष्टृतः** उनसे अहिंसित रहता है, और **स्थिरः** अविचल होता हुआ **रणाय** असुरों के साथ युद्ध के लिए **संस्कृतः** सज्जित हो जाता है, वह **मघवा** ऐश्वर्यवान् **इन्द्रः** जगदीश्वर **यदि** यदि **स्तोतुः** उपासक के **हवम्** आह्वान को **शृणवत्** सुन ले, तो **न योषति** उससे अलग न खड़ा रहे, प्रत्युत **आ गमत्** उसके अन्तःकरण में आ जाए ।।३।।

---

१. ऋ० ८।३३।८; अथ० २०।५३।२; ५७।१२।
२. ऋ० ८।३३।९; अथ० २०।५३।३, ५७।१३, अथर्ववेदे 'निष्टृतः' इति निर्विसर्गः पाठः ।

भावार्थ— उपासक के हृदय से निकली हुई पुकार को जगदीश्वर अवश्य सुनता है और दस्युओं के साथ युद्ध में उसे बल देकर उसकी सहायता करता है ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा, जीवात्मा, उपास्य-उपासक का संबन्ध, आत्मा और मन इन विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।

अठारहवें अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।

।।१६।। अथ 'पवमाना' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** निध्रुविः काश्यपः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१६९९. पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में कविकर्म का वर्णन है ।

पदार्थ— पवमानाः स्वयं को तथा दूसरों को पवित्र करते हुए, **शुक्रासः** तेजस्वी, **इन्दवः** अपने काव्य-रस से सहृदयों को भिगोने वाले **सोमाः** शान्त विद्वान् कविजन ही **विश्वानि काव्या** सब भक्तिरस के काव्यों की **असृक्षत** सर्जना करते हैं ।।१।।

भावार्थ— भगवान् के उपासक कविजन ही भक्तिरस के काव्यों की सर्जना में समर्थ होते हैं।।१।।

१७००. पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में सूर्य-किरणों के उपकार-वर्णन द्वारा भगवान् के उपकारों का वर्णन करते हैं ।

पदार्थ— परमात्मा से रची हुई **पवमानाः** पवित्र करने वाली सूर्य-रश्मियां **दिवः परि** द्युलोक से और **अन्तरिक्षात्** अन्तरिक्ष से **पृथिव्याः** भूमि के **सानवि अधि** उच्च प्रदेशों पर **असृक्षत** सूर्य-ताप और मेघ-जल को बरसाती हैं ।।२।।

भावार्थ— यदि सूर्य न हो तो भूमि पर प्रकाश, ताप, वर्षा, ऋतुओं आदि का निर्माण कुछ भी न हो, सब जगह घोर अंधेरा व्यापा रहे । ऐसा अद्भुत सूर्य परमात्मा ने ही रचा है, इसलिए उसी की वह महिमा है ।।२।।

१७०१. पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः । घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रसों का वर्णन है ।

---

१. ऋ० ९।६३।२५

२. ऋ० ९।६३।२७

३. ऋ० ९।६३।२६

पदार्थ— पवमानासः पवित्र करने वाले, **आशवः** वेगगामी, **शुभ्राः** निर्मल **इन्दवः** सराबोर करने वाले ब्रह्मानन्द-रस **विश्वाः** सब **द्विषः** द्वेष-वृत्तियों को **अप घ्नन्तः** विनष्ट करते हुए **असृग्रम** अन्तरात्मा में बह रहे हैं ।।३।।

भावार्थ— जब परमात्मा की उपासना से ब्रह्मानन्द-रस स्तोता के अन्तरात्मा में आते हैं तब सब द्वेष-वृत्तियां स्वयं समाप्त हो जाती हैं और विश्व-मैत्री की भावना जाग जाती है ।।३।।

।।१७।। अथ 'तोशा' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वामित्रो गाथिनः । **देवता** इन्द्राग्नी । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१७०२. तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में इन्द्र-अग्नि नाम से ब्रह्म-क्षत्र की प्रशंसा करते हैं ।

पदार्थ— तोशा तेजस्वी वा बढ़ाने वाले, **वृत्रहणा** पाप को नष्ट करने वाले, **सजित्वाना** साथ मिलकर विजय लाभ करने वाले, **अपराजिता** पराजित न होने वाले, **वाजसातमा** बल के अतिशय दाता **इन्द्राग्नी** ब्रह्म और क्षत्र को, मैं **हुवे** बुलाता हूं ।।१।।

भावार्थ— समिष्टि रूप से राष्ट्र में और व्यष्टि रूप से व्यक्ति में विद्यमान, प्रवृद्ध, ब्रह्मबल और क्षात्रबल से राष्ट्र तथा मनुष्य बाह्य और आन्तरिक शत्रुओं को पराजित करके सदा विजयी होता है ।।१।।

१७०३. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ।।२।।[2]

द्वितीय ऋचा उत्तरार्चिक में १५७५ क्रमांक पर परमात्मा और जीवात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां ब्रह्म-क्षत्र का विषय वर्णित करते हैं ।

पदार्थ— हे **इन्द्राग्नी** ब्राह्मण-क्षत्रियो! **उक्थिनः** गुणों के प्रशंसक, **नीथाविदः** नीतिज्ञ, **जरितारः** ज्ञानवृद्ध लोग **वाम्** तुम्हारी **प्र अर्चन्ति** प्रशंसा करते हैं । मैं तुम से **इषः** अभीष्ट लाभों को **आवृणे** ग्रहण करता हूं ।।२।।

भावार्थ— मनुष्यों को चाहिए कि उत्कृष्ट ब्राह्मणों और क्षत्रियों को एकत्र करके राष्ट्र को उन्नत करें।।२।।

१७०४. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमकेन कर्मणा ।।३।।[3]

तृतीय ऋचा की व्याख्या उत्तरार्चिक में १५७६ क्रमांक पर परमात्मा और जीवात्मा के विषय में की गयी थी। यहां ब्रह्म-क्षत्र का विषय वर्णित है ।

---

१. ऋ० ३।१२।४ ।
२. ऋ० ३।१२।५, साम० १५७५ ।
3. ऋ० ३।१२।६, साम० १५७६ ।

पदार्थ– हे **इन्द्राग्नी** ब्राह्मणो और क्षत्रियो! **एकेन** अद्वितीय **कर्मणा** पुरूषार्थ से **साकम्** एक साथ, तुम दोनों **दासपत्नीः** विनाशक काम-क्रोध आदि वा अधार्मिक दुष्ट जन जिनके स्वामी हैं ऐसी **नवतिं पुरः** नव्वे शत्रु-नगरियों को **अधूनुतम्** कंपायमान कर दो ।।३।।

भावार्थ– ब्राह्मणों को विद्या तथा ब्रह्मवर्चस का प्रसार करके और क्षत्रियों को शत्रुओं से रक्षा करके राष्ट्र की उन्नति करनी चाहिए ।।३।।

।।१८।। अथ 'उप त्वा' इत्यादिकस्याष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१७०५. उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ।।१।।[1]

अगले मन्त्र में अग्नि नाम से परमात्मा को संबोधन करते हैं ।

पदार्थ– हे **सहस्कृत** आत्मबल से हृदय में प्रकट किये गये **अग्ने** अग्रनायक जगदीश्वर! **प्रयस्वन्तः** प्रयत्नवान् हम **रण्वसन्दृशम्** रमणीय़ दर्शन वाले **त्वा** आपके प्रति **गिरः** स्तुति-वाणियों को **उप ससृज्महे** उच्चारण करते हैं।।१।।

भावार्थ– परमात्मा की स्तुति के साथ मनुष्यों को प्रयत्न भी करना चाहिए, तभी अभीष्ट कामनाएं पूर्ण होती हैं ।।१।।

१७०६. उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसन्दृशः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा को कहते हैं ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! **वयम्** हम आपके उपासक **हिरण्यसन्दृशः** सोने के समान रमणीय **ते** आपकी **शर्म** शरण में **अगन्म** पहुंच गये हैं, **घृणेः** सूर्य के ताप से हटकर **छायाम् इव** जैसे छाया में पहुंचते हैं ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे सूर्य की धूप से तपे हुए सिर वाला, पसीने से तर-बतर शरीर वाला, गर्मी से व्याकुल कोई मनुष्य विश्राम के लिए वृक्ष आदि की छाया का आश्रय लेता है, वैसे ही आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विविध कष्टों से व्याकुल लोग विश्राम पाने के उद्देश्य से यदि परमात्मा की शरण में पहुंचते हैं तो वे सब दुःखों से छूटकर अत्यन्त आनन्दवान् हो जाते हैं ।।२।।

१७०७. य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ।।३।।[3]

---

१. ऋ० ६।१६।३७ ।

२. ऋ० ६।१६।३८

३. ऋ० ६।१६।३९।

अब वह परमेश्वर कैसा है जिसकी शरण में हम जाएं यह कहते हैं ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक, तेजस्वी जगदीश? **यः** जो आप **उग्रः इव** प्रचण्ड धनुर्धारी के समान **शर्यहा** वध करने योग्य काम, क्रोध आदि शत्रुओं के और व्याधि, स्त्यान आदि योग-विघ्नों के विनाशक, **तिग्मशृङ्गः न** तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्य के समान **वंसगः** चारु गति वाले तथा सेवनीय होते हुए **पुरः** शत्रु की नगरियों वा किले बन्दियों को **रुरोजिथ** तोड़-फोड़ डालते हो, ऐसे आपकी शरण में हम पहुंचते हैं।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– परमेश्वर की उपासना से बल पाकर मनुष्य सब आन्तरिक शत्रुओं तथा योग के विघ्नों को पराजित करके लक्ष्य के प्रति जागरूक होता हुआ अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त कर लेता है।।३।।

।।१९।। अथ 'ऋतावान' मित्यादिकस्यैकोनविंशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

१७०८. ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ- **ऋतावानम्** सत्यमय, वैश्वानरम् सब मनुष्यों के हितकर्ता, **ऋतस्य** जल वा धन और **ज्योतिषः** ज्योति के **पतिम्** स्वामी वा पालक जगीदश्वर से हम **अजस्रम्** अक्षय **घर्मम्** तेज वा प्रताप को **ईमहे** माँगते हैं।।१।।

भावार्थ- जो स्वयं प्रतापी, तेजस्वी और सत्यमय होता है वही दूसरों को वैसा बना सकता है।।१।।

१७०९. य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन्। ऋतूनुत्सृजते वशी ।।१।।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का कर्तृत्व वर्णित है ।

पदार्थ- **यः** जो जगदीश्वर **इदम्** इस ब्रह्मांड को **प्रतिपप्रथे** फैलाता है, और **यज्ञस्य** प्रकाश प्रदाता सूर्य के **स्वः** प्रकाश को **उत्तिरन्** बिखेरता हुआ, **वशी** जगत की व्यवस्था को चाहता हुआ **ऋतून्** वसंत, ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुओं को **उत्सृजते** रचता है, उस जगदीश्वर से हम [अजस्रं घर्मम् ईमहे] अक्षय प्रताप वा तेज माँगते हैं। [यहाँ 'अजस्रं घर्मम् ईमहे' यह अंश वाक्यपूर्ति के लिए पूर्व मन्त्र से लाया गया है] ।।१।।

भावार्थ- अहो ! जगत्पति की यह कैसी अद्भुत महिमा है कि वह सूर्य को उत्पन्न करके उसके द्वारा सारे सौरमण्डल को भली-भाँति संचालित कर रहा है ।।२।।

१७१०. अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ।।३।।[2]

अब परमात्मा के सम्राट् रूप का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– **भूतस्य** जो उत्पन्न हो चुका है उसे, और **भव्यस्य** जो भविष्य में उत्पन्न होना है उसे **कामः** इच्छाशक्ति द्वारा पञ्चभूतों से रचने वाला **अग्निः** अग्रनायक जगदीश्वर **प्रियेषु** प्रिय **धामसु** लोकों में **एकः** एक अद्वितीय **सम्राट्** चक्रवर्ती राजा होता हुआ **वि राजति** विशेष रूप से शोभा पा रहा है ।।३।।

१. अथ० ६।३६।१, ऋषिः अथर्वा ।
२. य० १२।११७, ऋषिः प्रजापतिः ।

भावार्थ– एक परमेश्वर ही सब भूत, वर्तमान और भावी पदार्थों का शिल्पी तथा सब लोकों का चक्रवर्ती सम्राट् होता हुआ ब्रह्माण्ड की सब व्यवस्था का संचालन करता है ॥३॥

इस खण्ड में भक्तिकाव्य, सूर्य-किरण, ब्रह्म-क्षत्र तथा जगदीश्वर के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ॥

अठारहवें अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ।

अठारहवें अध्याय समाप्त ।

अष्टम प्रपाठक में द्वितीय अर्ध समाप्त ॥

॥१॥ तत्र 'अग्निः प्रत्नेन' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विरूप आङ्गिरसः । **देवता** अग्निः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः॥

१७११. अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वां३ स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१॥ [1]

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से जीवात्मा का विषय कहते हैं।

पदार्थ– **कविः** मेधावी, क्रान्तद्रष्टा जीवात्मा **प्रत्नेन जन्मना** पुरातन जन्म से अर्थात् पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के संस्कार वश **स्वाम्** अपने इस जन्म में प्राप्त **तन्वम्** शरीर को **शुम्भानः** सुशोभित करता हुआ **विप्रेण** विशेषतया ज्ञान से पूर्ण करने वाले आचार्य के द्वारा **वावृधे** उन्नति प्राप्त करता है ॥१॥

भावार्थ– पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिए और नवीन कर्म करने के लिए जीव मानव-जन्म प्राप्त करता है। माता के गर्भ से उत्पन्न होकर, माता-पिता से यथायोग्य पालित और शिक्षित हो, गुरुकुल में प्रवेश पाकर, आचार्य से विद्या ग्रहण कर, कर्तव्य-अकर्तव्य जान कर, सत्यकर्म करके वह अभ्युदय और निः श्रेयस प्राप्त कर सकता है ॥१॥

१७१२. ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥२॥ [2]

अगले मन्त्र में परमेश्वर को पुकारा गया है ।

पदार्थ– मैं **अस्मिन्** इस **स्वध्वरे** शुभ अहिंसाव्रताचार वाले **यज्ञे** जीवन-यज्ञ में **ऊर्जः** आत्मबल और प्राणशक्ति को **नपातम्** न गिरने देने वाले, प्रत्युत बढ़ाने वाले, **पावकशोचिषम्** शोधक ज्योति वाले **अग्निम्** अग्रनायक परमेश्वर को **आहुवे** पुकारता हूं ॥२॥

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि वे परमात्मा की उपासना से सत्प्रेरणा लेकर अपने जीवन को पवित्र और उन्नत करें ॥२॥

---

१. ऋ० ८।४४।१२ 'जन्मना' इत्यत्र 'मन्मना' ।

२. ऋ० ८।४४।१३ ।

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
१७१३. स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा। देवैरा सत्सि बर्हिषि ।।३।।[1]

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ– **मित्रमहः** जिसका तेज हमारा मित्र बनता है ऐसे, हे **अग्ने** अग्रनायक परमेश ! **सः** वह **नः** हमारे सखा **त्वम्** आप जगदीश **शुक्रेण** पवित्र **शोचिषा** ज्योति के साथ और **देवैः** दिव्य गुणों के साथ **बर्हिषि** हमारे हृदयान्तरिक्ष में **आ सत्सि** आकर बैठो ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से मनुष्य प्रकाश को और दिव्य गुणों को प्राप्त कर सकते हैं।।३।।

।।२।। अथ 'उत्ते शुष्मासो' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य चतुर्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अवत्सारः काश्यपः। **देवता** पवमानः सोमः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः।।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
१७१४. उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः। नुदस्व याः परिस्पृधः ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में स्तुतिपूर्वक परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **अद्रिवः** किसी से विदीर्ण न किये जा सकने योग्य पवमान सोम अर्थात् पवित्रतादायक सद्गुणकर्मप्रेरक जगदीश ! **ते** आपके **शुष्मासः** बल **रक्षः** काम, क्रोध आदि छहों रिपुओं को और व्याधि, स्त्यान, संशय आदि योग-मार्ग के विघ्नों को **भिन्दन्तः** तोड़ते-फोड़ते हुए **अस्थुः** दृढ़ता से स्थित रहते हैं। **याः परिस्पृधः** जो स्पर्धाशील आन्तरिक वा बाह्य शत्रु-सेनाएं है उन्हें आप **नुदस्व** परे खदेड़ दो ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर की आराधना से मनुष्य सब आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को जीतने के लिए अपार बल, साहस और उद्बोधन प्राप्त करता है ।।१।।

३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ २ २ ३ १ २ ३ २
१७१५. अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति की गयी है।

पदार्थ– हे पवमान सोम ! हे पवित्रतादायक सर्वान्तर्यामी जगदीश! आप **अया** इस **ओजसा** बल से **निजघ्निः** काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करने वाले हो । **रथसङ्गे** मानव-देह रूप रथ की प्राप्ति होने पर **धने हिते** दिव्य ऐश्वर्य को पाने के लिए, मैं **अबिभ्युषा** निर्भय **हृदा** हृदय से, **स्तवै** आपकी स्तुति करता हूं।।२।।

भावार्थ– हार्दिक श्रद्धा से स्तुति किया गया जगदीश्वर स्तोता को आंतरिक और बाह्य शत्रुओं को विनष्ट करने के लिए बल प्रदान करके उसका उपकार करता है ।।२।।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३क २र ३ १र २र ३ १ २
१७१६. अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ।।।३।।[4]

अब अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देते हैं।

---

१. ऋ० ८।४४।१४ ।

२. ऋ० ९।५३।१ ।

३. ऋ० ९।५३।२

४. ऋ० ९।५३।३

पदार्थ— **अस्य** इस **पवमानस्य** गतिमान् पुरुषार्थी जीव के **व्रतानि** व्रत वा कर्म **दूढ्या** दुर्बुद्धि शत्रु के द्वारा **आधृषे न** दबाये नहीं जा सकते। हे मेरे अन्तरात्मन्! **यः** जो भी आन्तरिक वा बाहरी शत्रु **त्वा** तुझ पर **पृतन्यति** सेना से धावा करता है, उसे **रुज** नष्ट-भ्रष्ट कर दे ॥३॥

भावार्थ— मनुष्य के अन्तरात्मा को योग्य है कि वह प्रबोध और उद्बोधन प्राप्त करके अपनी शक्ति से सब अन्दर के और बाहर के शत्रुओं को परास्त करके देवासुर संग्राम में विजयी हो ॥३॥

१७१७. तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम्। इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥[1]

अगले मन्त्र में उपासक लोग क्या करते हैं यह कहा गया है।

पदार्थ— प्रबोध को प्राप्त जागरूक उपासक लोग **मदच्युतम्** उत्साहवर्षी, **हरिम्** पापहर्ता, **वाजिनम्** बलवान् **मत्सरम्** तृप्तिप्रद **तम्** उस अद्भुत **इन्दुम्** ब्रह्मानन्द-रस को **नदीषु** धाराओं के रूप में **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए **हिन्वन्ति** प्रेरित करते हैं॥४॥

भावार्थ— जो लोग परमात्मा की उपासना द्वारा ब्रह्मानन्द की धाराओं से अपने आत्मा को तृप्त करते है, वे धन्य हो जाते हैं ॥४॥

॥३॥ अथ 'आ मन्द्रै' रित्यादिकस्य तृतीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** विश्वामित्रो गाथिनः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बृहती। **स्वरः** मध्यमः॥

१७१८. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में २४६ क्रमांक पर) परमात्मा और राजा के आह्वान के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां जीवात्मा को उद्बोधन देते हैं।

पदार्थ— हे **इन्द्र** मेरे अन्तरात्मन्! तू **मन्द्रैः** तृप्ति देने वाले, **मयूररोमभिः** मोरों के रोमों के समान आकर्षक जिनके रोम अर्थात् विषय-ग्रहण-सामर्थ्य हैं ऐसे **हरिभिः** मन, बुदि, ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों के साथ **आयाहि** आ, अर्थात् ज्ञानक्षेत्र और कर्मक्षेत्र में उतर। आने की इच्छा वाले **त्वा** तुझे **केचित्** कोई भी बाधक शत्रु वा विघ्न **मा नियेमुः** रोक न सकें, **पाशिनः** जाल हाथ में लिए व्याध आदि **इत् न** जैसे गतिशील पक्षी आदि को जाल में रोक लेते हैं। तू **धन्वा इव** धनुर्धारी के समान **तान्** उन बाधकों को **अति इहि** लांघ जा ॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ— मनुष्यों को यह योग्य है कि वे अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर बाधक शत्रुओं वा विघ्नों को पराजित करके अपनी उन्नति करें ॥१॥

---

१. ऋ० ९।५३।४।

२. ऋ० ३।४५।१; य० २०।५३; अथ० ७।११७।१, सर्वत्र 'नियमन् विं न' इति भेदः। साम० २४६।

१७१९. वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ।।२।।[1]

अब जीवात्मा का कर्तव्य बताते हैं।

पदार्थ– **इन्द्रः** मनुष्य का आत्मा **वृत्रखादः** पापों का भक्षक, **वलंरुजः** धर्म पर पर्दा डालने वाले काम, क्रोध आदि को चकनाचूर करने वाला, **पुरां दर्मः** शत्रु की नगरियों को विदीर्ण करने वाला, **अपाम् अजः** कर्मों को गति देने वाला, **हर्योः** ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ों के **रथस्य** शरीररूप रथ का **स्थाता** अधिष्ठाता और **अभिस्वरे** देवासुरसंग्राम में **दृढा चित्** दृढ़ से दृढ़ विघ्न आदियों को **आ रुजः** चकनाचूर कर देने वाला होवे ।।२।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि वे अपने आत्मा की शक्ति को समझ कर, उसका प्रयोग करके, सब बाधाओं को उन्मूलन करके अभ्युदय और निःश्रेयस रूप लक्ष्य को प्राप्त करें ।।२।।

१७२०. गम्भीराँ उदधींरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में उपमाओं द्वारा परमात्मा का कर्म और जीवात्मा की उपलब्धि वर्णित है ।

पदार्थ– हे पवमान सोम! हे पवित्रकर्ता जगदीश्वर! **गम्भीरान्** अगाध **उदधीन् इव** समुद्रों को जैसे आप पुष्ट करते हो और **गाः इव** जैसे पृथिवी आदि लोकों को वा धेनुओं को आप पुष्ट करते हो, वैसे ही **क्रतुम्** कर्मकर्ता जीवात्मा को **पुष्यसि** पुष्ट करते हो । हे जीवात्मन्! **यवसम्** घास-चारे को **धेनवः यथा** जैसे गायें और **ह्रदम्** सरोवर को **कुल्याः इव** जैसे शुद्ध जल की नालियां प्राप्त होती हैं वैसे ही **सुगोपाः** सुरक्षा करने वाले आनन्द-रस, तुझे **प्र आशत** प्रकृष्ट रूप से प्राप्त होते हैं ।।३।।

यहां चार उपमाएं हैं, अतः उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– जगदीश्वर जैसे जलों से समुद्रों को, दूध से धेनुओं को और विविध ऐश्वर्यों से पृथिवी आदि लोकों को परिपूर्ण करते हैं, वैसे ही जीवात्मा को सद्गुणों से परिपूर्ण करते हैं । गौएं जैसे घास के पास पहुंचती हैं और छोटी-छोटी नहरें जैसे महान् जलाशय को भरने के लिए उसमें पहुंचती हैं, वैसे ही जगदीश्वर के पास से ब्रह्मानन्द-रस जीवात्मा को प्राप्त होते हैं ।।३।।

।।४।। अथ 'यथा गौरो' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** देवातिथिः काण्वः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१७२१. यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ३।४५।२; दयानन्दस्वामिना मन्त्रोऽयम् ऋग्भाष्ये यजुर्भाष्ये च राजधर्मविषये व्याख्यातः ।
२. ऋ० ३।४५।३
३. ऋ० ८।४।३; साम० २५२ ।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २५२ क्रमांक पर परमात्मा के आह्वान के विषय में की गयी थी। यहां विद्वान् गुरुजन शिष्यजनों को कह रहे हैं ।

पदार्थ– **यथा** जैसे **तृष्यन्** प्यासा **गौरः** गौर मृग **इरिणम्** मरुस्थल को **अव** छोड़कर **अपा कृतम्** जल से पूर्ण सरोवर को **एति** प्राप्त करता है, वैसे ही हे विद्यार्थी! तू **नः** हम गुरूओं से **आपित्वे** संबन्ध **प्रपित्वे** प्राप्त होने पर, हमारे पास **तूयम्** शीघ्र **आ गहि** आ जा और **कण्वेषु** हम मेधावियों के सान्निध्य में **सचा** दूसरे सहाध्यायियों के साथ मिलकर **सु पिब** भली-भांति लौकिक विद्याओं के रस का तथा अध्यात्म-विद्याओं के रस का पान कर ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे प्यासा मृग जलरहित प्रदेश को छोड़कर जलप्रचुर प्रदेश को चला जाता है, वैसे ही विद्या के प्यासे लोग मूर्खों का संग छोड़ कर विद्वानों का संग करें ।।१।।

१७२२. मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में जगदीश्वर को सम्बोधन है ।

पदार्थ– हे **मघवन्** ऐश्वर्यशाली **इन्द्र** जगत्पति परमेश्वर! **इन्दवः** भक्तिरस **सुन्वते** भक्त को **राधोदेयाय** ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए **त्वा** आपको **मन्दन्तु** प्रसन्न करें । आप **चमू** आत्मा और मनरूप कटोरों में **सुतम्** अभिषुत किये हुए **सोमम्** भक्तिरस को **आमुष्य** उत्सुकता से हर कर **अपिबः** पीते हो, **तत्** उसके बदले में **ज्येष्ठम्** अतिशय प्रशस्य और वृद्ध **सहः** बल को **दधिषे** उपासक में रख देते हो ।।२।।

भावार्थ– भक्तिरस से तृप्त परमेश्वर भक्त को पुरुषार्थ और दिव्य शक्ति प्रदान करता है ।।२।।

।।५।। अथ 'न त्वदन्यो' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१७२३. त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २४७ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी । यहां जगदीश्वर और आचार्य को संबोधन है ।

पदार्थ– हे **शविष्ठ** आत्मबल से बलिष्ठ जगदीश्वर वा आचार्य! **देवः** प्रकाशक और विद्या आदि के दाता **त्वम्** आप **अङ्ग** शीघ्र ही **मर्त्यम्** उपासक मनुष्य वा शिष्य को **प्र शंसिषः** प्रशंसा का पात्र बनाओ। हे **मघवन्** सकल ऐश्वर्यों से युक्त जगदीश्वर वा विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य! **त्वत् अन्यः** आप से भिन्न कोई **मर्डिता** मोक्ष-प्रदान वा विद्या आदि के प्रदान के द्वारा सुखदाता **न अस्ति** नहीं है । हे **इन्द्र** जगदीश्वर वा आचार्य! मैं **ते** आपके लिए **वचः** प्रार्थना-वचन **ब्रवीमि** उच्चारण कर रहा हूँ ।।१।।

---

१. ऋ० ८।४।४ ।

२. ऋ० १।८४।१९; य० ६।३७; साम० २४७ ।

जगदीश्वर वा आचार्य! मैं **ते** आपके लिए **वचः** प्रार्थना-वचन **ब्रवीमि** उच्चारण कर रहा हूँ ।।१।।

भावार्थ– परमेश्वर की उपासना करके और आचार्य के समीप शिष्य भाव से पहुंच कर मनुष्यों को सब अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करना चाहिए ।।१।।

१७२४. मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं को संबोधन किया गया है ।

पदार्थ– हे **वसो** निवासप्रद जगदीश्वर वा आचार्य! **मा** न तो **ते** आपके **राधांसि** अहिंसा, सत्य आदि ऐश्वर्य, और **मा** न ही **ते** आपकी **ऊतयः** रक्षाएं **अस्मान्** हम आपके उपासकों वा आपके शिष्यों को **कदा चन** कभी भी **आदभन्** अपनी प्राप्ति से वंचित करें । हे **मानुष** मनुष्यों के हितकर्ता! **चर्षणिभ्यः नः** हम मानवों को, आप **विश्वा च वसूनि** सभी ऐश्वर्य धन, धान्य, विद्या, दीर्घायुष्य, अभ्युदय, निःश्रेयस आदि **आ उपमिमीहि** चारों ओर से प्राप्त कराओ ।।३।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा और आचार्य का सेवन करके सब दिव्य ऐश्वर्य, सब योगविभूतियां और सब रक्षाएं, प्राप्त करें ।।२।।

इस खण्ड में जीवात्मा, परमात्मा, उपासक और गुरू-शिष्यों के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

उन्नीसवें अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।।

।।६।। अथ 'प्रतिष्या' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वामदेवो गौतमः । **देवता** उषाः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१७२५. प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में भौतिक उषा के दृष्टान्त से दिव्य उषा का वर्णन किया गया है ।

पदार्थ– प्रथम प्राकृतिक उषा के पक्ष में । **सूनरी** उत्तम नेत्री, **जनी** प्रकाश की जननी, **स्वसुः** बहिन रात्रि के **परि** समाप्तिकाल में **व्युच्छन्ती** अंधेरे को हटाती हुई, **दिवः** द्युलोक की **दुहिता** पुत्री **स्या** वह उषा **प्रति अदर्शि** पूर्व दिशा में दिखायी दे रही है ।।

द्वितीय दिव्य उषा के पक्ष में । **सूनरी** योगमार्ग में उत्तम नेतृत्व करने वाली, **जनी** मोक्ष की जननी, **स्वसुः** संसारमार्ग पर डालने वाली अविद्या की **परि** समाप्ति पर **व्युच्छन्ती** उदित होती हुई, **दिवः** प्रकाशमय सविकल्पक समाधि की **दुहिता** पुत्री-तुल्य **स्या** वह ऋतम्भरा प्रज्ञा **प्रति अदर्शि** साक्षात् अनुभव में आ रही है।।१।।

---

१. ऋ० १।८४।२० ।
२. ऋ० ४।५२।१।

यहां श्लेष और स्वभावोक्ति अलंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे प्राकृतिक उषा रात्रि के घोर अंधेरे को हटाकर भूतल पर प्रकाश उत्पन्न करती है, वैसे ही योगमार्ग में ऋतंभरा प्रज्ञा योग के विघ्नों को दूर करके, अध्यात्म-प्रसाद देती है ।।१।।

१७२६. अश्वेव चित्रारुषी माता गवमृतावरी । सखा भूदश्विनोरुषाः ।।२।।[1]

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है ।

पदार्थ– प्रथम प्राकृतिक उषा के पक्ष में । **अश्वा इव** आकाश-व्यापी बिजली के समान **चित्रा** चित्र-विचित्र रंग वाली, **अरुषी** चमकीली, **गवां माता** किरणों की जननी, **ऋतावरी** सत्य नियम वाली **उषाः** उषा **अश्विनोः** आकाश और भूमि की **सखा** सहचरी **अभूत्** हो गयी है ।।

द्वितीय दिव्य उषा के पक्ष में । **अश्वा इव** व्याप्त विद्युत् के समान **चित्रा** अद्भुत, **अरुषी** हिंसा न करने वाली, **गवां माता** अध्यात्म-रश्मियों की माता, **ऋतावरी** सत्यमयी **उषाः** ऋतम्भरा प्रज्ञा **अश्विनोः** आत्मा और मन की **सखा** सहचरी **अभूत्** हो गयी है ।।२।।

यहां श्लेष और उपमा अलंकार है ।।२।।

भावार्थ– जैसे अटल नियम से प्रतिदिन उदित होती हुई प्रकाशवती प्राकृतिक उषा आकाश-भूमि में व्याप जाती है वैसे ही योगमार्ग में सत्यमयी ऋतंभरा प्रज्ञा योगसाधक के आत्मा और मन को व्याप लेती है।।२।।

१७२७. उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ।।३।।[2]

आगे फिर प्राकृतिक और दिव्य उषा वर्णित हैं ।

पदार्थ– प्रथम प्राकृतिक उषा के पक्ष में । **उत** और, हे **उषः** उषा! तू **अश्विनोः** द्यावापृथिवी की **सखा** सहचरी **असि** है । **उत** और **गवाम्** किरणों की **माता** माता **असि** है । **उत** और, तू **वस्वः** प्रकाशरूप धन की **ईशिषे** अधीश्वरी है।।

द्वितीय दिव्य उषा के पक्ष में । **उत** और, हे **उषः** उषा के समान वर्तमान ऋतंभरा प्रज्ञा! तू **अश्विनोः** योगी के आत्मा और मन की **सखा** सहचरी **असि** है, **उत** और **गवाम्** ईश्वरीय प्रकाशों की **माता** माता **असि** है । **उत** और, तू **वस्वः** योग-समाधि रूप धन की **ईशिषे** अधिष्ठात्री है ।।३।।

यहां श्लेष अलंकार है ।।३।।

भावार्थ– जैसे प्राकृतिक उषा द्यावापृथिवी में व्याप्त होकर ज्योतिरूप धन से सबको धनवान् कर देती है, वैसे ही योगमार्ग में ऋतंभरा प्रज्ञा आत्मा और मन में व्याप्त होकर योगसिद्धियों के धन से योगियों को कृतार्थ करती है ।।३।।

---

१. ऋ० ४।५२।२
२. ऋ०४।५२।३

।।७।। अथ 'एषो उषा' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रस्कण्वः काण्वः । **देवते** अश्विनौ। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

३ २ ३ १र २र ३क २र ३ २ ३ २ ३१ २ ३२
१७२८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत् ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में १७८ क्रमांक पर पहले व्याख्या की जा चुकी है । यहां ऋतंभरा प्रज्ञा का वर्णन है ।

पदार्थ– **एषा उ** यह **अपूर्व्या** अपूर्व, **प्रिया** प्रिय **उषाः** प्रकाशमयी ऋतंभरा प्रज्ञा **दिवः** देदीप्यमान आत्मलोक से **व्युच्छति** प्रकट हो रही है। हे **अश्विनौ** उस ऋतंभरा प्रज्ञा से चमत्कृत मन और आत्मा! मैं **वाम्** तुम दोनों की **बृहत्** बहुत अधिक **स्तुषे** स्तुति करता हूं ।।१।।

भावार्थ– जब योगी के मानस आकाश में ऋतंभरा प्रज्ञारूप दिव्य उषा प्रकट होती है तब शरीर में स्थित आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि सभी दिव्य ज्योति से प्रदीप्त हो जाते हैं।।१।।

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१७२९. या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा।।२।।[2]

अगले मन्त्र में मन और आत्मा के गुण-कर्मों का वर्णन है ।

पदार्थ– **या** जो मन-आत्मा रूप अश्वीयुगल **दस्रा** दोषों को नष्ट करने वाले, **सिन्धुमातरा** आनन्दस्राविणी जगदम्बा जिनकी माता है ऐसे, **रयीणाम्** सत्य, अहिंसा आदि वा स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य आदि एश्वर्यों को **मनोतरा** अतिशय दीप्त करने वाले, **देवा** बल के दाता और **धिया** प्रज्ञा तथा कर्म से **वसुविदा** योगसिद्धि रूप ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले हैं, उनकी मैं **स्तुषे** स्तुति करता हूं। [यहां 'स्तुषे' पद पूर्व मन्त्र से लिया गया है] ।।२।।

भावार्थ– मन और आत्मा को साधने से दोषों का क्षय, स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य, बल, सत्य-अहिंसा आदि ऐश्वर्य और योगसिद्धियां प्राप्त होती हैं।।२।।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१७३०. वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि। यद्वां रथोविभिष्पतात् ।।३।।[3]

आगे मन और आत्मा का महत्त्व कहा गया है ।

पदार्थ– हे मन और आत्मा रूप अश्वी-युगल ! **वाम्** तुम दोनों के **ककुहासः** महान् स्तोत्र **वच्यन्ते** गान किये जाते हैं, **यत्** क्योंकि **जूर्णायाम्** वृद्ध **विष्टपि** **अधि** अवस्था में भी **विभिः** इन्द्रिय-रूप अश्वों द्वारा **वाम्** तुम्हारा **रथः** शरीररूप रथ **पतात्** चलता है ।।३।।

भावार्थ– वृद्धावस्था में भी जो शरीर भली भांति कार्य करता है वह सब प्राण-अपान सहित मन और आत्मा का ही प्रताप है ।।३।।

।।८।। अथ 'उषस्तच्चित्र' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः। **देवता** उषाः । **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ।।

---

१. ऋ० १।४६।१ । साम० १७८, देवता इन्द्रः।
२. ऋ० १।४६।२ ।
३. ऋ० १।४६।३ ।

१७३१. उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१॥[१]

प्रथम मन्त्र में उषा नाम द्वारा जगदम्बा से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **वाजिनीवति** विवेकपूर्ण क्रिया वाली **उषः** तेजोमयी जगन्माता ! तू **अस्मभ्यम्** हमारे लिए **तत्** वह प्रसिद्ध **चित्रम्** अद्भुत भौतिक तथा दिव्य ऐश्वर्य **आ भर** ला, **येन** जिससे, हम **तोकं च तनयं च** पुत्र और पौत्र को **धामहे** परिपुष्ट करें ॥१॥

भावार्थ– उषा के समान तेजस्विनी जगन्माता जगत् की व्यवस्था के लिए सब क्रियाओं को करती हुई अपनी सन्तानों को सब आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्य प्रदान करती हुई सुखकारिणी होती है ॥१॥

१७३२. उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥२॥[२]

आगे फिर वही विषय कहा गया है ।

पदार्थ– गोमति गौओं और दिव्य प्रकाशों वाली, **अश्वावति** घोड़ों और प्राणबलों वाली, **विभावरि** ज्योतिर्मयी, **सूनृतावति** प्रिय, सत्य, मधुर वेदवाणी वाली, **उषः** हे जगन्माता ! तू **अद्य** आज **इह** इस हमारे जीवन में **अस्मे** हमारे लिए **रेवत्** दिव्य ऐश्वर्य के साथ उदित होती हुई **व्युच्छ** तमोगुण की अधिकता का निवारण कर दे ॥२॥

भावार्थ– जैसे ज्योतिर्मयी उषा रात्रि के अंधकार को हटाती है, वैसे ही जगन्माता स्तोताओं के मानस-पटल से तमोगुण के साम्राज्य को दूर करके उन्हें सत्त्वगुण की प्रधानता वाला कर देती है ॥२॥

१७३३. युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥३॥[३]

अगले मन्त्र में फिर जगदीश्वरी मां से प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– हे **वाजिनीवति** प्रशस्त क्रिया वाली **उषः** उषा के समान तेजोमयी जगन्माता! तू **अद्य** आज **अरुणान्** तेजस्वी **अश्वान्** इन्द्रिय-रूप घोड़ों को **युङ्क्ष्व हि** ज्ञान के ग्रहण और कर्मों के करने में नियुक्त कर । **अथ** तदनन्तर **नः** हमारे लिए **विश्वा** सब **सौभगानि** सौभाग्य **आवह** प्राप्त करा ॥३॥

भावार्थ– वही माता श्रेष्ठ मानी जाती है जो सन्तान को ज्ञान और कर्म में प्रेरित करे, क्योंकि उसी से सौभाग्य की वृद्धि होती है ॥३॥

॥९॥ अथ 'अश्विना' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः । **देवते** अश्विनौ । **छन्दः** उष्णिक् । **स्वरः** ऋषभः ॥

१७३४. अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग् रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१॥[४]

---

१. ऋ० १।९२।१३; यजु० ३४।३३ ।
२. ऋ० १।९२।१४ ।
३. ऋ० १।९२।१५।
४. ऋ० १।९२।१६ ।

प्रथम मन्त्र में प्राण-अपान का विषय कहते हैं।

पदार्थ– हे **दस्रा** दोषों का क्षय करने वाले **अश्विना** शरीर में व्याप्त प्राणापानो! **अस्मत्** हमारा **वर्तिः** घर **आ** चारों ओर से **गोमत्** धेनुओं से युक्त, और **हिरण्यवत्** सुवर्ण आदि धनों से युक्त होवे, इस हेतु से तुम **समनसा** मन से संयुक्त होकर **रथम्** हमारे शरीर-रूप रथ को **अर्वाक्** अनुकूल रूप में **नियच्छतम्** नियन्त्रित करो।।१।।

भावार्थ– देह के स्वस्थ होने पर ही पुरूषार्थ करके गाय, सुवर्ण आदि धन प्राप्त किये जा सकते हैं और स्वास्थ्य प्राप्त करने का प्राणायाम मुख्य साधन है ।।१।।

१७३५. एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी। उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में प्राणायाम का विषय है।

पदार्थ– **उषर्बुधः** जो उषा-काल में बोध प्राप्त करते हैं वे लोग **सोमपीतये** सुख, स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य, शान्ति आदि की रक्षा के लिए **इह** इस शरीर में **देवा** गमन-आगमन करने वाले, **मयोभुवा** सुख देने वाले **दस्रा** दोषों को क्षीण करने वाले, **हिरण्यवर्तनी** शारीरिक और मानसिक तेज को देने वाले प्राण-अपान रूप अश्विनों को **आ वहन्तु** लायें, अर्थात् प्राणायाम को साधें ।।२।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि योग के अङ्ग प्राणायाम के द्वारा सब शारीरिक व मानसिक दोषों को जलाकर, योगसिद्धि प्राप्त करके अभ्युदय और निःश्रेयस को सिद्ध करें।।२।।

१७३६. यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ।।३।।[2]

आगे फिर उसी विषय को कहते हैं।

पदार्थ– हे **अश्विनौ** जीवन में व्याप्त प्राणापानो! **यौ** जो तुम दोनों **इत्था** सचमुच **जनाय** योगसाधक मनुष्य के लिए **दिवः** तेजस्वी जीवात्मा की **श्लोकम्** स्तुतियोग्य **ज्योतिः** ज्योति **चक्रथुः** उत्पन्न करते हो, वे **युवम्** तुम दोनों **नः** हमें **ऊर्जम्** बल **आवहतम्** प्राप्त कराओ ।।३।।

भावार्थ– प्राणायाम द्वारा प्रकाश पर पड़े हुए आवरण के क्षय से ज्योति की प्राप्ति और आत्मा तथा प्राण के बल की प्राप्ति होने पर धारणाओं में मन की योग्यता हो जाती है ।।३।।

इस खण्ड में प्राकृतिक और दिव्य उषा, ऋतंभरा प्रज्ञा, आत्मा-मन, जगदम्बा और प्राण-अपान के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

उन्नीसवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त।

।।१०।। अथ 'अग्निं त' मित्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसुश्रुत आत्रेयः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** पङ्क्तिः। **स्वरः** पञ्चमः ।।

१७३७. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।१।।[3]

१. ऋ० १।९२।१८।
२. ऋ० १।९२।१७
३. ऋ० ५।६।१, य० १५।४१; साम० ४२५।

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४२५ क्रमांक पर व्याख्यात हो चुकी है । यहां अग्नि नाम से जगदीश्वर का परिचय प्रस्तुत करते हैं ।

पदार्थ— मैं **अग्निम्** अग्नि नामक जगदीश्वर **तं मन्ये** उसे मानता हूं **यः वसुः** जो धर्मात्माओं को निवास देने वाला है, **अस्तं यम्** शरण-रूप जिसके पास **धेनवः** दुधारू गायें **यन्ति** मातृत्व की प्राप्ति के लिए पहुंचती हैं, **अस्तम** शरण-रूप जिसके पास **आशवः** शीघ्रगामी **अर्वन्तः** घोड़े **यन्ति** वेग की प्राप्ति के लिए पहुंचते हैं, **अस्तम्** शरण-रूप जिसके पास **नित्यासः** अनादि और अनन्त **वाजिनः** जीवात्मा **यन्ति** बल के लिए पहुंचते हैं। हे अग्ने जगदीश्वर! आप **स्तोतृभ्यः** स्तोताओं को, आपके गुण-कर्म-स्वभाव का कीर्तन करने वाले मनुष्यों को **इषम्** अभीष्ट अभ्युदय और निःश्रेयस रूप फल **आ भर** प्रदान करो ॥१॥

भावार्थ— सभी अपनी-अपनी शक्ति को प्राप्त करने के लिए ज़िस की शरण में पहुंचते हैं वह परमेश्वर ही मुख्यतः अग्नि शब्दवाच्य है ॥१॥

१७३८. अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं सु प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥[1]

अब यह कहते हैं कि वह अग्नि नामक जगदीश्वर क्या करता है ।

पदार्थ— विश्वचर्षणिः विश्व का द्रष्टा **अग्निः हि** अग्निशब्दवाच्य जगदीश्वर ही **विशे** प्रजा को **वाजिनम्** बलवान् प्राण **ददाति** देता है । **अग्निः** वह अग्निशब्दवाच्य जगदीश्वर ही **सु आभुवम्** भली भांति शरीर में जन्म ग्रहण किये हुए जीव को **राये** ऐश्वर्य के लिए प्रेरित करता है । । **प्रीतः** शुभ कर्मों से प्रसन्न हुआ **सः** वह अग्नि जगदीश्वर **वार्यम्** वरणीय उपासक को **याति** प्राप्त होता है । हे जगदीश! **स्तोतृभ्यः** आपके गुण-कर्म-स्वभाव की स्तुति करने वाले मनुष्यों को आप **इषम्** अभीष्ट अभ्युदय और निःश्रेयसरूप फल **आ भर** प्रदान करो ॥२॥

भावार्थ— कोई सम्राट् जैसे प्रजाओं को शुभ कर्मों में प्रेरित करता हुआ उन्हें सुख और ऐश्वर्य प्रदान करता है, वैसे ही जगदीश्वर उपासकों को अभ्युदय और मोक्षरूप फल देकर उनका कल्याण करता है ॥२॥

१७३९. सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥[2]

आगे फिर अग्नि नामक जगदीश्वर का वर्णन करते हैं ।

पदार्थ— सः वही **अग्निः** अग्निशब्दवाच्य जगदीश्वर है, **यः** जो **वसुः** सबको ढकने वाला अर्थात् सर्वव्यापक है, उसकी मैं **गृणे** स्तुति करता हूं, **यम्** जिसके पास **धेनवः** स्तोताओं की वाणियां **समायन्ति** पहुंचती हैं, **रघुद्रुवः** वेगगामी **अर्वन्तः** पृथिवी, चन्द्र आदि लोक **सम्** पहुंचते हैं, **सुजातासः** सुप्रसिद्ध

---

१. ऋ० ५।६।३।
२. ऋ० ५।६।२।

सूरयः विद्वान् लोग **सम्** पहुंचते हैं। हे जगदीश्वर! आप **स्तोतृभ्यः** आपके गुण-कर्म-स्वभाव की स्तुति करने वालों को **इषम्** अभीष्ट अभ्युदय और निःश्रेयस रूप फल **आ भर** प्रदान करो ।।३।।

भावार्थ– गायें, घोड़े, मनुष्य, सूर्य, चांद, तारे, पृथिवी, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि लोक, नदियां, पहाड़, समुद्र, झरने, वृक्ष, लताएं सभी अपने-अपने गुण जिससे पाते हैं वही अग्निशब्दवाच्य जगदीश्वर है।।३।।

।।११।। अथ 'महे नो' इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सत्यश्रवा आत्रेयः । **देवता** उषाः । **छन्दः** पङ्क्तिः। **स्वरः** पञ्चमः ।।

३१ २ ३ १ २३ १ २ ३२ ३ १ २
१७४०. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र३ १ २
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४२१ क्रमांक पर अध्यात्म प्रभा के विषय में की गयी थी । यहां जगन्माता को संबोधन है ।

पदार्थ– हे **सुजाते** सुप्रसिद्ध, **अश्वसूनृते** व्यापक प्रिय सत्य वेदवाणी वाली **उषः** उषा के समान जगाने वाली जगन्माता! **दिवित्मती** दिव्य प्रकाश से देदीप्यमान तू **नः** हमें **महे राये** महान् अभ्युदय और मोक्ष रूप ऐश्वर्य के लिए **अद्य** आज भी **बोधय** वैसे ही जगा **यथा चित्** जैसे, तू **सत्यश्रवसि** सच्ची कीर्ति वाले, **वाय्ये** खड्डी में धागों के समान फैलाने योग्य हमारे पूर्व जीवन में **नः** हमें **अबोधयः** जगाती रही है।।१।।

भावार्थ– जैसे प्राकृतिक उषा सब प्राणियोंको और कोई माँ अपनी सन्तानों को जगाती और श्रेष्ठ कर्मों में लगाती है, वैसे ही जगदीश्वरी मां हम अबोधों को जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त अपने कर्तव्य-पालन के लिए दिन-रात जगाती रहे, जिससे हम कीर्ति, अभ्युदय और मोक्ष प्राप्त करें ।।१।।

१ २ ३१ २ ३१र २र
१७४१. या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र३ १ २
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में फिर जगन्माता से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **सुजाते** सुप्रसिद्ध, **अश्वसूनृते** व्यापक प्रिय सत्य वेदवाणी वाली **दिवः दुहितः** दिव्य प्रकाश को दुह कर देने वाली जगन्माता ! **या** जो प्रसिद्ध तू **शौचद्रथे** अतिशय पवित्र आत्मा रूप रथ वाले, **सुनीथे** उत्तम नेतृत्व करने वाले मनुष्य में **व्यौच्छः** प्रकाश देती है, **सा** वह तू **सहीयसि** अतिशय सहनशील, **सत्यश्रवसि** सच्ची कीर्ति वाले **वाय्ये** खड्डी में धागों के समान फैलाने योग्य मेरे जीवन में भी **व्युच्छ** विवेकख्याति का प्रकाश कर।।२।।

---

१. ऋ० ५।७९।१; साम० ४२१ ।
२. ऋ० ५।७९।२ ।

भावार्थ– जो पवित्र आचरण वाले नेता लोग होते हैं उनमें पवित्रता और नेतृत्व का बल जगन्माता ही निहित करती है, वैसे ही वह हमारा भी जीवन पवित्र करके, विवेकख्याति का प्रकाश उत्पन्न कर हमें मोक्ष का अधिकारी बना देवे ।।२।।

१७४२. सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ।।३।।[1]

आगे फिर उसी विषय को कहते हैं।

पदार्थ– हे **सुजाते** सुप्रसिद्ध, **अश्वसूनृते** व्यापक प्रिय सत्य वेदवाणी वाली, **दिवः दुहितः** दिव्य प्रकाश को दुह कर देने वाली जगन्माता ! **आभरद्वसुः** दिव्यधनों को लाने वाली **सा** वह तू **अद्य** आज **नः** हमारे लिए **व्युच्छ** तमोगुण वा अविद्या के अंधकार को दूर करके विवेकख्याति का प्रकाश फैला, **या उ** जो तू **सहीयसि** अति सहनशील, **सत्यश्रवसि** सत्य यश वाले, **वाय्ये** सत्संग के लिए प्राप्तव्य किसी महापुरुष में **व्यौच्छः** प्रकाश उत्पन्न करती है ।।३।।

भावार्थ- जगदीश्वरी मां जैसे महापुरुषों के हृदय में प्रकाश उत्पन्न करती है, वैसे ही हमें भी दिव्य प्रकाश अनुगृहीत करे ।।३।।

।।१२।। अथ 'प्रति प्रियतम' मित्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अवस्युरात्रेयः। **देवते** अश्विनौ। **छन्दः** पङ्क्तिः। **स्वरः** पञ्चमः।।

१७४३. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४१८ क्रमांक पर अध्यात्म विषय तथा शिल्प विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहां योगाभ्यास का विषय कहते हैं।

पदार्थ– हे **अश्विनौ** योगशास्त्र के अध्यापक और योगक्रिया के प्रशिक्षक ! **प्रियतमम्** अतिशय प्रिय, **वृषणम्** बलवान्, **वसुवाहनम्** निवासक मन, प्राण, इन्द्रियों आदि से चलाये जाने वाले **रथम्** आत्मा से अधिष्ठित शरीर-रथ को **प्रति** लक्ष्य करके अर्थात् अध्यात्म और शरीर योग का प्रशिक्षण देने के लिए **स्तोता** तुम्हारा प्रशंसक **ऋषिः** तत्त्वदर्शी आचार्य **स्तोमेभिः** प्रशंसा वचनों से **वाम्** तुम दोनों को **प्रतिभूषति** अलंकृत कर रहा है अर्थात् तुम्हारी प्रशंसा कर रहा है। हे **माध्वी** प्राणों की मधुविद्या जानने वालो ! तुम **मम** मुझ योग-प्रशिक्षण चाहने वाले की **हवम्** पुकार को **श्रुतम्** सुनो ।।१।।

भावार्थ– जो योग-प्रशिक्षण पाने के इच्छुक हों उन्हें चाहिए कि वे योगकला में कुशल, प्राणविद्या के ज्ञाता योगशास्त्र पढ़ाने वाले और योग-क्रियाओं का प्रशिक्षण देने वाले के पास जाकर अष्टांग योग की विधि से योगाभ्यास करके सब दुःखों से मुक्ति प्राप्त करें ।।१।।

---

१. ऋ० ५/७९/३।
२. ऋ० ५/७५/१, साम० ४१८।

१७४४. अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में फिर योगाभ्यास का विषय है ।

पदार्थ– हे **अश्विना** योग के अध्यापक और योग-क्रिया के प्रशिक्षक ! तुम दोनों **अत्यायातम्** विघ्नों को दूर करके हमें योग सिखाने के लिए आओ । मैं भी योग सीखने लिए **सना** सदा **विश्वाः** सब बाधाओं को **तिरः** तिरस्कृत कर देता हूं । हे **दस्रा** योग-विघ्नों को नष्ट करने वाले, **हिरण्यवर्तनी** प्रशस्त मार्ग का अवलंबन करने वाले, **सुषुम्णा** उत्कृष्ट सुख देने वाले, **सिन्धुवाहसा** ज्ञान की नदियों को बहाने वाले, **माध्वी** प्राणों की मधुविद्या जानने वाले योग के अध्यापक और योग-प्रशिक्षको ! तुम दोनों **मम** मुझ योग-जिज्ञासु की **हवम्** पुकार को **श्रुतम्** सुनो ।।२।।

भावार्थ– वे ही योग के अध्यापक और योग-प्रशिक्षक प्रशस्त माने जाते हैं जो योगमार्ग में आये हुए व्यादि, स्त्यान, संशय, आलस्य आदि विघ्नों को सरल विधि से दूर करना सिखाते हैं और मधुविद्या नामक प्राणविद्या को देने में तथा अष्टांग योग के प्रशिक्षण में चतुर होते हैं ।।२।।

१७४५. आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ।।३।।[2]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ– हे **अश्विना** योग शास्त्र के अध्यापक और योग-विधियों के प्रशिक्षक ! **रत्नानि** योगसिद्धि के रमणीय ऐश्वर्यों को **बिभ्रतौ** धारण करने वाले **युवम्** तुम दोनों **नः** हम योग-जिज्ञासुओं के पास **आगच्छतम्** आओ । हे **रुद्रा** रोदक योग-विघ्न आदि को दूर करने वाले, **हिरण्य-वर्तनी** तेजस्वी मार्ग का अवलंबन करने, वाले, **जुषाणा** प्रीति करने वाले **वाजिनीवसु** योगाभ्यास-क्रिया ही जिनका धन है ऐसे, **माध्वी** मधुर प्राणविद्या को जानने वाले योगाध्यापक और योगप्रशिक्षको ! तुम दोनों **मम** मुझ योग-जिज्ञासु की **हवम्** पुकार को **श्रुतम्** सुनो ।।३।।

भावार्थ– वे ही योगाध्यापक और योग-प्रशिक्षक योगविद्या देने में सफल होते हैं जो स्वयं योग-सिद्धियों से युक्त और योगविद्या के धुरंधर होते हैं ।।३।।

इस खण्ड में जगदीश्वर, जगन्माता और योगाभ्यास के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

उन्नसीवें अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।।

---

१. ऋ० ५।७५।२, 'सुषुम्ना' इति भेदः ।

२. ऋ० '।७५।३ ।

।।१३।। अथ 'अबोध्यग्निः' इत्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषि** बुधगविष्ठिरावात्रेयौ। **देवता** अग्निः। **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २
१७४६. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ १
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ७३ क्रमांक पर यज्ञ और परमात्मा के विषय में हो चुकी है । यहां यज्ञाग्नि के वर्णन द्वारा जीवात्मा-परमात्मा के विषय की सूचना दी गयी है ।

पदार्थ— **धेनुम् इव** दुधारु गाय के समान **आयतीम्** आती हुई **उषासम् प्रति** उषा को लक्ष्य करके **जनानाम्** यजमानों की **समिधा** समिधाओं के होम से **अग्निः** यज्ञाग्नि **अबोधि** प्रबुद्ध हुआ है । **वयाम्** शाखा को **प्र उज्जिहानाः** ऊपर उठाते हुए **यह्वाः इव** बड़े-बड़े वृक्षों के समान **भानवः** अग्नि-ज्वलाएं **नाकम् अच्छ** सूर्य की ओर **प्र सस्रते** उठ रही हैं ।।१।।

यहां स्वभावोक्ति और उपमा अलंकार हैं ।।१।।

भावार्थ— जैसे उषा के आने पर यज्ञाग्नि सूर्य की ओर उठती है, वैसे ही उपासकों की आत्मा रूप अग्नि परमात्मा की ओर उठती है ।।१।।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ २ ३ २ ३१ २ ३ १२
१७४७. अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३१र २र ३ १२
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ।।२।।[2]

आगे फिर उसी विषय को कहते हैं।

पदार्थ— **होता** होम के साधन अग्नि ने **यजथाय** यज्ञ करने के लिए **देवान्** विद्वान् यजमानों को **अबोधि** जगा दिया है । **प्रातः** प्रभात में **सुमनाः** मनों को शुभ बनाने वाली **अग्निः** यज्ञाग्नि **ऊर्ध्वः** ऊर्ध्वोन्मुख **अस्थात्** स्थित हो गयी है । **समिद्धस्य** प्रज्वलित हुए इस यज्ञाग्नि का **रुशत्** चमकता हुआ **पाजः** रूप **अदर्शि** दिखायी दे रहा है । **महान्** महान् **देवः** प्रकाशक अग्नि ने **तमसः** अंधकार से **निरमोचि** छुड़ा दिया है ।।२।।

इस मन्त्र में भी स्वभावोक्ति अंलकार है ।।२।।

भावार्थ— जैसे प्रज्वलित, ऊंची ज्वालाओं वाली, चमकती हुई यज्ञाग्नि अंधेरे से छुड़ाती है, वैसे ही देदीप्यमान ऊर्ध्वयात्री, तेजस्वी आत्मा मन-बुद्धि आदि को तमोगुण से छुड़ाता है ।।२।।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २३ २
१७४८. यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
१र २र ३ १ २ ३ २ ३ ३१ २
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ।।३।।[3]

---

१. ऋ० ५।१।१; य० १५।२४; साम० ७३। अथ० १३।२।४६, ऋषिः ब्रह्मा, देवता रोहित आदित्यः ।
२. ऋ० ५।१।२।
३. ऋ० ५।१।३ ।

अगले मन्त्र में उपास्य-उपासक का विषय है ।

पदार्थ– **यत्** जब **ईम्** यह उपासक **गणस्य** स्तुति-समूह की **रशनाम्** श्रृंखला को **अजीगः** ध्वनित करता है, तब **शुचिः** पवित्र और देदीप्यमान **अग्निः** परमेश्वर **शुचिभिः** पवित्र और देदीप्यमान **गोभिः** तेजों से **अङ्क्ते** उसे प्रकाशित करता है । **आत्** तदनन्तर **वाजयन्ती** उपासक को बलवान् करती हुई **दक्षिणा** आत्मसमर्पण की क्रिया **युज्यते** प्रवृत्त होती है । **ऊर्ध्वः** सर्वोन्नत जगदीश्वर **जुहूभिः** वाणियों से **उत्तानाम्** उच्चारण की हुई स्तुति को **अधयत्** पान करता है ।।३।।

भावार्थ– उपासक के हृदय से निकली हुई पवित्र स्तुति को जगदीश्वर अवश्य स्वीकार करता है और उपासक को कृतकृत्य कर देता है ।।३।।

।।१४।। अथ 'इदं श्रेष्ठ' मित्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** कुत्स आङ्गिरसः । **देवता** उषाः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१७४९. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ।।१।।[1]

अब उषा के दृष्टान्त से आध्यात्मिक प्रभा का वर्णन करते हैं ।

पदार्थ– **इदम्** यह **ज्योतिषाम्** अग्नि, विद्युत् आदि ज्योतियों में **श्रेष्ठम्** श्रेष्ठ **ज्योतिः** ज्योति उषा **आगात्** आयी है । **चित्रः** अद्भुत **विभ्वा** व्यापक **प्रकेतः** प्रकाश **अजनिष्ट** उत्पन्न हो गया है । **यथा** जिस प्रकार **प्रसूता** उत्पन्न यह उषा **सवितुः** सूर्य के **सवाय** जन्म के लिए आकाश को खाली कर देती है, **एवा** इसी प्रकार **रात्रि** रात्रिने **उषसे** उषा के जन्म के लिए **योनिम्** आकाश को **आरैक्** खाली कर दिया है ।।१।।

यहां उपमा और स्वभावोक्ति अलंकार हैं। 'ज्योति' की आवृत्ति में यमक और 'सवि, सवा' में छेकानुप्रास है । प्राकृतिक उषा के वर्णन से आध्यात्मिक उषा की व्यंजना हो रही है ।।१।।

भावार्थ– जैसे रात्रि के अंधेरे को समाप्त करके ज्योतिष्मती उषा आकाश में प्रकट होती है और अपने से अधिक ज्योतिष्मान् सूर्य को प्रकट करती है, वैसे ही अविद्या के घोर अंधेरे को चीर कर ज्योतिष्मती आत्म-प्रभा प्रकट होकर अपने से अधिक ज्योतिर्मयी परमात्म-प्रभा को प्रकट करती है ।।१।।

१७५०. रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में रात्रि और उषा के वर्णन द्वारा अपरा और पराविद्या का प्रकाश किया गया है ।

पदार्थ– **रुशद्वत्सा** जिसका चमकीला सूर्य रूप बछड़ा है ऐसी, **रुशती** लाल वर्ण वाली, **श्वेत्या** उज्ज्वल उषा **आगात्** आयी है । **कृष्णा** काली रात्रि ने **अस्याः** इस उषा के **सदनानि** सदनों को **आरैक् उ** खाली कर दिया है । ये रात्रि और उषा **समानबन्धू** सूर्य रूप समान बन्धु वाली, **अमृते** प्रवाह रूप से अमर, **अनूची** एक दूसरे के बाद आने वाली, **द्यावा** अपने-अपने प्रकाश से प्रकाशित, **वर्णम्** अपने-अपने रूप को **आमिनाने** एक दूसरे में प्रविष्ट कराने वाली होकर **चरतः** गगन-प्रागंण में विचर रही हैं ।।२।।

१. ऋ० १।११३।१, 'सवायँ एवा' इति भेदः ।
२. ऋ० १।११३।२।

यहां स्वभावोक्ति अलंकार है । उषा और रात्रि में काली-गोरी दो बहिनों के व्यवहार का समारोप होने से समासोक्ति भी है । दोनों का अंगाङ्गि भाव संकर है । उषा और रात्रि के वर्णन से परा और अपरा विद्या का अर्थ भी ध्वनति हो रहा है ।।२।।

भावार्थ– जैसे रात्रि के बाद चमकीले सूर्य-रूप बछड़े वाली उषा आती है, वैसे ही अपरा विद्या के अनन्तर ज्योतिर्मय ब्रह्म-रूप बछड़े वाली परा विद्या आती है । रात्रि और उषा के समान ये दोनों विद्याएं भी मनुष्यों का कल्याण करने वाली हैं ।।२।।

१७५१. समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ।।३।।[1]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– स्वस्रोः रात्रि और उषारूप इन दोनों बहिनों का **समानः** एक ही **अनन्तः** अनन्त **अध्वा** मार्ग है । **तम्** उस आकाश-रूप मार्ग पर **देवशिष्टे** जगदीश्वर के अनुशासन में रहती हुई **अन्यान्या** एक दूसरी की गलबहियां लेकर **चरतः** विचर रही हैं। ये **सुमेके** भली-भांति नियमों में बंधी हुई, **विरूपे** काले-गोरे विभिन्न रूपों वाली, और **समनसा** समान मन वालियों जैसी **नक्तोषासा** रात्रि और उषा **न मेथेते** एक-दूसरी की हिंसा नहीं करतीं, **न तस्थतुः** न कार्य से विरत होती हैं, प्रत्युत सृष्टि से लेकर विश्राम -प्रदान और प्रकाश प्रदान-रूप अपने-अपने कार्य में संलग्न हैं ।।३।।

यहां रात्रि और उषा में बहिनों का आरोप होने से रूपक अलंकार है । 'समनसा' में लुप्तोपमा है।।३।।

भावार्थ– रात्रि और उषा के समान अपरा और परा विद्या को भी मनुष्य यदि सामञ्जस्य पूर्वक ग्रहण करें तो निश्चय ही अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो सकती है ।।३।।

।।१५।। अथ 'आ भात्यग्नि' इत्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** आत्रिर्भौमः । **देवते** अश्विनौ । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१७५२. आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में प्राणायाम का वर्णन है ।

पदार्थ– अग्निः यज्ञाग्नि **आ भाति** आभासित हो रही है, **उषसाम्** उषाओं की **अनीकम्** किरण-सेना भी **आ भाति** आभासित हो रही है । **विप्राणाम्** मेधावी उपासकों की **देवयाः** परमात्माराधना की इच्छुक **वाचः** वाणियां **उद् अस्थुः** उठ रही हैं। हे **रथ्या** शरीर-रथ को चलाने वाले **अश्विना** प्राणापानो! तुम दोनों **अर्वाञ्चा** हमारे अभिमुख होते हुए **नूनम्** निश्चय ही **इह** यहां **पीपिवांसम्** समृद्ध **घर्मम्** प्रातःकालीन ब्रह्मयज्ञ के **अच्छ** प्रति **आ यातम्** आओ ।।

१. ऋ० १।११३।३।
२. ऋ० ५।७६।१।

भावार्थ— उषाकाल में स्वच्छ प्राभातिक वायु में ब्रह्मयज्ञ से किया गया प्राणायाम अपूर्व तेज, जागृति, स्फूर्ति, आरोग्य और बल प्रदान करता है ॥१॥

१७५३. न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में प्राणापान का महत्व वर्णित है ।

पदार्थ— **उपस्तुता** महत्त्व-वर्णन द्वारा प्रशंसा किये गये, **नूनम्** निश्चय ही **इह** इस शरीर में **अन्ति** समीप होकर **गमिष्ठा** अतिशय गमन-आगमन करने वाले **अश्विना** प्राणापान **संस्कृतम्** संस्कृत जीवन-यज्ञ की **न प्र मिमीतः** हिंसा नहीं करते हैं। **दिवा अभिपित्वे** दिन के प्राप्त होन पर अर्थात् प्रातःकाल **अवसा** रक्षा के साथ **आगमिष्ठा** आने वाले प्राणापान **अवर्तिम्** आधि, व्याधि, दुर्गति, दुर्बलता आदि को **प्रति** रोक कर **दाशुषे** हवि देने वाले अग्निहोत्री के लिए **शम्भविष्ठा** अतिशय सुख देने वाले होते हैं॥२॥

भावार्थ— भली भांति सेवित प्राणापान रोग आदि के पाशों से मनुष्य का उद्धार करके उसे दीर्घायु करते हैं॥२॥

१७५४. उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्य्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥[2]

आगे फिर प्राणापान का विषय है ।

पदार्थ— हे **अश्विना** प्राणापानो ! तुम **अह्नः** दिन के **सङ्गवे** गोदोहनकाल में अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त में, **प्रातः** प्रातः-काल में, **मध्यन्दिने** मध्याह्न में **उत** और **सूर्यस्य** सूर्य के **उदिता** अस्त होन के काल में, **दिवा** दिन में और **नक्तम्** रात्रि में **शन्तमेन** अतिशय सुखदायक **अवसा** रक्षा के साथ **आयातम्** आओ। **इदानीम्** इस समय **पीतिः** मृत्यु **न आ ततान** अपना फन्दा न फैलाये, अर्थात् हमारा वध न करे ॥३॥

भावार्थ— विधिपूर्वक प्रातः-सायं किया गया प्राणायाम दिन-रात सब कालों में कष्ट और मृत्यु से प्राणायाम करने वाले की रक्षा करता है ॥३॥

इस खण्ड में याज्ञाग्नि, परमात्मा, उपास्य-उपासक, उषा आध्यात्मिक प्रभा, रात्रि-उषा, अपरा-परा विद्या तथा प्राणापान के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति हैं॥

उन्नीसवें अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त ॥

॥१६॥ अथ 'एता उ' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोतमो राहूगणः। **देवता** उषाः। **छन्दः** जगती। **स्वरः** निषादः ॥

१७५५. एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥[3]

---

१. ऋ० ५।७६।२।
२. ऋ० ५।७६।३।
३. ऋ० १।९२।१।

उषाओं का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– **एताः उ** इन **त्याः** उन **उषसः** उषाओं ने **केतुम्** प्रज्ञान को **अक्रत** उत्पन्न कर दिया है। ये **रजसः** अंतरिक्षलोक के **पूर्वे अर्धे** पूर्व के आधे भाग में **भानुम्** प्रकाश को **अञ्जते** व्यक्त कर रही हैं। **धृष्णवः** शत्रुओं को धर्षण करने वाले योद्धा लोग **आयुधानि इव** जैसे शस्त्रास्त्रों को चमकाते हैं, वैसे ही भूप्रदेशों को **निष्कृण्वानाः** चमकाती हुई, **गावः** गमनशील, **अरुषीः** देदीप्यमान **मातरः** माता उषाएं **प्रतियन्ति** जाती-आती हैं।।१।।

यहां उषाओं में मातृत्व का आरोप होने से रूपक अलंकार है, 'निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः' में उपमा है। ये दोनों स्वभावोक्ति के अंग हैं, अतः अगांगिभाव-रूप संकर है। प्राकृतिक उषा के वर्णन से आध्यात्मिक उषा की व्यंजना हो रही है।।१।।

भावार्थ– जैसे प्राकृतिक उषा रात्रि के अंधेरे को छिन्न-भिन्न करके भूमि पर प्रकाश उत्पन्न करती है, वैसे ही आध्यात्मिक ज्योतिष्मती प्रज्ञा तमोभाव को दूर करके चित्तप्रसाद उत्पन्न करती है।।१।।

१२ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१७५६. उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत।
१ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः।।२।।[1]

आगे फिर उषा का वर्णन है।

पदार्थ– **अरुणाः** लालिमा वाले **भानवः** प्रकाश वृथा अनायास **उदपप्तन्** उठ रहे हैं। **अरुषीः** चमकीली उषाओं ने **स्वायुजः** सुख से जुड़ने वाली **गाः** किरणों को **अयुक्षत** पूर्व दिशा के आकाश में जोड़ दिया है। **उषासः** उषाएं **पूर्वथा** पूर्व दिनों की भांति **वयुनानि** लोक-जागरण के कर्मों को **अक्रन्** कर रही हैं। **अरुषीः** लालिमा वाली ये उषाएं **रुशन्तम्** चमकीले **भानुम्** सूर्यका **अशिश्रयुः** आश्रय लिये हुए हैं।।२।।

यहां स्वभावोक्ति अलंकार है। 'पूर्वथा' में उपमा है।।२।।

भावार्थ– जैसे उषाओं के उदय होने पर आकाश और भूतल प्रकाशित हो जाता है तथा मनुष्य जागृति अनुभव करते हैं, वैसे ही आध्यात्मिक ज्योतिष्मती प्रज्ञाओं के आविर्भाव होने पर चित्तपटल निर्मल हो जाता है और आत्मा, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियां आदि सब योगसिद्धि के लिए सचेष्ट हो जाते हैं।।२।।

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१७५७. अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः।
२३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते।।३।।[2]

---

१. ऋ० १।९२।२।
२. ऋ० १।९२।३।

आगे फिर वही उषा वर्णित की जा रही है ।

पदार्थ– **अपसः** कर्मण्य **नारीः न** नारियां जैसे **आ परावतः** दूरदेश से भी आकर **समानेन योजनेन** समान योजना बनाकर **विष्टिभिः** कर्मों द्वारा **सुकृते** धर्मात्मा **सुदानवे** उत्तम दानी मनुष्य को **इषम्** अन्न आदि पदार्थ, और **सुन्वते** भक्तिरस प्रवाहित करने वाले तथा **यजमानाय** यज्ञ करने वाले पुरुष को **अह** निश्चय ही **विश्वा इत्** सभी अभीष्ट वस्तुएं **वहन्तीः** प्राप्त कराती हुई, उसका **अर्चन्ति** सत्कार करती हैं, वैसें ही ये प्राकृतिक और आध्यात्मिक उषाएं भी करती हैं।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– जो शुभ कर्म करने वाले धर्मात्मा, परोपकारी परमेश्वर के उपासक यज्ञकर्ता जन होते हैं उनका जैसे नारियां सत्कार करती है, वैसे ही रात्रि के अन्त में लालिमा के साथ छिटकती हुई प्राकृतिक उषाएं तथा योगमार्ग में अनुभव की हुई ज्योतिष्मती प्रजाएं भी उनका अभिनन्दन करती हैं अर्थात् प्रेय-मार्ग तथा श्रेय-मार्ग में उनकी सहायता करती हैं।।३।।

।।७।। अथ 'अबोध्यग्नि' रित्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** दीर्घतमा औचथ्यः। **देवते** अश्विनौ । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः।।

१७५८. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यु३षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत् पृथक् ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में प्रभातकाल का वर्णन करते हैं।

पदार्थ– **अग्निः** यज्ञाग्नि **अबोधि** यज्ञकुण्ड में प्रबुद्ध हुआ है । पूर्व दिशा में **ज्मः** क्षितिज से **सूर्यः** सूर्य **उदेति** उदित हो रहा है । **चन्द्रा** आह्लाददायिनी **मही** महती **उषाः** उषा **अर्चिषा** प्रभा के साथ **वि आवः** आविर्भूत हो गयी है । **अश्विना** प्राणापानों ने **यातवे** चलने के लिए **रथम्** शरीर-रथ को **आयुक्षाताम्** नियुक्त कर दिया है । **देवः** प्रकाशक **सविता** सूर्य ने **जगत्** जड़-चेतन जगत् को **पृथक्** अलग-अलग **प्रासावीत्** प्रकट कर दिया है ।।१।।

यहां स्वभावोक्ति अलंकार है ।।१।।

भावार्थ– प्रभात के रमणीय, स्वच्छ, स्फूर्तिदायक काल में सब स्त्री-पुरूषों को प्राणायाम की विधि से अष्टांग योग का अभ्यास करना चाहिए ।।१।।

१७५९. यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ।।२।।[2]

---

१. ऋ० १।१५७।१ ।

२. ऋ० १।१५७।२।

अगले मन्त्र में प्राणापान से चालित शरीर-रथ का विषय है ।

पदार्थ– हे **अश्विना** प्राणापानो! **यत्** जब, तुम **वृषणम्** बलवान् **रथम्** शरीर-रथ को **युञ्जाथे** चलने के लिए नियुक्त करते हो तब **नः** हमारे **क्षत्रम्** क्षात्रबल को **घृतेन** तेज से और **मधुना** माधुर्य से **उक्षतम्** सींचो **अस्माकम्** हम वीरों की **पृतनासु** सेनाओं में **ब्रह्म** ब्रह्मबल को **जिन्वतम्** प्रेरित करो । **वयम्** हम वीर **शूरसाता** देवासुर संग्राम में **धना** दिव्य और भौतिक ऐश्वर्यों को **भजेमहि** प्राप्त करें ।।२।।

भावार्थ– क्षत्रियों में केवल क्षात्रबल ही नहीं, प्रत्युत ब्रह्मबल भी अपेक्षित होता है । वैसे ही ब्राह्मणों में ब्रह्मबल के अतिरिक्त क्षात्रबल भी अभीष्ट होता है । दोनों के समन्वय से ही व्यक्तियों और राष्ट्रों की उन्नति होती है ।।२।।

१७६०. अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोयातु सुष्टुतः ।
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ।।३।।[1]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– **अश्विनोः** प्राणापानों का **त्रिचक्रः** आत्मा, मन और प्राण इन तीन चक्रों वाला, **मधुवाहनः** मधुर गति वाला, **जीराश्वः** वेगवान् इन्द्रिय-रूप घोड़ों वाला, **सुष्टुतः** सुप्रशंसित, **त्रिबन्धुरः** सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीन बन्धनों वाला, **मघवा** ब्रह्मबल और क्षात्रबल रूप धन वाला, **विश्वसौभगः** सब सौभाग्यों से युक्त **रथः** देह-रूप रथ **अर्वाङ्** हमारे अनुकूल **यातु** चले । साथ ही **नः** हमारे **द्विपदे** दोपायों, और **चतुष्पदे** चौपायों को **शम्** सुख **आवक्षत्** प्राप्त कराये ।।३।।

भावार्थः– प्राणापानों के ही सामर्थ्य से मनुष्यों का शरीर-रथ सबल, सफल क्रिया वाला, सज्जनों का हितकारी गाय-घोड़े आदि उपयोगी पशुओं को सुख देने वाला और दुष्टों का विध्वंस करने वाला होता है ।।३।।

।।१८।। अथ 'प्र ते धारा' इत्यादिकस्याष्टदशस्य चतुर्ऋचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अवत्सारः काश्यपः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१७६१. प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में आनन्द-वर्षाओं का वर्णन है ।

पदार्थ– हे पवमान सोम अर्थात् पवित्र करने वाले रसागार परमेश्वर! **असश्चतः** किसी से भी रुकावट न डाले गये **ते** आपकी **धाराः** आनन्द-धाराएं **सहस्रिणम्** सहस्र संख्या वाले **वाजम्** बल को **अच्छ** प्राप्त कराने के लिए **प्र यन्ति** उपासक के पास पहुंचती हैं, **दिवः न** जैसे आकाश से **वृष्टयः** वर्षाएं **वाजम्** अन्न को **अच्छ** प्राप्त कराने के लिए **प्र यन्ति** भूतल पर पहुंचती हैं ।।१।।

---

१. ऋ० १।१५७।३।
२. ऋ० ९।५७।१

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जैसे मेघ से वर्षा की धाराएं अन्न उत्पन्न करने के लिए खेतों पर बरसती हैं, वैसे ही जगदीश्वर से आनन्द की धाराएं बल उत्पन्न करने के लिए उपासकों के अन्तरात्मा में बरसती हैं ।।१।।

१७६२. अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुञ्जानआयुधा ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में परमेश्वर क्या करता है यह कहा गया है ।

पदार्थ– हरिः मनोहर तथा दोषों को हरने वाला परमेश्वर **विश्वा** सब **प्रियाणि** प्रिय **काव्या** हितकर वचनों को **चक्षाणः** बोलता हुआ, और **आयुधा** शस्त्रास्त्रों को, अर्थात् काम-क्रोध आदि शत्रुओं के पराजय के लिए शत्रु दलन-सामर्थ्यों को **तुञ्जानः** देता हुआ **अभि अर्षति** हमारे प्रति आ रहा है, अन्तरात्मा में प्रकट हो रहा है ।।२।।

भावार्थ– परमेश्वर हमारे लिए हितकारी सन्देशों को प्रेरित करता है और शत्रुओं को हराने के लिए बल देता है ।।२।।

१७६३. स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ।।३।।[2]

अब यह कहते हैं कि परमेश्वर किन के अन्दर स्थित होता है ।

पदार्थ– मनुष्यों को **आयुभिः** आयु के वर्षों से **मर्मृजानः** अलंकृत करता हुआ, और **राजा इव** राजा के समान **इभः** निर्भय, तथा **सुव्रतः** शुभ कर्मों वाला **सः** वह पवमान सोम अर्थात् जगत् का उत्पत्तिकर्ता, शुभ गुणकर्मों को प्रेरित करने वाला, शान्त परमेश्वर **वंसु** जिन्हें उसकी लौ लगी हुई है उनके अन्दर **सीदति** बैठता है, **श्येनः न** जैसे बाज पक्षी **वंसु** वनों में **सीदति** बैठता है ।।३।।

यहां उपमालंकार है । पहली पूर्णोपमा है और दूसरी श्लिष्ट पूर्णोपमा, दोनों की संसृष्टि है ।।३।।

भावार्थ– जिन्हें परमात्मा की चाह होती है उनके प्रेम से परवश हुआ वह उनके हृदय में स्थित होकर निरन्तर शुभ प्रेरणा करता रहता है ।।३।।

१७६४. स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ।।४।।[3]

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **इन्दो** आनन्द-रस से भिगोने वाले रसागार जगदीश! **पुनानः** पवित्र करते हुए **सः** वे धनाधीश आप **दिवः** आत्मलोक से **उत उ** और **पृथिव्याः अधि** पार्थिव देह से **विश्वा वसु** सब आत्मबल, योगसिद्धि, आरोग्य आदि धनों को **नः** हमारे लिए **आ भर** लाओ ।।४।।

भावार्थ– परमेश्वर की कृपा से हम शारीरिक उन्नति और आत्मिक उन्नति करते हुए अभ्युदय और निःश्रेयस के अधिकारी हों ।।४।।

---

१. ऋ० ९।५७।२।
२. ऋ० ९।५७।३।
३. ऋ० ९।५७।४।

इस खण्ड में प्राकृतिक और आध्यात्मिक उषाओं, प्राणापानों से चालित शरीर-रथ, परमेश्वर और परमेश्वर से होने वाली आनन्द-वर्षाओं का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है॥

उन्नीसवें अध्याय में पांचवां खण्ड समाप्त ।

उन्नीसवां अध्याय समाप्त ।

अष्टम प्रपाठक में तृतीय अर्ध समाप्त ॥

॥१॥ तत्र 'प्रास्य धारा' इत्यादिकस्य प्रथमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नृमेध आङ्गिरसः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १र २र ३ १ २
१७६५. प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसः । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥[1]

प्रथम मन्त्र में आनन्द की धारों का वर्णन है ।

पदार्थ– **वृष्णः** मनोरथों को पूर्ण करने वाले, **सुतस्य** प्रकट किये हुए, **ओजसः** ओजस्वी, **देवान्** विद्वान् उपासकों को **अनु** अनुकूलतापूर्वक **प्र भूषतः** दिव्य गुणों से अलंकृत करते हुए **अस्य** इस पवित्र करने वाले रसागार परमात्मा की **धाराः** आनन्द-धारें **प्र अक्षरन्** बरस रही हैं ॥१॥

भावार्थ– मेघ से पवित्र जल-धारों के समान रसमय परमेश्वर से जो पवित्र और पवित्रतादायिनी परमानन्द की धारें बरसती है, उनमें सबको चाहिए कि अपने आत्मा को नहलायें ॥१॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३क २र
१७६६. सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में यह बताते हैं कि कौन कैसे परमेश्वर की आराधना करते हैं ।

पदार्थ– **गिरा** वाणी से **गृणन्तः** अर्चना करते हुए **वेधसः** मेधावी **कारवः** स्तोता लोग **उक्थ्यम्** प्रशंसनीय **ज्योतिः** प्रकाश को **जज्ञानम्** उत्पन्न करने वाले **सप्तिम्** सप्तरश्मि सूर्य के समान विद्यमान सोम परमात्मा को **सृजन्ति** अपने आत्मा में प्रकट करते हैं॥२॥

भावार्थ– सूर्य के समान प्रकाशक परमेश्वर की उपासना से उपासक के आत्मा में दिव्य ज्योति का प्रकाश फैल जाता है ॥२॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
१७६७. सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३॥[3]

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– **हे प्रभूवसो** प्रचुर ऐश्वर्य वाले **सोम** जगत्पति, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर! **पुनानाय** स्वयं को पवित्र करने वाले उपासक के लिए **ते** आपके **तानि** वे प्रसिद्ध तेज **सुषहा** भली-भाँति काम, क्रोध आदि रिपुओं को परास्त करने वाले होवें । हे **उक्थ्य** प्रशंसनीय सोम अर्थात् चन्द्रमा के समान आह्लादक परमात्मदेव! आप **समुद्रम्** ऐश्वर्य के समुद्र को **वर्ध** बढ़ाओ ॥३॥

१. ऋ० ९।२९।१।
२. ऋ० ९।२९।२।
३. ऋ० ९।२९।३।

भावार्थ– पूर्ण चन्द्रमा-रूप सोम जैसे पानी के समुद्र को बढ़ाता है, वैसे ही भक्ति के उपहारों से पूर्ण सोम परमेश्वर उपासक के लिए भौतिक और दिव्य ऐश्वर्य के समुद्र को बढ़ाता है ।।३।।

।।२।। अथ 'एष ब्रह्मा' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वामदेवो गौतमः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** द्विपदा गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१७६८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४३८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां जगदीश्वर और आचार्य दोनों को कह रहे हैं ।

पदार्थ– **एषः** यह जगदीश्वर वा आचार्य **ब्रह्मा** चारों वेदों का ज्ञाता है, **यः** जो **ऋत्वियः** ऋतुओं का स्वामी वा ऋतु-ऋतु में विद्या की वर्षा करने वाला है । उस जगदीश्वर वा आचार्य का **इन्द्रः नाम** इन्द्र नाम है। उसके द्वारा मैं **श्रुतः** कीर्तिमान् वा बहुश्रुत किया गया हूं। उसकी मैं **गृणे** अर्चना वा स्तुति करता हूं।।१।।

भावार्थ– जैसे सृष्टि के आदि में चारों वेदों का प्रकाशक, सब ऋतुओं को रचने वाला परमेश्वर सबके द्वारा पूजा करने योग्य है, वैसे ही वेद-वेदाङ्गों को पढ़ाने वाला, प्रत्येक ऋतु में विद्या की वर्षा करने वाला आचार्य भी सत्कार के योग्य है ।।१।।

१७६९. त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ।।२।।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर वा आचार्य की महिमा वर्णित है ।

पदार्थ– हे **शवसःपते** अध्यात्म-बल, ब्रह्मबल वा विद्याबल के स्वामी परमेश्वर वा आचार्य! **गिरःन** वाणियों के समान **संयतः** प्रयत्नशील प्रजाएं भी **त्वाम् इत्** आपको ही **यन्ति** प्राप्त होती है ।।२।।

यहां उपमालंकार है।।२।।

भावार्थ– जैसे वेदवाणियां जगदीश्वर के गुणों का वर्णन करती है और पुरुषार्थी प्रजाएं उसे पाने का यत्न करती हैं, वैसे ही आचार्य की भी वाणियों से स्तुति करनी चाहिए तथा प्रयत्नशील विद्यार्थियों को शिष्यभाव से उसके समीप पहुंचाना चाहिए ।।२।।

१७७०. वि सुतयो यथा पथ इन्द्र त्वद् यन्तु रातयः ।।३।।[2]

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ४५३ क्रमांक पर परमात्मा, जीवात्मा और राजा को संबोधन की गयी थी । यहां परमेश्वर और आचार्य को कहते हैं ।

पदार्थ– **यथा** जिस प्रकार **पथः** राजमार्ग से **सुतयः** छोटे-छोटे मार्ग विविध दिशाओं में जाते हैं, उसी प्रकार हे **इन्द्र** जगदीश्वर वा आचार्य ! **त्वत्** आपके पास से **रातयः** ऐश्वर्यों के दान वा विद्या-दान **वियन्तु** विविध लोगों के पास जाएं ।।३।।

---

१. साम० ४३८ ।
२. साम० ४५३, देवता विश्वेदेवाः।

यहां उपमालंकार है ॥३॥

भावार्थ– जैसे राजमार्ग से विविध छोटे-छोटे मार्ग निकाल कर पथिकों का उपकार करते हैं, वैसे ही परमेश्वर और आचार्य से दिव्य गुण-कर्म और विविध विद्याएं निकल कर उपासकों वा शिष्यों को उपकृत करें ॥३॥

॥३॥ अथ 'आ त्वा' इत्यादिकस्य तृतीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रियमेध आङ्गिरसः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** आनुष्टुभः प्रगाथः (१ अनुष्टुप्, २-३ गायत्री) । **स्वरः** गान्धारः, २-३ षड्जः॥

१७७१. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३५४ क्रमांक पर परमात्मा और राजा को संबोधित की गयी थी । यहां परमात्मा और जीवात्मा को संबोधन करते हैं।

पदार्थ– हे **शविष्ठ** बलिष्ठ परमेश्वर वा जीवात्मन् ! **तुविकूर्मिम्** बहुत से कर्मों के कर्ता, **ऋतीषहम्** आक्रामक शत्रु-सेनाओं को पराजित करने वाले, **सत्पतिम्** सज्जनों के पालनकर्ता **इन्द्रं त्वा** सत्य, अहिंसा आदि ऐश्वर्यों से युक्त, विघ्नों को दूर करने में समर्थ आप परमेश्वर वा जीवात्मा को, हम **ऊतये** रक्षा के लिए और **सुम्नाय** सुख के लिए **आवर्तयामसि** अपनी ओर प्रवृत्त करते हैं, **यथा** जिस प्रकार **रथम्** रथ को प्रवृत्त किया जाता है॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ– मनुष्य यदि परमेश्वर की उपासना करे और उसका आत्मा यदि जागरूक तथा सक्रिय हो जाए तो वह महान् उत्कर्ष और मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है ॥१॥

१७७२. तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना॥२॥[2]

आगे फिर वही विषय है ।

पदार्थ–हे **तुविशुष्म** बहुत बलवान्, **तुविक्रतो** बहुत प्रज्ञा वाले वा बहुत से यज्ञों को करने वाले, **शचीवः** कर्मवान् **मते** मननशील परमेश्वर वा जीवात्मन् ! आप **विश्वया** बहुत प्रकार के **महित्वना** महत्त्वों से **आ पप्राथ** परिपूर्ण हो ॥२॥

भावार्थ– यद्यपि महत्त्व में परमेश्वर जीवात्मा से अधिक है तो भी दोनों ही बलवान्, बुद्धिमान्, मननशील और कर्मण्य हैं। जैसे परमेश्वर के बिना ब्रह्माण्ड की व्यवस्था नहीं चल सकती, वैसे ही जीवात्मा के बिना शरीर की व्यवस्था नहीं होती ॥२॥

---

१. ऋ० ८।६८।१ 'मिन्द्र शविष्ठ सत्पते' इति भेदः। साम० ३५४।

२. ऋ० ८।६८।२ ।

१७७३. यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः। हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥३॥[1]

अगले मन्त्र में परमेश्वर और जीवात्मा का महत्व वर्णित है ।

पदार्थ– हे इन्द्र ! हे परमेश्वर वा जीवात्मन् ! **महः** महान् **यस्य ते** जिस तेरी **महिना** महिमा से **हस्ता** मनुष्य के दोनों हाथ **ज्यायन्तम्** पृथिवी के समान आचरण करने वाले अर्थात् विशाल, **हिरण्ययम्** ज्योतिर्मय **वज्रम्** वज्र को **परि ईयतुः** ग्रहण करते हैं, वह तू **महित्वना आपप्राथ** महिमा से परिपूर्ण है। [यहां 'महित्वना आपप्राथ' यह वाक्यपूर्ति के लिए पूर्व मन्त्र से लिया गया है]॥३॥

भावार्थ– मनुष्य जो विविध शस्त्रास्त्रों का ग्रहण, उन्हें चलाना, शत्रु को जीतना आदि महान् कर्मों को करने में समर्थ होता है वह महिमा परमेश्वर और जीवात्मा की ही है ॥३॥

॥४॥ अथ 'आ यः' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** दीर्घतमा औचथ्यः। **देवता** अग्निः । **छन्दः** विराडनुष्टुप् । **स्वरः** गान्धारः॥

१७७४. आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥१॥[2]

प्रथम मन्त्र में यह कहा गया है कि मनुष्य-जन्म को प्राप्त जीवात्मा कैसा हो ।

पदार्थ– यः जो अग्नि अर्थात् नेता जीवात्मा **नार्मिणीम्** हास-विलास-युक्त **पुरम्** देह-नगरी को **आ अदीदेत्** तेज से दीप्तिमान् करता है, वह **अत्यः** एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने वाला अथवा मोक्ष को प्राप्त करने वाला **कविः** दूरदर्शी प्रज्ञा वाला, **नभन्यः न** आकाशवर्ती वायु के समान **अर्वा** दोषों का हिंसक, और **सूरः न** सूर्य के समान **रुरुक्वान्** तेजस्वी तथा **शतात्मा** शरीर से शतायु होवे ॥१॥

यहां उपमालंकार है ॥१॥

भावार्थ– जीवात्मा पूर्वजन्म में किये हुए शुभ कर्मों के अनुसार मानव-देह प्राप्त करके बुद्धि के विवेक से कर्तव्य कर्मों को करता हुआ वायु के समान सब दोषों को विनष्ट करके सूर्य के समान तेजस्वी होता हुआ उत्कर्ष को प्राप्त करे ॥१॥

१७७५. अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥२॥[3]

---

१. ऋ० ८।६८।३ ।

२. ऋ० १।१४९।३ ।

३. ऋ० १।१४९।४ ।

अगले मन्त्र में द्विजन्मा का विषय है ।

पदार्थ– **द्विजन्मा** एक जन्म माता-पिता से और दूसरा जन्म आचार्य तथा विद्या से, इस प्रकार जिसने दो जन्म प्राप्त किये हैं वह **त्री रोचनानि** दैहिक, आत्मिक और सामाजिक तीन तेजों को **अभि** प्राप्त करके **विश्वा रजांसि** सब रजोगुणों को **शुशुचानः** सत्त्व गुण से प्रकाशित करता हुआ, **होता** होम करने वाला, **अपां सधस्थे** नदियों के संगम पर **यजिष्ठः** अतिशय परमेश्वर-पूजा रूप यज्ञ को करने वाला होकर **अस्थात्** निवास करता है ।।२।।

भावार्थ– मनुष्य माता-पिता से जन्म पाकर यथासमय गुरुकुल में प्रविष्ट होकर, विद्याएं पढ़कर, तेज प्राप्त करके, आचार्य के गर्भ से दूसरा जन्म पाकर, समावर्तन संस्कार करा कर, स्नातक बनकर, घर जाकर ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि शुभकर्मों को करता हुआ और दूसरे मनुष्यों को उपदेश द्वारा धार्मिक बनाता हुआ जीवन व्यतीत करे ।।२।।

१७७६. अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ।।३।।[1]

आगे फिर द्विजन्मा का विषय है ।

पदार्थ– **यः द्विजन्मा** जो माता-पिता से एक और आचार्य से दूसरा इस प्रकार दो जन्म प्राप्त करके द्विज हो जाता है **सः अयम्** वह यह **होता** सबको विद्या, सुख आदि का देने वाला और होम करने वाला होता है । साथ ही **विश्वा** सब **श्रवस्या** यश के योग्य **वार्याणि** वरणीय यम, नियम आदि कर्मों को **दधे** अपने जीवन में धारण कर लेता है । **यः** और जो **मर्तः** मनुष्य अर्थात् आचार्य **अस्मै** इसे **ददाश** विद्या देता है, वह उस सुशिक्षित विद्वान् द्विज से **सुतुकः** सुपुत्रवान् हो जाता है ।।३।।

भावार्थ– आचार्य से विद्या पढ़ कर, स्नातक हो, द्विज बन कर ऐसा आचरण करे जिससे उसका यश सब जगह फैले । ऐसे गुणवान् द्विज से सचमुच आचार्य भी स्वयं को सुपुत्रवान् मानता है ।।३।।

।।५।। अथ 'अग्ने तमद्ये' त्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषि** वामदेवो गौतमः। **देवता** अग्निः। **छन्दः** पदपङ्क्तिः । **स्वरः** पञ्चमः ।।

१७७७. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४३४ क्रमांक पर परमेश्वर की अर्चना के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां जीवात्मा का विषय कहा जा रहा है ।

१. ऋ० १।१४९।५ ।

२. ऋ० ४।१०।१; य० १५।४४, १७।७७, साम० ४३४ ।

पदार्थ– हे **अग्ने** जीवननायक परमेश्वर! **अद्य** आज **अश्वं न** व्यापक सूर्य के समान प्रकाशमान, और **क्रतुं न** यज्ञ-कर्म के समान **भद्रम्** भद्र, **हृदिस्पृशम्** हृदय में निवास करने वाले **तम्** उस शरीरवर्ती अपने अन्तरात्मा को **ते ओहैः** तेरे द्वारा प्रेरित **स्तोमैः** वेदमन्त्रों से, हम **ऋध्याय** बढ़ायें , उद्बोधन दे।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– जो तेजस्वी और कर्मण्य जीवात्मा सबके हृदय में स्थित है उसे उद्बोधक वेदमन्त्रों से अधिकाधिक उद्बोधन देना चाहिए तथा गुणगरिमा से बढ़ाना चाहिए ।।१।।

१७७८. अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा का वर्णन है ।

पदार्थ– अध, हे **अग्ने** जीवन को उन्नत करने वाले परमात्मदेव! आप **भद्रस्य क्रतोः** शुभकर्म के, **साधोः दक्षस्य** साधु बल के और **बृहतः ऋतस्य** महान् सत्य के **रथीः** स्वामी **हि** निश्चय ही **बभूथ** हो।।२।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर श्रेष्ठ कर्म, बल और सत्य का अधिपति है, वैसे ही मनुष्यों को भी होना चाहिए ।।२।।

१७७९. एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वा३र्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

पदार्थ– हे **अग्ने** जीवनाधार, सर्वान्तर्यामी जगदीश! आप **एभिः** इन **अर्कैः** अर्चना के साधन वेदमन्त्रों द्वारा **नः अर्वाङ्** हमारे अभिमुख **भव** होवो । आप **स्वः न** सूर्य के समान **ज्योतिः** ज्योतिः स्वरूप हो । **सुमनाः** प्रसन्न मन वाले आप **विश्वेभिः** सब **अनीकैः** सद्गुणों की सेनाओं के साथ वा तेजों के साथ **नः अर्वाङ् भव** हमारे अभिमुख होवो ।।३।।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– जैसे सूर्य अपनी किरणों से हमारे अभिमुख होता है, वैसे ही जगदीश्वर सब सद्गुणों और तेजों के साथ हमें प्राप्त हो ।।३।।

इस खण्ड में आनन्द-धाराओं, परमेश्वर, जीवात्मा और द्विजन्मा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

बीसवें अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त ।।

।।६।। अथ 'अग्ने' इत्यादिकस्य षष्ठस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** प्रस्कण्वः काण्वः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१ विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः ।।

१७८०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ।।१।।[3]

---

१. ऋ० ४।१०।२; य० १५।४५ ।
२. ऋ० ४।१०।३; य० १५।४६ ।
३. ऋ० १।४४।१; सा० ४० ।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४० क्रमांक पर हो चुकी है । यहां योग का विषय दर्शाया जा रहा है ।

पदार्थ— हे **अमर्त्य** अमर कीर्ति वाले, **जातवेदः** योग का ज्ञान देने वाले **अग्ने** योगिराज! **त्वम्** आप **अद्य** आज **दाशुषे** आत्मसमर्पणकर्ता मेरे लिए **विवस्वत्** तामस वृत्तियों के अन्धकार को दूर करने वाले, **उषसः** योगमार्ग में उदित हुई ज्योतिष्मती प्रज्ञा के **चित्रम्** अद्भुत **राधः** ऐश्वर्य को, और **उषर्बुधः देवान्** उषाकाल में जागने वाले दिव्य गुणों को **आ वह** प्राप्त कराओ ।।१।।

भावार्थ-परमात्मा की कृपा से, जीवात्मा के निरन्तर किये जाने वाले प्रयत्न से और योग सिखाने वाले गुरु की शिक्षा से उत्तरोत्तर नवीन-नवीन उपलब्धियां योगाभ्यासी को होती हैं और विवेकख्याति द्वारा मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है ।।१।।

१७८१. जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ।।२।।[1]

आगे फिर योग के विषय में कहते हैं ।

पदार्थ— हे **अग्ने** मार्गदर्शक योगिराज! **जुष्टः** सेवन किये हुए आप **हि** निश्चय ही **दूतः** दोषों को तपा डालने वाले, **हव्यवाहनः** प्राप्तव्य योगसिद्धियों को प्राप्त कराने वाले, और **अध्वराणाम्** किये जाने वाले अष्टांग योग रूप यज्ञों के **रथीः** चालक **असि** हो । आप **अश्विभ्याम्** प्राणापानों से **उषसा** तथा ज्योतिष्मती प्रज्ञा से **सजूः** सहायवान् होकर **अस्मे** हमें **सुवीर्यम्** सुवीर्ययुक्त **बृहत् श्रवः** योगशास्त्र का महान् ज्ञान और उससे मिलने वाला यश **धेहि** प्रदान करो ।।२।।

भावार्थ— अष्टांग योग का अभ्यास करने वाले मनुष्य के लिए प्रणवजप, परमेश्वर की उपासना और योग के गुरु द्वारा बताये हुए मार्ग का अनुसरण करना लक्ष्य प्राप्ति में परम सहायक होते हैं ।।२।।

।।७।। अथ 'विधुं दद्राण' मित्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** बृहदुक्थो वामदेव्यः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१७८२. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३२५ क्रमांक पर चन्द्र-सूर्य और मन-आत्मा के विषय में की जा चुकी है । यहां दूसरी व्याख्या दर्शाते हैं ।

---

१. ऋ० १।४४।२ ।

२. ऋ० १०।५५।५, अथ० ९।१०।९, ऋषिः ब्रह्मा, 'समने बहूनां' इत्यत्र 'सलिलस्य पृष्ठे' इति भेदः । साम० ३२५।

पदार्थ— **समने** संग्राम में **बहूनाम्** अनेक शत्रुओं को **विधुम्** बींधने वाले, **दद्राणम्** उनकी दुर्गति करने वाले **युवानं सन्तम्** युवा भी किसी वीर को **पलितः** बूढ़ा काल **जगार** निगल लेता है। **देवस्य** क्रीडा करने वाले जगत्पति इन्द्र परमेश्वर के **महित्वा** महान् **काव्यम्** जगत्-रूप दृश्य काव्य को **पश्य** देखो, कि **सः** वह **अद्य** आज **ममार** मरा पड़ा है **यः** जो **ह्यः** कल **समान** भली भांति सांस ले रहा था, जीवित था।।१।।

भावार्थ— बड़ी भारी शक्ति जिनके पास होती है वे भी मृत्यु के मुख में जाने से नहीं बच पाते, यह देखकर धर्म-कर्मों में और परमात्मा के चिन्तन में मन लगाना चाहिए।।१।।

१७८३. शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता।।२।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुण वर्णित हैं।

पदार्थ— **शाक्मना** शक्ति से **शाकः** शक्तिमान्, **अरुणः** तेज से देदीप्यमान, **सुपर्णः** उत्कृष्ट पालनकर्ता इन्द्र जगदीश्वर **आ** हमारे पास आये, **यः** जो **महः** महान्, **शूरः** वीर **सनात्** सदा से **अनीडः** बिना घर वाला है। वह **यत् चिकेत** जो कुछ जानता है **तत् सत्यम् इत्** वह सत्य ही होता है, **न मोघम्** असत्य नहीं। वह **स्पार्हम्** चाहने योग्य **वसु** आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्य का **उत जेता** विजेता भी होता है **उत् दाता** और दाता भी।।२।।

भावार्थ— जो इन्द्र परमेश्वर सर्वशक्तिमान्, तेजस्वी, मनस्वी, पालनकर्ता, पूर्णकर्ता, महान्, शूर, सत्य ज्ञानवाला, ऐश्वर्यशाली और ऐश्वर्य का दाता है उसकी उपासना और उसका अभिनन्दन सबको करना चाहिए।।२।।

१७८४. ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद् वृत्रहत्याय वज्री।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः।।३।।[2]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

पदार्थ— **मह्नः कर्मणः** महान् सृष्ट्युत्पत्ति आदि कर्म के किये जाते समय **ये देवाः** जो दिव्यगुण, इन्द्र परमेश्वर में **ऋतेकर्मम्** बिना प्रयत्न के स्वभावतः **उदजायन्त** प्रकट हुए, **येभिः** जिन दिव्य गुणों से **वज्री** वज्र धारी के समान उस जगदीश्वर ने **वृत्रहत्याय** विघ्नों के विनाशार्थ **औक्षत्** जीवात्मा को सींचा, **एभिः** उन दिव्य गुणों से वह, आज भी **वृष्ण्या** सुखवर्षक **पौंस्यानि** बलयुक्त कर्मों को **आददे** करता है।।३।।

भावार्थ— परमेश्वर में स्वभावतः सदा रहने वाले जो गुण हैं उन्हीं से वह सारे सृष्टि के कार्य को करता है। उन गुणों में से कुछ अंश वह मनुष्यों में भी निहित कर देता है, जिससे वे विघ्न, पाप, दोष आदि के विनाश में समर्थ होते हैं।।३।।

---

१. ऋ० १०।५५।६।
२. ऋ० १०।५५।७।

।।८।। अथ 'अस्ति सोमो' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । **देवता** सोमः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

१७८५. अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः। उत स्वराजो अश्विना।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १७४ क्रमांक पर भक्तिरस, ज्ञानरस आदि के विषय में की जा चुकी है । यहां ब्रह्मानन्द-रस का विषय वर्णित करते हैं।

पदार्थ– अयम् यह **सोमः** आनन्द-रस **सुतः अस्ति** परमेश्वर के पास से परिस्रुत किया गया है। **स्वराजः अस्य** निज दीप्ति वाले इस रस को **मरुतः** प्राण **उत** और **अश्विनौ** आत्मा तथा मन **पिबन्ति** पीते हैं।।१।।

भावार्थ– उपासकों द्वारा परमात्मा के ध्यान से जो ब्रह्मानन्द-रस प्राप्त किया जाता है उससे आत्मा, मन, प्राण आदि सभी तरंगित हो जाते है।।१।।

१७८६. पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः। त्रिषधस्थस्य जावतः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि कैसे ब्रह्मानन्द-रस को कौन पीते हैं।

पदार्थ– तना विस्तृत रूप से **पूतस्य** पवित्र, **त्रिषधस्थस्य** आत्मा, मन, प्राण इन तीन स्थानों में स्थित **जावतः** वेगयुक्त ब्रह्मानन्द-रस को **मित्रः** मैत्री, करुणा, मुदिता उपेक्षा वृत्तियों से युक्त योगी, **अर्यमा** सूर्यवत् तेजस्वी एवं ज्योतिष्मती प्रज्ञा से युक्त योगी और **वरुणः** व्याधि, स्त्यान, संशय आदि विघ्नों का जिसने निवारण कर दिया है ऐसे योगी **पिबन्ति** पान करते हैं।।२।।

भावार्थ– परिपक्व योगी ही समाधि में स्थित होकर पवित्र ब्रह्मानन्द-रस का आस्वादन करते हैं।।२।।

१७८७. उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः। प्रातर्होतेव मत्सति ।।३।।[3]

आगे फिर ब्रह्मानन्द का विषय है ।

पदार्थ– उत उ नु और **प्रातः** प्रातःकाल **सुतस्य** ब्रह्मयज्ञ द्वारा परिस्रुत, **गोमतः** प्रकाशयुक्त **अस्य** इस ब्रह्मानन्द-रूप सोमरस के **जोषम्** सेवन की **इन्द्रः** योगी मनुष्य **मत्सति** स्तुति करता है, **होता इव** जैसे होम करने वाला मनुष्य अग्नि की स्तुति करता है ।।३।।

---

१. ऋ० ८।९४।४। देवता मरुतः। साम० १७४, देवता इन्द्रः।

२. ऋ० ८।९४।५ ।

३. ऋ० ८।९४।६ ।

यहां उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– जैसे प्रातःकाल देवयज्ञ-अग्नि में होम करने वाला पुरुष अग्नि की स्तुति करता है, वैसे ही योगी ब्रह्मयज्ञ में परमात्मा की संगति से प्राप्त आनन्द की स्तुति करता है।।३।।

।।९।। अथ 'बण्महाँ' इत्यादिकस्य नवमस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः–** जमदग्निर्भार्गवः। **देवता** सूर्यः । **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती)। **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

१७८८. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में २७६ क्रमांक पर) परमात्मा, राजा और आचार्य के विषय में व्याख्यात की गयी थी । **यहां सूर्य के दृष्टान्त से जीवात्मा को उद्‌बोधन दे रहे हैं ।**

पदार्थ– **बट्** सचमुच, हे **सूर्य** सूर्य ! तू **महान् असि** विशाल है, **बट्** सचमुच हे **आदित्य** आदित्य, तू **महान् असि** महान् है। हे **पनिष्टम** सौरमण्डल में सबसे अधिक स्तुति योग्य ! **महः सतः ते** तुझ तेजस्वी की **महिमा** महिमा अद्भुत है। हे **देव** प्रकाशक ! तू **मह्ना** महिमा से **महान् असि** महान् है– यह सूर्य की अन्योक्ति से जीवात्मा को कहा गया है ।।१।।

यहां अन्योक्ति अलंकार है ।।१।।

भावार्थ– सूर्य परिमाण में महान् है, क्योंकि उसकी परिधि आठ लाख कोस की लम्बाई से भी अधिक है; कर्म से महान् है, क्योंकि सब ग्रहोपग्रहों का प्रकाशक और जीवनाधार है; गुरुत्वाकर्षण में महान् है, क्योंकि सब आकाशीय पिण्डों को अपने आकर्षण से धारण किये हुए है; ज्योति में महान् है, क्योकि ज्योति का पुंज ही है। इसी प्रकार मनुष्य के आत्मा में भी बहुत बड़ी शक्ति निहित है, उसे पहचानकर वह महान् कर्मों को करे यह उसे उद्बोधन दिया गया है ।।१।।

१७८९. बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ।।२।।[2]

आगे फिर उसी विषय को कहते है ।

पदार्थ– **बट्** सचमुच, हे **सूर्य** सूर्य ! तू **श्रवसा** यश से **महान् असि** महान् है। **सत्रा** सचमुच ही, हे **देव** ज्योतिर्मय ! तू **महान् असि** महान् है । **असुर्यः** प्राणियों का हितकर्ता तू **मह्ना** महिमा से **देवानाम्** भूमण्डल, सोम मंगल, बुध आदि प्रकाशनीयों के **पुरोहितः** सामने निहित है, जिससे उन्हें प्रकाशित कर सके । तू **विभु** व्यापक, **अदाभ्यम्** हिंसा न किये जा सकने योग्य **ज्योतिः** ज्योति है– यह सूर्य की अन्योक्ति से जीवात्मा को कहा गया है ।।२।।

---

१. ऋ० ८।१०१।११; य० ३३।३९, अथ० २०।५८।३, सर्वत्र 'पनिष्टम महना' इत्यत्र 'पनस्यतेऽद्धा'। साम० २७६।

२. ऋ० ८।१०१।१२; य० ३३।४०; अथ० २०।५८।४ ।

यहां भी अन्योक्ति अलंकार है ।।२।।

भावार्थ– जीवात्मा भी सूर्य के समान यशस्वी, गुणों में महान्, अग्रणी और ज्योतिष्मान् है, इसलिए वह अपने गुणों को पहचान कर महान् कर्मों को करता हुआ अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करे ।।२।।

इस खण्ड में अध्यात्मयोग, मृत्यु की अवश्यंभाविता, परमात्मा, ब्रह्मानन्द-रस, आत्मोद्बोधन इन विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

बीसवें अध्याय में द्वितीय खण्ड समाप्त ।।

।।१०।। अथ 'उप नो' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सुकक्ष आङ्गिरसः। **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१७९०. उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १५० क्रमांक पर परमात्मा और आचार्य के विषय में की जा चुकी है। यहां जीवात्मा को उद्बोधन है ।

पदार्थ– हे **मदानां पते** आनन्ददायक ज्ञानों और कर्मों के स्वामी जीवात्मन्! तू **नः** हमारी **हरिभिः** ज्ञानेन्द्रियों से **सुतम्** उत्पन्न किये ज्ञान को **उप याहि** प्राप्त कर, **नः** हमारी **हरिभिः** कर्मेन्द्रियों से **सुतम्** किये गये कर्म को **उप याहि** प्राप्त कर ।।१।।

भावार्थ– मनसहित ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप साधनों से निष्पन्न किये गये ज्ञान और कर्म का संग्रह करके मनुष्य का जीवात्मा अध्यात्ममार्ग में पग रख कर उन्नति प्राप्त करे ।।१।।

१७९१. द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतम् ।।२।।[2]

आगे फिर जीवात्मा का ही विषय वर्णित है ।

पदार्थ– **यः इन्द्रः** जो जीवात्मा **वृत्रहन्तमः** काम, क्रोध आदि शत्रुओं का तथा व्याधि, स्त्यान आदि योग–विघ्नों का अतिशय विनाशक **शतक्रतुः** और बहुत-से यज्ञ करने वाला, इसप्रकार **द्विता** दो रूपों में **विदे** जाना जाता है, वह **नः** हमारे **हरिभिः** ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से **सुतम्** उत्पन्न किये गये ज्ञान और कर्म को **उप** समीपता से प्राप्त करे ।।२।।

भावार्थ– जीवात्मा के दो प्रकार के कर्म हैं, एक शत्रुओं का वध और दूसरा योग आदि यज्ञ की पूर्ति । उन्हें करने के लिए वह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का उपयोग करके उन्नति के शिखर पर चढ़े ।।२।।

१७९२. त्वं हि वृत्रहन्नेषा पाता सोमानामसि। उप नो हरिभिः सुतम् ।।३।।[3]

अगले मन्त्र में पुनः जीवात्मा को कहते हैं।

---

१. ऋ० ८।९३।३१, साम० १५० ।
२. ऋ० ८।९३।३२ ।
३. ऋ० ८।९३।३३ ।

पदार्थ– हे **वृत्रहन्** काम, क्रोध आदि छह रिपुओं के और योगमार्ग में आये हुए विघ्नों के विनाशक जीवात्मन् ! **त्वं हि** तू निश्चय ही **एषाम्** इन **सोमानाम्** ज्ञान-रसों ओर कर्म-रसों का **पाता** पान करने वाला **असि** है। **नः** हमारे **हरिभिः** मनसहित ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से **सुतम्** उत्पन्न किये गये ज्ञान और कर्म को **उप** समीपता से प्राप्त कर ।।३।।

भावार्थ– जीवात्मा को योग्य है कि वह शुभ ज्ञान और कर्म का संपादन करके योग की विधि से परमात्मा के साक्षात्कार द्वारा मोक्ष प्राप्त करे ।।३।।

।।११।। अथ 'प्र वो' इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः।।

१७९३. प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र समुतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३८२ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में की जा चुकी है यहां एक साथ आचार्य और परमात्मा दोनों का विषय कहते हैं।

पदार्थ– हे विद्यार्थियों वा प्रजाओं ! तुम **महेवृधे** महत्त्व के लिए बढ़ाने वाले, **महे** महान् इन्द्र अर्थात् आचार्य वा परमात्मा के लिए **प्र भरध्वम्** उत्तम उपहार लाओ । **प्रचेतसे** प्रकृष्ट चित्त वा प्रकृष्ट ज्ञान वाले उसके लिए **सुमतिम्** उत्तम स्तुति **प्र कृणुध्वम्** भलीभांति करो । हे आचार्य वा परमात्मन् ! **चर्षणिप्राः** मनुष्यों को विद्या, धन, धान्य और सद्गुणों से पूर्ण करने वाले आप **विशः** विद्यार्थियों वा प्रजाओं को **पूर्वीः** श्रेष्ठ **प्रचर** करो।।१।।

भावार्थ– जैसे जगदीश्वर मनुष्यों को सुखी करता है वैसे ही आचार्य का भी यह कर्तव्य है कि वह छात्रों को विद्या आदि से पूर्ण करके सुखी करे और उनमें योगाभ्यास आदि की अभिरुचि उत्पन्न कर के उन्हें अध्यात्म मार्ग का पथिक बनाये ।।१।।

१७९४. उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और आचार्य का विषय कहा गया है ।

पदार्थ– उरुव्यचसे विद्या आदि में बहुत व्याप्ति वाले **महिने** महान् **इन्द्राय** परमात्मा वा आचार्य के लिए अर्थात् उनकी प्रसन्नता के लिए **विप्राः** विद्वान् जन **सुवृक्तिम्** उत्तम क्रिया और **ब्रह्म** ज्ञान-संग्रह **जनयन्त** करते हैं। **धीराः** बुद्धिमान् वे **तस्य** उस परमात्मा वा आचार्य के **व्रतानि** नियमों को **न मिनन्ति** नहीं तोड़ते हैं।।२।।

भावार्थ– बुद्धिमान् मनुष्यों को चाहिए कि वे परमात्मा और आचार्य से निर्धारित नियमों का सदैव पालन करें और उसके द्वारा प्रेय मार्ग और श्रेय मार्ग में अपनी उन्नति करें ।।२।।

१. ऋ० ७।३१।१०, अथ० २०।७३।३, उभयत्र 'महिवृधे' 'प्रचरा' इति भेदः। साम० ३२८।
२. ऋ० ७।३१।११ ।

१७९५. इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ।।३।।[1]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– अनुत्तमन्युयम् अबाधित तेज वाले **राजानम्** यश से प्रदीप्त **इन्द्रम् एव** परमात्मा वा आचार्य को ही **वाणीः** स्तोताओं वा शिष्यों की वाणियां **सहध्यै** विघ्नों वा दोषों को निष्प्रभाव करने के लिए **सत्रा** उपासना-सत्र में वा विद्या-सत्र में **दधिरे** नेता-रूप से स्थापित करती हैं। हे मनुष्य ! तू **हर्यश्वाय** जिसके बनाये हुए सूर्य, चन्द्र, भूमण्डल आदि लोक आपस में आकर्षण से युक्त हैं ऐसे परमात्मा को पाने के लिए वा जितेन्द्रिय आचार्य को पाने के लिए **आपीन्** बन्धुओं को **संबर्हय** भली भांति प्रेरित कर ।।३।।

भावार्थ– विद्या-यज्ञ में गुरु को और उपासना-यज्ञ में परमेश्वर को प्राप्त करके मनुष्यों को अपने अभीष्ट सिद्ध करने चाहिएं ।।३।।

।।१२।। अथ 'यदिन्द्र' इत्यादिकस्य द्वादशस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठः मैत्रावरुणिः । **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** बार्हतः प्रगाथः (१विषमा बृहती, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ मध्यमः, २ पञ्चमः।।

१७९६. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ।।१।।[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३१० क्रमाक पर हो चुकी है । दान किसे चाहिए इस विषय में कहते हैं ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जगदीश्वर ! **यावतः** जितने धन के **त्वम्** आप अधीश्वर हो **एतावत्** उतने धन का यदि **अहम्** मैं **ईशीय** अधीश्वर हो जाऊं, तो **रदावसो** हे धनदाता ! मैं **स्तोतारम् इत्** आपके उपासक का ही, उस धन से **दधिषे** धारण–पोषण करूं, **पापत्वाय** पाप कर्म के लिए **न रंसिषम्** दान न करूं ।।१।।

भावार्थ– मनुष्य को चाहिए कि सत्पात्र को ही धन आदि का दान करे, पाप की वृद्धि के लिए कभी दान न दे ।।१।।

१७९७. शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ।।२।।[3]

अगले मन्त्र में फिर विषय है ।

---

१. ऋ० ७।३१।१२ ।
२. ऋ० ७।३२।१८, अथ० २०।८२।१ उभयत्र 'दधिषे', रंसिषम्' इत्यत्र 'दधिषेय', 'रासीय' इति पाठः । साम० ३१० ।
३. ऋ० ७।३२।१९; अथ० २०।८२।२।

पदार्थ— यदि मैं धनपति हो जाऊं तो **कुहचिद्विदे** जहां कहीं भी विद्यमान **महयते** परमेश्वर पूजक समाजसेवी मनुष्य को **दिवेदिवे** प्रतिदिन **रायः** धन **आ शिक्षेयम् इत्** अवश्य ही दान किया करूं। हे **मघवन्** धनपति परमात्मन्! **त्वत् अन्यत्** आपसे भिन्न कोई भी **नः** हमारा **आप्यम्** प्राप्तव्य और **वस्यः** अतिशय शरण देने वाला **नहि** नहीं **अस्ति** है, **पिता च** और पिता के समान पालक भी **न** नहीं है ॥२॥

भावार्थ— दान सदा सुपात्र में ही देना चाहिए, कुपात्र में नहीं ॥२॥

॥१३॥ अथ 'श्रुधी हव' मित्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** विराडनुष्टुप्। **स्वरः** गान्धारः॥

३ १र २र ३२उ ३ २ ३ २३ १२ ३ २
१७९८. श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम्।
३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा॥१॥[1]

प्रथम मन्त्र में उपास्य-उपासक का विषय वर्णित है।

पदार्थ— हे इन्द्र जगदीश्वर! आप **विविपानस्य** जिसने विशेषरूप से ज्ञान-रस और कर्म-रस का पान कर लिया है ऐसे **अद्रेः** अविनाशी जीवात्मा की **हवम्** प्रार्थना को **श्रुधि** सुनो, **अर्चतः** पूजक **विप्रस्य** मेधावी विद्वान् की **मनीषाम्** स्तुति को **बोध** जानो। आगे स्तोता को संबोधन करते है— हे स्तोता! तू **सचा** अन्य स्तोताओं के साथ मिलकर **इमा** इन **अन्तमा** निकटतम **दुवांसि** पूजाओं को **कृष्व** इन्द्र जगदीश्वर के लिए कर ॥१॥

भावार्थ— हार्दिक निश्छल उपासनाओं को ही परमेश्वर स्वीकार करता है, छल-छिद्रों से युक्त, बनावटी उपासनाओं को नहीं ॥१॥

२ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २३क२र ३ २
१७९९. न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान्।
१ २ ३ १ २
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि॥२॥[2]

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

पदार्थ— हे इन्द्र जगदीश! **तुरस्य** दोषों के हिंसक **ते** आपकी **गिरः** कर्तव्य का उपदेश करने वाली वाणियों को, मैं **न अपि मृष्ये** नहीं छोड़ता अर्थात् उनकी उपेक्षा नहीं करता। आपके **असुर्यस्य** बल का **विद्वान्** ज्ञाता मैं **सुष्टुतिम्** आपकी उत्कृष्ट स्तुति को भी **न** नहीं छोड़ता। **सदा** हमेशा **ते** आपके **स्वयशः** निज कीर्ति वाले **नाम** नाम को **विवक्मि** जपता रहता हूं ॥२॥

---

१. ऋ० ७।२२।४।
२. ७।२२।५।

भावार्थ– परमेश्वर का नाम स्मरण करने से और उसकी उपासना करने से सब दोष नष्ट हो जाते हैं और सद्गुण, तेज, बल तथा यश प्राप्त होते हैं ।।२।।

१८००. भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवं ज्योक्कः ।।३।।

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– हे इन्द्र जगदीश! **मानुषेषु** मनुष्यों में **ते** आपके **सवना** आनन्द-प्रदान **भूरि हि** बहुत हैं। **मनीषी** मनस्वी जन **त्वाम् इत्** आपको ही **भूरि** बहुत-बहुत **हवते** पुकारता है । हे **मघवन्** धनों के अधीश्वर! आप स्वयं को **अस्मत्** हमसे **ज्योक्** देर तक **आरे** दूर **मा कः** मत रखो ।।३।।

भावार्थ– उपास्य और उपासक की समीपता से ही उपासना सफल होती है ।।३।।

इस खण्ड में जीवात्मा, परमात्मा, आचार्य, धनदान तथा उपास्य-उपासक के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

बीसवें अध्याय में तृतीय खण्ड समाप्त ।।

।।१४।। अथ 'प्रोष्वस्मै' इत्यादिकस्य चतुर्दशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सुदाः पैजवनः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** शक्वरी । **स्वरः** धैवतः ।।

१८०१. प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।।१।।[१]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा के शत्रुविनाश के गुण की प्रशंसा की गयी है ।

पदार्थ– हे साथियो! **अस्मै इन्द्राय** इस जगदीश्वर के महिमा-गान के लिए, **पुरोरथम्** रथ को सबसे आगे रखने वाले **शूषम्** इसके बल की **प्र अर्चत उ** प्रशंसा करो । वह **अभीके चित् उ** अपने सखा के ऊपर आक्रमण होने पर **लोककृत्** उसे विजय दिलाने वाला होता है । **समत्सु** देवासुरसंग्रामों में **सङ्गे** मुठभेड़ होने पर **वृत्रहा** पाप आदि शत्रुओं का वधकर्ता होता है । वह जगदीश्वर **अस्माकम्** हम वीरों का **चोदिता** प्रेरक होता हुआ **बोधि** हमें उद्बोधन देवे । **धन्वसु अधि** धनुषों पर चढ़ायी हुई **अन्यकेषाम्** शत्रुओं की **ज्याकाः** डोरियां **नभन्ताम्** टूट जाएं, अर्थात् वे साधनहीन होकर पराजित हो जाएं ।।१।।

---

१. ऋ० ७।२२।६

२. ऋ० १०।१३३।१; अथ० २०।९५।२, 'वृत्रहा । अस्माकं' इत्यत्र 'वृत्रहाऽस्माकं' इति भेदः ।

यहां श्लेष से जीवात्मापरक और सेनापतिपरक अर्थ भी जानना चाहिए ।।१।।

भावार्थ– जैसे वीर सेनापति आक्रान्ता शत्रुओं को मारकर अपने राष्ट्र को विजय दिलाता है, वैसे ही परमेश्वर पाप, विघ्न आदि रूप वैरियों को विनष्ट करके अपने उपासकों को विजयी करता है।।१।।

१८०२. त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में परमात्मा का शत्रु-रहित होना वर्णित है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र जगदीश्वर! त्वम्** आप **अहिम्** आनन्द-वर्षा में बाधक विघ्न-समूह को **अहन्** नष्ट करते हो, और फिर **सिन्धून्** आनन्द के प्रवाहों को **अधराचः** जीवात्मा के अभिमुख करके **अवासृजः** छोड़ देते हो । आप **अशत्रुः** शत्रु-रहित **जज्ञिषे** हो । आप **विश्वम्** सब **वार्यम्** वरणीय उपासक-समाज को **पुष्यसि** पुष्टि देते हो । **तं त्वा** उन आपका, हम **परिष्वजामहे** आलिंगन करते हैं। ऐसा करो, जिससे **अन्येषाम्** शत्रुओं की **धन्वसु अधि** धुनुषों पर चढ़ायी हुई **ज्याकाः** डोरियां **नभन्ताम्** टूट जाएं ।।२।।

भावार्थ– जैसे सूर्य वर्षा की रूकावट को नष्ट करके बादलों से जल-धाराएं छोड़कर सब प्राणियों और ओषधि आदि को पुष्टि देता है, अथवा जैसे कोई सेनापति ऐश्वर्य-प्रतिबन्धक शत्रु को मार कर राष्ट्र में ऐश्वर्य की धाराएं प्रवाहित करके प्रजा को पोषण देता है, वैसे ही जगदीश्वर आनन्द के प्रतिबंधक विघ्नों को दूर करके उपासक के अन्तरात्मा में आनन्द की धाराएं बहाकर उसे परिपुष्ट करता है ।।२।।

१८०३. वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा का शत्रु-विनाश और धन देने के गुण का वर्णन है ।

---

१. ऋ० १०।१३३।२; अथ० २०।९५।३ ।

२. ऋ० १०।१३३।३, अथ० २०।९५।४ ।

पदार्थ– **विश्वाः** सब **अर्यः** आक्रमण करने वाली, **अरातयः** दान-हीन शत्रु-सेनाएं और विघ्न-सेनाएं **सु** पूर्ण रूप से **विनशन्त** विनष्ट हो जाएं, **नः** हमें **धियः** योग की धारण, ध्यान और समाधियां प्राप्त हों। हे **इन्द्र** जगदीश्वर! **यः** जो शत्रु **नः** हमारा **जिघांसति** वध कर देना चाहता है, उस **शत्रवे** काम, क्रोध आदि शत्रु पर, आप **वधम्** मौत **अस्ता असि** डालने वाले हो। **या** जो **ते** आपकी **रातिः** दान की प्रवृत्ति है, वह हमारे लिए **वसु** निवासक दिव्य ऐश्वर्य की **ददिः** देने वाली हो। **अन्यकेषाम्** शत्रुओं की **धन्वसु अधि** धनुषों पर चढ़ायी हुई **ज्याकाः** डोरियां **नभन्ताम्** टूट जाएं, अर्थात् वे साधनहीन असहाय होकर विनष्ट हो जाएं ॥३॥

भावार्थ– जैसे राजा वा सेनापति शत्रुओं को मार कर प्रजाओं को धन आदि देता है, वैसे ही अध्यात्म मार्ग में बाधा डालने वाले विघ्नों और काम, क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करके जगदीश्वर उपासक को दिव्य ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥३॥

॥१५॥ अथ 'रेवाँ' इत्यादिकस्य पञ्चदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गि- रसः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ॥

१८०४. रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः। प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥१॥ [१]

प्रथम मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

पदार्थ– हे **हरिवः** दोषों को हरने वाले इन्द्र जगदीश्वर! **सुतस्य** अन्तरात्मा में प्रकट किये गए, **रेवतः** ऐश्वर्यवान्, **मघोनः** दानी **त्वावतः** आप जैसे ही आपका अर्थात् जिसके तुल्य या जिससे बढ़कर संसार में अन्य कोई नहीं है ऐसे आपका **स्तोता** उपासक **इत् उ** अवश्यमेव **रेवान् इत्** ऐश्वर्यवान् ही **प्र स्यात्** होवे ॥१॥

'त्वावतः' में अनन्वय अलंकार है। 'रेवाँ इद् रेवतः स्तोता' में समालंकार व्यङ्ग्य है ॥१॥

भावार्थ– ऐश्वर्यवान् परमेश्वर अपने उपासक को भी ऐश्वर्यवान् कर देता है ॥१॥

१८०५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत। न गायत्रं गीयमानम् ॥२॥ [२]

द्वितीय ऋचा पूर्वार्चिक में २२५ क्रमांक पर व्याख्यात हो चुकी है। इन्द्र जगदीश्वर में श्रद्धा न रखने वाले की क्या गति होती है यह कहते हैं।

पदार्थ– **अगोः** सर्वव्यापक इन्द्र जगदीश्वर में श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य का **न** न तो **शस्यमानम्** बोला जाता हुआ **उक्थम्** स्तोत्र, **न** न **रयिः** दिया जाता हुआ धन, **न** और न ही **गीयमानम्** गाया जाता हुआ **गायत्रम्** गायत्र नामक समागान **आ चिकेत** किसी से आदर किया जाता है ॥२॥

भावार्थ– परमेश्वर में श्रद्धा न करने वाले मनुष्य का स्तोत्रपाठ, धनदान, सामगान आदि सब निष्फल होता है, क्योंकि वह किसी स्वार्थ से ही प्रेरित होकर उन कार्यों को करता है। सब सत्कर्म ईश्वरार्पण-बुद्धि से ही शोभा पाते हैं ॥२॥

१८०६. मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः। शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥३॥ [३]

---

१. ऋ० ८।२।१३, 'सुतस्य' इत्यत्र 'श्रुतस्य' इति भेदः।

२. ऋ० ८।२।१४, 'शस्यमानमगोररि' इति भेदः साम० २२५।

३. ऋ० ८।२।१५।

अब जगदीश्वर से प्रार्थना करते हैं।

पदार्थ— हे **इन्द्र** जगदीश्वर ! आप **नः** हमें **मा** न तो **पीयलवे** हिंसक काम, क्रोध, लोभ आदि के लिए, और **मा** न ही **शर्धते** बलवान् किसी मानव शत्रु के लिए **परा दाः** छोड़ो। हे **शचीवः** शक्तिशाली परमात्मन् आप **शचीभिः** अपनी शक्तियों से **शिक्ष** हमें शक्तिशाली बनाने की इच्छा करो ॥३॥

यहां शकार की अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है। 'शची' के दो बार पाठ में लाटानुप्रास अलंकार है॥३॥

भावार्थ— जो परमात्मा में श्रद्धावान् होते हैं उनकी न हिंसक हिंसा कर पाते हैं, न हराने वाले शत्रु उन्हें हरा पाते हैं। परमात्मा की प्रेरणा से शक्तिमान्, मेधावी और कर्मयोगी होते हुए वे सभी विपदाओं का हनन कर देते हैं॥३॥

॥१६॥ अथ 'एन्द्र याहि' इत्यादिकस्य षोडशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** नीपातिथिः काण्वः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** अनुष्टुप्। **स्वरः** गान्धारः॥

१८०७. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३४८ क्रमांक पर व्याख्यात हो चुकी है। यहां उपासक जगदीश्वर को पुकार रहा है।

पदार्थ— हे इन्द्र जगदीश्वर ! आप **हरिभिः** आनन्द-रसों के साथ **कण्वस्य** मेधावी उपासक की **सुष्टुतिम्** उत्कृष्ट स्तुति में **उप-आयाहि** आओ। हे **दिवावसो** दीप्तिधन जगदीश ! **दिवः** तेजोमयी देह-रूप अयोध्या पुरी के **शासतः** शासक **अमुष्य** इस मेधावी उपासक की **दिवम्** तेजोमयी देह-पुरी में, आप **यय** पहुंचो ॥१॥

भावार्थ— जैसे परमेश्वर ब्रह्माण्ड का शासक है, वैसे ही जीवात्मा देह का शासक है। वह चक्रवर्ती सम्राट् जगदीश्वर स्तोता की देहपुरी में आकर आतिथ्य स्वीकार करे ॥१॥

१८०८. अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में उपासक फिर परमेश्वर को निमन्त्रण दे रहा है।

---

१. ऋ० ८।३४।१; साम० ३४८।

२. ऋ० ८।३४।३

पदार्थ-- **वृकः** सूर्य **उरां न** जैसे अन्धकार से ढकने वाली रात्रि को **वि धूनुते** विकंपित करता है, वैसे ही **अत्र** इस देह-पुरी में **एषाम्** इन मरूतों अर्थात् प्राणों का **नेमिः** नेता जीवात्मा **उराम्** आच्छन्न करने वाली अविद्या-रूपिणी रात्रि को **वि धूनुते** विकंपित करता है । उस **दिवः** देह-पुरी के **शासतः** शासक **अमुष्य** इस जीवात्मा की **दिवम्** तेजोमयी देह-पुरी में, हे **दिवावसो** दीप्तिधन परमात्मन् ! आप **यय** आओ ।।२।।

यहां उपमालंकार है । देवो, दिवं, दिवा में वृत्त्यानुप्रास है ।।२।।

भावार्थ-- सूर्य के समान तेजस्वी जीवात्मा जहां स्थित होता हुआ अज्ञान, पाप आदि की रात्रि का विदारण करता है वह देह-पुरी निश्चय ही प्रशंसा योग्य और परमात्मा के निवास योग्य है ।।२।।

२ ३ २ ३ १२ ३२ ३ १र २र
१८०९. आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
३ २ ३२ ३ १२ ३ १२ ३१ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ।।३।।[1]

आगे फिर परमात्मा को पुकारा जा रहा है ।

पदार्थ-- हे जगदीश्वर ! **इह** इस देहपुरी में **सोमी** श्रद्धारस से भरा हुआ **ग्रावा** पूजक जीवात्मा **वदन्** स्तोत्रों का उच्चारण करता हुआ **घोषेण** स्वागत-शब्द से **त्वा** आपको **आ वक्षतु** अपने पास लाये । हे **दिवावसो** दीप्तिधन परमात्मन ! **दिवः** तेजोमयी देहपुरी के **शासतः** शासक **अमुष्य** इस जीवात्मा की **दिवम्** तेजोमयी देहपुरी में, आप **यय** आओ ।।३।।

भावार्थ-- जो हार्दिक स्वागत-वचनों के साथ परमात्मा को पुकारता है उसकी प्रार्थना को वह अवश्य सुनता है ।।३।।

।।१७।। अथ 'पवस्व' इत्यादिकस्य सप्तदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** जमदग्निर्भार्गवः । **देवता** पवमानः सोमः । **छन्दः** द्विपदा गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१२ ३ २ ३ १ २३ १ २
१८१०. पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रस का विषय कहते हैं ।

पदार्थ-- हे **सोम** ब्रह्मानन्द रस ! **मधुमत्तमः** अतिशय मधुर तू **इन्द्राय** जीवात्मा को **मन्दयन्** मोद प्रदान करता हुआ **पवस्व** प्रवाहित हो ।।१।।

भावार्थ-- ब्रह्मानन्द का माधुर्य वही जानता है जो उसका अनुभव करता है ।।१।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २
१८११. ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ।।२।।[3]

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है ।

पदार्थ-- **सुतासः** परमात्मा द्वारा प्रेरित, **विपश्चितः** मेधायुक्त, **शुक्राः** पवित्र **ते** वे प्रसिद्ध ब्रह्मानन्द-रस रूप सोम **वायुम्** प्राण को **असृक्षत** ऊपर की ओर प्रेरित करते हैं ।।२।।

---

१. ऋ० ८।३४।२।
२. ऋ० ९।६७।१६।
३. ऋ० ९।६७।१८।

भावार्थ— प्राप्त हुए ब्रह्मानन्द योगी के प्राणों को ऊपर की ओर प्रेरित करते हुए उसे मोक्ष प्रदान करते हैं ॥२॥

१८१२. असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥३॥[1]

आगे फिर वही विषय कहा गया है ।

पदार्थ— **मैं** इन ब्रह्मानन्द-रूप सोम-रसों को **देववीतये** दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए **असृग्रम्** अपने अन्तरात्मा में प्रवाहित कर रहा हूं । ये **वाजयन्तः** अन्न प्रदान करते हुए **रथाः इव** रथों के समान **वाजयन्तः** बल प्रदान कर रहे हैं ॥३॥

यहां श्लिष्टोपमा अलंकार है ॥३॥

भावार्थ— जैसे रथ अन्न आदि को लाने में साधन बनते हैं वैसे ही ब्रह्मानन्द-रस अध्यात्म-बल आदि की प्राप्ति में साधन होते हैं ॥३॥

इस खण्ड में जगदीश्वर और ब्रह्मानन्द-रस के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ॥

बीसवें अध्याय में चतुर्थ खण्ड समाप्त।

॥१८॥ अथ 'अग्निं होतारमित्यादिकस्याष्टादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** परूच्छेपो दैवोदासिः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** अत्यष्टिः । **स्वरः** गान्धारः ॥

१८१३. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥[2]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४६५ क्रमांक पर हो चुकी है । परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन करते हैं ।

पदार्थ— मैं **अग्निम्** जगन्नायक परमेश्वर को **होतारम्** श्रद्धा का उपहार ग्रहण करने वाला **वसोः** दिव्य तथा भौतिक धन का **दास्वन्तम्** दाता, **सहसः** बल, उत्साह और उद्बोधन का **सूनुम्** प्रेरक, **जात-वेदसम्** प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, सर्वान्तर्यामी, **विप्रं न** और विद्वान् मनुष्य के समान **जातवेदसम्** उत्पन्न पदार्थो का ज्ञाता **मन्ये** मानता हूं, **यः देवः** जो प्रकाशक परमेश्वर **ऊर्ध्वया** उन्नत, **देवाच्या** प्रकाशक अग्नि, बिजली, सूर्य आदियों में व्यक्त हुई **कृपा** शक्ति से **स्वध्वरः** उत्कृट जगत्प्रपंच-रूप यज्ञ का संचालक है, साथ ही जो

---

१. ऋ० ९।६७।१७ 'असृग्रन्' इति भेदः ।

२. ऋ० १।१२७।१, य० १५।४७; अथ० २०।६७।३, सर्वत्र 'वसोः' इत्यत्र 'वसुं' 'शुक्रशोचिष' इत्यत्र च 'वष्टि शोचिषाइति भेदः । साम० ४६५ ।

आजुह्वानस्य यज्ञाग्नि में होमे जाने वाले, **शुक्रशोचिषः** चमकीली चमक वाले, **सर्पिषः** पिघले हुए **घृतस्य** घृत की **विभ्राष्टिम्** विशिष्ट दीप्ति में भी **अनु** अनुप्रविष्ट है।।१।।

यहां उपमालंकार है। 'जातवेदसं' की आवृत्ति में यमक, और 'देवो, देवा' में छेकानुप्रास है, सकार आदि की अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है ।।१।।

भावार्थ– सूर्य, चन्द्र, बिजली, तारे आदियों में और घृत की आहुति से प्रदीप्त अग्नि-ज्वालाओं में जो प्रभा दृष्टिगोचर होती है वह जगदीश्वर की ही दी हुई है ।।१।।

१८१४. यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः। परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ।।२।।[1]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

पदार्थ– हे **विप्र** विशेष रूप से पूर्णता करने वाले जगदीश! **यजमानाः** उपासना-यज्ञ के याज्ञिक हम **यजिष्ठम्** सबसे बड़े यज्ञकर्ता, **अङ्गिरसां ज्येष्ठम्** तपस्वियों में श्रेष्ठ **त्वा** आपको **मन्मभिः** वेदमन्त्रों से **हुवेम** पुकारें। हे **शुक्र** तेजस्वी और पवित्र परमात्मन्! **मन्मभिः** मननशील **विप्रेभिः** विद्वान् उपासकों के साथ मिलकर आपको पुकारें। **द्याम्** आकाश को **परिज्मानम् इव** मानो सूर्य द्वारा मापने वाले, और **चर्षणीनाम्** मनुष्यों के **होतारम्** सुखप्रदाता, **शोचिष्केशम्** तेजों से प्रकाशमान, **वृषणम्** वृष्टिकर्ता **यम्** जिन आपकी **इमाः** ये **विशः** प्रजाएं उपासना करती हैं, उन आपको **विशः** वे प्रजाएं **जूतये** बल, वेग आदि की प्राप्ति के लिए **प्रावन्तु** प्राप्त कर लें ।।२।।

यहां 'परिज्मानमिव द्याम्' में उत्प्रेक्षालंकार, 'मन्मभिः' की आवृत्ति में यमक और 'विप्र, विप्रे' में छेकानुप्रास है ।।२।।

भावार्थ– विप्रजनों के साथ मिलकर सामूहिक उपासना से सबको उस परमात्मा की पूजा करनी चाहिए जो सृष्टियज्ञ का संचालक, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, सर्वाधिक तेजस्वी और मनोरथों को पूर्ण करने वाला है तथा जो सूर्य को पूर्व से पश्चिम तक यात्रा कराता हुआ उसके द्वारा मानों आकाश को मापता है ।।२।।

१८१५. स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता
दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः।
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ।।३।।[2]

---

१. ऋ० १।१२७।२
२. ऋ० १।१२७।३

अगले मन्त्र में जीवात्मा का रणकौशल वर्णित है ।

पदार्थ— **विरूक्मता** दीप्तियुक्त ओजसा प्रताप से **पुरू चित्** बहुत अधिक **दीद्यानः** द्युतिमान् **स हि** वह अग्नि अर्थात् अग्रनायक जीवात्मा **द्रुहन्तरः** द्रोह करने वाले काम, क्रोध आदि शत्रु को पार करने वाला **भवति** हो जाता है, **परशुः न** परशु के समान **द्रुहन्तरः** द्रोह कर्ता का वध करने वाला हो जाता है, **यस्य** जिस जीवात्मा की **समृतौ** टक्कर होने पर **वीडु चित्** बलवान् भी, **वना इव** वन के समान **यत् स्थिरम्** जो स्थिर है वह भी **श्रुवत्** विनष्ट हो जाता है या डगमगा जाता है, जो **निष्षहमाणः** शत्रुओं को तिरस्कृत करता हुआ, उन्हें **यमते** युद्ध से हटा देता है, **न अयते** स्वयं युद्ध से पलायन नहीं करता, अपितु **धन्वसहा न** धनुर्धारी के समान **अयते** देवासुरसंग्राम में जाता है ।।३।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है, तीन उपमाएं हैं। 'द्रुहन्तरः' और 'नायते' की आवृत्ति में यमक है।।३।।

भावार्थ— देहधारी जीवात्मा जड़ जमाये हुए भी आंतरिक तथा बाह्य सब शत्रुओं का उन्मूलन करके रणकुशल सेनापति के समान देवासुरसंग्राम में विजयी हो ।।३।।

इस खण्ड में परमात्मा और जीवात्मा के विषय का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ सगंति है ।।

नवम प्रपाठक में प्रथम अर्ध समाप्त ।

।।१।। तत्र 'अग्ने तव' इत्यादिकस्य प्रथमस्य षड्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अग्निः पावकः । **देवता**— अग्निः । **छन्दः** १-२ विष्टारपङ्क्तिः, ३-५ सतोबृहती, ६ उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् । **स्वरः** १-५ पञ्चमः, धैवतः ।।

१८१६. अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां३ दधासि दाशुषे कवे ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से परमात्मा के स्वरूप और उपकार का वर्णन है ।

पदार्थ— हे **अग्ने** जगन्नायक परमेश! **तव** आपका **श्रवः** यश, और **वयः** ऐश्वर्य **महि** महान् है । हे **विभावसो** दीप्तिधन! आप ही की **अर्चयः** दीप्तियां **भ्राजन्ते** अग्नि, सूर्य, नक्षत्र आदियों में चमक रही हैं। हे **बृहद्भानो** महातेजस्वी ! हे **कवे** क्रान्तद्रष्टा! आप **दाशुषे** आत्मसमर्पण करने वाले को **शवसा** बल के साथ **उक्थ्यम्** प्रशंसनीय **वाजम्** आनन्द-रूप ऐश्वर्य **दधासि** देते हो ।।१।।

भावार्थ— परमेश्वर स्वयं प्रकाशमान होता हुआ दूसरों को प्रकाशित करता है, स्वयं बलवान् होता हुआ दूसरों को बल देता है, स्वयं यशस्वी होता हुआ दूसरों को यशस्वी करता है, स्वयं आनन्दवान् होता हुआ दूसरों को आनन्दित करता है ।।१।।

---

१. ऋ० १०।१४०।१, य० १२।१०६ ।

**१८१७. पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ।।२।।**[1]

अब परमात्मा कैसा है और क्या करता है यह कहते हैं ।

पदार्थ– हे अग्रनायक जगदीश्वर! **पावकवर्चाः** पवित्रकारी तेज वाले, **शुक्र वर्चाः** उज्ज्वल और पवित्र तेज वाले, **अनूनवर्चाः** अन्यून तेज वाले आप **भानुना** ज्योति के साथ, उपासकों के अन्तरात्मा में **उदियर्षि** उदित होते हो । **मातरा** माता-पिता के समीप **विचरन्** विचरण करते हुए **पुत्रः** पुत्र के समान **मातरा** द्युलोक और भूलोक में **विचरन्** विचरण करते हुए आप उनकी **उपावसि** रक्षा करते हो । साथ ही **रोदसी** द्युलोक और भूलोक **उभे** दोनों को **पृणक्षि** आपस में संयुक्त करते हो ।।२।।

यहां तीसरे चरण में श्लिष्ट लुप्तोपमा अलंकार है । 'वर्चा' की आवृत्ति में लाटानुप्रास है ।।२।।

भावार्थ– परमेश्वर सूर्य के समान अपने दिव्य तेज से स्तोताओं के हृदय को पवित्र करता है, द्यावापृथिवी की रक्षा करता है और उनके मध्य आपस का सामंजस्य स्थापित करता है ।।२।।

**१८१८. ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ।।३।।**[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– हे **ऊर्जः नपात्** बल और प्राणशक्ति को न गिरने देने वाले, प्रत्युत बढ़ाने वाले **जातवेदः** सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी जगत्पति परमात्मन्! **धीतिभिः** ध्यान-क्रियाओं से **हितः** हृदय में धारण किये हुए आप **सुशस्तिभिः** उत्तम प्रशस्तियों से **मन्दस्व** हमें आनन्दित करो । **भूरिवर्पसः** बहुत से रूपों अर्थात् गुणों वाले, **चित्रोतयः** मंजुल आचरणों वाले **वामजाताः** सेवनीय आचार्य से श्रेष्ठ जन्म को प्राप्त उपासक **त्वयि** आप में **इषः** अपनी अभिलाषाओं को **संदधुः** संजोये हुए हैं ।।३।।

भावार्थ– जो मनुष्य अपने आपको परमात्मा में समर्पित कर देते हैं वे सुप्रशस्तिमान् और सुकीर्तिमान् होते हैं।।३।।

**१८१९. इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ।।४।।**[3]

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की स्तुति तथा उससे प्रार्थना की गयी है ।

---

१. ऋ० १०।१४०।२, य० १२।१०७ ।

२. ऋ० १०।१४०।३, य० १२।१०८ ।

३. ऋ० १०।१४०।४; य० १२।१०९, उभयत्र 'दर्शनं' इत्यत्र 'सानसिं' इति भेदः ।

पदार्थ- हे **अमर्त्य** अमर **अग्ने** मार्गदर्शक परमात्मन् ! **इरज्यन्** सबके ईश्वर होते हुए आप **जन्तुभिः** उत्पन्न अभ्यास, वैराग्य, प्रणव-जप, मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, ज्योतिष्मती प्रज्ञा, ऋतंभरा प्रज्ञा, समाधि आदियों से **अस्मे** हमारे लिए **रायः** अभ्युदयनिःश्रेयस रूप ऐश्वर्यों का **प्रथस्व** विस्तार करो । **सः** वह प्रसिद्ध आप **दर्शतस्य** दर्शनीय वा आपके दर्शन में सहायक **वपुषः** अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय रूप पंच शरीरों के **वि राजसि** विशिष्ट राजा हो । आप ही हमारे मन में **दर्शतम्** ज्ञान-दर्शन के साधन **क्रतुम्** संकल्प को **पृणक्षि** संयुक्त करते हो ।।४।।

भावार्थ– जगदीश्वर की ही सहायता से योगसाधना में संलग्न उपासक अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल होते हैं ।।४।।

१८२०. इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ।।५।।[1]

अगले मन्त्र में परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन है ।

पदार्थ– हे जगदीश्वर! **अध्वरस्य** जीवन-यज्ञ के **इष्कर्तारम्** संस्कृत करने वाले, **प्रचेतसम्** जागृति प्रदान करने वाले, **महः** महान् **राधसः** दिव्य धन के **क्षयन्तम्** ईश्वर, **वामस्य** सेवनीय सुरम्य ऐश्वर्य के **रातिम्** दाता आपकी हम उपासना करते हैं, आप **सुभगाम्** सौभाग्यकारिणी, **महीम्** महती **इषम्** अभीष्ट दुःखमुक्ति को, और **सानसिम्** संभजनीय **रयिम्** भौतिक तथा दिव्य ऐश्वर्य को **दधासि** प्रदान करते हो ।।५।।

भावार्थः– आराधना किया हुआ परमेश्वर उपासकों को जागरूक करके और उन्हें सारी अभीष्ट लौकिक तथा दिव्य सम्पदा प्रदान करके कृतार्थ करता है ।।५।।

१८२१. ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ।।६।।[2]

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है ।

पदार्थ– **ऋतावानम्** सत्यवान्, **महिषम्** महान् **विश्वदर्शतम्** सबके द्वारा दर्शनीय **अग्निम्** अग्रनायक आप जगदीश्वर को **सुम्नाय** सुख पाने के लिए **जनाः** स्तोता लोग **पुरः** अपने संमुख **दधिरे** धारण करते हैं। **श्रुत्कर्णम्** सुनने वाले कानों से युक्त, **सप्रथस्तमम्** अतिशय कीर्तिमान्, **दैव्यम्** विद्वान् उपासकों का हित करने वाले **त्वा** आपको **मानुषा युगा** पति-पत्नी-रूप मनुष्य-युगल भी **गिरा** स्तुति-वाणी से **सुम्नाय** सुखार्थ **पुरः** अपने संमुख **दधिरे** धारण करते हैं ।।६।।

---

१. ऋ० १०।१४०।५; य० १२।११० ।
२. ऋ० १०।१४०।६, य० १२।१११ ।

भावार्थ– यहां निराकार भी परमेश्वर को सुनने वाले कानों से युक्त कहा गया है, इससे उसका श्रोता के समान स्तोताओं के मनोरथों को पूर्ण करने का गुण सूचित होता है । जैसे कानों वाला कोई मनुष्य कानों से स्तोता के निवेदन को सुन कर उसकी कामना को पूर्ण करता है, वैसे ही परमेश्वर बिना कानों के भी कर देता है यह अभिप्राय है । कहा भी है, 'वह बिना आंख के देखता है, बिना कान के सुनता है **(श्वेता० ३।१९)**।' सबको चाहिए कि सत्य के प्रेमी, महान्, यशस्वी परमेश्वर को हृदय में धारण करें ॥६॥

इस खण्ड में जगदीश्वर और जीवात्मा के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ॥

बीसवें अध्याय में पंचम खण्ड समाप्त ॥

॥२॥ अथ 'प्र सो' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य द्व्यृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सोभरिः काण्वः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** काकुभः प्रगाथः (१ विषमा ककुबुष्णिक्, २ समा सतोबृहती) । **स्वरः** १ ऋषभः, २ पञ्चमः ॥

१र २र३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१८२२. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
२ ३ २ ३ १र २र
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥१॥[1]

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १०८ क्रमांक पर हो चुकी है । परमात्मा की मैत्री का महत्त्व वर्णन करते हैं ।

पदार्थ– हे **अग्ने** अग्रनायक जगदीश्वर! **सः** वह मनुष्य **सुवीराभिः** श्रेष्ठ वीरों को प्राप्त कराने वाली, **वाजकर्मभिः** बल एवं उत्साह उत्पन्न करने वाली **तव ऊतिभिः** आपकी रक्षाओं से **प्र तिरति** वृद्धि पा लेता है अथवा दुःखों को सर्वथा तर जाता है, **यस्य** जिसकी **त्वम्** महाबली आप **सख्यम्** मित्रता को **आविथ** स्वीकार कर लेते हो ॥१॥

भावार्थ– कौन उसे बाधा पहुंचाने वा दुःख देने में समर्थ हो सकता है जिसका जगदीश सखा हो ॥१॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१८२३. तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥२॥[2]

अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा के वर्णन-पूर्वक उससे मिलने वाले आनन्द का विषय वर्णित है ।

पदार्थ– हे **सिष्णो** प्रेमपाश में बांधने वाले जगदीश्वर! **नीलवान्** आधारभूत, **वाशः** प्रियः, **ऋत्वियः** जिसे प्राप्त करने का समय आ गया है ऐसा, **इन्धानः** तेज प्रदान करने वाला **तव** आपका **द्रप्सः** आनन्द-रस **आददे** हमसे ग्रहण किया जा रहा है । **त्वम्** आप **महीनाम्** महती **उषसाम्** उषाओं के **प्रियः** प्यारे सखा **असि** हो। आप **क्षपः** रात्रि के **वस्तुषु** आच्छादक अंधकारों में भी **राजसि** प्रदीप्त होते हो ॥२॥

भावार्थ– जो जगदीश्वर रात्रियों में, उषाओं में, सूर्योदयों में, मध्याह्न-कालों में सायंकालीन संध्याओं में सर्वत्र अपनी महिमा से विराजमान है, उसके साथ मैत्री करके उसके पास के अति मधुर आनन्द-रस सबको प्राप्त करना चाहिए ॥२॥

१. ऋ० ८।१९।३० ; साम० १०८
२. ऋ० ८।१९।३१ ।

।।३।। अथ 'तमोषधी' रित्यादिकस्य तृतीयस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अरूणो वैतहव्यः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** जगती । **स्वरः** निषादः ।।

१८२४. तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित् समानं वनिनश्च वीरूधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ।।१।।[1]

जगदीश्वर की महिमा वर्णन करते हैं ।

पदार्थ— **तम्** उस जगदीश्वर को **ओषधीः** ओषधियां **ऋत्वियं गर्भम्** सब ऋतुओं में रहने वाले गर्भ के रूप में **दधिरे** धारण किये हुए हैं अर्थात् सब ऋतुओं में वह जगदीश्वर ओषधियों के अन्दर निहित रहता है । **तम्** उसी जगदीश्वर को **मातरः आपः** मातृतुल्य नदियां **जनयन्त** प्रकट कर रही हैं ! **तम् इत्** उसी जगदीश्वर को **समानम्** समान रूप से **वनिनः च** वन के वृक्ष **अन्तर्वतीः वीरूधः च** और गर्भवती लताएं **दधिरे** अपने अन्दर धारण किये हुए हैं, और **विश्वहा** सदा, उसी के नियमों के अनुसार **सुवते च** फल भी उत्पन्न करती हैं ।।१।।

भावार्थ— ओषधियों के गर्भों में, कल-कल बहती हुई नदियों के जलों में, फलों के भार से झुके हुए सघन वन-वृक्षों के फलों में, फूलती हुई वन-वल्लरियों के चित्र-विचित्र पुष्पों में वही जगत् का रचयिता परमेश्वर प्रतिमूर्त हुआ दिखायी देता है ।।१।।

।।४।। अथ 'अग्निरिन्द्राय' इत्यादिकस्य चतुर्थस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** चाक्षुषोऽग्निः प्रजापतिर्वा। **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१८२५. अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति । महिषीव वि जायते ।।१।।

परमेश्वर का महत्त्व वर्णित करते हैं ।

पदार्थ— **अग्निः** संसार का नायक सर्वान्तर्यामी परमेश्वर **इन्द्राय** जीवात्मा के लिए अर्थात् जीव का हित करने के लिए **पवते** उसे प्राप्त होता है । **शुक्रः** पवित्र और तेजस्वी वह **दिवि** चमकीले द्युलोक में, सूर्य, तारामंडल आदि में **वि राजति** विशेषरूप से चमक रहा है । वह **महिषी इव** पूज्या माता के समान **वि जायते** प्रसिद्ध होता है ।।१।।

यहां उपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ— परमेश्वर हमारा पिता और माता भी है । पिता होता हुआ वह मनुष्य-शरीर की और ब्रह्माण्ड की व्यवस्था करता है, माता के रूप में वह सबका लालन-पालन करता है ।।१।।

।।५।। अथ 'यो जागार' इत्यादिकस्य पञ्चमस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अवत्सारः काश्यपः । **देवता** विश्वेदेवाः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

---

१. ऋ० १०।९१।६ ।

१८२६. यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।१।। [1]

जागरण का महत्त्व वर्णित करते हैं।

पदार्थ– सब विद्वानों के मध्य में **यः** जो मनुष्य **जागार** जागरूक होता है **तम्** उसे **ऋचः** ऋचाएं **कामयन्ते** चाहती हैं। **यः** जो मनुष्य **जागार** जागरूक होता है **तम् उ** उसी को **सामानि** साम मन्त्र वा साम गान **यन्ति** सहायता के लिए प्राप्त होते हैं । **यः** जो मनुष्य **जागारः** जागरूक होता है **तम्** उसे **अयं सोमः** यह जगदीश्वर **आह** कहता है कि **अहम्** मैं **तव सख्ये** तेरी मित्रता में **न्योकाः** घर बनाये हुए **अस्मि** हूं ।।१।।

भावार्थ– मनुष्यों में जो अविद्या, आलस्य, मोह आदि की नींद को छोड़कर जाग जाता है वही बाह्य जीवन और अध्यात्म जीवन में सफल होता है ।।१।।

।।६।। अथ 'अग्निर्जागार' इत्यादिकस्य षष्ठस्यैकर्चस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अवत्सारः काश्यपः । **देवता** अग्निः (विश्वेदेवाः?) । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१८२७. अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।१।। [2]

इस सूक्त में फिर जागरण के महव का विषय वर्णित है ।

पदार्थ- अग्निः अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् **जागार** जागरूक होता है, **तम्** उसे **ऋचः** ऋचाएं **कामयन्ते** चाहती हैं। **अग्निः** अग्नि के समान पुरुषार्थी विद्वान् **जागार** जागरूक होता है, **तम् उ** उसी के पास **सामानि** साम-मन्त्र वा साम-गान **यन्ति** सहायता के लिए पहुंचते हैं। **अग्निः** अग्नि के समान उन्नतिशील विद्वान् **जागार** जागरूक होता है, **तम्** उसे **अयं सोमः** यह जगदीश्वर **आह** कहता है कि **अहम्** मैं **तव सख्ये** तेरी मित्रता में **न्योकाः** घर बनाये हुए **अस्मि** हूं ।।१।।

भावार्थ– जो विद्वान् लोग आलस्य-रहित, निर्भय, पुरुषार्थी, आगे बढ़ने वाले, स्फूर्तिमान, धार्मिक, परोपकारी होते हैं वे ही लोकप्रिय तथा सफल होते हैं ।।१।।

।।७।। अथ 'नमः सखिभ्यः' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** मृगः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१८२८. नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः ।
युञ्जे वाचं शतपदीम् ।।१।।

---

१. ऋ० ५।४४।१४ ।

२. ऋ० ५।४४।१५ ।

प्रथम मन्त्र में नमस्कार किया गया है ।

पदार्थ– **पूर्वसद्भ्यः** जो पहले हो चुके हैं उन **सखिभ्यः** सखाओं को **नमः** नमस्कार हो, **साकंनिषेभ्यः** साथ रहने वाले सखाओं को **नमः** नमस्कार हो । अग्नि के समान तेजस्वी मैं **शतपदीम्** अनेक पादों वाली **वाचम्** वेदवाणी को **युञ्जे** प्रयोग में लाता हूं ।।१।।

भावार्थ– जो हमसे पहले उत्पन्न हुए वृद्धजन हैं और जो सहयोगी मित्र हैं उन सबको यथायोग्य सत्कार देना चाहिए । धार्मिक कार्यों में तथा परमात्मा की स्तुति में सदा वेदमन्त्रों का प्रयोग करना उचित है।।१।।

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
१८२९. युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि । गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ।।२।।

अगले मन्त्र में साम का गान करने वाला कह रहा है ।

पदार्थ– मैं **शतपदीम्** अनेक पादों वाली **वाचम्** वेदवाणी को **युञ्जे** प्रयोग में लाता हूं। साथ ही, **गायत्रम्** गायत्रीछन्द वाले साम को, **त्रैष्टुभम्** त्रिष्टुप् छन्द वाले साम को और **जगत्** जगती छन्द वाले साम को **सहस्रवर्तनि** सहस्र मार्गों से **गाये** गाता हूं ।।२।।

भावार्थ– ऋचाओं पर आश्रित सामों के गान से हृदय और सामाजिक वातावरण पवित्र होता है।।२।।

३ १ २र३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३२
१८३०. गायत्रं त्रैष्टुभं जगद् विश्वा रूपाणि सम्भृता । देवा ओकांसि चक्रिरे।।३।।

अगले मन्त्र में सामगान का महत्त्व वर्णित है ।

पदार्थ– **गायत्रम्** गायत्री छन्द वाला साम, **त्रैष्टुभम्** त्रिष्टुप् छन्द वाला साम, **जगत्** और जगती छन्द वाला साम, इनमें **विश्वा रूपाणि** दूसरे सामों के भी सब रूप **सम्भृता** समाविष्ट हैं। जो इन सामों को गाता है उसमें **देवाः** दिव्य गुण **ओकांसि** घर **चक्रिरे** कर लेते हैं ।।३।।

भावार्थ– आठ अक्षरों का गायत्र पाद, ग्यारह अक्षरों का त्रैष्टुभ पाद, और बारह अक्षरों का जागत पाद होता है । प्रायः सभी वैदिक छन्द इन्हीं पादों से बनते हैं । इनमें से किसी एक दो या तीनों पादों से गुंथी हुई ऋचाओं पर साम गान करने से गायक के अन्तरात्मा में अनेक दिव्यगुण समाविष्ट हो जाते हैं ।।३।।

।।८।। अथ 'अग्निर्ज्योति' रित्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अवत्सारः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

३ २उ ३ १ २३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
१८३१. अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ।।१।।

प्रथम मन्त्र में ज्योति का महत्त्व वर्णित है ।

पदार्थ– **अग्निः** पार्थिव अग्नि **ज्योतिः** एक ज्योति है, **ज्योतिः** वह ज्योति ही **अग्नि** वस्तुतः अग्नि है । **इन्द्रः** बिजली **ज्योतिः** एक ज्योति है, **ज्योतिः** वह ज्योति ही **इन्द्रः** वस्तुतः बिजली है । **सूर्यः** सूर्य **ज्योतिः** एक ज्योति है, **ज्योतिः** वह ज्योति ही **सूर्यः** वस्तुतः सूर्य है ।।१।।

भावार्थ– यद्यपि अग्नि, विद्युत् और सूर्य ये सब पृथिवी, जल, वायु, तेज और आकाश इन पंच तत्त्वों से मिलकर बने हुए हैं, तो भी अग्नि का अग्नित्व, विद्युत् का विद्युत्त्व और सूर्य का सूर्यत्व ज्योति के कारण से ही है, ज्योति के बिना उनमें कुछ भी महत्त्व अवशिष्ट नहीं रहेगा। इसी प्रकार मनुष्य का भी मनुष्यत्व अध्यात्म ज्योति के कारण से ही है। इसलिए सब मनुष्यों को चाहिए कि अध्यात्म ज्योति के संचय का प्रयत्न करें ।।१।।

१८३२. पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्नः पाह्यंहसः ।।२।।[१]

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

पदार्थ– हे **अग्ने** प्रकाशकों के प्रकाशक, जगन्नायक, सर्वान्तर्यामी परमेश! आप **पुनः** फिर-फिर **ऊर्जा** बल और प्राणशक्ति के साथ, **पुनः** फिर-फिर **इषा** अभीष्ट आनन्द के साथ **आयुषा** और दीर्घायुष्य के साथ **नि वर्तस्व** हमें निरन्तर प्राप्त होते रहो। **पुनः** फिर-फिर **नः** हमें **अंहसः** पाप से **पाहि** बचाते रहो।।२।।

भावार्थ– मनुष्य निर्बल होने से पुनः पुनः निरुत्साह, दैन्य, दुःख, अज्ञान, पाप आदियों से लिप्त होता रहता है। वह परमात्मा की उपासना से पुनः पुनः बल, प्राण, सुख, सद्विद्या, धर्म, दीर्घायुष्य आदि प्राप्त कर सकता है ।।२।।

१८३३. सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ।।३।।[२]

आगे फिर परमात्मा से प्रार्थना है।

पदार्थ– हे **अग्ने** जगन्नायक, सर्वप्रकाशक, रसागार परमात्मन्! आप **रय्या सह** दिव्य ऐश्वर्य के साथ **निवर्तस्व** हमें निरन्तर प्राप्त होते रहो। **विश्वप्स्न्या** सब योगियों से आस्वाद ली जाने वाली **धारया** आनन्द-धारा में, हमें **विश्वतः** सब ओर से **परिपिन्वस्व** सींचते रहो ।।३।।

भावार्थ– आनन्द-रस का पुंज परमेश्वर अपने उपासकों को आनन्द-धारा से सींचता और दिव्य ऐश्वर्यों से सनाथ करता है ।।३।।

इस खण्ड में जगदीश्वर, जागरण, नमस्कार, सामगान और ज्योति के विषयों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ।।

बीसवें अध्याय में छठा खण्ड समाप्त ।।

।।९।। अथ 'यदिन्द्राह' मित्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** गायत्री। **स्वरः** षड्जः ।।

१८३४. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।
स्तोता मे गोसखा स्यात् ।।१।।[३]

---

१. य० १२।९,४०।

२. य० १२।१०, ४१।

३. ऋ० ८।१४।१; अथ० २०।२७।१, उभयत्र 'गोषखा' इति भेदः। साम० १२२।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १२२ क्रमांक पर हो चुकी है । इसमें धनपति होकर मैं क्या करूं इसका वर्णन है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जगदीश्वर आचार्य वा राजन्! **यत्** यदि **यथा त्वम्** जैसे आप हो वैसे **अहम्** मैं **वस्वः** दिव्य ऐश्वर्य का, विद्या-धन का वा भौतिक धन का **एकः इत्** अद्वितीय **ईशीय** स्वामी हो जाऊं, तो **मे** मेरा **स्तोता** प्रशंसक **गोसखा** दिव्य प्रकाशों का, समस्त वाङ्मय का वा धेनुओं का सखा **स्यात्** हो जाए ।।१।।

भावार्थ– यदि मैं जगदीश के समान सत्य, अहिंसा, योगसिद्धि आदि दिव्य धनों का स्वामी हो जाऊं तो सत्पात्रों को दिव्य धन बांटूँ, यदि मैं आचार्य के समान विद्या-धनों का स्वामी हो जाऊं तो शिष्यों को विविध विद्याओं का अध्यापन करूं, यदि मैं राजा के समान चांदी, सोना, गाय आदि धनों का स्वामी हो जाऊं तो निर्धनों को चांदी सोना, गाय आदि धन वितीर्ण करूं ।।१।।

१८३५. शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ।।२।।[1]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ– हे **शचीपते** सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर! **यदि अहम्** यदि मैं **गोपतिः** भूमियों वा धेनुओं का स्वामी हो जाऊं, तो उन भूमियों वा धेनुओं को **दित्सेयम्** मैं दान करने का संकल्प लूं और **अस्मै मनीषिणे** इस मेधावी विद्वान् को **शिक्षेयम्** उनका दान कर दूं ।।२।।

भावार्थ– धनपतियों का यह कर्तव्य है कि वे जिस धन के स्वामी हों उस धन का कम से कम शतांश सत्पात्रों को अवश्य दान करें ।।२।।

१८३६. धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में वेदवाणी-रूप धेनु का विषय है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जगदीश्वर! ते आपकी **सूनृता** सत्य और मधुर, **धेनुः** तृप्ति देने वाली वेदवाणी **सुन्वते** भक्ति-रस प्रवाहित करने वाले **यजमानाय** उपासक के लिए **पिप्युषी** बढ़ाने वाली होती हुई **गाम्** अन्तः प्रकाश को, और **अश्वम्** प्राण-बल को **दुहे** दुहती है ।।३।।

भावार्थ– वेद पढ़ने से मनुष्यों की परमेश्वरोपासना में प्रवृत्ति होती है और उससे अन्तःप्रकाश, प्राणबल और पुरुषार्थ के लिए प्रेरणा मिलती है ।।३।।

।।१०।। अथ 'आपो हि' इत्यादिकस्य दशमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः । **देवता** आपः । **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१. ऋ० ८।१४।२; अथ० २०।२७।२ ।
२. ऋ० ८।१४।३; अथ० २०।२७।३ ।

१८३७. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्द की धाराओं का विषय है ।

पदार्थ– हे **आपः** ब्रह्मानन्द-रस की धाराओ! तुम **हि** निश्चय ही **मयोभुवः** शान्ति देने वाली **स्थ** हो **ताः** वे तुम **नः** हमें **ऊर्जे** ब्रह्मबल के लिए, **महे** महत्ता के लिए, **रणाय** देवासुर संग्राम के लिए और **चक्षसे** अन्तःप्रकाश के लिए **दधातन** धारण करो ।।१।।

भावार्थ– उपासक जब परमपात्मा के पास से आनन्द की धाराओं को प्राप्त करता है तब ब्रह्मबल, आत्मोत्कर्ष और विजय आदि स्वयं ही आ जाते हैं ।।१।।

१८३८. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द की धाराओं के रस की प्रार्थना है ।

पदार्थ– हे ब्रह्मानन्द की धाराओ! **यः** जो **वः** तुम्हारा **शिवतमः** अतिशय शान्तिदायक **रसः** रस है **तस्य** उसका **इह** इस जीवन में **नः** हमें **भाजयत** भागी बनाओ, पान कराओ, **उशतीः** सन्तान से प्रेम करती हुई **मातरः इव** माताएं जैसे अपने स्तनों का दूध अपनी सन्तान को पिलाती हैं ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– माता के स्तन के दूध में जो माधुर्य है वही ब्रह्म के पास से प्राप्त आनन्द-धाराओं में है ऐसा विद्वान् उपासक लोग अनुभव करते हैं ।।२।।

१८३९. तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ।।१।।[3]

आगे फिर ब्रह्मानन्द की धाराओं का ही विषय है ।

पदार्थ– हे **आपः** ब्रह्मानन्द की धाराओं! **तस्मै** उस प्रयोजन के लिए, हम **वः** तुम्हें **अरम्** पर्याप्त रूप से **गमाम** प्राप्त कर लें, **यस्य** जिस अभ्युदय और निःश्रेयस रूप प्रयोजन के **क्षयाय** हमारे अन्दर निवास कराने के लिए, तुम **जिन्वथ** गति करती हो । तुम **नः** हमें **जनयथ च** नवजीवन से अनुप्राणित भी कर दो ।।३।।

भावार्थ– परमात्मा की उपासना से जो दिव्य आनन्द प्राप्त होता है उससे मनुष्य अपने जीवन में परम उत्कर्ष और मोक्ष भी पा सकता है ।।३।।

।।११।। अथ 'वात आ वातु' इत्यादिकस्यैकादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** उलो वातायनः । **देवता** वायुः। **छन्दः** गायत्री । **स्वरः** षड्जः ।।

१८४०. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे। प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१।।[4]

---

१. ऋ० १०।९।१, य० ११।५०; ३६।१४ ; अथ० १।५।१ ।

२. ऋ० १०।९।२; य० ११।५१; ३६।१५; अथ० १।५।२ ।

३. ऋ० १०।९।३; य० ११।५२; ३६।१६ अथ० १।५।३

४. ऋ० १०।१८६।१, 'प्र ण' इति भेदः । साम० १८४ देवता इन्द्रः ।

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में १८४ क्रमांक पर पहले व्याख्या की जा चुकी है । यहां वात शब्द से जीवात्मा-सहित प्राण का ग्रहण है ।

पदार्थ– वातः जीवात्मा सहित प्राण **भेषजम्** औषध को **आ वातु** प्राप्त कराये, जो **नः** हमारे **हृदे** हृदय के लिए **शम्भु** रोगों को शान्त करने वाली, तथा **मयोभु** सुखकारी हो । **नः** हमारे **आयूंषि** आयु के वर्षों को **प्र तारिषत्** बढ़ाये ।।१।।

भावार्थ– देह में स्थित जीवात्मा जब पूरक, कुंभक और रेचन की विधि से शुद्ध वायुमंडल में प्राणायाम का अभ्यास करता है तब रक्त की शुद्धि द्वारा रोगशान्ति और दीर्घ आयु प्राप्त होती है ।।१।।

१८४१. उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि ।।२।।[1]

अगले मन्त्र में प्राण के महत्त्व का वर्णन करते हुए उससे प्रार्थना की गयी है ।

पदार्थ– उत और, हे **वात** जीवात्मा-सहित प्राण! तू **नः** हमारा **पिता** पिता के समान पालनकर्ता **असि** है, **उत** और **नः** हमारा **भ्राता** भाई के समान भरणपोषणकर्ता, **उत** तथा **सखा** सखा के समान सहायक है । **सः** वह तू **नः** हमें **जीवातवे** स्वस्थ जीवन के लिए **कृधि** समर्थ कर ।।२।।

यहां वात में पितृत्व, भ्रातृत्व और सखित्व के आरोप होने से रूपक अलंकार है ।।२।।

भावार्थ– जीवात्मा-सहित प्राण के द्वारा ही प्राणियों के जन्म, वृद्धि, क्षतिपूर्ति, आरोग्य और दीर्घायुष्य आदि होते हैं ।।२।।

१८४२. यददो वात ते गृहे३मृतं निहितंगुहा । तस्य नो धेहि जीवसे ।।३।।[2]

आगे पुनः उसी विषय का कथन है ।

पदार्थ– हे **वात** जीवात्मा-सहित प्राण! **यत् ते गृहे** जो तुम्हारे शरीर रूप घर में **गुहा** हृदय-गुहा के अन्दर **अदः** यह **अमृतम्** अक्षय परमात्मा-रूप ज्योति **निहितम्** रखी हुई है, **जीवसे** जीवन के लिए **तस्य नः धेहि** उसकी हमें प्राप्ति कराओ ।।३।।

भावार्थ– प्राणायाम द्वारा प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाने पर, मन में धारणाओं की योग्यता उत्पन्न हो जाने पर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि से हृदय में निहित परमात्म-ज्योति प्रकाशित हो जाती है।।३।।

।।१२।। अथ 'अभि वाजी' इत्यादिकस्य द्वादशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** सुपर्णः । **देवता** अग्निः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

---

१. ऋ० १०।१८६।२।

२. ऋ० १०।१८६।३, यद्दो वात ते गृहे३ऽमृतस्य निधिर्हितः । ततो नो देहि जीवसे ।। इति पाठः ।

१८४३. अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः ।
सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥१॥

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से जगदीश्वर के गुण-कर्मों का वर्णन है ।

पदार्थ— **वाजी** बलवान्, **विश्वरूपः** सब रूपों को देने वाला, **सुर्पणः** श्रेष्ठ पालनकर्ता, **ऋज्रः** सर्वव्यापक वह अग्निनामक परमेश्वर **जनित्रम्** वृष्टि के उत्पादक, **हिरण्ययम्** सुनहरे **अत्कम्** विद्युत्रूप वज्र को **बिभ्रत्** धारण करता हुआ, **ऋतुथा** ऋतुओं के अनुकूल **सूर्यस्य** सूर्य के **भानुम्** तेज को **वसानः** बसाता हुआ **स्वयम्** अपने आप **मेधम्** सृष्टि-यज्ञ को **जजान** चला रहा है ॥१॥

भावार्थ— संसार में जो कुछ भी प्राकृतिक घटना-चक्र चल रहा है उस सबको परमेश्वर ही संचालित करता है ॥१॥

१८४४. अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत् संबभूव ।
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥२॥[1]

अगले मन्त्र में परमेश्वर की महिमा वर्णित है ।

पदार्थ— **अप्सु** नदियों में जो **विश्वरूपम्** सब रूपों वाला **रेतः** जल **शिश्रिये** आश्रित है, **यत्** और जो **पृथिव्याम् अधि** भूमि के अन्दर **तेजः** तेज **संबभूव** उत्पन्न हुआ है, उस सबको **ऋज्रः** सर्वव्यापक अग्नि नामक जगदीश्वर ने ही **जजान** उत्पन्न किया है । [यहां 'ऋज्रः' और 'जजान' ये दोनों पद पूर्व मन्त्र से लाये गये हैं ।] वही जगदीश्वर **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्ष में **स्वम्** अपनी **महिमानम्** महिमा को **मिमानः** प्रकट कर रहा है ! उसी की महिमा से **वृष्णः** वर्षा करने वाले **अश्वस्य** व्यापक बादल का **रेतः** जल **कनिक्रन्ति** बहुत अधिक गरजता है॥२॥

भावार्थ— नदियों में, भूमि पर, अन्तरिक्ष में, द्युलोक में, सूर्य में, बादल में सभी जगह जगदीश्वर की ही महिमा दृग्गोचर हो रही है ॥२॥

१८४५. अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥३॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है ।

पदार्थ— **यज्ञः** पूजनीय यह अग्नि नामक जगदीश्वर **युक्ताः** आकर्षण के बल से आपस में जुड़े हुए **सहस्रा** सहस्रों नक्षत्रों को **वसानः** बसाता हुआ **सूर्यस्य** सूर्य के **भानुम्** तेज को **दाधार** धारण कर रहा है । यह जगदीश्वर **सहस्रदाः** सहस्र वस्तुओं का दाता, **शतदा** सौ रत्नों का दाता, **भूरिदावा** बहुत-बहुत दूध-दही-मक्खन आदि का और विद्या-धर्म आदि का दाता, **दिवः धर्ता** द्युलोक का धारणकर्ता, और **भुवनस्य** ब्रह्माण्ड का **विश्पतिः** प्रजापति है ॥३॥

१. दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः । ऋ० ५।८३।६ इत्यत्र पर्जन्यो 'वृषा अश्वः' उक्तः । तथा च तत्र सायणः—'वृष्णः वर्षकस्य अश्वस्य व्यापकस्य मेघस्य' इति ।

भावार्थ– जगदीश्वर ही हमारे सौरमण्डल को, असंख्य तारों को, सारे ही ब्रह्माण्ड को धारण करता हुआ हमें सब संपदाएं देता है ।।३।।

।।१३।। अथ 'नाके सुपर्ण' मित्यादिकस्य त्रयोदशस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** वेनो भार्गवः । **देवता** वेनः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१८४६. नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ।।१।।[1]

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३२० क्रमांक पर सूर्य के दृष्टान्त से परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है । यहां जीवात्मा का विषय कहते हैं ।

पदार्थ– हे वेन! हे परमेश्वर की कामना करने वाले जीवात्मन्! **हिरण्यपक्षम्** ज्ञान-कर्म-रूप सुनहरे पंखों वाले, **वरुणस्य दूतम्** वरणीय मन को सन्मार्ग पर प्रेरित करने वाले, **यमस्य** नियन्ता प्राण के **योनौ** देह रूप घर में **शकुनम्** शक्ति से शोभित, **भुरण्युम्** देह के धारक-पोषक, **सुपर्णम्** अष्टांग-योग-रूप शुभ पंखों से युक्त तथा **नाके** मोक्ष के निमित्त **उपपतन्तम्** प्रयत्नशील **त्वा** तुझे **यत्** जब **अभ्यचक्षत** प्रभु-प्रेमी लोग देखते हैं, तब वे **हृदा** हृदय से **वेनन्तः** तुझसे प्रेम करने लगते हैं ।।१।।

भावार्थ– देह के अधिष्ठाता जीवात्मा की जब अध्यात्म मार्ग में रूचि हो जाती है तब वह अष्टांग योग के अभ्यास से मोक्ष पा सकता है ।।१।।

१८४७. ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ्चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वा३र्ण नाम जनत प्रियाणि ।।२।।[2]

अब मुक्तावस्था में जीवात्मा का स्वरूप वर्णित करते हैं ।

पदार्थ– ऊर्ध्वः जागरूक और उन्नत, **गन्धर्वः** वाणी वा इन्द्रियों को धारण करने वाला जीवात्मा **नाके अधि** मोक्षावस्था में **अस्थात्** स्थित होता है । वेन अर्थात् कमनीय परमेश्वर **अस्य** इस जीवात्मा के **प्रत्यङ्** अभिमुख होकर **चित्रा** विविध **आयुधा** रक्षा-साधनों को **बिभ्रत्** धारण करता है । तब मोक्षावस्था में जीवात्मा **दृशे कम्** परमात्मा के दर्शन के लिए **सुरभिम्** सद्गुणों से सुरभित **अत्कम्** स्वरूप को **वसानः** धारण करता हुआ **स्वः न** सूर्य के समान **प्रियाणि नाम** प्रिय तेजों को **जनत** प्रकट करता है ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– मुक्तावस्था में जीवात्मा की लौकिक आकांक्षाएं समाप्त हो जाती हैं, तेजोमय होकर वह परमात्मा के साहचर्य से दिव्य आनन्द का अनुभव करता है ।।२।।

---

१. ऋ० १०।१२३।६। अथ० १८।३।६६ ऋषिः अथर्वा, देवता यमः । साम० ३२० देवता इन्द्रः ।

२. ऋ० १०।१२३।७।

१८४८. द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥३॥[1]

अगले मन्त्र में मोक्षावस्था में जीवात्मा का परमात्मदर्शन वर्णित है ।

पदार्थ– **द्रप्सः** पानी की बूंद के सदृश अणु परिमाण वाला जीवात्मा **यत्** जब **समुद्रम् अभि** आनन्द के सागर परमात्मा की ओर **जिगाति** जाता है, तब **विधर्मन्** विशेष रूप से धारक मोक्ष लोक में वह जीव उस परमात्मा को **गृध्रस्य चक्षसा** गिद्ध जैसी तीव्र दृष्टि से **पश्यन्** देखता है । **तृतीये रजसि** तृतीय धाम मोक्ष-लोक में **शुक्रेण** पवित्र **शोचिषा** तेज से **चकानः** प्रदीप्त होता हुआ **भानुः** परमात्मा रूप सूर्य उस जीवात्मा के **प्रियाणि** आनन्द वर्षा के प्रदान आदि अभीष्टों को **चक्रे** सिद्ध करता है ॥३॥

इस मन्त्र में परमात्मा में भानुत्व का आरोप होने से रूपक अलंकार है ॥३॥

भावार्थ– मोक्ष के लिए प्रयत्न करता हुआ जीव रस सींचने वाले तेजस्वी जगदीश्वर को प्राप्त करके रस सिक्त और तेजस्वी हो जाता है॥३॥

इस खण्ड में मनुष्य की आकांक्षा, वेदवाणी, ब्रह्मानन्द-धारा, प्राण और जीवात्मा की मोक्षप्राप्ति का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है ॥

बीसवें अध्याय में सप्तम खण्ड समाप्त ।

बीसवां अध्याय समाप्त ।

नवम प्रपाठक का द्वितीय अर्ध समाप्त ।

अथैक विंशोऽध्यायो नवमे प्रपाठके तृतीयोऽर्धश्च ।

१८४९. आशु शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥१॥[2]

प्रथम मन्त्र में सेनापति के दृष्टान्त से जीवात्मा का वर्णन है ।

पदार्थ– **आशुः** शीघ्रकारी, **शिशानः वृषभः न** तीक्ष्ण सींगों वाले बैल के समान **भीमः** विघ्न डालने वालों के लिए भयंकर, **घनाघनः** द्वेषियों का वध करने वाला, **चर्षणीनाम्** बाधा डालने वाले मनुष्यों को **क्षोभणः** विक्षुब्ध कर देने वाला, **सङ्क्रन्दनः** शत्रुओं को रुलाने वाला, **अनिमिषः** लक्ष्य पर अपलक दृष्टि रखने वाला, **एकवीरः** अद्वितीय वीर, **इन्द्रः** सेनापति के तुल्य जीवात्मा **साकम्** एक साथ **शतं सेनाः** सौ आन्तरिक और बाह्य सेनाओं को **अजयत्** जीत सकता है ॥१॥

यहां उपमालंकार तथा वीर रस है ॥१॥

---

१. ऋ० १०।१२३।८।

२. ऋ० १०।१०३।१, य० १७।३३; अथ० १९।१३।२ ।

भावार्थ– जैसे राष्ट्र में वीर सेनापति अपने पराक्रम से सब शत्रुसेनाओं को जीत लेता है वैसे ही शरीर में जीवात्मा आंतरिक और बाह्य देवासुरसंग्राम में सब विघ्नकारियों को जीत कर अपना साम्राज्य स्थापित करे।।१।।

१८५०. सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ।।२।।[1]

आगे पुनः वही विषय है।

पदार्थ– हे **युधः नरः** योद्धा नरो! तुम **सङ्क्रन्दनेन** शत्रुओं को रुलाने वाले, **अनिमिषेण**, लक्ष्य पर अपलक दृष्टि रखने वाले, **जिष्णुना** विजयशील, **युत्कारेण** युद्ध करने वाले, **दुश्च्यवनेन** विपक्षियों से विचलित न किये जा सकने वाले, **धृष्णुना** स्वयं विपक्षियों को विचलित कर देने वाले, **इषुहस्तेन** हाथ में बाण आदि शस्त्रास्त्र धारण करने वाले, **वृष्णा** अस्त्रों की वर्षा करने वाले, **इन्द्रेण** सेनापति के समान वीर जीवात्मा के द्वारा **तत्** उस युद्ध को **जयत** जीत लो, **तत्** उस आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुदल को **सहध्वम्** पराजित कर दो।।२।।

भावार्थ– जैसे शस्त्रास्त्रधारी वीर सेनापति के नेतृत्व में योद्धा लोग संग्राम को जीत लेते हैं वैसे ही अपने जीवात्मा को उद्‌बोधन देकर, उसे नेता बनाकर सब आन्तरिक तथा बाहरी युद्धों को सब लोग जीतें।।२।।

१८५१. स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यू३ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ।।३।।[2]

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

पदार्थ– **सः** वह देह में जन्मा हुआ जीवात्मा **इषुहस्तैः** शरपाणि योद्धाओं द्वारा, **सः** वह जीवात्मा **निषङ्गिभिः** तूणीरधारी योद्धाओं द्वारा **वशी** शत्रुओं को वश करने वाला होता है। **स इन्द्रः** वह वीर जीवात्मा **युधः** युद्धकर्ता शत्रु के **गणेन** दल के साथ **संस्रष्टा** टक्कर लेने वाला होता है। **संसृष्टजित्** मुठभेड़ करने वालों का विजेता, **सोमपाः** वीररस का पान करने वाला, **बाहुशर्धी** बाहुबल से युक्त, **उग्रधन्वा** प्रचण्ड धनुष वाला और **प्रतिहिताभिः** प्रेरित बाणों से **अस्ता** शत्रुओं को धराशायी कर देने वाला होता है ।।३।।

भावार्थ– कुशल सेनाध्यक्ष जैसे अपने शस्त्रास्त्रधारी योद्धाओं द्वारा बलवान् भी शत्रुओं को धराशायी कर देता है, वैसे ही देहधारी वीर जीवात्मा अपने पक्ष के वीरों को उद्बोधन देकर आन्तरिक और बाह्य संग्राम को शीघ्र ही जीत ले ।।३।।

---

१. ऋ०१०।१०३।२; य० १७।३४, अथ० १९।१३।३।

२. ऋ० १०।१०३।३; य० १७।३५; अथ० १९।१३।४।

।।२।। अथ 'बृहस्पते' इत्यादिकस्य द्वितीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अप्रतिरथ ऐन्द्रः । **देवता** १ बृहस्पतिः, २-३ इन्द्रः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१८५२. बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा को देवासुरसंग्राम में विजय के लिए उद्बोधन दिया गया है ।

पदार्थ– हे **बृहः पते** दिव्यगुणों की विशाल सेना के अधिपति जीवात्मन्! **रक्षोहा** पाप वा दुर्जन रूप राक्षसों का वधकर्ता तू **अमित्रान्** विघ्नों और शत्रुओं को **अपबाधमानः** तिरस्कृत करता हुआ **रथेन** शरीर-रथ से **परिदीय** चारों ओर पहुंच। **सेनाः** काम-क्रोध आदि की और दुर्जनों की सेनाओं को **प्रभञ्जन्** तोड़ता-फोड़ता हुआ, **प्रमृणः** हत्यारे दुर्विचारों वा हिंसक मनुष्यों को **युधा** आन्तरिक और बाह्य देवासुरसंग्राम से **जयन्** जीतता हुआ **अस्माकम्** हम सदाचारी, धार्मिक, न्यायकारी जनों के **रथानाम्** रथों का **अविता** रक्षक **एधि** हो ।।१।

भावार्थ– जीवात्मा को चाहिए कि सेनापति के समान उत्साह बटोर कर आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को खदेड़ता हुआ सद्भावों और सज्जनों की रक्षा करे ।।१।।

१८५३. बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जीवात्मन्! **बलविज्ञायः** ब्रह्मबल का ज्ञाता, **स्थविरः** अनुभव में वृद्ध, **प्रवीरः** अतिशय वीर, **सहस्वान्** उत्साही, **वाजी** विज्ञानवान्, **सहमानः** सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करने वाला, **उग्रः** प्रतापी, **अभिवीरः** मन, प्राण आदि वीरों से युक्त, **सहोजाः** बल में प्रसिद्ध, **गोवित्** विवेक की किरणों को और श्रेष्ठ वाणियों को प्राप्त तू **जैत्रम्** विजयशील **रथम्** रथ पर **आतिष्ठ** बैठ ।।२।।

भावार्थ– जैसे स्वयं वीर तथा वीर योद्धाओं से युक्त सेनापति जयशील रथ पर चढ़कर भयंकर युद्ध को भी जीत लेता है, वैसे ही वेदज्ञ, ब्रह्मज्ञ, सहनशील, मन-बुद्धि-प्राण आदि वीरों से युक्त, प्रभाववान्, प्रतापी, देह-रथ के अधिष्ठाता जीवात्मा को योग्य है कि अपने प्रौढ़ मनोबल से सभी बाह्य और आन्तरिक संग्रामों को जीत लेवे ।।२।।

१८५४. गोत्रमिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।।३।।[3]

---

१. ऋ० १०।१०३।४; य० १७।३६; अ०१९।१३।८ ।

२. यजुर्भाष्ये दयानन्दर्षिरिममपि मन्त्रं सेनापतिविषये व्याचष्टे ।

३. ऋ० १०।१०३।६; य० १७।३८; अथ० ६।९७।३; १९।१३।६।

अब जीवात्मा के नेतृत्व में विजयलाभ करने के लिए वीरों को प्रोत्साहन देते हैं।

पदार्थ— गोत्रभिदम् अविद्या, अस्मिता आदि क्लेश रूप पर्वतों को तोड़ने वाले, **गोविदम्** विवेक-प्रकाश की किरणों को प्राप्त करने वाले, **वज्रबाहुम्** अशुद्धि के क्षय तथा ज्ञान की दीप्ति के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि रूप वज्र को ग्रहण करने वाले, **अज्म** देवासुरसंग्राम को **जयन्तम्** जीतने वाले, **ओजसा** बल से **प्रमृणन्तम्** आन्तरिक शत्रुओं को कुचलने वाले **इमम् अनु** इस जीवात्मा का अनुसरण करके, हे **सजाताः** शरीर के साथ उत्पन्न मन, बुद्धि, प्राण, आदियो ! तुम **वीरयध्वम्** वीरता दिखाओ। हे **सखायः** मित्रो! तुम **इन्द्रम् अनु** जीवात्मा का अनुसरण करते हुए **संरभध्वम्** वीरता पूर्ण कार्यों को आरंभ करो ॥३॥

भावार्थ— शरीर के अन्दर जीवात्मा नाम का महापराक्रमी सेनापति पूरी रणसज्जा के साथ विद्यमान है, जिसे सब विघ्नों को पराजित करके देवासुर संग्राम में विजय पाना योग्य है ॥३॥

॥३॥ अथ 'अभि गोत्राणि' इत्यादिकस्य तृतीयस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अप्रतिरथ ऐन्द्रः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** त्रिष्टुप्। **स्वरः** धैवतः ॥

१८५५. अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३स्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥१॥[१]

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा-रूप सेनापति से रक्षा की प्रार्थना की गयी है।

पदार्थ— सहसा आत्मबल से **गोत्राणि** व्याधि, स्त्यान, संशय आदि योग-विघ्नों के तथा बाह्य विघ्नों के किलों का **अभि गाहमानः** अवगाहन करता हुआ, **अदयः** आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं पर दया न दिखाने वाला, **वीरः** वीर, **शतमन्युः** अनन्त तेज वाला, **दुश्च्यवनः** शत्रुओं से विचलित न किया जा सकने वाला, **पृतनाषाद्** शत्रुसेनाओं को पराजित कर देने वाला, **अयुध्यः** शत्रुओं के लिए जिससे युद्ध कर पाना असंभव होता है ऐसा **इन्द्रः** जीवात्मा-रूप सेनापति **युत्सु** आन्तरिक तथा बाह्य देवासुरसंग्रामों में **अस्माकं सेनाः** हमारी यम-नियम आदि की सेनाओं को और धार्मिक योद्धाओं की सेनाओं को **प्र अवतु** भली भांति रक्षित करे ॥१॥

भावार्थ— जैसे राष्ट्र में कोई वीर सेनापति स्वपक्षीय सेनाओं की शत्रुओं से रक्षा करता है और दुष्ट शत्रुओं का शस्त्रास्त्रों से वध करता है, वैसे ही देह में स्थित जीवात्मा प्रबोध प्राप्त करके अपने संकल्प के बल से और भुजाओं के बल से सब आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं को पराजित करे ॥१॥

---

१. ऋ० १०।१०३।७; य०१७।३९, अथ० १९।१३।७।

१८५६. इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ।।२।। [1]

अगले मंत्र में जीवात्मा की सेनाध्यक्षता में विजयार्थ युद्ध प्रयाण का वर्णन है ।

पदार्थ– **बृहः पतिः** महान् शरीर-रूप राष्ट्र का रक्षक **इन्द्रः** वीर जीवात्मा-रूप सेनापति **आसाम्** इन देव-सेनाओं का **नेता** नेता हो । **दक्षिणा** त्याग की भावना, **यज्ञः** परमेश्वरपूजारूप यज्ञ **सोमः** और शान्ति का व्रत **पुरः एतु** आगे-आगे चले । **अभिभञ्जतीनाम्** अदिव्य भावों तथा अधार्मिक दुष्ट-जनों को तोड़ती-फोड़ती-कुचलती हुई, **जयन्तीनाम्** विजय का उत्कर्ष प्राप्त करती हुई **देवसेनानाम्** दिव्यभावों तथा सदाचारी विद्वान् जनों कीं सेनाओं के **अग्रम्** आगे-आगे **मरूतः** प्राण तथा वायुवत् बलिष्ठ शूरवीर लोग **यन्तु** चलें ।।२।।

भावार्थ– सबको चाहिए कि अपने जीवात्मा को सेनापति बनाकर त्याग, परमात्मा की उपासना और विश्वशान्ति का आदर्श सामने रख कर, सत्य-अहिंसा आदि दिव्य गुणों की तथा बलिष्ठ योद्धाओं की सेना लेकर, प्राणपण से युद्ध करके देवासुरसंग्राम में विजय प्राप्त करें ।।२।।

१८५७. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञः आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्यात् ।।३।। [2]

अब वीरों के विजय-घोष का वर्णन करते हैं ।

पदार्थ– **वृष्णः** महाबली **इन्द्रस्य** विघ्नविदारक जीवात्मा का, **राज्ञः** संकल्प बल से राजित **वरुणस्य** श्रेष्ठ मन का और **आदित्यानाम्** दोषापहारी **मरुताम्** प्राणों का **उग्रम्** उग्र **शर्धः** बल **उदस्थात्** ऊपर उठे । **महामनसाम्** बड़े हौसले वाले, **भुवनच्यवानाम्** ब्रह्माण्ड को डिगा देने वाले, **जयताम्** विजय-लाभ करने वाले **देवानाम्** दिव्य भावों का और धर्मात्मा रण-बांके वीरों का **घोषः** विजय-घोष **उदयस्थात्** ऊपर उठे ।।३।।

यहां 'भुवनच्यवानाम्' में असंबन्ध में संबन्धरूप अतिशयोक्ति अलंकार है । वीर रस है ।।३।।

भावार्थ– उत्साही आत्मा, मन, प्राण आदि शरीरस्थ रण-बांके वीरों की और राष्ट्र के सेनापति आदि वीरोद्भटों की देवासुरसंग्राम में विजय निश्चित होती है ।।३।।

।।४।। अथ 'उद्धर्षय' इत्यादिकस्य चतुर्थस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** अप्रतिरथ ऐन्द्रः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** त्रिष्टुप् । **स्वरः** धैवतः ।।

१८५८. उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद् वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ।।१।। [3]

---

१. ऋ० १०।१०३।८; य०१७।४०; अथ० १९।१३।९ ।

२. ऋ० १०।१०३।९; य० १७।४१; अथ० १९।१३।१०।

३. ऋ० १०।१०३।१०, य० १७।४२;

प्रथम मन्त्र में इन्द्र जीवात्मा को प्रोद्बोधन दिया गया है ।

पदार्थ– हे **मघवन्** शरीर के अधिष्ठाता ऐश्वर्यशाली जीवात्मन्! **आयुधानि** शस्त्रास्त्रों को **उद्धर्षय** ऊपर उठाओ, **मामकानाम्** मेरे **सत्वनाम्** वीरों के **मनांसि** मनों को **उत्** ऊपर उठाओ , उत्साहित करो । हे **वृत्रहन्** पापहन्ता, विघ्नहन्ता, शत्रुहन्ता जीवात्मन्! **वाजिनाम्** बलवान् योद्धाओं के **वाजिनानि** रण-कौशल **उद् यन्तु** ऊपर उठें, **जयताम्** विजय लाभ करते हुए **रथानाम्** रथारोहियों के **घोषाः** विजय-घोष **उद् यन्तु** ऊपर उठें।।१।।

यहां वीर रस है । 'उद्' की आवृत्ति में लाटानुप्रास, 'वाजिनां, वाजिना' में यमक और यकार, नकार, मकार, तकार का अनुप्रास है ।।१।।

भावार्थ– जो कोई राजा या सेनापति शस्त्रास्त्रों को तेज करता है, अपने पक्ष के वीरों के मनों को उत्साहित करता है, विजय-दुंदुभि बजाता है, वह सब कार्य उसके शरीर में स्थित जीवात्मा का ही होता है । इसलिए उसी को संबोधन किया गया है । आत्मा के उद्बोधन से ही बाह्य विजय के समान ही आन्तरिक विजय भी प्राप्त होती है ।।१।।

१८५९. अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ।।२।।[1]

अब विजय की प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– **अस्माकम् इन्द्रः** हमारा सेनापति-तुल्य जीवात्मा **ध्वजेषु समृतेषु** हमारे ध्वजों के शत्रु-ध्वजों से टकराने पर **जयतु** विजय-लाभ करे । **अस्माकं याः इषवः** हमारे जो बाण हैं **ताः जयन्तु** वे विजय-लाभ करें । **अस्माकं वीराः** हमारे रण-कुशल वीर योद्धा **उत्तरे भवन्तु** विजयी हों । हे **देवाः** जीतने के अभिलाषी मन, बुद्धि आदियो ! **अस्मान् उ** हमारी **हवेषु** देवासुरसंग्रामों में **अवत** रक्षा करो ।।२।।

भावार्थ– जैसे सेनापति से प्रोद्बोधन पाकर रणबांकुरे सैनिक शीघ्र ही शत्रुओं को जीत लेते हैं, वैसे ही अपने अन्तरात्मा को प्रोत्साहन देना वीरों के विजय में हेतु बनता है ।।२।।

१८६०. असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में शत्रुओं को मोह में डालने की प्रेरणा दी गयी है ।

पदार्थ– हे **मरुतः** प्राणो वा वीर सैनिको! **असौ या** यह जो **ओजसा** अपने बल से **स्पर्धमाना** हमसे स्पर्धा करती हुई **परेषाम्** शत्रुओं की **सेना** सेना **नः अभ्येति** हमारी ओर बढ़ी आ रही है, **ताम्** उस सेना को **अपव्रतेन** जिसमें कार्य बन्द हो जाते हैं ऐसे **तमसा** अधंकार से **गूहत** आच्छन्न कर दो, **यथा** जिससे **एतेषाम्** इनमें **अन्यः** एक **अन्यम्** दूसरे को **न जानात्** न जान सके ।।३।।

---

१. ऋ० १०।१०३।११; य० १७।४३ ; अथ० १९।१३।११ ।

२. य० १७।४७, 'अ॒भ्यैति॑' इति भेदः । 'यथा॒मी अ॒न्यो अ॒न्यत्र जा॒नन्' इति चतुर्थः पादः । अथ० ३।२।६

भावार्थ– जैसे युद्ध में संमोहनास्त्र के प्रयोग द्वारा घोर अंधकार के व्याप्त हो जाने पर शत्रु एक-दूसरे को ही नहीं देख पाते वैसे ही जीवात्मा के प्राणायाम द्वारा प्रयुक्त संमोहन से सभी आन्तरिक काम-क्रोध आदि वा अविद्या-अस्मिता आदि शत्रु सर्वथा मोह को प्राप्त हो जाएं ।।३।।

।।५।। अथ अमीषां चित्त' मित्यादिकस्य पञ्चमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १-२ अप्रतिरथ ऐन्द्रः, ३ पायुर्भरद्वाजः । **देवता** १ आप्वा, २ इन्द्रो मरुतो वा, ३ इषवः । **छन्दः** १ त्रिष्टुप्, 2-3 अनुष्टुप् । **स्वरः** १ धैवतः , २-३ गान्धारः ।।

१८६१. अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धे नाभित्रास्तमसा सचन्ताम् ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में शत्रुओं को व्याधि वा भय से पीड़ित करने का वर्णन है ।

पदार्थ– हे **अप्वे** व्याधि वा भीति! **परेहि** शत्रुदल में जा । **अमीषाम्** इन शत्रुओं के **चित्तम्** चित्त को **मोहयन्ती** मोहित करती हुई **अङ्गानि** इनके अंगों को **गृहाण** जकड़ दे । **अभिप्रेहि** शत्रुओं के प्रति जा, उनके **हृत्सु** हृदयों में **शोकैः** शोकों से **निर्दह** दाह उत्पन्न कर दे । **अमित्राः** शत्रु **अन्धेन** घने **तमसा** मोह के अंधकार से **सचन्ताम्** संयुक्त हो जाएं ।।१।।

भावार्थ– जैसे व्याधि वा भय से ग्रस्त शत्रु किंकर्तव्यविमूढ़ और दग्ध हृदय वाले होकर पराजित हो जाते हैं वैसे ही आन्तरिक देवासुरसंग्राम में काम - क्रोध - लोभ - मोह आदि वा व्याधि - स्त्यान - संशय - प्रमाद - आलस्य आदि रिपु व्याधि-ग्रस्त वा भयोद्विग्न से होकर झट विनष्ट हो जाएं ।।१।।

१८६२. प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में वीरों को उद्‌बोधन दिया गया है ।

पदार्थ– हे **नरः** वीर-पुंगव योद्धाओ! **प्रेत** आगे बढ़ो, **जयत** विजय पाओ । **इन्द्रः** तुम्हारा वीर अंतरात्मा **वः** तुम्हें **शर्म** कल्याण **यच्छतु** प्रदान करे । **वः** तुम्हारी **बाहवः** भुजाएं **उग्राः** उग्र **सन्तु** हों, **यथा** जिससे, तुम **अनाधृष्याः** अपराजेय **असथ** हो जाओ ।।२।।

इस मन्त्र में वीर रस है ।।२।।

भावार्थ– मनुष्यों को उद्‌बोधन तभी मिल सकता है यदि उनका आत्मा बलवान् हो । इसलिए अपने आत्मा को बली बनाकर, उद्‌बोधन पाकर जीवन-संग्राम में सबको विजय प्राप्त करनी चाहिए।।२।।

१८६३. अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ।।३।।[3]

---

१. ऋ० १०।१०३।१२ ;य० १७।४४; अथ० ३।२।५।
२. ऋ० १०।१०३।१३; य० १७।४६; अथ० ३।१९।७ ।
३. ऋ० ६।७५।१६, य० १७।४५, अथ० ३।१९।८ ।

अब अपनी सेना को उद्‌बोधन देते हैं

पदार्थ– हे **ब्रह्मसंशिते** धनुर्वेद के ज्ञाता सेनापति द्वारा तीक्ष्ण अर्थात् उत्साहित की हुई, **शरव्ये** शस्त्रास्त्र चलाने में कुशल सेना! **अवसृष्टा** प्रेरित की हुई तू **परापत** शत्रुओं पर टूट पड़ । **गच्छ** जा, **अमित्रान्** शत्रुओं को **प्रपद्यस्व** प्राप्त कर । **अमीषाम्** इनके मध्य **कंचन** किसी को भी **न उच्छिषः** बचा न रहने दे ।।३।।

भावार्थ– जैसे सेनापति से प्रेरित वीरों की सेना शत्रुओं को जीत लेती है वैसे ही शरीर के अध्यक्ष जीवात्मा से प्रेरित सात्त्विक वीर भावों की सेना तामस दुर्भावों पर विजय पा लेती है । तामस भावों को निःशेष कर देना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि नाममात्र भी वे यदि बचे रहें तो फिर बढ़ जाते हैं।।३।।

।।६।। अथ 'कङ्काः' इत्यादिकस्य षष्ठस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १, २ अप्रतिरथः ऐन्द्रः, ३ पायु-भांरद्वाजः । **देवता** १, २ इन्द्रः, ३ संग्रामाशिषः । **छन्दः** १ त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ पङ्क्तिः । **स्वरः** १ धैवतः, २ गान्धारः, ३ पञ्चमः ।।

१८६४. कङ्का सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ।।१।।

प्रथम मन्त्र में शत्रुसेना के समूलोच्छेद का विषय है ।

पदार्थ– **सुपर्णाः** सुदृढ़ पंखों वाली **कङ्काः** चीलें **एनान्** इन शत्रुओं का **अनुयन्तु** पीछा करें । **असौ सेना** वह शत्रु-सेना **गृध्राणाम्** गिद्धों का **अन्नम् अस्तु** भोजन बने । हे **इन्द्र** सेनापतितुल्य जीवात्मन्! **एषाम्** इन शत्रुओं में से **अघहारः च न** पाप का भागी कोई भी **मा मोचि** जिन्दा न छूटे । **एनान् सर्वान्** इन सबका **वयांसि** मांसभक्षी पक्षी **अनु संयन्तु** पीछा करें, इन्हें खा जाएं ।।१।।

भावार्थ– जैसे बाह्य युद्ध में मारे गये शत्रु गिद्ध आदि मांस भक्षक पक्षियों से समाप्त किये जाते हैं, वैसे ही आन्तरिक देवासुर संग्राम में जीवात्मा से मारे गये काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाम भी न बचे ऐसा प्रयत्न मनुष्यों को करना चाहिए ।।१।।

१८६५. अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि ।
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निनश्च दहतं प्रति ।।२।।[1]

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है ।

पदार्थ– हे **मघवन्** दिव्य ऐश्वर्य वाले, **वृत्रहन्** शत्रुहन्ता **इन्द्र जीवात्मन्! अस्मान् अभि** हमारे प्रति **शत्रुयतीम्** शत्रुता का आचरण करने वाली **ताम्** उस विकराल **अमित्रसेनाम्** रिपु-सेना को, तू **अग्निः च** और तैजस मन **उभौ** दोनों **प्रतिदहतम्** भस्म कर दो ।।२।।

---

१. अथ ३।१।३, 'छत्रूयतीमभि' 'युवं तानिन्द्र' इति भेदः । ऋषिः अथर्वा ।

भावार्थ– जैसे राजा और सेनापति के उद्योग से सब बाह्य शत्रु निःशेष हो जाते हैं वैसे ही आन्तरिक देवासुरसंग्राम में जीवात्मा और मन सब विघ्नों और रिपुओं को दग्ध करने में समर्थ होते हैं।।२।।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१८६६. यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ।।३।।[1]

अगले मन्त्र में युद्ध में विजय की प्रार्थना है ।

पदार्थ– **यत्र** जिस समरांगण में **बाणाः** बाण आदि अस्त्र **संपतन्ति** गिरते हैं, **विशिखाः कुमाराः इव** जैसे चूड़ाकर्म संस्कार कराये हुए शिखा-रहित बालक चलने का अभ्यास करते हुए पग-पग पर गिरते हैं, **तत्र** उस समरांगण में **ब्रह्मणः पतिः** ज्ञान का रक्षक जीवात्मा और महान् राष्ट्र का रक्षक सेनापति तथा **अदितिः** कुतर्कों से खण्डित न होने वाली बुद्धि और राष्ट्रभूमि **नः** हमें **शर्म** कल्याण **यच्छतु** प्रदान करे, **विश्वाहा** सदा **शर्म** कल्याण **यच्छतु** प्रदान करे । [निरुक्त (१०।४०) में कहा गया है कि किसी वाक्य को दोहराने में बहुत सा चामत्कारिक अर्थ प्रकट होता है, जैसे – 'अहो, दर्शनीय है, अहो दर्शनीय है,' इस वाक्य में । उसी के अनुसार यहां 'शर्म यच्छतु' वाक्य को दुहराने में बहुत-सा अर्थ समाविष्ट है।] ।।३।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है ।।३।।

भावार्थ– बाह्य संग्राम में सेनापति प्रतिपक्षी योद्धाओं को तेज बाणों से काट कर अपने पक्ष वालों को सुख देवे । वैसे ही आध्यात्मिक देवासुरसंग्राम में जीवात्मा काम-क्रोध आदि रिपुओं का छेदन-भेदन करके मनोभूमि को शत्रु-रहित करे ।।३।।

।।७।। अथ 'वि रक्षो' इत्यादिकस्य सप्तमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १-२ शासो भरद्वाजः, ३ अप्रतिरथ ऐन्द्रः । **देवता** इन्द्रः । **छन्दः** १-२ अनुष्टुप्, ३ विराड् जगती । **स्वरः** १-२ गान्धारः, ३ निषादः।।

२उ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
१८६७. वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ।।१।।[2]

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा और सेनापति को उद्बोधन देते हैं ।

पदार्थ– हे **वृत्रहन् इन्द्र** पापहन्ता जीवात्मन्, और शत्रुहन्ता सेनापति! तुम **रक्षः** राक्षसी स्वभाव को वा राक्षसी स्वभाव वाले दुर्जन को **विजहि** विनष्ट करो, **मृधः** संग्रामकारी काम-क्रोध आदियों को वा हिंसक मानवी शत्रुओं को **विजहि** विनष्ट करो, **वृत्रस्य** पुण्य पर पर्दा डालने वाले पाप वा पापी के **हनू** आक्रमण और बचाव के उपायों को वा जबड़ों को **विरुज** चूर-चूर कर दो । **अभिदासतः** दंशनः छेदन-भेदन करने वाले **अमित्रस्य** शत्रु के **मन्युम्** प्रदीप्त-प्रभाव को वा क्रोध को **वि** विध्वस्त कर दो।।१।।

---

१. ऋ० ६।७५।१७ 'तत्रा' इति भेदः, य० १७।४८, 'तत्र इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः' इति भेदः ।
२. ऋ० १०।१५२।४; य० १८।७०; अथ० १।२१।२।

भावार्थ– जैसे राष्ट्र में सेनापति संहारकारी शत्रुओं का मर्दन करता है, वैसे ही शरीर में जीवात्मा राक्षसी स्वभाव को, हिंसक काम-क्रोध आदियों को, धर्म पर पर्दा डालने वाले पाप को, और बिच्छू के समान काटने वाली कुटिलता को विध्वस्त करे ।।१।।

१८६८. वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ।।२।।[1]

आगे पुनः वही विषय कहा गया है ।

पदार्थ– हे **इन्द्र** जीवात्मन् वा सेनापति! तुम **नः** हमारे **मृधः** हिंसकों को **विजहि** विनष्ट करो, **पृतन्यतः** सेना से आक्रमण करने वाले काम-क्रोध आदियों को वा बाहरी शत्रुओं को **नीचा यच्छ** नीचा दिखाओ। **यः** जो आंतरिक वा बाहरी शत्रु **अस्मान्** हम धार्मिकों को **अभिदासति** सर्वथा क्षीण करना चाहता है, उसे **अधरं तमः गमय** घोर दुर्गति प्राप्त कराओ वा निचले कारागार में डाल दो ।।२।।

भावार्थ– जैसे सेनापति दुष्ट शत्रुओं का वध कर देता है अथवा उन्हें कारागार में डाल देता है, वैसे ही शरीर का अधिष्ठाता जीवात्मा सब आंतरिक शत्रुओं की घोर दुर्गति करके वा उन्हें विनष्ट करके अपने निष्कंटक साम्राज्य को स्थापित करे ।।२।।

१८६९. इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ।।३।।[2]

अगले मन्त्र में इन्द्र जीवात्मा के विषय-साधनों का वर्णन है ।

पदार्थ– **इन्द्रस्य** सेनापति-तुल्य जीवात्मा की **बाहू** प्राण-अपान रूप भुजाएं **स्थविरौ** स्थिर, **युवानौ** तरूण, **अनाधृष्यौ** मन और शरीर के मलों से अपराजेय, **सुप्रतीकौ** शत्रु के प्रति भली भांति आगे बढ़ने वाली और **असह्यौ** रोग आदियों से असह्य हैं। **योगे आगते** अष्टांग योग के उपस्थित होने पर, योग-साधक **तौ** उन प्राण-अपान-रूप भुजाओं का **युञ्जीत** प्रयोग करे, **याभ्याम्** जिनसे **असुराणाम्** आधि-व्याधि-रूप दैत्यों का **महत् सहः** विशाल बल **जितम्** जीत लिया जाता है ।।३।।

यहां उपमेय प्राण-अपान के निगरणपूर्वक उपमानभूत बाहुओं का वर्णन होने से अतिशयोक्ति अलंकार है । 'स्थविर' अर्थात् बूढ़े होने पर भी 'युवा' यह विरोधालंकार ध्वनित होता है । ऊपर की व्याख्या से उस विरोध का परिहार हो जाता है ।।३।।

भावार्थ– योगाभ्यास में पूरक, कुंभक आदि प्राणायाम से इन्द्रियों के सब दोष नष्ट हो जाते हैं और प्रकाश के आवरण का क्षय हो जाने पर धारणाओं में मन की योग्यता हो जाती है । इसलिए प्राण-अपान सेनापति की बाहुओं के समान सहायक होते हैं ।।३।।

---

१. ऋ० १०।१५२।४; य० १८।७०; अथ० १।२१।२ ।

२. अथ० १९।१३।१, 'इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू । तौ यौक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ।। इति पाठः ।

।।८।। अथ 'मर्माणि' इत्यादिकस्याष्टमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १, ३ पायुर्भारद्वाजः, २ अप्रतिरथ ऐन्द्रः पायुर्भारद्वाजो वा । **देवता** संग्रामाशिषः । **छन्दः** १ त्रिष्टुप् २-३ अनुष्टुप् । **स्वरः** १ धैवतः २ गान्धारः ।।

१८७०. मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ।।१।।[१]

प्रथम मन्त्र में विजयाभिलाषी को आशीर्वाद दिया जा रहा है ।

पदार्थ– हे अध्यात्म पथ के पथिक जीवात्मन्! **ते** तेरे **मर्माणि** मन, बुद्धि चक्षु आदि मर्म-स्थलों को **वर्मणा** ब्रह्म-रूप कवच से **छादयामि** ढकता हूं! **राजा** विश्व का सम्राट् **सोमः** जगदीश्वर **त्वा** तुझे **अमृतेन** आनन्द-रस से **अनुवस्ताम्** आच्छादित करे । **वरुणः** दोषनिवारक, वरणीय, विद्वान् आचार्य **ते** तेरे लिए **उरोः** विस्तृत अध्यात्म ज्ञान के **वरीयः** अतिशय उत्कृष्ट तत्त्व को **कृणोतु** प्रदान करे । **जयन्तं त्वा** अध्यात्म क्षेत्र में और बाह्य क्षेत्र में विजय लाभ करते हुए तेरे **अनु** पीछे-पीछे **देवाः** मन, प्राण आदि भी **मदन्तु** लहलहायें ।।१।।

भावार्थ– योगमार्ग में पैर रखता हुआ मनुष्य ब्रह्मकवच से रक्षित होकर, गुरुजनों का मार्ग निर्देश पाकर, ब्रह्मानन्द का अनुभव करता हुआ मन, बुद्धि, प्राण आदियों के साथ अतिशय विजयी होता है ।।१।।

१८७१. अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।।२।।

अगले मन्त्र में शत्रुओं को भर्त्सना दी जा रही है ।

पदार्थ– हे **अमित्राः** आन्तरिक और बाह्य शत्रुओ! तुम **अन्धाः** अन्धे और **अशीर्षाणः अहयः इव** फन-कटे सांपों के समान प्रभाव-रहित **भवत** हो जाओ । **अग्निनुन्नानां तेषां वः** अग्नि के समान ज्वलंत दृढ संकल्प से दूर किये हुए उन तुम शत्रुओं में से **वरं-वरम्** प्रधान-प्रधान को चुन-चुन कर **इन्द्रः** हमारा अन्तरात्मा **हन्तु** विनष्ट कर दे ।।२।।

यहां उपमालंकार है ।।२।।

भावार्थ– भयंकर फटाटोप दिखाने वाले विषधर भी फन कट जाने पर कुछ भी कर सकने में असमर्थ हो जाते हैं। वैसे ही प्रबल संकल्प से जिनका बल हर लिया गया है ऐसे आंतरिक और बाह्य सब शत्रु निष्क्रिय और मृत हो जाएं ।।२।।

१८७२. यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ठ्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ।।३।।[२]

अगले मन्त्र में वधेच्छु के विनाश का उपाय दर्शाते हैं ।

१. ऋ० ६।७५।१८; य० १७।४९; अथ० ७।११८।१ ।
२. ऋ० ६।७५।१९, 'शर्म वर्म ममान्तरम्' इति नास्ति । 'निष्ठ्यो' इत्यत्र 'निष्ट्यो' इति च भेदः ।

पदार्थ– **यः** जो **नः** हमें **स्वः** अपना दुर्भाव, **अरणः** पराया दुर्भाव, **यः च** और जो **निष्ट्यः** शत्रु का दुर्भाव **जिघांसति** नष्ट करना चाहता है, **तम्** उस काम-क्रोध आदि दुर्भाव का **सर्वे** सब **देवाः** दिव्यगुण वा सदाचारी विद्वान् जन **धूर्वन्तु** वध कर दें। **ब्रह्म** महान् जगदीश्वर **मम** मेरा **अन्तरम्** आन्तरिक **वर्म** कवच अर्थात् रक्षा-साधन हो जाए, **शर्म** जगदीश की शरण **मम** मेरा **अन्तरम्** आन्तरिक **वर्म** कवच अर्थात् रक्षा-साधन हो जाए ।।३।।

भावार्थ– कभी मनुष्य निज मन से उत्पन्न पाप में प्रवृत्त होता है और कभी परिचित जन से प्रेरित वा शत्रु से प्रेरित पाप में लिप्त होता है। दिव्य विचारों से, विद्वानों के संग से और परमेश्वर के ध्यान-चिन्तन से उन पापों को नष्ट करके वह निष्पाप और सच्चरित्र हो सकता है ।।३।।

।।९।। अथ 'मृगो न' इत्यादिकस्य नवमस्य तृचस्य सूक्तस्य **ऋषिः** १ जय ऐन्द्रः, २-३ गोतमो राहूगणः। **देवता** १ इन्द्रः, २-३ विश्वेदेवाः। **छन्दः** १-२ त्रिष्टुप्, ३ विराट्स्थाना त्रिष्टुप्। **स्वरः** धैवतः ।।

१८७३. मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ।।१।।[1]

प्रथम मन्त्र में मानव को उद्‌बोधन दिया गया है।

पदार्थ– हे **इन्द्र** वीर मानव! तू **भीमः** भयंकर, **कुचरः** भूमि पर विचरने वाले, **गिरिष्ठाः** पर्वत की गुफा में निवास करने वाले **मृगः न** शेर के समान **भीमः** दुष्टों के लिए भयंकर, **कुचरः** भू-विहारी और **गिरिष्ठाः** पर्वत के सदृश उन्नत पद पर प्रतिष्ठित हो। **परावतः** सुदूर देश से **परस्याः** और दूर दिशा से **आ जगन्थ** शत्रुओं के साथ युद्ध करने के लिए आ **सृकम्** गतिशील, **तिग्मम्** तीक्ष्ण **पविम्** वज्र को, शस्त्रास्त्रसमूह को **संशाय** और अधिक तीक्ष्ण करके **शत्रून्** शत्रुओं को **वि ताढि** विताड़ित कर, **मृधः** हिंसकों को **वि नुदस्व** दूर भगा दे ।।१।।

यहां श्लिष्टोपमालंकार है ।।१।।

भावार्थ– मनुष्यों को चाहिए कि वीरता का संचय करके जैसे बाहरी शत्रुओं को पराजित करें वैसे ही आंतरिक शत्रुओं को भी निर्मूल करें ।।१।।

१८७४. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।२।।[2]

अगले मन्त्र में अपनी आकांक्षा प्रकट की गयी है।

पदार्थ– हे **देवाः** विद्वानो! हम **कर्णेभिः** कानों से **भद्रम्** भद्र वचन **शृणुयाम** सुनें। हे **यजत्राः** पूजनीय माता, पिता, आचार्य, वानप्रस्थ, संन्यासी आदि जनो! हम **अक्षभिः** आंखों से **भद्रम्** भद्र दृश्य

---

१. ऋ० १०।१८०।२; य० १८।७१; अथ० ७।८४।३।
२. ऋ० १।८९।८ 'व्यशेम' इति भेदः। य० २५।२१।

पश्येम देखें । **तुष्टुवांसः** जगदीश्वर की स्तुति करने वाले हमलोग **स्थिरैः** दृढ़ **अङ्गैः** सिर आदि अंगों से वा ब्रह्मचर्य आदि अंगो से, और **तनूभिः** अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि शरीरों से **यत्** जो **देवहितम्** सज्जनों का हित करने वाली वा परमात्मदेव द्वारा निहित कम से कम सौ वर्ष की **आयुः** आयु है वह **व्यशेमहि** प्राप्त करें ।।२।।

भावार्थ– मन, बुद्धि, प्राण, आंख, कान आदि जो अनुपम साधन मनुष्यों को परमात्मा ने दिये हैं उनके सदुपयोग से भद्र जीवन बिताते हुए पूर्ण आयु प्राप्त करके आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति निरंतर करनी चाहिए ।।२।।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१८७५. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।३।। [1]

अब अन्त में स्वस्ति की प्रार्थना करते हैं ।

पदार्थ– **वृद्धश्रवाः** महान् कीर्ति वाला **इन्द्रः** जगत्पति परमेश्वर **नः** हमें **स्वस्ति** मंगल **दधातु** प्रदान करे । **विश्ववेदाः** सब धन का स्वामी **पूषा** पुष्टि प्रदाता जगदीश्वर **नः** हमें **स्वस्ति** मंगल **दधातु** प्रदान करे । **अरिष्टनेमिः** जिसकी व्याप्तिरूप परिधि कभी टूटती नहीं ऐसा **तार्क्ष्यः** सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी परमपिता **नः** हमें **स्वस्ति** मंगल **दधातु** प्रदान करे ।**बृहस्पतिः** महती वेदवाणी का अधीश्वर, सर्वज्ञानमय, प्राचीनों का भी गुरु सर्वेश **नः** हमें **स्वस्ति** मंगल **दधातु** प्रदान करे ।।३।।

भावार्थ– इन्द्र आदि विविध नामों से वेद में वर्णित, प्रसिद्ध कीर्ति वाले, सुपुष्टिदायक, सर्वान्तिर्यामी सर्वज्ञ, लयसहित सामगानों द्वारा गाये गये जगदीश्वर के ध्यान से यथाशक्ति यथासंभव उसके गुणों को अपने आत्मा में धारग करके सब मनुष्य ऐहिक और पारमार्थिक श्रेष्ठ अस्तित्व, श्रेष्ठ मंगल और श्रेष्ठ पूजा को निरन्तर प्राप्त करें ।।३।।

इस अध्याय में जीवात्मा को प्रोद्बोधन देते हुए देवासुर संग्राम में विजयार्थ प्रेरित करने, आशीर्वाद देने तथा स्वस्ति की प्रार्थना होने से इस अध्याय की पूर्व अध्याय के साथ संगति है, यह जानना चाहिए ।।

इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।

नवम प्रपाठक में तृतीय अर्ध समाप्त ।।

---

१. ऋ० १।८९।६; य०२५।१९।

सामवेद उत्तरार्चिक मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रानुक्रमणिका